श्री कमलाचण्डी ग्रन्थमाला-१०

फेत्कारिणी-तन्त्रम्

('अञ्जलि-स्वाती' हिन्दी व्याख्या संवलिता)

व्याख्याकार

स्वामी शत्रुघ्न दास

एवं

विकास थपलियाल 'शिवम्'

मधुसूदन प्रकाशन

श्री कमलाचण्डी ग्रन्थमाला-१०

फेत्कारिणी-तन्त्रम्

('अञ्जलि-स्वाती' हिन्दी व्याख्या संवलिता)

व्याख्याकार

स्वामी शत्रुघ्न दास

एवं

विकास थपलियाल 'शिवम्'

मधुसूदन प्रकाशन

श्रीकमलाचण्डी ग्रन्थमाला-१०

फेत्कारिणी-तन्त्रम्

('अञ्जलि-स्वाती' हिन्दी व्याख्या संवलिता)

व्याख्याकार

स्वामी शत्रुघ्न दास

एवं

विकास थपलियाल 'शिवम'

प्रकाशक

मधुसूदन प्रकाशन

पो०ओ० जाखचौरा,

टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)

प्रकाशक :

मधुसूदन प्रकाशन

पो0ओ0 - जाखचौरा

टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)

दूरभाष - 09760219141, 09997979276, 09411184063

mail : vikasthapliyal31@gmail.com

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 2018

मूल्य 450/- मात्र

मुख्य प्राप्ति स्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
469/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं0 21 ए, अंसारी रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली - 110002
फोन - 011-32996391

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117, गोपाल मन्दिर लेन
पो.बॉ. नं. 1129, वाराणसी-221001
फोन - 0542-2335263

टाईपसेटिंग :

कृष्णा कम्प्यूनिकेशन्स, ऋषिकेश

मुद्रक :

Shri Kamla Chandi Granthmala - 10

FETKARINI TANTRAM

(WITH 'ANJALI-SWATI' HINDI COMMENTRY)

Translated by

SWAMI SHATRUGHNA DAS

And

VIKAS THAPLIYAL "SHIVAM"

Published by

Madhusudan Prakashan

P.O. - Jakh Chaura, Tehri-Garhwal

Uttarakhand - 249130

Publishers :
Madhusudan Prakashan
P.O. Jakhchaura, Tehri Garhwal
Uttarakhand - 249130
Tel. : 9760219141, 9997979276, 9411184063
E-mail : vikasthapliyal31@gmail.com

© All Rights reserved with the Publisher

First Edition - 2018

Price : 450/-

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : 011-32996391

CHAUKHAMBA SURBHARTI PRAKASHAN
K.37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. : 0542-2335263

Typesetting :
Krishna Communications, RKSH

Printed by :

पूर्वालाप

प्रसूते संसार जननि जगतीं पालयति च,
समस्तक्षित्यादि प्रलयसमये संहरति च।
अतस्त्वां धाताऽपि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि,
महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौमि भवतीम्।।

संसार का प्रत्येक प्राणी सुखाकांक्षी है। मानव जाति के लिए वास्तविक सुख-प्राप्ति का उपाय केवल 'धर्म' ही है। 'धर्म' शब्द का निरूपण (परिभाषित) करते हुए महर्षि कणाद ने अपने 'वैशेषिक (औलूक्य) दर्शन' के द्वितीय सूत्र में **'यतोऽभ्युदयः निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'** कहा है। इस 'अभ्युदय' (लौकिक तथा पारलौकिक स्वर्गादिसुख रूप) **'प्रेय'** तथा निःश्रेयस (परमात्म-ब्रह्मप्राप्ति-मुक्ति रूप) **'श्रेय'** की उपलब्धि हेतु चार प्रकार की साधन प्रणालियाँ शास्त्रों में कही गई हैं। प्रथम - वेदोक्त साधन चतुष्टय, द्वितीय - सांख्योपदिष्ट साधनत्रय, तृतीय - योगशास्त्र वर्णित साधनविधि तथा चतुर्थ - आगमोक्त (तन्त्रशास्त्रोक्त) साधन-प्रक्रिया। वर्तमान युग (कलियुग) के अनुकूल प्रशस्त एवं सिद्धिप्रद साधन केवल आगमोक्त साधन-विधि को ही माना गया है। महानिर्वाण तन्त्र में कहा गया है -

तपः स्वाध्याय हीनानां नृणामल्पायुषामपि। क्लेशप्रयासाशक्तानां कुतो देहपरिश्रमः।।
गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः आगमोक्ताः कलौ शिवे। नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः कदापि गृहमेधिनाम्।।

स्व-स्व कर्मपाशों से आबद्ध जन्म-मृत्यु रूप सतत प्रवाह में पड़े हुए ऐसे मनुष्य जो वैदिकादि आचरणों तथा साधनाओं द्वारा इस संसार सागर से स्वयं का उद्धार करने में असमर्थ हैं, उनके कल्याण (प्रेय तथा श्रेय दोनों की प्राप्ति) के लिए ही भगवान शिव ने शिवा को माध्यम (श्रोता) बनाकर जिन शास्त्रों का उपदेश किया है, उन्हीं शास्त्रों को आगम अथवा तन्त्रशास्त्र कहा जाता है। आगम शब्द के 'आ', 'ग' तथा 'म' अक्षरों के भावों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है -

आगतं शिव वक्त्रेभ्योः गतं च गिरिजा श्रुतौ। मग्नस्तस्या हृदम्भोजे तस्मादागम उच्यते।।

शिव-शिवा के सम्वाद (प्रश्नोत्तर-कथनोपकथन) रूप से वर्णित इन आगमों की संख्या रुद्रयामल में चौंसठ कही गई है। शक्ति तत्व की उपासना-मन्त्र साधना आदि से सम्बन्धित आगमों को प्रायः तन्त्रशास्त्र ही कहा जाता है।

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति (पालन) तथा संहार करने वाली माया की नियन्ता, आद्या, अनाद्या, अनामया, अविकारिणी आदि संज्ञाओं से सम्बोधिता परब्रह्मस्वरूपा, चितिरूपा शक्ति के अनेकों सगुण स्वरूपों की ऋषि-मुनियों द्वारा उपदिष्ट विभिन्न साधना विधियों को, प्राचीन अथवा अर्वाचीन अनेकों तन्त्राचार्यों द्वारा विविध प्रकार के बहुत से तन्त्र ग्रन्थों द्वारा प्रकाशित गया है। इनमें कई ऐसे भी ग्रन्थ-रत्न हैं, जिनके प्रणयन कर्ता के नाम की उपलब्धि भी नहीं होती है। तन्त्र ग्रन्थ (तन्त्र-शास्त्र) भले ही शिव-शिवा (अथवा भैरव-भैरवी, महाकाल-देवी, शिव-पार्वती, ईश्वर-देवी आदि) संवाद रूप हों, उनके रचनाकार मानव ही हैं। जैसे कि पुराणों के रचनाकार श्री द्वैपायन व्यास कहे जाते हैं, जबकि 'पुराण' उनके द्वारा प्राचीन इतिहासों का किया गया सङ्कलन मात्र है।

शाक्त तन्त्र-ग्रन्थों में **'फेत्कारिणी-तन्त्र'** का अपना अलग ही विशेष महत्व है। इसमें आद्याशक्ति महाकाली के दश महाविद्या स्वरूपों में से दक्षिणाकाली, तारा तथा धूमावती के पूजन, मन्त्रसाधनों, प्रयोगों आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के विषय में आगे और कुछ कहने से पहले उपर्युक्त तीनों महाविद्याओं से परिचय करा देना श्रेयस्कर होगा।

महाकाली (आद्याशक्ति)

शास्त्रों के अनुसार विश्व संरचना का कार्य पुरुष तथा प्रकृति के समन्वय से ही सम्पन्न होता है। इस पुरुष के काल तथा यज्ञ भेद से दो विवर्त कहे जाते हैं। काल-पुरुष अनादि एवं व्यापक है तथा यज्ञ-पुरुष सादि एवं परिछिन्न है। वास्तव में काल-पुरुष का ही परिछिन्नता को प्राप्त यत्किञ्चित प्रदेश यज्ञ-पुरुष कहलाने लगता है। सृष्टि का प्रथम प्रवर्तक काल-पुरुष है। यज्ञ-पुरुष भी काल-पुरुष के आश्रित होकर ही विश्व-सृष्टि में समर्थ होता है। मन्त्र-संहिताओं में 'काल' शब्द से निर्देशित तत्व की ही उपनिषदों में 'परात्पर' नाम से प्रसिद्धि है। सर्वमृत्युघनस्वरूप अमृत तत्व का ही दूसरा नाम 'परात्पर' है। अमृत-तत्व सत् है। मृत्यु तत्व असत् है। फिर भी दोनों एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं। तमः प्रकाशवत् अत्यन्त विरुद्ध लक्षण वाले होने पर भी दोनों में अविनाभाव रूप सम्बन्ध हैं। दोनों में एक सर्वथा सत्-अविनाशी तथा दूसरा सर्वथा असत्--विनाश स्वरूप वाला है। इसी सदसद्रूप अमृत-मृत्यु की समष्टि की संज्ञा काल-पुरुष है। 'अमृतञ्चैव मृत्युश्च सदसच्चाऽमर्जुन' द्वारा भगवती गीता इसी तत्व का सङ्केत करती है। विश्व-सृष्टि से पूर्व स्थित यह तत्व केवल 'सत्' रूप न होने के कारण 'सत्' नहीं कहा जा सकता तथा केवल 'असत्' रूप न होने के कारण 'असत्' भी नहीं कहा जा सकता। 'सत्' तथा 'असत्' परस्पर विरुद्ध होने के कारण इस तत्व को 'सदसत्' भी नहीं कह सकते। इस अनिर्वचनीय तत्व का निरूपण करते हुए शतपथ ब्राह्मण (१०-४-१) में कहा गया है -

नैव वा इदमग्रेऽसदासीत्, नैव सदासीत्। आसीदिव वा इदमग्रे नेवासीत्। तस्मादेतद् ऋषिणाऽभ्यनुक्तं – नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्। इति।

इसी विलक्षण तत्व का नाम परात्पर है। यही काल–पुरुष है।

'तम' तीन प्रकार का कहा गया है। अनुपाख्य, अनिरुक्त तथा निरुक्त। कृष्ण वर्ण, कोयला आदि निरुक्त तम हैं, इनका भली–भाँति निर्वचन किया जा सकता है। रात्रि का अन्धकार, नेत्रों का कसकर बन्द करने पर प्रतीत होने वाला अन्धकार अनिरुक्त तम के स्वरूप हैं। प्रत्यक्ष होने पर भी इसका निर्वचन नहीं किया जा सकता। अह:काल सृष्टि है। अनिरुक्त रात्रिकाल है, प्रलय है। दोनों की समष्टि (अहोरात्रि) विश्व है। विश्वाभाव 'अनुपाख्य' तम है। यह अनुपाख्य तम प्रलय काल में अनिरुक्त तम से आवृत्त रहता है। इसी 'अनुपाख्य' तम को कालपुरुष कहा जाता है। यह विश्वाभाव रूप है। अत: सद्रूप होने पर भी ज्ञानचक्षु से अतीत होने के कारण इसे 'असत्' कहा गया है। यहाँ 'असत्' अभाव का द्योतक नहीं है। बल्कि इस विश्वकाल में वह इससे विलक्षण किन्तु 'सत्' रूप है। यही इसका तात्पर्य है। इसी अभिप्राय से कहा गया है –

असदेवेदमग्र आसीत्। तत् सदासीत। कथमसतः सज्जायेत्। इत्यादि।

सृष्टि से पूर्व जब कुछ नहीं था, उस समय केवल 'अनुपाख्य' तम था। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए मनु ले कहा है –

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ (मनु० १–५)

यही अप्रज्ञात, अलक्षण, अप्रतर्क्य तथा अनिर्देश्य तत्व ही महाकाल है। परात्पर नाम से प्रसिद्ध इसी विश्वातीत महाकाल पुरुष की शक्ति का ही नाम महाकाली है। दाहिका–शक्ति जैसे अग्नि से तथा प्रकाश–शक्ति जैसे सूर्य से अभिन्न है, वैसे ही चिदात्मा (रूप काल पुरुष) की (चित्) शक्ति उससे अभिन्न है। वह एक ही तत्व शिव–शक्ति के रूप में परिणाम को प्राप्त हो रहा है। शिव का 'अर्धनारीश्वर' स्वरूप भी इसी तथ्य का उद्‌घाटन करता है। शक्ति–शक्तिमान में स्त्री–पुभाव–भेद मानना सर्वथा अनुचित है। इसी वस्तु का निर्देश करते हुए देवी भागवत में कहा गया है –

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता॥
अतएव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुम्भेदो न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शाश्वत सदपि नारद॥ (दे०भा० ९–१–१०, ११)

और भी **अहमेवास पूर्वं तु नान्यत् किञ्चिन्नगाधिप।**
तदात्मरूपं चित्संवित परब्रह्मैकनामकम्॥
तस्य काचित् स्वतःसिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता।
पावकस्योष्णनेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः॥

स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता। (दे०भा० ७-३२-६, ७)

मनमायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम्।

सापि मत्तः पृथङ् माया नास्त्येव परमार्थतः॥ (दे०भा० ७-३३-५)

कोई काली को 'शक्ति' रूप (स्त्री) मानता है, तो कोई 'शक्तिमान' रूप (पुरुष)। परन्तु वास्तव में 'काली' न तो पुरुष है, न स्त्री और न नंपुसक। इसी तथ्य को महाकाल-कृत 'सुधा-धारा-स्तव' में - **न च स्त्री न षण्डः पुमान्नैव च त्वम...॥** कहकर निरूपित किया गया है। काली 'शक्ति' और 'शक्तिमान' दोनों की द्योतक 'पूर्ण ब्रह्म' स्वरूपा है। अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा यह विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन तथा संहार करती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए 'काल-तन्त्र' में कहा गया है -

काल-शक्त्या सर्वमिदं जगत् परिचालयति, सैव काली प्रकीर्तिता यद्वा कलयति वा उत्पादयति, पालयति, प्रलये पुनरात्मन्येव विलोपयति इति काली।

'महाभारत (शान्तिपर्व)' में जगत् के सृष्टि आदि के कर्ता-रूप में 'काल-शक्ति' का ही उल्लेख किया गया है। यहाँ 'काली' पुरुष तथा 'काल' (अथवा 'महाकाल') प्रकृति रूप है। यही 'काल-शक्ति' ही विश्व की सृष्टि करने वाला, पालन (स्थिति) करने वाला तथा प्रलय-काल में विश्व को स्वयं में ही लीन कर लेने वाला है। जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है -

कालो अन्नो वहति सप्तरश्मिः, सहस्राक्षो अजरो भूरि रेताः।

तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥

स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः।

स एव सम्भुवनान्याभरत् स एव सम्भुवनानि पर्य्यैत्॥

पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद्वै, नान्यत परमस्ति तेजः॥

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः, पृथिवीरुतः काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वितिष्ठते॥

सप्त-रश्मि (सूर्य-स्वरूप) काल ही अन्न (प्राणियों को) वहन (उत्पन्न) करता है। सहस्राक्ष (ब्रह्मस्वरूप) काल 'अजर' (कभी जीर्ण न होने वाला) तथा अत्यन्त वेगवान (सर्वव्यापक) है। मननशील विद्वान पुरुष उसी का चिन्तन करते हैं। यह दृश्यमान समस्त संसार उसी के रथ के चक्र के समान हैं।

वह काल ही समस्त लोकों की सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाला है। उसे ही **'प्रथम देव'** (महादेव) कहा जाता है। वह काल ही इन सभी लोकों का पिता है। यह दृश्यमान समस्त लोक उसी से उत्पन्न, उसी का पुत्र है। इससे बड़ा अन्य कोई तेज (शक्ति) नहीं है।

काल ही सभी का ईश्वर (स्वामी-अधिपति) है, वह 'प्रजापति' का भी पिता है - **'कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पिताऽऽसीत् प्रजापतेः'**। काल ही प्रजा की सृष्टि करता है। काल की स्थिति प्रजापति से पूर्व ही है - **'कालः प्रजा असृजत्, कालो अग्रे प्रजा-पतिम्'**। स्वयम्भू, कश्यप तथा तप सभी काल से ही उत्पन्न हुए

हैं – **'स्वयम्भूः कश्यपः कालात्, तपः कालादजायत्'**। ऋक्, यजुः, प्रभृति वेद काल से ही उद्भूत हैं। काल में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है। 'ब्रह्म' की शक्ति-विशेष के अतिरिक्त काल अन्य कुछ नहीं है – **"कालादृचः समभवन, यजुः कालादजायत। काले लोकाः प्रतिष्ठिताः, कालाख्यापि शक्तिब्रह्मण एव।"**

जिसके द्वारा समस्त मूर्तियों (प्राणि-पदार्थ मात्र) का 'उपचय' – 'अपचय' होता है **(येन मूर्तीनामुपचयाश्चापचयाश्च लक्ष्यन्ते)**, वह 'काल' नित्य है, अखण्ड है। सूर्य-गति के आधार पर दिन, रात्रि, घटी-पल आदि रूप से काल की गणना मनुष्य की कल्पना मात्र है।

'काल-शक्ति' स्वतन्त्र है। अन्यान्य शक्तियाँ इसके अधीन हैं – **'कालाख्येन स्वातन्त्र्येण सर्वाः पर-तन्त्रा जन्मादि-मय्यशक्तयः'**। सर्वेश्वरी के अद्वैत होने पर भी बाह्य-दृष्टि से उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। काल-शक्ति उन सभी शक्तियों का आश्रय है, क्योंकि काल-विशेष में ही समस्त क्रियाओं का अनुष्ठान होता है। 'काल-शक्ति' के अवलम्बन से ही महाशक्ति की 'अव्याहत कला-समूह' जन्मादि षड्-विकारों को प्राप्त होती हैं।

अव्याहताः कला यस्य काल-शक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षड्-भाव-भेदस्य योनयः॥

एक एवं सम्पूर्ण पदार्थों के बीजस्वरूप 'ब्रह्ममयी महामाया' की अनिर्वाच्य शक्ति-रूप से विविधाकारों में संस्थिति ही 'काल-शक्ति' है। यही लौकिक जगत् में भोक्ता-भोग्य तथा भोग रूप से प्रतीत का विषय होती है –

एकस्य सर्वबीजस्य यस्य चेयमनेकधा।
भोक्तृ-भोक्तव्य-रूपेण भोग-रूपेण च स्थितिः॥

अद्वैत दृष्टि से 'पर-ब्रह्म' अथवा 'परा-शक्ति' से 'काल-शक्ति' अपृथक (अभिन्न) है। 'महाशक्ति' के राज्य में 'काल-शक्ति' शक्ति-विशेष के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जो काल-शक्ति के अधीन नहीं है, वरन् काल के ऊपर प्रतिष्ठित है तथा नित्य सिद्धा 'महाशक्ति' है, उसी का नाम 'काली' है। जो 'काल' जगत का आधार – **'कालो हि जगदाधारः'** है, उसका भी आश्रय (आधार) 'काली' है। अद्वैत-दृष्टि से उसकी कोई पृथक् सत्ता नहीं है। यहाँ 'काल-शक्ति' 'पराशक्ति' में लीन हो जाती है। 'पर-ब्रह्म' स्वरूप 'परा-शक्ति' को ही उपनिषदों में **'सर्व-लोक-प्रतिष्ठा'** कहा गया है।

'काली' काल परतन्त्र नहीं है, वह काल-कृत उपाधि रहित है। महा-शक्ति-रूपिणी 'काली' के सम्मुख 'काल' की तुच्छता एवं निष्क्रियता के प्रतिपादन हेतु ही 'महाकाल' उसके श्रीचरण-तल में शव-रूप में शयन किये रहते हैं।

'काली' अनन्त शक्ति का आश्रय है। जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिङ्ग (चिनगारियों-अग्नि-कण), समुद्र में (जल) तरंग तथा सूर्य से अनन्त किरणें निरन्तर चारों ओर विकीर्ण होती रहती हैं, उसी प्रकार 'महा-शक्ति काली' से भी अनन्त

शक्ति-कणों का उद्भव होता रहता है। परन्तु इससे उसकी शक्ति का क्षय अथवा उसकी पूर्णता में कोई न्यूनता नहीं होती है - **'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'**।

'चिन्मयी' महाशक्ति काली की चित्-कणों से ही सारा जीव जगत् सचेतन रहता है। जब 'महामाया काली' विश्व की समस्त चैतन्य शक्ति को (प्रति संहार द्वारा) अपने में विलीन कर अव्यक्त तत्व में लीन होती है, तब ही जगत् 'शव-रूप' शिव हो जाता है। शवारूढा काली की मूर्ति इसी स्थिति का प्रतीक है। भगवत्पाद श्री आद्य शंकराचार्य ने इसी महामाया-महाशक्ति-महाप्रकृति रूप 'काली' को 'शाश्वती विश्व-योनि' कहा है।

'वेदान्त-सूत्र' में भगवान् वेद-व्यास जी ने **'ईक्षतेर्नाशब्दम्'** इस सूत्र के द्वारा इसे 'पर-ब्रह्म' की ईक्षा (इच्छा-कामना-सङ्कल्प आदि) कहा है। यह 'पर-ब्रह्म' की 'स्फुरणा' है। 'श्रीमद्भागवत्' के तृतीय स्कन्ध में श्री शुकदेव द्वारा कथित **'स्तोन्तः शरीरेऽपि ते भूत-सूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः।'** यह वाक्य सर्वप्रथम 'काली-शक्ति' के ही प्राकट्य को उद्घाटित करता है। इसीलिए इसे 'आद्या-शक्ति' कहते हैं। यह 'ब्रह्म-रूप' है। ब्रह्म से अभिन्न है। साक्षात् 'ब्रह्म' है।

'महानिर्वाण-तन्त्र' में इसे 'पर-ब्रह्म' की 'सिसृक्षा' तथा 'महाकाल' रूप कहा गया है -

सृष्टेरादौ त्वमेकासि तमो-रूपमगोचरम्।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं पर-ब्रह्म-सिसृक्षया।।
तव रूपं महाकालो जगत् संहार-कारकः।

'निर्वाण-तन्त्र' में इस 'जगत् संहार कारक' तथा समस्त भूतों का कलन करने वाले 'महाकाल' (**कलनात् सर्वभूतानां स कालः**) का भी 'कलन' करने वाली शक्ति को 'काली' कहा गया है।

कलनात् सर्वभूतां महाकालः प्रकीर्तितः। महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका मता।।
काल-संग्रसनात् काली सर्वेषामादि रूपिणी। कालात्वादादि भूतत्वादाद्या कालीति गीयते।।

इस परम गुह्य 'काली' तत्व को योगी ही जान सकता है।

एकं सर्वगते सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
अनन्तमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम्। योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः पर पदम्।।

स्वयं 'महाकाल' ने इसे 'अचिन्त्य' (मन से परे), 'अमिताकर' (असीम अथवा अनन्त आकार वाली) तथा शक्ति-रूपा (चित् तथा माया शक्ति रूपा) कहा है।

'शक्ति सङ्गम तन्त्र' के अनुसार 'अनादि रूपा' काली ही 'महाकाल रूप' माया को उत्पन्न करने वाली है - **'अनादि रूपा श्रीकाली मायोत्पादन तत्परा'**।

सृष्टि-मध्य में दृश्यमान नाना रूपात्मक विश्व-प्रपञ्च इसी 'अमिताकारा' के ही रूप हैं, परन्तु हैं 'मायिक'। जैसा कि देवी ने स्वयं ही कहा है - **'एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा'**। अर्थात् 'चिद्-रूप' से जो एक है, वही 'माया' के द्वारा असंख्य रूप है। प्रलयान्तर में पुनः स्व-स्वरूप में स्थित होकर 'अरूप' हो जाती है।

पुनः स्वरूपमास्थाय तमोरूपं निराकृतिः। वाचातीतं मनोगम्यं त्वमेवैकाऽवशिष्यते॥

विश्व में 'सत्-असत्' रूप जो कुछ भी है, सब इसी 'ब्रह्मरूपा' की शक्ति है। यही सकल जगत की आत्मा है।

'यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद् वाऽखिलात्मिके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः'।

देवी स्वयं कहती है - **'अहं ब्रह्म-स्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत् शून्यं चा-शून्यं च। अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाऽविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्माणी वेदितव्ये। अहं पञ्च भूतानि। अहमखिलं जगत्। वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याऽहमविद्याऽहम्। अजाऽहमनजाऽहमिति'।**

अर्थात् मैं ब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ। सत्-असत् रूप प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् मुझसे ही उत्पन्न होता है। आनन्द-अनानन्द, विज्ञान-अविज्ञान, जानने योग्य ब्रह्म-अब्रह्म, पञ्चभूत, समस्त लोक, वेद-अवेद, विद्या-अविद्या तथा अज-अनज (अजन्मा-जन्मा) सब कुछ मैं ही हूँ।

'विद्या' तथा 'अविद्या' का निरूपण करते हुए **'श्वेताश्वतरोपनिषत्'** में कहा गया है -

द्वे अक्षरे ब्रह्म-परे त्वनन्ते विद्याऽविद्ये निहिते यत्र गूढे।
क्षरन्तवविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः॥(५-१)

अर्थात् अविनाशी तथा अनन्त (सर्वव्यापक) परब्रह्म में जहाँ 'विद्या' तथा 'अविद्या' दोनों परिच्छिन्नभाव से स्थित हैं (उनमें) 'अविद्या' क्षर (विनाशी) तथा 'विद्या' अमृत स्वरूपा (अविनाशी) है। जो इन 'विद्या' तथा 'अविद्या' दोनों का शासन करने वाला (दोनों को अपने अधीन रखने वाला) है, (उन दोनों का साक्षी रूप वह तत्व) उन दोनों से भिन्न अन्य है। इसी 'विद्या' से 'मुक्ति' तथा 'अविद्या' से 'संसार-बन्धन' है।

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी। संसारबन्धनहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥

॥ वर्ण-निरूपण॥

साधक साधना पथ में जब इस **'अरूप-सर्वरूपमयी भुवनमोहिनी जगदीश्वरी आद्या शक्ति'** के रूप की कल्पना करते हैं **(अरूपां रूपिणीं कृत्वा)** तब सृष्टि पूर्व सर्व व्याप्त अंधकार रूप 'अनुपाख्यतम' को ही इसका आदि रूप स्वीकार करते हैं। इसीलिए काली का रूप (वर्ण) अंधकार रूप तम अर्थात् 'काला' कहा जाता है। जहाँ 'दिक् काल' सहित समस्त 'रूप' एवं 'वर्ण' निःशेषित हैं, वहाँ 'काले' से भिन्न अन्य किसी भी रूप (वर्ण) की स्फूर्ति नहीं होती। 'काला वर्ण' श्वेत वर्ण में सन्निहित सातों वर्णों से परे है। यह वर्ण 'निर्गुण' अथवा 'गुणातीत' स्वरूप का बोधक है। सातों वर्ण विकृत अथवा रूपान्तरित हो सकते हैं परन्तु 'कालावर्ण' नित्य एक सा रहता है। अतः यह 'नित्यता' का भी द्योतक है।

'महानिर्वाण तन्त्र' में इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है -

श्वेतपीतादको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते। प्रविशन्ति तथा काल्यां सर्वभूतानि शैलजे!॥
अतस्तस्याः कालशक्तेर्निर्गुणायाः निराकृतेः। हितायाः प्राप्तयोगानां वर्णः कृष्णो निरूपितः॥

'श्याम' (काला) वर्ण तथा 'नील' वर्ण में नाम-मात्र का अन्तर है। 'तारा' तथा 'राम' नीलवर्ण हैं, 'काली' एवं 'कृष्ण' श्याम (काले) वर्ण वाले हैं। आकाश का भी वर्ण 'नील' है। इसे भी **'खं ब्रह्म'** कहकर 'ब्रह्म' माना गया है, परन्तु यह 'सगुण-ब्रह्म' का द्योतक है।

श्यामवर्णा 'काली' को कृष्णा' कहा जाता है। यह शब्द काली का पर्यायवाचक माना जाता है। इसका अर्थ है - **'कर्षति आत्मसात् करोति, आनन्दत्वेन परिणमयति'**।

अथवा - **कर्षति सर्वान् स्वकुक्षौ प्रलयकाले'**।

'कृष्ण' शब्द की व्याख्या करते हुए 'श्रीधर स्वामी' कहते हैं -

कृषि भूवाचकः शब्दो णश्च निवृत्तिवाचकः। तेयोरैक्यात् परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥

'कृष्ण' तथा 'असित' समानार्थक हैं। इसीलिए 'काली' को 'असिता' भी कहा जाता है। 'सित' का अर्थ है 'बद्ध' (सित षिङ् बन्धने क्तः)। इस प्रकार 'असिता' का अर्थ हुआ जो 'अबद्धा' (सर्व बन्धनों से रहित) अथवा 'निर्मुक्ता'। तात्पर्य यह है कि 'काली' समस्त सांसारिक बन्धनों का उच्छेद कर अपने भक्तों को 'मुक्ति' प्रदान करने वाली है।

'योग-वशिष्ठ' में भी 'शिव-शिवा' दोनों को ही आकाश-रूप (ब्रह्मस्वरूप होने के कारण) 'असित' ही कहा गया है - **'शिवयोर्व्योम-रूपत्वादसितं लक्ष्यते वपुः'**।

वैसे तो 'आकाश' का वर्ण 'नील' है, परन्तु अति सघन होने पर वह 'काला' (असित) ही प्रतीत होता है। 'कृष्णत्व' अव्याकृत परमात्म रूप का बोधक एवं अनादित्व का सूचक है। मायातीत, वागातीत आदि अवस्थाएँ भी 'कृष्ण' शब्द से व्यक्त की जाती हैं।

॥ भेद-निरूपण॥

केवल 'काली' संज्ञा 'चित्-शक्ति' की बोधक मानी जाती है। इसका न कोई रूप है, न मन्त्र और न ही यन्त्र। 'उपाधियुक्त' 'काली' के ही विभिन्न रूपों की कल्पना होती है। जैसे कि जब 'काली' की संज्ञा 'आद्याकाली' ('आद्या' उपाधि युक्त) होगी, तभी एक प्रकार के रूप की कल्पना होगी। 'काली' के अनेक भेद हैं। यथा - **आद्या काली, श्यामा काली (दक्षिणा काली), नीला काली (तारा), प्रपञ्चेश्वरी रक्तकाली (महात्रिपुर सुन्दरी), अनाख्या काली (काम कला दक्षिणा काली)** इत्यादि।

'महाकाल संहिता' के अनुसार 'काली' नौ भेदों वाली है। यथा -

१. आद्या दक्षिणा काली, २. भद्र काली, ३. श्मशान काली, ४. काल काली, ५. गुह्य काली, ६. कामकला काली, ७. धन काली, ८. सिद्धि काली तथा **९. चण्ड काली।**

'अथर्ववेद-सौभाग्य काण्ड-काली मेधा दीक्षितोपनिषत्' के अनुसार 'काली' आठ भेदों वाली कही गयी है। **१. चिन्तामणि काली, २. स्पर्श मणि काली, ३. सन्ततिप्रदा काली, ४. सिद्धि काली, ५. दक्षिणा काली, ६.कामकला काली, ७. हंस काली** तथा **८. गुह्य काली।** इन्हीं आठ 'कालियों' के मन्त्र 'काली-क्रम-दीक्षा' में प्रदान किये जाते हैं। अनन्त भेदरूपा 'काली' के अन्यान्य भेदों का वर्णन ग्रन्थान्तरों में देखे जा सकते हैं।

भ्रमवश प्राय: लोग सभी कालिकाओं को 'महाकाली' मानते हुए उसे 'संहार-मूर्ति' मानते हैं। किन्तु यह सत्य नहीं है। 'काली' तो उपाधि भेद से सृष्टि रूपा (आद्या-काली), स्थिति रूपा (श्यामा काली), संहार रूपा (महाकाली), मतान्तर से विपरीत प्रत्यङ्गिरा (भद्रकाली), अनाख्यारूपा (काम कला काली) तथा 'भाषा-मूर्ति' स्वरूपा है।

कुछ लोगों के द्वारा 'श्यामा काली' (दक्षिणा काली) को 'आद्या-काली' मानना भी भ्रम है। 'श्यामा काली' 'काली' के 'कादि-क्रम' में आरम्भ की विद्या (आदि विद्या) है। पूर्व कथित 'काली' के विभिन्न भेद (रूप) भद्रकाली, श्मशान काली, सिद्धि काली, काम-कला-काली, हंस काली, गुह्य काली इत्यादि सच्चिदानन्द स्वरूपा 'दक्षिणा काली' के ही भेद माने जाते हैं।

'काली' के अविर्भाव का वर्णन विभिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है। 'मार्कण्डेय पुराण' (दुर्गा सप्तशती) की वह 'काली' जो अम्बिका के ललाट से प्रकट हुई है, जिसका ध्यान - '**काली-कराल वदना विनिष्क्रान्ताऽसि पाशिनी**' इत्यादि रूप से है, वह 'काली-पुराण' की 'काली' से भिन्न है। 'काली-पुराण' में 'काली' का ध्यान निम्नवत् है -

नीलोत्पलदल श्यामा चतुर्बाहु समन्विता। खट्वाङ्ग चन्द्रहासञ्च विभ्रती दक्षिणे करे॥
वामे चर्म च पाशञ्च ऊर्ध्वाधो भावत: पुन:। दधती मुण्डमालाञ्च व्याघ्रचर्मवराम्बरा॥
कृशाङ्गी दीर्घदंष्ट्रा च अतिदीर्घातिभीषणा। लोलजिह्वा निम्नरक्तनयना नादभैरवा॥
कबन्धवाहना पीनविस्तार श्रवणानना।

'श्री दुर्गा सप्तशती' के ही 'प्राधानिक रहस्य' तथा 'वैकृतिक रहस्य' में वर्णित दोनों ही महाकालियाँ भिन्न-भिन्न हैं। प्राधानिक रहस्योक्त 'महाकाली' सर्वाद्या लक्ष्यालक्ष्य स्वरूपा त्रिगुणा परमेश्वरी 'महालक्ष्मी' का 'तामस-रूप' है। इसका स्वरूप निम्नवत् वर्णित है -

सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्रांकितवरानना। विशाललोचना नारी वभूव तनुमध्यमा॥
खड्गपात्रशिर: खेटैरलंकृतचतुर्भुजा। कबन्धहारं शिरसा विभ्राणा हि शिर: स्रजम्॥

ब्रह्मा के द्वारा स्तुति करने पर 'मधु-कैटभ' के विनाशार्थ अवतीर्य वैकृतिक रहस्योक्त महाकाली का स्वरूप इस प्रकार है -

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा। विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप। रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः॥
खड्गबाणगदाशूलचक्रशंखभुशुण्डिभृत्। परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ॥

'सप्तशती' के प्रथम चरित' की 'अधिदेवता' के रूप में इसी वैष्णवी माया महाकाली का वर्णन (भगवान विष्णु की 'योग-निद्रा' के रूप में भी) किया गया है। यथा -

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिधान् शूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

'रुद्रयामल' में इसी 'महाकाली' के ध्यान में उसे 'बागीश्वरी' भी कहा गया है। यहाँ उसके दोनों हाथों में 'चक्र' तथा 'परिघ' के स्थान पर 'पाश' तथा 'परशु' धारित कहा गया है।

'तन्त्रसार' में 'महाकाली' का ध्यान 'पञ्चवक्त्रा-महारौद्री-दशभुजा' रूप में वर्णित है।

पञ्चवक्त्रा महारौद्रीं पीतवक्त्र त्रिलोचनाम्। शक्तिशूलधनुर्बाणखड्गखेटवराभयान्॥
दक्षां दशभुजैर्देवीं बिभ्राणां भोगिभूषणाम्। ध्यात्वैकं साधकः साध्यं साधयेत् मनसि स्थितम्॥

॥ स्वरूप-व्याख्या॥

१. नील (श्याम) वर्ण - नील वर्ण 'मुक्ति' का सूचक है। जैसा कि 'त्रिपुरा-सार-सम्मुच्चय' में कहा गया है - (केवल) भक्ति के द्वारा (ही) जानने (अथवा प्राप्त करने) योग्य 'भगवती काली' का मुक्ति प्राप्ति हेतु ध्यान मेघ-रहित निर्मल आकाश की आभा (नील वर्ण) के समान करना चाहिए।

मोक्षे साक्षादपेताम्बुद-गगन-निभां भावयेद् भक्ति-गम्याम्।

सालोक्य, सारूप्य, साष्टर्य, सायुज्य तथा कैवल्य रूप पाँच प्रकार की मुक्तियों में 'कैवल्य' रूप मुक्ति प्रदान करने वाली भगवती काली ही है।

जिस प्रकार 'श्याम' वर्ण अन्य सभी वर्णो को अपने में आत्मसात कर लेता है, उसी प्रकार जब साधक विशुद्ध ज्ञान के द्वारा नाम-रूपात्मक समस्त विश्व को अपनी आत्मा में लीन कर लेता है अर्थात् आत्मा से अभिन्न (आत्म-स्वरूप) जान लेता है, तब ही वह 'कैवल्य' रूपी मुक्ति का अधिकारी बनता है।

२. शशि-शेखरा - भगवती के ललाट पर स्थित चन्द्रमा उसकी 'चिदानन्दमयता' का बोधक है। सर्वजीव बीज स्वरूप हिरण्यगर्भ ब्रह्मा 'चन्द्र' के नाम से भी प्रसिद्ध है। अतः शशि, 'जीव-समष्टि' का द्योतक है। परमात्मा की 'परा' तथा 'अपरा' नाम वाली दो प्रकृतियाँ हैं। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार रूप आठ भेदों वाली 'अपरा' प्रकृति है। जिसके द्वारा यह जगत् धारित है, वह 'जीव' रूपा 'परा' प्रकृति है। 'अपरा' जड़ स्वरूप वाली तथा 'परा' चेतन स्वरूपा

है। ललाट पर स्थित 'चन्द्र' जड़ रूप 'अपरा' प्रकृति से चेतन रूप 'परा' प्रकृति की उत्कृष्टता का सूचक है। भगवती 'काली' द्वारा इस 'जीव-शक्ति' का धारण करना यह व्यक्त करता है कि वह 'परमात्मा रूपिणी चिदानन्दमयी' है।

भगवती के ललाट पर स्थित चन्द्र उसकी 'निर्वाण मोक्ष-दायिनी' स्वरूप का बोधक भी कहा जाता है।

३. मुक्त-केशी - 'केश' शब्द की निष्पत्ति क(ब्रह्मा)+ अ (विष्णु)+ईश (रुद्र) रूप से कही गयी है। ये तीनों क्रमशः रजो गुण, सत्व गुण तथा तमो गुण प्रधान कहे गये हैं। जो इन तीनों गुणों से परे 'गुणातीता' अथवा 'निर्विकारा' है, वह 'काली' है।

४. त्रिनेत्रा - भगवती के तीनों नेत्र 'चन्द्र', 'सूर्य' तथा 'अग्नि' रूप माने गये हैं। इनके द्वारा वह सम्पूर्ण जगत् को सम्यक् रूप से देखती है। इससे उसकी 'सर्वव्यापकता' का बोध होता है। भगवती के ये तीनों नेत्र उसकी 'त्रिकालज्ञता' के भी अवबोधक माने जाते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि 'स्वयंप्रकाश ब्रह्मस्वरूपा' भगवती के प्रकाश द्वारा ही ये चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि प्रकाशमान हैं, अर्थात् इन तीनों के साथ ही समस्त प्रकाशक पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से भगवती काली ही अधिष्ठित है। 'पूर्णानन्द स्वामी' ने इन तीनों को 'ईच्छा', 'ज्ञान' तथा 'क्रिया' रूप शक्ति कहकर भगवती की ब्रह्मस्वरूपता को प्रदर्शित किया है।

५. महाघोर बालावतंसा - भगवती के कानों में कुण्डल रूप में दो 'बाल-शव' धारित है। यह 'निर्विकार' साधक का प्रतीक कहा गया है। बालकवत् निष्काम् (तथा निर्विकार) साधक ही भगवती के कृपा-पात्र होते हैं। जैसे माता अपने प्रिय बालक की वाणी सुनने के लिए सदैव उद्यत रहती है, उसी प्रकार भगवती भी अपनी 'कृपा-परवशता' वश अपने प्रिय (बालकवत्) भक्तों की प्रार्थना तथा उनके उद्‌गार सुनने के लिए सदैव तत्पर रहती हैं।

६. सृक्कद्वयगलद्रक्तधारा - रक्त 'रजोगुण' का प्रतीक है। मुख के दोनों किनारों से रक्तधारा का गिरना भगवती के (अन्तर्बाह्य रूप से) रजोगुण रहित 'शुद्ध सत्वात्मिक' स्वरूप को व्यक्त करता है।

७. प्रकटित रदना - बाहर निकलते हुए दातों से भगवती अपनी बाहर निकली हुई जिह्वा को दबाये हुए हैं। श्वेत दाँत 'स्वप्रकाश सत्वगुण' का तथा रक्त लोल जिह्वा रजो (तथा तमो) गुण का सूचक है। यह भगवती के 'सत्वगुण' द्वारा 'रजो' तथा 'तमो गुण' के विनाशक स्वभाव का द्योतक है।

८. स्मित मुखी - यह भगवती के 'नित्यानन्द' स्वरूप (परमानन्द स्वरूप ब्रह्म) का परिचायक है।

९. पीनोन्नत-पयोधरा - 'स्तन' आहार का प्रतीक है। 'पुष्ट-वृहत्-उन्नत स्तनों' से स्पष्ट होता है कि भगवती जगत् के पालन हेतु सदैव सन्नद्ध रहती है। अर्थात् वे विश्व का संहार ही नहीं बल्कि उसका (सृष्टि तथा) पालन करने वाली भी हैं।

अथवा अपने निष्काम भक्तों को अमृतरूपी दुग्ध का पान कराकर (ज्ञान प्रदान कर) उन्हें 'अमरत्व' (मुक्ति) प्रदान करने वाली हैं।

१०. कण्ठावसक्तमुण्डाली गलद्रुधिर चर्चिता – 'निरूत्तर-तन्त्र' में भगवती को 'पञ्चाशद्वर्णमुण्डाली' कहा गया है। पचास मनकों वाली यह 'मुण्डमाला' स्वर-व्यञ्जन सहित पचास वर्णात्मक 'मातृका' की प्रतीक है। यह भगवती के 'शब्द-ब्रह्म' स्वरूपा होने का बोधक है। 'शब्द' आकाश, पञ्चतत्वों में प्रथम तत्व, का गुण है। इस 'शब्द-गुण' से 'रक्त' अर्थात् 'रजो-गुण' का प्रवाहित होना सृष्टि के आरम्भ का परिचायक है। यह भगवती के 'सृजन-शक्ति' को व्यक्त करता है।

'कामधेनु-तन्त्र' में देवी स्वयं कहती हैं – **'मम कण्ठे स्थितं बीजं पञ्चाशद् वर्णमद्भुतम्।'**

११. दिगम्बरा – दिशायें ही भगवती के वस्त्र हैं अर्थात् वह वस्त्र (वासना-माया) से रहित है। भगवती का दिगम्बरा स्वरूप उसके 'चिद्-ब्रह्म-स्वरूपिणी' होने का परिचायक है।

'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्, तेन मुह्यन्ति जन्तवः'। के अनुसार 'अज्ञान' माया (अथवा माया का कार्य) है। जो साधक इस वासना तथा अज्ञान (रूपी माया) से निर्मुक्त 'निष्काम' तथा 'विशुद्ध ज्ञान' वाला है, वही मुझे प्राप्त कर (ब्रह्म-ज्ञानी हो) सकता है, इसी बात को सूचित करने के लिए भगवती दिगम्बरा हैं।

१२. शवानां करसंघातैः कृतकाञ्ची – कल्प की समाप्ति (अथवा खण्ड प्रलय काल) होने पर सभी जीव 'स्थूल पाञ्च भौतिक' शरीर का परित्याग कर (मृत्यु के पश्चात्) अपने-अपने कृत-कर्म-संस्कारों के साथ लिङ्ग (सूक्ष्म) शरीर धारण करके सगुण ब्रह्म-स्वरूपिणी भगवती के 'कारण शरीर' के 'अविद्यांश' में कल्पारम्भ पर्यन्त अर्थात् पुनर्जन्म पर्यन्त स्थित रहते हैं। इसलिए यहाँ मृत जीवों के प्रधान कर्म साधन भूत हाथ समूहों के द्वारा 'विराट रूपिणी' महादेवी के गर्भ-धारण योग्य उदर के निम्न भाग तथा 'योनि' के ऊपर कटि प्रदेश में काँची (करधनी) की कल्पना की गई है।

'महानिर्वाण तन्त्र' में भी उल्लेख है –

कर्मणा जायते जन्तुः कमणैव विलीयते। देहे विनिष्टे तत्कर्म पुनर्देहे प्रलभ्यते॥

१३. चतुर्भुजा – भगवती की चारों भुजाएं इस बात की संकेतक हैं कि चतुर्वग (चतुःपुरुषार्थ) रूप 'धर्म', 'अर्थ', 'काम' तथा 'मोक्ष' को प्रदान करने वाली वही हैं।

प्रकृति (माया) से उद्भूत सत्वादि गुण प्रधान चतुर्भुज ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र भी चारों पुरुषार्थों को देने वाले कहे गये हैं, परन्तु इन्हें भगवती के माध्यम से ही अपने भक्तों को देने में समर्थ हैं। विशेष रूप से 'मुक्ति' तो, अपने अनन्य भक्तों को भगवती के शरण में लाकर ही उसकी कृपा से उसी के द्वारा ही प्रदान करवाते हैं।

१४. **आयुध** – भगवती अपने चारो हाथों में 'कृपाण', 'मुण्ड', 'वर' तथा 'अभय' मुद्रा धारण की हुई हैं।

क) कृपाण – 'कृपाण' अथवा 'खड्ग', 'तेजस्तत्व' का प्रतीक है। प्रकाश धर्म 'सत्व' का है और 'सत्व' ज्ञान-रूप है। 'श्रीमद्भागवत्' में श्री कृष्ण के 'सुदर्शन चक्र' को भी 'तेजस तत्व' रूप कहा गया है – **अपां तत्वं दर-वरं तेजस्तत्वं सुदर्शनम्।** 'कृपाण' तथा 'सुदर्शन' दोनों की प्रकृति 'काटना' है। अपने वामोर्ध्व कर में गृहीत इस 'ज्ञान-रूपी' 'कृपाण' के द्वारा भगवती अपने निष्काम साधकों के 'पाप-पुण्य' रूपी पशुओं तथा 'माया रूपी पाश' 'अज्ञान' (अथवा कर्म-बन्धनों) को काटकर उन्हें इस संसार से ऊपर उठाकर (मुक्तकर) स्वयं में लीन कर लेती हैं।

तस्मात्ज्ञानासिना तूर्णमशेषं कर्म बन्धनम्। कामाकामकृतं छित्वा शुद्धश्चात्मनि तिष्ठति।

(शिव-धर्मोत्तर)

पाप-पुण्य-पशुं हत्वा ज्ञान-खड्गेन शाम्भवि'। (योगिनी-तन्त्र)

वामोर्ध्व कर में 'कृपाण' का होना इस बात का भी प्रमाण है कि 'वाम-मार्ग' ('वाम' शब्द सुन्दरता एवं श्रेष्ठता का प्रतीक है) के साधक ही विशेष रूप से 'मुक्ति' के अधिकारी हैं। 'वाम' प्रशस्य नाम है। इसे 'शिव' का पर्याय भी माना गया है। 'वाम-मार्ग' का अर्थ है 'शिव' (अथवा शिवा) की प्राप्ति (मोक्ष) हेतु 'शिव' के द्वारा ही निर्देशित (उपदिष्ट) साधना-पथ।

इस प्रकार 'कृपाण' 'करुणामयी जगज्जननी' भगवती के 'मोक्ष-दात्री' स्वरूप का अवबोधक है।

'कृपाण' को 'धर्म' का भी प्रतीक कहा गया है। ऊपर के हाथ में इसका होना 'धर्म' की उत्कृष्टता का सूचक है, क्योंकि 'धर्म' के आधार पर अन्य पुरुषार्थों (अर्थ-काम तथा मोक्ष) की उपलब्धि सम्भव हो पाती है।

ख) छिन्न-मुण्ड – भगवती के वामाधः (निचले बायें) कर में कटा हुआ 'नर-मुण्ड' गृहीत हैं। भगवती 'ब्रह्म-स्वरूपा' है। 'ब्रह्म' के समभाव वाले (**'समं सर्वभूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्'**) होने के कारण यह 'नर-मुण्ड' न तो किसी 'शत्रु' का अथवा न ही किसी 'मित्र' का हो सकता है। श्रीमद् भगवद् गीता में 'श्रीकृष्ण' स्वयं ही अपने विषय में कहते हैं –

'समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न पृयः।'

'विमलानन्द-दायिनी' व्याख्या के अनुसार यह नर-मुण्ड 'मस्तक' रजोगुण रहित शुद्ध सत्वात्मक ज्ञान तत्व के आधार का बोधक है – **'अधोहस्तेन विगतरजं तत्वज्ञानाधारं मस्तकम्'**

द्वितीय (नीचे की) वामभुजा में स्थित 'मुण्ड' द्वितीय पदार्थ 'अर्थ' का भी सङ्केतक है। देहरूपी अर्थ में ज्ञानाधार रूप मस्तक (मुण्ड) भाग सर्वोच्च है। विशुद्ध ज्ञान ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है। भगवती के हाथ में गृहीत 'मुण्ड' उनके 'ज्ञानाधिष्ठान'

(ब्रह्मरूप) होने का परिचायक है। 'अर्थ' शब्द से लौकिक 'धन-सम्पत्ति' का भी ग्रहण होता है, परन्तु यह अर्थ 'गौण' है।

ग) वर (मुद्रा) - भगवती अपनी निचली दाहिनी भुजा द्वारा 'वर-मुद्रा' धारण की हुई हैं। यह भगवती के 'काम-प्रदा' होने का प्रतीक है। इससे स्पष्ट होता है कि भगवती अपने (विशेषकर दक्षिण मार्गी - क्योंकि वाममार्गी प्राय: निष्काम होते हैं) साधकों को उनकी कामनानुसार सांसारिक भोग (स्वर्ग भी) तथा सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं। अणिमादि सिद्धियाँ भी इस 'काम' के अन्तर्गत ही हैं।

घ) अभय - भगवती की चतुर्थ भुजा (दक्षोर्ध्व) 'अभय-मुद्रा' युक्त है। यह 'सकाम' भक्तों को सांसारिक भयों (रोग, शोक, विपत्ति आदि) से मुक्ति तथा 'निष्काम' भक्तों को 'अद्वैत ज्ञान' प्रदान करने का आश्वासन देने वाली है। 'अद्वैत' ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी होता है। क्योंकि **'द्वितीयाद् वै भयं भवति'** ऐसा श्रुति का ही वचन है। 'अभय' 'ब्रह्मज्ञानी' का प्रथम लक्षण है। श्रीमद् भगवद् गीता में कथित छब्बीस प्रकार की दैवी सम्पत्तियों में भी 'अभय' रूप सम्पत्ति प्रथम है। दैवी सम्पत्ति युक्त साधक ही 'मुक्ति-मार्ग' का पथिक हो सकता है।

महानिर्वाण तन्त्र में 'वराभय' का निरूपण करते हुए कहा गया है -

समये समये जीवरक्षणं विपद: शिवे। प्रेरणं स्व-स्व कार्येषु वरश्चाभयमीरितम्।।

१५. महाकाल-सुरता (विपरीत रता) - भगवती की यह स्थिति उनके 'सृष्ट्युन्मुखी' होने का संकेतक है। 'विपरीत रता' का भाव यह है कि भगवती अपनी 'काल-रूपी शक्ति' को (सृष्टि-रचना हेतु) शक्ति प्रदान कर रही है। भगवती निर्गुणावस्था में 'महाकाल' उन्हीं में लीन रहते हैं। भगवती का 'सगुण' रूप ही महाकालयुक्त होता है। 'महाप्रलय' में 'चिन्मात्र' व्यापक रूप से स्थिता भगवती के (कल्पित) चित्त में जब **'एकोऽहं बहुस्याम्'** रूप स्फुरण (इच्छा का उदय) होता है, तब इसी (इच्छा शक्ति) से 'मानसिक शिव' (महाकाल) का अविर्भाव होकर 'सृष्टि' का प्रारम्भ होता है। इन्हीं 'शिव' को अपना पति स्वीकार करके भगवती सृष्टि कार्य करती हैं।

चिद्व्यापक स्वरूपेण स्वयं च विभ्रती पराम्। एतस्मिन्नेव कलितु स्वबिम्बं पश्यति शिवा।।
तद् बिम्बं तु भवेन्माया तत्र मानसिकं शिवम्। सृष्टेरूत्पादनार्थं तु भर्तृरूपं प्रकल्पयेत्।।

(शक्ति संगम तन्त्र)

यही बात 'महाकाल-संहिता' में इस प्रकार से कही गयी है -

महानिर्वाणरूपा तु वाचातीता परा कला। क्रीडया शून्यरूपं तु भर्त्तारं च प्रकल्पयेत्।।
सृष्टेरारम्भ कार्यार्थं छाया दृष्टा तदा तया। इच्छाशक्तिस्तु सा जाता तथा कालो विनिर्मित:।।

इसीलिए 'सृष्टि-क्रम' में 'महाकाल' के साथ 'विपरीत-रता' तथा 'स्थिति-क्रम' में 'महाकालेन-ललिता' महाकाल की गोद (वामभाग) में स्थिता भगवती का ध्यान करना कहा गया है।

'महाप्रलय' काल के द्योतक 'संहार-क्रम' में केवल (अकेली) भगवती का ध्यान किया जाता है।

१६. शवासना – समस्त विश्व 'शिव-शिवा' रूप है। इसमें 'शिव' पदार्थ रूप तथा 'शिवा' चैतन्य रूप होकर स्थित हैं। जब 'चेतना' रूपा 'शिवा' (शक्ति) इस विश्व से निकल जाती है तो समस्त विश्व (शिव) अचेतन जड़ रूप - 'शव-रूप' हो जाता है। अथवा अद्वितीय तुरीय तत्व रूप परमात्मा 'शिव' निष्क्रिय तथा निर्गुण है। 'चित्' शक्ति रूपा 'शिवा' के द्वारा ही यह सगुण होकर 'व्यवहार्य' होता है। 'शवासना' भगवती इसी बात का संकेत करती हैं। इससे साधक को निश्चयात्मक संवित् (ज्ञान) होती है कि सारा जगत् इस भगवती के बिना 'जड़-मात्र' है। यह एकमात्र 'सत् तत्व' है। यह 'निश्चयात्मक ज्ञान' ही 'अविद्या' का नाश करने वाला है।

'शक्ति' के बिना 'शिव' की स्पन्दनहीनता (शवरूपता) को श्री भगवद् पाद शंकराचार्य ने 'सौन्दर्य-लहरी' के प्रथम श्लोक (मन्त्र) में इस प्रकार व्यक्त किया है -

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्। न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥

इसी प्रकार - **'शक्त्या विना शिवे शुष्के नम धाम न विद्यते'** इत्यादि भी कहा गया है।

१७. श्मशान-वासिनी - जहाँ (जीव) 'शव' (रूप होकर) 'शयन' करता है, उस स्थान को 'श्मशान' कहा जाता है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए 'कल्पद्रुम' में कहा गया है -

श-शब्देन शवः प्रोक्तः शानं शयनमुच्यते। निर्वचन्ति श्मशानार्थं मुने शब्दार्थकोविदाः॥
महान्त्यपि च भूतानि प्रलये समुपस्थिते। शेरतेऽत्र शवो भूत्वा श्मशानस्तु ततो भवेत्॥

इससे यह सिद्ध होता है कि भगवती काली (सृष्टि-पालन) के साथ ही विश्व-प्रलय की 'अधिष्ठात्री' है। यहाँ उपर्युक्त भाव समष्ट्यात्मक है। विषय-वासनाओं से रहित 'वृत्ति-शून्य' चित्त (मन अथवा हृदय) ही 'श्मशान' है। जब साधक ध्यान अथवा मन्त्र जप का आरम्भ करता (साधना में प्रवृत्त होता) है, तो चित्त में अनेकों प्रकार की वृत्तियाँ उदय-अस्त (विश्व में नित्य होने वाले सृष्टि-प्रलय की भाँति) होने लगती हैं। निरन्तर अभ्यास तथा दृढ़ निष्ठा (तथा श्रद्धा भक्ति सहित उपासना) के द्वारा जब साधक अपने चित्त को समस्त वृत्तियों से रहित बना लेता है, तब उसी वृत्ति-शून्य (श्मशान-रूप) चित्त में भगवती के स्वरूप का स्पष्ट अवभास तथा सात्विक ज्ञान का उदय होता है।

'श्मशान' उस निर्वाण भूमि तथा मोक्ष-साधन का प्रतीक है, जहाँ समस्त लौकिक तथा पारलौकिक ऐषणाओं से रहित चित्त शान्त होकर परमात्मा में लीन हो जाता है।

श्मशान में आते ही व्यक्ति के मन में थोड़े समय के लिए ही सही संसार से 'विरक्ति' का भाव अवश्य ही जागृत हो जाता है। संसार की वस्तुओं के प्रति ममत्व

(तथा प्राप्ति के) भाव का परित्याग ही 'विरक्ति' का सूचक है। सांसारिक बन्धन तथा (उससे) मुक्ति दोनों का कारण 'ममत्व' (मम-मेरापन का भाव) ही है।

'न ममेति पदे मोक्षो ममेत्यत्र निबन्धनम्।'

'श्मशान भावापन्न 'निर्मम' (ममत्व रहित) योगी ही भगवती को प्राप्त कर अद्वैत-ज्ञान से सम्पन्न होकर ब्रह्मस्वरूपता को उपलब्ध होते हैं।

भगवती 'काली' को **'शून्यानां शून्य-साक्षिणी'** कहा गया है, अर्थात् समस्त विश्व के शून्य (प्रलयस्थ) हो जाने पर जो (स्वयं शून्य न होकर) उसकी 'शून्यता' की 'साक्षी' होकर स्थित होती है (वह काली है) । इसीलिए इस 'काली' के 'साक्षात्कार' हेतु **'विवक्ते विजने देशे श्मशाने शून्य सदने'** इत्यादि रूप से 'शून्य साधन-स्थलों' का निर्देश किया गया है।

शरीरस्थ 'ब्रह्म-रन्ध्र' ही 'श्मशान' है, क्योंकि 'भूत-शुद्धि' क्रिया काल में प्रकृति सहित समस्त तत्व यहाँ विलीन (शून्यता को प्राप्त) हो जाते हैं। 'योग शिखोपनिषद्' में भगवती के ध्यान हेतु स्थलों का निरूपण करते हुए कहा गया है -

ब्रह्मरन्ध्रे महास्थाने वर्तते सततं शिवा। चिच्छक्तिः परमा देवी मध्यमे सुप्रतिष्ठिता।।
मायाशक्तिर्ललाटाग्रे भागे व्योमाम्बुजे तथा। नादरूपा पराशक्तिललाटस्य तु मध्यमे।।
भागे विन्दुमयो शक्तिर्ललाटे स्यात् परांशके। हृदये स्थूलरूपेण तनुमध्ये च मध्यमा।।

भगवती के ध्यान का सर्वोत्तम स्थल 'ब्रह्म-रन्ध्र' ही है, परन्तु है उत्तम अधि कारियों के लिए। प्रारम्भिक अवस्था में हृदय स्थल में 'स्थूल' रूप से भगवती के ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। हृदय में ध्यान के दृढ़ हो जाने पर नीचे मूलाधार से ऊपर की ओर क्रमशः सभी चक्रों में अभ्यास द्वारा ध्यान को दृढ़ करते हुए 'ब्रह्म-रन्ध्र' में पहुँच कर ध्यानाभ्यास करना चाहिए।

१८. घोर-रावा - 'रव' का कारण स्पन्दन है। ध्वनि किसी पदार्थ के कम्पन (गति) के कारण ही उत्पन्न होती है। 'घोर रव' 'अतितीव्र गति शीलता' का सूचक है। तीव्र गति शील वस्तु स्थिर प्रतीत होती है। आकाश में स्थित अनन्त नक्षत्र, सभी गतिशील है, परन्तु स्थिर प्रतीत होते हैं। प्रकाश (प्रकाश-कण) गतिशील होते हुए भी स्थिर सा लगता है। प्रकृति के अतितीव्र गति (स्पंदन) के कारण ही जगत् की सृष्टि तथा उसका स्थिर (सा) होना प्रतीत होता है। अतः 'घोर रावा' को हम सृष्टि के स्थायित्व का (आभासिक) स्वरूप मान सकते हैं।

'घोर रावा' महानाद स्वरूप 'प्रणव' का भी द्योतक कहा जा सकता है। इससे भगवती 'काली' की 'प्रणव स्वरूपता' का भी बोध होता है। 'प्रणव' (ॐ कार) से ही 'वेद' सहित समस्त 'शब्द-राशि' का उद्भव होता है। इससे सिद्ध होता है कि भगवती अनन्त-अखण्ड-सघन ज्ञान (विज्ञान) रूपिणी ब्रह्मरूपा है।

२९. नित्य यौवनवती - 'श्री महाकाल' कृत 'सुधा-धारा-स्तव' में भगवती को **'न बाला न चत्वं वयस्था न वृद्धा'** कहा गया है। 'बाला' उपत्ति की, 'वयस्था' परिणाम की तथा 'वृद्धा' (अवस्था) विनाश के द्योतक हैं। भगवती इन

तीनों से रहित (परे) है। 'नित्यत्व' भगवती का स्वरूप है। 'यौवनवती' 'माया' के कारण है। क्योंकि जो वस्तु न आदि में होती है, और न अन्त में, वह मध्य में भी नहीं होती। अत: 'यौवनत्व' आभासिक (मायिक) है। अन्यथा भगवती अपने अन्य स्वरूपों में बाला (कुमारी), वृद्धा आदि रूपों में न प्रकट होती। 'श्रीमद् भगवद् गीता' में जिस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं -

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्म मायया॥

इसी प्रकार भगवती भी स्वाश्रित माया के आश्रय से ही विभिन्न रूपों में आविर्भूत होती हैं। भगवती का पारमार्थिक स्वरूप तो निर्गुण, निराकार (नाम-रूपरहित) अज, अव्यय ही है।

२०. कराल वदना - महाप्रलय में अखिल ब्रह्माण्ड सहित समस्त चराचर सृष्टि को ग्रास बना लेने वाली भगवती 'कराल-वदना' (विस्तृत विशाल मुख वाली) ही होगी।

२१. विभीषणाम् (भयङ्करीम्) - जो व्यक्ति 'अभय' (भय रहित-निर्भय)होता है, उससे सभी भय खाते हैं। ब्रह्म 'अभय' (स्वरूप) है - **'अभयं ह वै ब्रह्म'।**

परन्तु इसी 'अभय' ब्रह्म के भय से अग्नि तपता है, इसी के भय से सूर्य तपता है। इसी के भय से इन्द्र, वायु तथा पाँचवे देवता मृत्यु ये सब अपने-अपने कार्य में दौड़ रहे (निरन्तर लगे हुए) हैं।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

- (कठोप० २-३-३)

इस भयानक सर्वशक्तिमान परमेश्वर (ब्रह्म) को जानने वाला अमर (निर्भय) हो जाता है।

महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति। (कठोप० २-३-२)

इस 'अभय' ब्रह्म की प्राप्ति के लिए, साधना-मार्ग पर प्रवृति होने से सांसारिक लोग भय खाते हैं। अत: ब्रह्मस्वरूपा भगवती का 'विभीषिका' होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

परन्तु जो 'अभय' होता है, वह परम दयालु तथा दूसरों को भी 'अभय' प्रदान करने वाला (भी) होता है। भगवती 'विभीषणा' अर्थात् 'विगतभीषणा' हैं। स्वयं तो 'अभय' हैं ही (क्योंकि उनके अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं। भय दूसरे की उपस्थिति से ही होता है - 'द्वितीयाद् वै भयम्') अपने साधकों को भी 'अभय' प्रदान करने वाली परम करुणामयी 'दयाद्रचित्ता' है।

'दारिद्र्य-दुख-भय-हारिणि का त्वदन्या, सर्वोपकार-करणाय दयाद्र-चित्ता'।

२२. दशवक्त्र-हस्त-पाद-दशका - 'श्री दुर्गा सप्तशती' में भगवती श्री काली का 'योग-निद्रा' संज्ञका स्वरूप दश-मुख, दश-हस्त तथा दश-पाद युक्त दर्शाया गया है। यह 'दश' की संख्या दशों दिशाओं (में स्थित निखिल ब्रह्माण्ड) की संकेतक है। महाप्रलय में भगवती इन दशो दिशाओं में स्थित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को

अपना ग्रास बना लेती है, इस बात का द्योतक ही 'दश मुख' को कहा जा सकता है। अनन्त ब्रह्माण्डों में स्थित समस्त सृष्टि का संरक्षण तथा उसमें विद्यमान किसी भी पदार्थ को ग्रहण कर उसे अपने प्रिय भक्तों को प्रदान करने का सामर्थ्य भगवती काली में ही है, इस बात का अवबोधक ही 'दशहस्त' है।

भगवती श्री काली का 'पाद-दशका' होना यह प्रदर्शित करता है कि उसकी गति (पहुँच) दशों दिशाओं में है, अर्थात् यह उसकी सर्वव्यापकता को अभिव्यक्त करता है।

यह भी कहा जा सकता है कि दशों दिशाओं, दशों इन्द्रियों, दश महाविद्याओं (सहित दश प्राणों, दशों प्रकृतियों - मूल प्रकृति, अष्टधा अपरा प्रकृति तथा जीव रूपा परा प्रकृति) सभी में यही काली तत्व व्याप्त है। ये देश अवान्तर परिच्छेद, अंश, अवतार, स्वरूप, भेद, मूर्तियाँ कुछ भी कहें सभी इसी 'आद्या-शक्ति' काली के ही हैं।

॥ ध्यान-भेद-निरूपण॥

दश महाविद्याएँ आद्या-काली के ही कहे जाते हैं। इसमें प्रथम (आद्या) विद्या की 'दक्षिणा-काली' के नाम से प्रसिद्धि है। 'दक्षिण-काली-मन्त्र-विग्रह-हृदय' में इसका (प्रलय-कालीन) ध्यान इस प्रकार है-

छुच्छ्यामा कोटराक्षीं प्रलय-घन-घटां घोर-रूपां प्रचण्डाम्,
दिग्वस्त्रां पिङ्ग-केशीं डमरु-सृणि-धृतां खड्ग-पाशाभयानि।
नागं घटां कपालं कर-सरसिरुहैः कालिकां कृष्ण-वर्णाम्,
ध्यायामि ध्येयमानां सकल-सुख-करीं कालिकां तां नमामि॥

'महाकाल संहिता' में (निर्गुण द्योतक) ध्यान निम्नवत् है -

ब्रह्मा-विष्णु-शिवास्थि-मुण्ड-रसनां ताम्बूल-रक्ताननाम्।
वर्षा-मेघ-निभां त्रिशूल-मुसले पद्मासि - पाशांकुशाम्॥
शंखं साहिसुगन्धृतां दश-भुजां प्रेतासने संस्थिताम्।
देवीं दक्षिण-कालिकां भगवतीं रक्ताम्बरां तां स्मरे॥
विद्याऽविद्यादि-युक्तां हर-विधि-नमितां निष्कलां काल-हन्त्रीम्।
भक्ताभीष्ट-प्रदात्रीं कनक-निधि-कलां चिन्मयानन्द-रूपाम्॥
दोर्दण्डे चाप-चक्रे परिघमथ शरा धारयन्तीं शिवस्थाम्।
पद्मासीनां त्रिनेत्रामरुण-रुचि-मयीमिन्दु-चूडां भजेऽहम्॥

भगवती 'दक्षिण-कालिका' के 'कादि', 'हादि' इत्यादि मन्त्र-स्वरूपों के अनुसार (इनके) ध्यान भी भिन्न-भिन्न हैं। इनमें 'कादि क्रम' तथा 'हादिक्रम' के ही ध्यान प्रायः देखने का प्राप्त होते हैं।

कादि-क्रम का ध्यान - जिन मन्त्रों का प्रारम्भ 'क' वर्ण से होता है, यथा एकाक्षरी मन्त्र 'क्रीं' उनकी साधना में देवी का ध्यान निम्न रूप से किया जाता है -

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमाला विभूषिताम्॥
सद्यश्छिन्नशिरः खड्गं वामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभयं वरदं चैव दक्षिणोर्ध्वाधः पाणिकाम्॥
महामेघप्रभां श्यामां तथैव च दिगम्बरीम्। कण्ठावसक्तमुण्डाली गलद्-रूधिरचर्चिताम्॥
कर्णावतंसतानीत-शवयुग्मभयानकाम्। घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नत-पयोधराम्॥
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्कद्वयगलद्रक्तधारा-विस्फुरिताननाम्॥
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। बालार्कमण्डलाकार-लोचनत्रितयान्विताम्॥
दंतुरां दक्षिणव्यापि मुक्ता लम्बिकचोच्चयाम् शवरूप महादेव-हृदयोपरि संस्थिताम्॥
शिवाभिर्घोर-रावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन सार्धं तामुपरिष्टां रतातुराम्॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेरानन सरोरुहाम्। एवं सञ्चिंतयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धिदाम्॥
(स्वयं ध्यान करते समय साधक द्वारा **'सञ्चिन्तयाम्येवं कालीं'** बोलना अधिक उचित होगा।)

क्रोध-क्रम का ध्यान - 'हूँकार' बीज से आरम्भ होने वाले दक्षिणा-काली के मन्त्रों की साधना के समय इस प्रकार से भगवती 'दक्षिणा-काली' का ध्यान करना चाहिए -

द्वीपं त्रिकोणं विपुलं सर्वतः सुमनोहरम्। कूजत कोकिला-नादाढ्य मन्दमारूत-सेवितम्॥
भृङ्गपुष्पलताकीर्णमुद्यच्चन्द्र-दिवाकरम्। स्मृत्वा सुधाब्धिमध्यस्थं तस्मिन्माणिक्यमण्डपे॥
रत्नसिंहासने पद्मे त्रिकोणोज्ज्वलकर्णिके। पीठे सञ्चिन्तयेद् देवीं साक्षात् त्रैलोक्यसुन्दरीम्॥
नीलनीरजसङ्काशां प्रत्यालीढ पदस्थिताम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां खण्डेन्दुकृत-शेखराम्॥
लम्बोदरीं विशालाक्षीं शिवप्रेतासन स्थिताम्। दक्षिणोर्ध्वेन निस्तृशं वामोर्ध्वनीलनीरजाम्॥
कपालं दधतीं चैव दक्षिणाधश्च कर्तृकाम्। नागाष्टकेन सम्बद्धाजटाजूटां सुरार्चिताम्॥
रक्तवर्तुलनेत्राञ्च प्रव्यक्तदशनोज्ज्वलाम्। व्याघ्रचर्मपरीधानां गन्धाष्टक प्रलेपिताम्॥
ताम्बूलपूर्णवदनां सुरासुर नमस्कृताम्। एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वाभीष्ट प्रदा शिवाम्॥

देवी के इस ध्यान में भी पूर्ववत् अन्तिम श्लोकांश में परिवर्तन करने के साथ ही 'तीसरे श्लोक' में **'पीठे सञ्चिन्तयेत्'** के स्थान पर **'पीठे कल्पयामि'** रूप से परिवर्तन कर लेना चाहिए।

हादि-क्रम का ध्यान - जिन मन्त्रों का आरम्भ 'ह्रीं' बीज से होता है।

अञ्जनाद्रिनिभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलिकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्॥
महाकाल हृदम्भोज-स्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शिवेन वै॥
नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्धधृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुक्तामणिविभूषिताम्॥
मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगम्बराम्। शिवाकोटि सहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्॥
रक्तपूर्णमुखाम्भोजां सद्यः पान प्रमत्तिकाम्। वह्न्यर्कशशिनेत्राञ्च रणविस्फुरिताननाम्॥
विगतासु किशोराभ्यां कृतकर्णावतंसनीम्। सद्यश्छिन्नशिरः खड्गं वामोर्ध्वाधः कराम्बुजाम्॥
अभीवरदं दक्षोर्ध्वाधः करां परमेश्वरीम्। श्मशानवह्निमध्यस्थां ब्रह्मविष्ण्वीश वन्दिताम्॥
(एवं सञ्चिन्तयाम्हं कालीं महाकालप्रियाम्।)

वागादि-क्रम का ध्यान – **'ऐं'** बीजाक्षर से आरम्भ होने वाले दक्षिणा-कालिका मन्त्रसाधना में।

चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम्। खड्गं च दक्षिणे पाणौ विभ्रतीं सशरं धनुः॥
मुण्डं च खर्परं चैव क्रमाद् वामे च विभ्रतीम्। द्यां लिखन्तीं जटामेकां विभ्रतीं शिरसा स्वयम्॥
मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा। वक्षसा नागहारंतु विभ्रतीं रक्तलोचनाम्॥
कृष्णवर्णधरां दिव्यां व्याघ्राजिन समन्विताम्। वामपदं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम्॥
विन्यस्य सिंह पृष्ठे व लेलिहानां शवं स्वयम्। साट्टहासां महारवयुक्तामति विभीषणाम्॥
एवं विचिन्त्या भक्तैस्तु कालिका परमेश्वरी। सततं भक्तियुक्तैस्तु भोगैश्वर्यामभीप्सुभिः॥
(एवं चिन्तयामि भक्त्या कालिकां परमेश्वरीम्। सततं हृदयाम्भोजे ज्ञानैश्वर्य प्रदायिनीम्॥)

नादि-क्रम का ध्यान – **'नमः'** से प्रारम्भ होने वाले दक्षिणा काली के मन्त्रसाधना में।

खड्गं च दक्षिणे पाणौ विभ्रतीन्दीवर-द्वयम्। कर्तृकां खर्परं चैव क्रमाद् वामेन विभ्रतीम्॥

अन्य 'वागादि-क्रम' के अनुसार।

दादि-क्रम का ध्यान – 'द' वर्ण से आरम्भ होने वाले मन्त्रों में, यथा – **'दक्षिणे-कालिके स्वाहा'**

सद्यः कृन्त शिरः खड्गमूर्ध्व द्वय कराम्बुजाम्। अभयं वरदं तु भुजयोर्द्वय-परान्विताम्॥

अन्य ध्यान-स्वरूप 'कादि-क्रम' के समान।

प्रणवादि-क्रम का ध्यान – जिन मन्त्रों का आरम्भ 'प्रणव' (ॐ) से होता है, उन दक्षिणा काली के मन्त्रोपासना में देवी का ध्यान 'कादि-क्रम-वत्' करना चाहिए।

॥ बीज (मन्त्र) 'क्रीं' की व्याख्या॥

भगवती दक्षिणा काली का प्रमुख मन्त्र कादि-क्रम का (एकाक्षरी) **'क्रीं'** है। इसका बीज भी यही है। इस बीजाक्षर की विवेचना करते हुए **'तन्त्र-कल्पद्रुम'** में कहा गया है –

ककारोज्ज्वलरूपत्वात केवलं ज्ञानचित्कला। ज्वलनार्ण समायोगात् सर्वतेजोमयी-शुभा॥
दीर्घकारेण देवेशि! साधकाभीष्ट-दायिनी। विन्दुना निष्कलात्वाच्च कैवल्यमोक्षदायिनी॥

इसी प्रकार 'तोडल-तन्त्र' में –

ककारं धर्मदं देवि! ईकारं चार्थदायकम्। रंकारं कामदं कान्ते! मकारं मोक्षदायकम्॥
एकत्रोच्चारणाद् देवि! निर्वाणमोक्ष सम्प्रद॥

इसी 'कादि-क्रम' का 'द्वाविंशाक्षर मन्त्र' **(क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा)** 'दक्षिणा काली' का प्रख्यात् 'मन्त्रराज' अथवा 'विद्याराज्ञी' है।

इस आद्या महाविद्या को 'दक्षिणा' क्यों कहा गया है, इसे स्पष्ट करते हुए 'निर्वाण-तन्त्र' का वचन है –

दक्षिणस्यां दिशि स्थाने संस्थिश्च रवेः सुतः। काली नाम्ना पलायेत् भीतियुक्तः समन्ततः॥

अतः सा दक्षिणाकाली त्रिषु लोकेषु गीयते॥

(रवेः सुतः - रवि का पुत्र यम)

'कामाख्या तन्त्र' में 'दक्षिणा' कहने का कारण इस प्रकार दिया गया है -

यथाकर्म-समाप्तौ च दक्षिणाफलसिद्धिदा। तथा मुक्तिरसौ देवी सर्वेषां फल-दायिनी॥

इसी तन्त्र में एक अन्य भाव भी प्रदर्शित है -

पुरुषो दक्षिणः प्रोक्तो वामा शक्तिर्निगद्यते। वामा सा दक्षिणं जीत्वा महामोक्षदायिनी॥

ततः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते॥

'विमलानन्द-दायिनी' की विवेचना - **'दक्षिणामूर्ति भैरवाराधिता तस्माद् दक्षिणा-प्रकीर्तिता'।**

'शक्तिसङ्गम तन्त्र' में - **'वर दानेषु चतुरा तेनेयं दक्षिणा स्मृतां'।**

श्री भगवती 'दक्षिणा काली' की कृपा से उसका भक्त **'यं यं कामयते नित्यं तं तमाप्नोति निश्चितम्'**। वैसे दशो महाविद्याएँ चारों युग में फलदायिनी कही जाती हैं, परन्तु कलियुग में काली, तारा तथा त्रिपुर सुन्दरी की अराधना विशेष महत्व रखती है।

चतुर्युगेषु फलदा दशविद्या मयेरिता। तासु तिस्रो विशिष्यन्ते काली तारा च सुन्दरी॥

तिसृष्वपि शिवे तासु कलौ काली विशिष्यते। अनया सदृशी विद्या नास्ति ब्रह्माण्डगोलके॥

और भी (शक्ति सङ्गम तन्त्र में) -

चतुर्युगानां राज्ञी वै कालिका परिकीर्तिता। विद्याराज्ञी सिद्धविद्या कलौ शीघ्र फलप्रदा॥

अतः साधक को चाहिए कि -

सर्व देवान् परित्यज्य काल्येकं शरणं व्रज। सधर्मार्थकामेन हि मोक्षोऽपि सा प्रदास्यति॥

द्वितीया महाविद्या तारा

विश्वाभाव रूप, विश्वातीत, अनुपाख्य तम, जिसकी 'परात्पर' नाम से प्रसिद्धि है, 'सत्' रूप होते हुए भी जिसे 'असत्' कहा गया है, मनु ने जिसे अप्रज्ञात, अलक्षण, अप्रतर्क्य तथा अनिर्देश्य तत्व है, निगम जिसे कालपुरुष अथवा महाकाल रूप से निर्देशित करता है, उसे ही आगमशास्त्र श्री काली के रूप में निरुपित करता है। इसी अनादि, अचिन्त्या, अमिताकारा, चित् तथा मायाशक्ति युक्त एकमेवाद्वितीया ब्रह्मस्वरूपा श्री काली में विश्वसृष्टि हेतु जब **'एकोऽहं बहुस्याम'** रूप से स्फुरणा (ईक्षा-इच्छा) उत्पन्न होती है, तो उसकी यही स्फुरणा महाकालीरूप में अविर्भूत होती है। स्वयं काली ही महाकाली के रूप में अभिव्यक्त है। इसे ही आद्या-शक्ति, महामाया, महाविद्या आदि नामों से जाना जाता है। श्री काली की इस माया को ही तन्त्रशास्त्र 'महाकाल' कहता है।

विद्या तथा अविद्या दोनों स्वरूपों वाली यह महामाया अपने 'अविद्या' स्वरूप से विश्व-सृष्टि तथा विद्या स्वरूप से दश महाविद्याओं के रूप में अविर्भूत

होती है। दस भागों में विभक्त निगमोक्ता सृष्टि विद्या ही आगमोक्त 'महाविद्या' है। पुरुष प्रकृति से अविनाभूत है। कालपुरुष के दशधा विभक्त स्वरूप को निगम जहाँ सृष्टिविद्या कहता है, वहीं निगममूलक 'आगम शास्त्र' श्री काली के दशधा विभक्त स्वरूप को 'महाविद्या' नाम देता है। ये दशों महाविद्याएं निम्नवत् हैं-

१. महाकाली (दक्षिणा काली), २. तारा (उग्रतारा), ३. षोडशी, ४. भुवनेश्वरी, ५. छिन्नमस्ता, ६. भैरवी, ७. धूमावती, ८. बगलामुखी, ९. मातङ्गी, १०. कमला।

रात्रि प्रलयकाल का स्वरूप है। रात्रि के १२ बजे (मध्यरात्रि) से सूर्योदय से पहले तक (सृष्टि के समय सूर्योत्पत्ति से पूर्व तक) चौरासी भेदभिन्ना (मध्य रात्रि का समय घोर तम युक्त होता है, इसके बाद उत्तरोत्तर तम का ह्रास है। मध्य रात्रि से सूर्योदय के समय को तम के तारतम्य के अनुसार जिन चौरासी विभागों में विभक्त किया गया है, वही महाकाली के चौरासी अवान्तर विभाग कहे गये हैं) महाकाली की सत्ता कही गयी है। इसके बाद 'तारा' का साम्राज्य है।

हिरण्यगर्भविद्या के अनुसार 'निगमशास्त्र' ने सम्पूर्ण विश्व सृष्टि का आधार सूर्य को बतलाया है। सौरमण्डल आग्नेय होने के कारण (क्योंकि 'अग्निहिरण्यरेता' है) हिरण्मय कहा जाता है। इस हिरण्यमय मण्डल के केन्द्र में वह 'सौर ब्रह्म' प्रतिष्ठित है। इसीलिए 'सौर-ब्रह्म' को 'हिरण्यगर्भ' कहा जाता है। भूः, भुवः, स्वः रूप रोदसी त्रिलोकी के निर्माता तथा अधिष्ठाता, स्वयम्भू परमेष्ठी रूप अमृतासृष्टि, पृथिवी चन्द्रमा रूप मर्त्यासृष्टि के विभाजक तथा सञ्चालक, विश्वकेन्द्र में प्रतिष्ठित इन्हीं भगवान हिरण्यगर्भ का प्रथम प्रादुर्भाव होता है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधारं पृथिवीं द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (यजु० २३/१)

यह श्रुति उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाली है। जैसे विश्वातीत (निगमोक्त) कालपुरुष की शक्ति को महाकाली कहा गया है, उसी प्रकार इस 'हिरण्यगर्भ' रूप पुरुष की शक्ति को 'तारा' कहा गया है। जिस प्रकार घोरतम में दीप-बिम्ब तारा-वत् ही प्रकाशित प्रतीत होता है, उसी प्रकार उस महातम के केन्द्र में उत्पन्न होने वाले सूर्य की स्थिति होती है। इसीलिए श्रुति में सूर्य को 'नक्षत्र' कहा गया है। आगमशास्त्र में इसी सूर्य की शक्ति को 'तारा' नाम दिया गया है। इसी पुरुष को तन्त्रशास्त्रों में 'अक्षोभ्य' कहा गया है।

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य सर्वथा स्थिर है। वृहती-छन्द-नाम से प्रसिद्ध सुप्रसिद्ध विष्वद्वृत्त के ठीक मध्य में क्षोभ रहित होकर स्थिर रूप से भगवान् सूर्य निरन्तर तपते रहते हैं।

'सूर्यो वृहतीमध्यमूढस्तपति'। 'उदयास्तमनञ्चैव दर्शनादर्शनं रवेः'।

इत्यादि वचनों से सूर्य का स्थिर होना सिद्ध होता है। क्योंकि यह 'क्षोभरहित' है, अतः 'अक्षोभ्य' के नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई।

सूर्य साक्षात् रूद्र है। इस रूद्र रूप सौर अग्नि के 'शिव' तथा 'घोर' रूप से दो शरीर कहे गये हैं। **'अग्निर्वा रुद्रः। तस्यैते द्वो तन्वे घोरान्या च शिवान्या च।'** शिव तनुरूप सूर्य की शक्ति तारा से सृष्टि होती है तथा घोर (उग्र) तनु रूप सूर्य की शक्ति 'उग्रतारा' संहार का कार्य करती है। **'नीलग्रीवो विलोहितः'** (यजु० १६/७) के अनुसार सूर्य नील ग्रीव है। अतः इसकी शक्ति का वर्ण भी नील ही है।

परमतत्व रूपा, त्रिभुवन सृष्टिकारिणी, सर्वसिद्धिदायिनी, सर्वाद्या, सर्वरूपा, सकलगुणमयी, देवगण-वन्दिता, (जन्म-मृत्यु रूप) भवभय हारिणी (काल को भी भयभीत करने वाली), दिव्य (श्वेत) पद्म पर विराजमाना भगवती तारा के प्राकट्य का वर्णन करते हुए 'तारा-रहस्यकार' ('तारा रहस्य' ब्रह्मानन्द की कृति न होकर उनके पुत्र द्वारा रचित है) ने स्वग्रन्थ के 'सृष्टि-प्रकरण' में कहा है -

प्रथमे निगमे कल्पे रत्नद्वीपे सुरालये। श्रुत्वा कालीमुखाद्वाक्यं न च हृष्टः सदाशिवः॥
पुनः पुनः पृच्छमानं प्रश्नञ्चैवाकरोच्छिवा। यया मूर्त्या करालास्या रावणं नाशितं पुरा॥
वराभयकरा देवी खड्गमुण्डधरा तथा। ललज्जिह्वा चोग्ररूपा तारा सर्वैः सुपूजिता॥
तदा चिन्तान्विता देवा रूद्रार्थं सर्वथा प्रिये। देवताभिः समं ब्रह्मा स्तुतिं कर्त्तु समागतः॥
दृष्ट्वा तान् मोक्षदा देवी कवित्वधनदायिनी। प्राप्त लज्जा महादेवी दक्षिणे खड्गमानयेत्॥
लज्जया नम्रवक्त्रा च तस्माल्लम्बोदरी परा। रुद्राद्विगलितं वासो ब्रह्मा चर्माम्बरं ददौ॥
काञ्चीमुद्रां[१] गृहीत्वा च कर्त्री कृत्वाऽथ दक्षिणे। भूमौ च मुकुटं क्षिप्त्वा तत्र रूद्रं समानयेत्॥
भूमौ निपत्य देवेशः पपात चरणान्तिके। अयुतं द्वादशं देवि पुस्तकं चावलोकितम्॥
कलां वक्तुं न शक्तोऽहं वद योगं सुरेश्वरि। मातर्मे कालिके देवि! प्रसीद भक्तवत्सले॥
श्रुत्वा वाक्यं शिवस्यापि हसित्वोवाच तारिणी। त्वद्रूपा पुरुषाः सर्वे मद्रूपाः सकलाः स्त्रियः॥
इदं योगं महादेव! भावयस्य दिने-दिने। पादपद्मे ततो नीलपद्मं दत्तं मनोहरम्॥
गृहीत्वा वाम हस्तेन तत्तोयैरभिषिच्य च। रूद्रदत्तं पानपात्रं विधृतं वामपाणिना॥
एतेन तारा सा जाता शीर्षऽक्षोभ्यो भुजङ्गमः। महाकालः स एव स्यात्तारारूपे जगत्त्रये॥

भाव यह है कि पहले (के किसी) निगम कल्प आरम्भ में सदाशिव द्वारा भगवती काली से (उनके) उग्र तारा-स्वरूप के विषय में (उसके दर्शन की इच्छा से) बार-बार प्रश्न करने पर भगवती तारा रूप में प्रकट हुई थीं। लम्बे (बड़े) उदर वाली वह तारा बाघम्बर धारिणी, सिर पर पञ्चमुद्रा युता, चतुर्भुजा, दक्षिण भुजाओं में खड्ग तथा कर्त्री एवं वाम भुजाओं नीलपद्म तथा पान-पात्र धारण की हुई थी। उसके शिर के ऊपर (जटाओं के मध्य) स्वयं महाकाल अक्षोभ्य नाग के रूप में विराजमान थे।

---

१. यहाँ **'काञ्चीमुद्रां'** अशुद्ध पाठ प्रतीत होता है। मेरे विचार से शुद्ध पाठ **'पञ्चमुद्रां'** होना चाहिए। ऐसा करने पर ही श्लोक का शुद्ध अन्वय **'भूमौ च मुकुटं क्षिप्त्वा पञ्चमुद्रां गृहीत्वा च'** बनेगा।

तारा के स्वरूप विवेचन के अन्तर्गत कहा गया है कि -

शून्ये ब्रह्माण्ड गोले तु पञ्चाशच्छून्यमध्यमे। पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता॥

इसी बात को तारा-रहस्य में इस प्रकार से स्पष्ट किया गया है -

यस्याश्च स्मरणे सद्यो भोगमोक्षौ करस्थितौ। एवंभूता महादेवी ब्रह्माण्ड शून्यमध्यागा॥
सृष्टि स्थिति करी देवी तारारूपा दयान्विता। द्वितीये चैव शून्यान्ते सुविराट्रूपधारिणी॥
तृतीये च महाशून्ये तडितकोटि समप्रभा। निराकारा निराधारा तारा सर्वार्थ साधिका॥
चतुर्थ शून्यमाश्रित्य विष्णुः पालयते ध्रुवम्। तस्माज्जातश्चतुर्वक्त्र सृष्टिं वितनुते ध्रुवम्॥
पञ्चशून्ये महादेवी शिवरूपा त्रिलोचना। लयं नयति ब्रह्माण्डं महाकालेन लालिता॥
पुनर्ब्रह्माण्ड सिद्ध्यर्थं महाविद्या च तारिणी। सर्वान्ते कालिका मूर्तिं त्यक्त्वा वस्त्रं पुनर्दधौ॥
षष्ठे शून्यमयं ब्रह्म विश्वं विश्वेश्वरं तथा। महा-महाशब्दपरा कालिका बीजतारका॥

जिसके स्मरण मात्र से उसके साधक भक्तों के लिए भोग तथा मोक्ष 'करामलकवत्' (सहज ही प्राप्तव्य) हो जाते हैं, विश्व की सृष्टि-स्थिति करने वाली तारारूपा वह महादेवी (जो तारा रूप में अविर्भूत हुई थी) दया से परिपूर्ण होकर ब्रह्माण्ड की पुनर्रचना के लिए शून्य ब्रह्माण्ड के मध्य (प्रथम शून्य) में स्थित हो गई। द्वितीय शून्य की स्थिति में वह 'विराट्रूप' वाली हो गई। तृतीय महाशून्य में सर्वसाधन सम्पन्ना, सर्वकार्यदक्षा, निराकारा, निराधारा (सर्वाधाररूपा) करोड़ों विद्युत के समान प्रकाशमाना तारा चतुर्थ शून्य के आश्रित होकर जगत् के पालनकर्ता विष्णु रूप हो गई। इन्हीं विष्णु से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, जिसने समस्त विश्व सृष्टि का विस्तार किया। सूर्यप्रलय अथवा खण्ड प्रलय काल में वह महाकाल प्रिया त्रिनेत्रधारी रूद्ररूप विश्व का संहार करके स्वयं में ही ब्रह्माण्ड को लीन कर लेती है। इन सभी कार्यों की समाप्ति के अनन्तर उसने अपनी कालिका (संहारमूर्ति) का परित्याग कर पूर्ववत् वस्त्र धारण कर लिया।

षष्ठ शून्य की स्थिति में, जो कि ब्रह्ममय अवस्था है, विश्व, विश्वेश्वर, महा-महा शब्द से सम्बोधित समस्त सृष्टि, तारा बीजस्वरूपा कालिका सब कुछ ब्रह्म में विलीन होकर, पूर्ण शून्य की अवस्था हो जाती है।

'शिव-पुराण' के अनुसार 'दुर्ग' नामक असुर द्वारा सन्त्रस्त देवताओं के द्वारा स्वत्राण हेतु भगवती उमा से प्रार्थना करने पर उनके शरीर से आयुधों से युक्त दश शक्तियों का उद्भव हुआ। ये ही दश शक्तियाँ 'महाविद्या' के नाम से अवगत हुई।

एतस्मिन्नन्तरे तस्याः शरीराद्रम्यमूर्तयः। काली तारा छिन्नमस्ता श्रीविद्या भुवनेश्वरी॥
भैरवी बगला धूम्रा श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी। मातङ्गी च महाविद्या निर्गता दश सायुधा॥

'महाभागवत पुराण' में 'शिव-नारद' संवाद रूप से दश महाविद्याओं के अन्तर्गत 'तारा' के प्राकट्य का उल्लेख मिलता है। अपने पिता दक्ष-प्रजापति द्वारा यज्ञ किये जाने का समाचार मिलने पर अनामन्त्रित होते हुए भी तब सती ने अपने पिता के गृह जाने के हठ करने लगी तथा शिव ने उसका प्रतिरोध किया तो वे (सती) अत्यन्त क्रोधित होकर शिव से बोलीं -

सम्प्रार्थ्य मामनुप्राप्य पत्नीभावेन शंकर। अधिक्षिपत्यद्य तस्मात् प्रभावं दर्शयाम्यहम्॥

इतना कहकर उन्होंने अपने गौरवर्णी सती स्वरूप का परित्याग कर अत्यन्त काले काजल के समान वर्णा, दिगम्बरा, चतुर्भुजा, मुण्डमालाविभूषिता, चन्द्रार्धशेखरा, बालार्क प्रभा समोज्ज्वल किरीट धारिता, लोल जिह्वा युता घोरशब्द कृता विशाल-भयङ्करा स्वरूप वाली होकर शंकर के सामने उपस्थित हो गयीं। सती के इस भयङ्कर स्वरूप को देखकर शिव भयभीत होकर भागने लगे। तब उन्हें रोकने के लिए दश रूप धारण कर वे दशो दिशाओं में स्थित हो गई। सती के इन्हीं दश रूपों की संज्ञा 'महाविद्या' है। स्वयं को दश स्वरूपों में व्यक्त करने से पूर्व सती जिस रूप में प्रथम प्रकट हुई थी, वह सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी सूक्ष्म प्रकृति रूपा महाकाली का स्वरूप था। यहाँ तारा की स्थिति ऊर्ध्व दिशा में कही गयी है। इससे भी स्पष्ट होता है कि तारा अन्तरिक्ष में स्थित सूर्य-शक्ति ही है।

॥ तारा के विभिन्न नाम॥

लीलया वाक्प्रदा चेति तेन लीलसरस्वती। विदिता नीलवर्णत्वात तथा नील सरस्वती॥
प्रधानैकजटा यस्मात् तस्मादेकजटा शिवा। तारकत्वात् सदा तारा सुखमोक्ष प्रदायिनी॥
उग्राप्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता। एवं निगदिता विद्या तारिणी सर्वसिद्धिदा॥

अनायास ही वाग्शक्ति प्रदाता होने के कारण **'लील सरस्वती'**, इसके नीलवर्णा होने के कारण (इसे ही) **'नील सरस्वती'**, शिर पर (विशेषत:) एक जटा धारण करने के कारण **'एकजटा'**, भवसागर से तारने तथा भुक्ति-मुक्ति (दोनों की) प्रदाता होने के कारण **'तारा'** एवं उग्र (भयङ्कर) संकटों से रक्षा करने के कारण **'उग्रतारा'**, इन विभिन्न नामों द्वारा महाविद्या तारा जो सर्वसिद्धिदायिनी है, जानी जाती है।

जो आद्या **(मूल) प्रकृति रूपा** सनातनी 'चिन्मयी' शक्ति है, वही सृष्टि के आदि में चतुर्वेदमयी होकर वाणी की अधिकारिणी (सरस्वती रूपा) होती है। यह शब्द ब्रह्ममयी शक्ति समस्त प्राणियों के अन्तर में स्थित होकर समस्त विश्व की सभी (शारीरिक) क्रियाओं का सञ्चालन करती है। यही आद्या शक्ति संसार में तारा, एकजटा, नीलसरस्वती आदि बहुत से नामों द्वारा पुकारी जाती है।

आद्या प्रकृतिभूता या शक्तिर्देवी सनातनी। चतुर्वेदमयी भूत्वा सैव वागाधिकारिणी॥
शब्दब्रह्ममयी सैव सर्वाभ्यन्तरवर्तिनी। प्रवर्त्तयशति सर्वासु क्रियासु निखिलं जगत्॥
सेयं जगति भूयोभिर्नामभिः प्रणिगद्यते। तारेत्येकजटेत्येवं नीणवाणीति चिन्मयी॥

चतुर्वेदमयी, शब्द ब्रह्मरूपिणी भारती (सरस्वती) श्वेत रूपा होते हुए भी नील वर्णा किस प्रकार हुई, इस विषय में कथा है कि पूर्वकाल में किसी समय देवासुर संग्राम में विष्णु के चक्र से छिन्न-भिन्न हुए दैत्य भयभीत होकर समुद्र में जा छिपे। वहाँ उन्होंने विचार किया कि यदि सर्वमन्त्रमयी वेदरूपा सरस्वती का, जिनके द्वारा ब्राह्मण लोग यज्ञकर्म करते हैं, अपहरण कर लिया जाय तो, यज्ञ कार्य के प्रतिबन्धित होने पर, उसके द्वारा प्राप्त होने वाले हवि से रहित होकर, निर्बलता को

प्राप्त देवताओं पर विजय प्राप्त करना सुगम हो जायेगा। ऐसा विचार करके, उन दैत्यों के नायक रूप हयग्रीव तथा सोमक नाम वाले दोनों भाइयों ने घोर तपस्या द्वारा 'शब्दाकर्षिणी' देवी को प्रसन्न कर उनसे 'शब्दाकर्षण अस्त्र' की प्राप्ति कर, उसके द्वारा समस्त द्विजों के मुख से 'मन्त्र रूप' सभी शब्दों का आकर्षण कर लिया। इससे वह शब्दरूपिणी देवी सरस्वती ब्राह्मणों के मुख से निकलकर 'कृष्ण वर्ण' शरीर धारण कर उन दोनों दैत्यों की अधीनता में आ गई। उन्होंने उस देवी को पाताल में ले जाकर सर्परूपी रस्सी से बाँधकर, हलाहल विष से भरे नीलवर्ण कुण्ड में डालकर ऊपर से प्रस्तर शिला द्वारा ढक कर, स्वर्ग में जाकर, पृथिवी पर यज्ञ-कर्म के उच्छेद के कारण हवि-प्राप्ति-रहित निर्बल देवताओं से युद्ध करके उन्हें पराजित कर दिया। तत्पश्चात् दोनों भाई समुद्र में जाकर छिप गये।

इसके बाद उन पराजित देवताओं ने अपनी रक्षा तथा भगवती सरस्वती के उद्धार के लिए भगवान विष्णु की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। अपनी स्तुति से प्रसन्न हरि ने हजारों दातों वाले विशाल मत्स्य का रूप धारण कर समुद्र में प्रवेश करके, अपने निश्वास द्वारा उन असुरों से 'शब्दाकर्षणास्त्र' का बल पूर्वक आकर्षण कर, उनका वध कर दिया। तदुपरान्त देवी सरस्वती का उद्धार कर छः प्रकार के बीजमन्त्रों के प्रयोग द्वारा उन्हें चैतन्य करके कहा कि हे देवि! अब त्रिभुवन में तुम्हारी प्रसिद्धि 'नील सरस्वती' के नाम से होगी तथा तुम्हारा दशाक्षर मन्त्र षड्-मन्त्रों के योग से चौंतीस अक्षर का (षाट् कौशिक मन्त्र) कहा जायगा।

चतुस्त्रिंशत् (३४) वर्णात्मक नील सरस्वती मन्त्र - **'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः ह्रीं स्हौः वद वद वाग्वादिनि त्रीं त्रीं त्रीं नील सरस्वति ऐं ऐं ऐं कह कह कलरीं स्वाहा।'**

॥ तारा का ध्यान॥

भूत-शुद्धि प्रक्रिया के अन्तर्गत भगवती तारा का ध्यान निम्न प्रकार से करने के लिए कहा गया है।

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमाला विभूषिताम्। खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ॥
नवयौवन सम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्। चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम्॥
खड्गकर्त्री समायुक्त-सव्येतरभुजद्वयाम्। कपालोत्पलसंयुक्त-सव्यपाणियुगान्विताम्॥
पिङ्गोग्रैक जटां ध्यानेन् मौलावक्षोभ्य भूषिताम्। बालार्कमण्डलाकार-लोचन त्रयभूषिताम्॥
ज्वलितचितामध्यगतां घोरदंष्ट्राकरालिनीम्। सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलङ्कारविभूषिताम्॥
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपद्मोपरि स्थिताम्। अक्षोभ्यो देवि मूर्द्धन्यस्त्रिमूर्तिर्नागरूपधृक्॥

॥ नाम भेदानुसार तारा-मन्त्र॥

तारा के उग्रतारा नामों के अनुसार उनके मन्त्र भी भिन्न-भिन्न है-

तारा (उग्रतारा, नील सरस्वती मन्त्र) - **'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।'**

एकजटा मन्त्र - **'ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।'**

महानील सरस्वती मन्त्र - **'ह्रीं स्त्रीं हूँ।'**

'माया तन्त्र' में भगवती तारा के आठ भेद कहे गये हैं -

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा नील सरस्वती। कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृता॥

तारा मन्त्र - **ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।**

'नील तन्त्र' (सप्तदश पटलानुसार) - **ह्रीं स्त्रीं हूँ फट् फट्।**

उग्रा मन्त्र - **स्त्रीं ह्रीं हूँ फट्।** महोग्रा मन्त्र - **हूँ स्त्रीं ह्रीं फट्।**

वज्रा मन्त्र - **हूँ ह्रीं स्त्रीं फट्।** नीला - मन्त्र - **ह्रीं स्त्रीं फट् हूँ।**

सरस्वती मन्त्र - **स्त्रीं ह्रीं फट् हूँ।** कामेश्वरी मन्त्र - **ह्रीं हूँ स्त्रीं फट्।**

भद्रकाली मन्त्र - **स्त्रीं हूँ ह्रीं फट्।**

॥ तारा शब्द की विवेचना॥

'तारा' शव्द 'तृ प्लवनतरणयोः' धातु से निष्पन्न कहा जाता है। इसका भाव है- **या स्वोपासकान् जलाद् आपत्तेर्वा तारयति सा तारा।**

तारा को बौद्धों की आराध्या मानने वाले इसका यह अर्थ करते हैं। जैसा कि भिक्षु श्री जिनरक्षित का कथन है - **सरसि निमग्ना भगवती (तारा) प्रभावात् (प्रसादात्)। स्व स्व देशमुपजग्मुः।**

यहाँ 'तारा' जलोद्धारिका शक्ति के रूप में दर्शायी गयी है। परन्तु इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि 'सांसारिक भोगों में आसक्त मनुष्य भगवती तारा की कृपा (प्रभाव) से अपने-अपने लक्षित (इच्छित) भोगों को प्राप्त करते थे।'

यदि 'तारा' को 'जलोद्धारिका शक्ति' मानकर यह कहेंगे कि वह समुद्रादि में यात्रा करते समय उत्पन्न होने वाले जल-संकटों से रक्षा करने वाली देवी है, इसीलिए व्यापारादि के लिए यात्रा करने वाले इसकी आराधना करते थे तो **'तार' (प्रणव ॐकार)** तथा **'त्रितार' (ऐं ह्रीं श्रीं)** का भी यही भाव मानना पड़ेगा। परन्तु यह सर्वथा अनुचित होगा।

तारा **'प्रणव (ॐकार)'** रूपिणी (ब्रह्मस्वरूप प्रणव की शक्ति रूपिणी) है। इसीलिए तारा-मन्त्र को 'पञ्चरश्मि युता' (अ, उ, म, नाद तथा बिन्दु अर्थात् प्रणव सहिता) कहा गया है। वेदादि (वेदों का जनक) होने के कारण **'प्रणवोपासना'** (इसीलिए 'तारा' की भी उपासना) ज्ञानप्रद तथा 'प्रणव' के ब्रह्मस्वरूप होने के कारण 'मोक्षप्रद' कही गई है।

'ब्रह्माण्ड पुराण' के 'ललितोपाख्यान' में तारा को 'नौकेश्वरी' कहकर 'मोक्ष प्राप्तिकर' समस्त साधनाओं (नौकाओं) की स्वामिनी कहा गया है। उनकी नौका 'रत्न-निर्मिता' (पञ्चरश्मियुता तथा 'पञ्चाक्षर मन्त्र' 'पञ्चब्रह्म' रूप) है। उसकी असंख्य परिचारिकाएं असंख्य साधना रूपा है (परमात्मा से विमुख, उससे अत्यन्त दूर स्थिति **(तद्दूरे तद्वन्तिके)** मनुष्य जब उसकी प्राप्ति के लिए साधना-मार्ग के पाथिक बनते हैं तो भगवती तारा उनकी, साधनामार्ग में आने वाली सभी विपत्तियों से रक्षा करती हैं।

'ब्रह्मयामल' में ब्रह्मा वशिष्ठ से कहते हैं कि महाप्रलय में चराचर विश्व के लय हो जाने पर, स्व स्वरूप (शरीर) का भी उपसंहार करके 'एकमेव' रूप से रहने वाली जो 'शक्ति' है, उसी के द्वारा ही कालान्तर में (सृष्टि काल उपस्थित होने पर) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की सृष्टि की जाती है। उसी के आदेश तथा अनुग्रह से मुझे, विष्णु तथा रुद्र को भी ब्रह्माण्डाधिपतित्व की प्राप्ति हुई है। उसके द्वारा प्राप्त शक्ति-सामर्थ्य से ही हम तीनों सृष्टि पालन तथा संहार रूप स्व-स्व कार्यों का यथावत् निर्वाह करते हैं। समस्त देवों की शक्ति स्वरूपा विश्वाजननी वह (आद्या) शक्ति अपने उपासक भक्तों को धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष रूप चारों पुरुपार्थों को प्रदान करने वाली है तथा अनन्त रूप होते हुए भी साधकों की रूचि के अनुसार त्रिरूपा होकर (तीन रूप धारण कर)) सामराधित होती है।

तयोपदिष्टाः कृपया भवामः सृष्टिकारकः। तस्या प्रसादात् त्रिपेन्द्र वयं ब्रह्माण्डनायकाः।
अन्ये सुरगणाः सर्वे तस्या पादप्रसेवकाः।।
आद्या चैकजटा प्रोक्ता द्वितीया चोग्रतारकाः। तृतीया नीलवाणी स्याद् भोगमोक्षप्रदा महा।।

'तारोपनिषद्' (अथर्ववेद सौभाग्य काण्ड) में भगवती तारा स्वयं कहती हैं-

'ॐ तत्सत्। ब्रह्मतद्रूपं प्रकृतिपरं गगनाभं तत्परं परमं महत्सत्यं तदहम्।'
'शिरः उग्रतारां महोग्रां नीलां घनामेकजटां महामायां प्रकृतिं मां विदित्वा यो जपति मद्रूपाणि........साधकः सदा मद्रूपो भवति। सर्वाणि कर्माणि साध्यानि निर्भयो भवति।'

अनेक विद्वानों के मत से **'अथर्ववेद'** का 'सौभाग्यकाण्ड' तन्त्रागमों (तन्त्रमत) का मूल आधार है, इसी से इसका प्रादुर्भाव हुआ है। 'ऋग्वेद' में अथर्ववेद के प्रणेता 'अथर्वा ऋषि' का नाम सम्भवतः पन्द्रह बार उद्घृत किया गया है। इससे तन्त्र की प्राचीनता ऋग्वेद के समकक्ष स्वयं ही सिद्ध हो जाती है।

सनातन धर्म के अनुसार विश्व-सृष्टि के समय सर्वप्रथम वेदों का ही प्राकट्य होता है। अतः तारा की उपासना भी आदिकाल से ही प्रचलित कही जा सकती है। क्योंकि इसके उपासकों में **ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुबेर, अग्नि, दत्तात्रेय, वृहस्पति, वशिष्ठ, दुर्वासा, व्यास, वाल्मीकि, भारद्वाज** आदि बहुतों की गणना की जाती है। 'रुद्रयामल' आदि तन्त्र ग्रन्थों में जो यह कथा वर्णित है कि 'वशिष्ठ मुनि' ब्रह्मा के कहने पर (अथवा भगवती तारा के आदेश से) महाचीन देश (चीन अथवा तिब्बत) में जाकर वहाँ भगवान बुद्ध से तारा की 'महाचीन क्रम' से दीक्षा प्राप्त कर कामाख्या धाम में 'उग्रतारा महासिद्ध पीठ' में साधना करके सिद्धि प्राप्त की, पूरी तरह से कपोल कल्पित है।

वशिष्ठ की उत्पत्ति सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के मानस पुत्र के रूप में हुई थी। बुद्ध का जन्म वैवश्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें कलियुग में माला जाता है। दोनों के मध्य करोड़ों वर्ष का अन्तर है। क्या बुद्ध के काल तक वशिष्ठ ने तारा की साध ना नहीं की थी। यदि बुद्ध को भगवान विष्णु का अवतार मान लिया जाय (जैसा कि

ग्रन्थों में बुद्ध रूपी जनार्दन से दीक्षा प्राप्ति का वर्णन किया गया है) तो अवतार से पूर्व तथा लीला संवरण के पश्चात् उनका निवास 'विष्णुलोक' ही कहा जाता है। चीन अथवा तिब्बत में उनकी उपस्थिति का प्रश्न ही नहीं उठता। गौतम बुद्ध भी (जहाँ तक मेरा ज्ञान है) जीवन भर भारत में ही रहे तथा यहीं उन्होंने निर्वाण की भी प्राप्ति की। हो सकता है किसी अन्य वशिष्ठ नाम के ब्राह्मण ने तिब्बत में जाकर वहाँ किसी बौद्ध गुरु से 'तारा-साधना' का ज्ञान प्राप्त कर भारत में आकर उसका प्रचार-प्रसार किया हो। बाद में बौद्ध मत से प्रभावित हिन्दू तन्त्रज्ञों ने उसे ब्रह्म-पुत्र के रूप में प्रतिष्ठित कर प्राचीन तन्त्र ग्रन्थों में इस घटना को कथानक के रूप में प्रक्षिप्त कर दिया हो।

वास्तव में हिन्दू तन्त्र शास्त्रों द्वारा ही बौद्धों में तन्त्र का आगमन हुआ। बुद्ध के जीवन काल में तथा उसके बाद भी कई सौ वर्षों तक बौद्धों में न तो तन्त्र-साधना प्रचलित थी और न ही कोई तन्त्र-साहित्य था। धीरे-धीरे जब बौद्ध धर्म क्षीण होने लगा तो अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, समाज में अपनी स्वीकार्यता बनाए रखने के लिए तथा लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए बौद्धों ने ब्राह्मणों के तन्त्रशास्त्र का आश्रय लिया। ब्राह्मणों के वैदिक शाखा के अनुयायी वर्णाश्रम धर्म के आग्रही थे, परन्तु तन्त्रशाखा के अनुयायी, विशेषकर शैव तथा शाक्त वर्णाश्रम धर्म के प्रति अति-आग्रही नहीं थे। इसीलिए हिन्दुओं की तन्त्रशाखा की साधना तथा साहित्य का ग्रहण बौद्धों को अधिक सुगम प्रतीत हुआ। हिन्दुओं (सनातन तथा वैदिक धर्म दोनों) में प्रणव 'ॐकार' को (शब्द) ब्रह्म रूप माना जाता है तथा इसकी उपासना सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। ब्राह्मण और बौद्ध दोनों ही प्रणव को 'तार' कहते हैं। बौद्धों ने इसी 'तार' की शक्ति (तार रूप देवता की पत्नी) को 'तारा' नाम दिया। बौद्धों की 'तारा देवी' के विषय में अनेकों ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। इनमें तारा के दिव्य स्वरूप की भावना के अलावा उपासना के पञ्चाङ्गों पटल, पद्धति, कवच, नाम सहस्र तथा स्तोत्र का विस्तार पूर्वक वर्णन है। तारा बौद्धों के महायान सम्प्रदाय की देवी है। इसके 'हीनयान सम्प्रदाय' में भी तारा के समान ही 'मणि मेखला' नाम की देवी है। लङ्का, श्याम (म्यामार) आदि देशों में वह समुद्र की देवी के रूप में पूजी जाती है। समुद्र में तूफान आदि के समय यह उनसे रक्षा करने वाली देवी कही जाती है। सम्भवतः इसी आधार पर 'हीनयान' की तारा को भी, उसके नाम के कारण भ्रमित होकर लोगों ने उसे भी 'तारने वाली' अर्थात् जल (समुद्र) से रक्षा करने वाली देवी मानना प्रारम्भ कर दिया।

महाभारत काल तथा उसके बाद भी बहुत समय तक भारतीय समाज (हिन्दुओं) में वैदिक धर्म, वैदिक आचरण तथा वर्णाश्रम धर्म की प्रधानता रही। परन्तु जैसे-जैसे लोगों की बुद्धि क्षीण होती गई तथा वैदिक आचरणों की कठिनता के कारण लोग उससे विमुख होने लगे, उनका आकर्षण तन्त्र की ओर होने लगा। बौद्धों द्वारा

तन्त्र की स्वीकृति तथा उसके जन-सामान्य में प्रचार-प्रसार के कारण लोगों को तन्त्र का विशेष परिचय प्राप्त हुआ। बौद्धों द्वारा 'तारा' की साधना पद्धति का अति सरलतम विधि, जिसे उन्होंने 'महाचीन' अथवा 'चीनाचार' नाम दिया, से प्रचार करने तथा इसमें सभी वर्णों का समावेश करने के कारण लोगों को यह भ्रम हो गया कि 'तारोपासना' बौद्धों की देन है।

॥ तारोपासना-विधि (महाचीन-क्रम)॥

तन्त्र शास्त्रों में कुछ महाविद्याओं की उपासना 'वामाचार' विधि से तथा कुछ की 'वामाचार' तथा 'दक्षिणाचार' दोनों विधियों से करने का विधान है। तारा की उपासना हेतु 'वामाचार' को ही प्रधानता दी गई है। मेरे विचार से बौद्धों ने तारा की उपासना के लिए भारतीय तन्त्रों से 'वामाचार' को ही स्वीकार कर उसे 'महाचीर्ण' (उत्तम अथवा सरलता पूर्वक अनुष्ठित) क्रम नाम दिया होगा। यही 'महाचीर्ण' कालान्तर में जन-सामान्य द्वारा 'महाचीन' रूप से स्वीकार्य हो गया होगा।

'महाचीन क्रम' का विस्तार से वर्णन 'वृहन्नील तन्त्र', 'शक्तिसङ्गम तन्त्र' आदि ग्रन्थों में किया गया। इसे वहीं देखना उचित होगा। संक्षेप में कहें तो इस साधना क्रम में निर्विकल्प भाव की ही प्रमुखता है। स्वेच्छाचारिता ही इसमें नियम है। शुद्धि-अशुद्धि, समय-असमय, दिक्काल दिन-रात्रि आदि किसी के भी विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। तारा ब्रह्मस्वरूपा है। उसकी सृष्टि ब्रह्ममय है। अत: स्वयं को भी तारा रूप मानकर (ब्रह्मभावापन्न होकर) उत्तम-अधम, ग्राह्य-अग्राह्य रूप समस्त विकल्पों का त्याग कर विशेष रूप से मानसिक पूजन-जप-तर्पणादि कर्म करना चाहिए। इस साधना में स्त्री-प्रसङ्ग की चर्चा तो है परन्तु यहाँ स्त्री 'भोग्या' न होकर 'भोक्ता' होती है। अत: यहाँ साधक स्त्री की इच्छा होने पर भी 'कामासक्ति' से रहित होकर उससे सम्बन्ध करता है। इसकी उपासना हेतु स्थान का निरुपण करते हुए कहा गया है-

एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे। शवस्योपरि मुण्डेवा जले वा कण्ठपूरिते॥
संग्रामभूमौ योनौ वा स्थाने वा विजने वने। तत्रस्थः साधयेद् योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरी॥

अपने विभिन्न भेदों के अनुसार तारोपासना सभी पाँचों (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊर्ध्व) आम्नायों में गृहीत है। पूर्वाम्नाय में दक्षिण मार्ग से, पश्चिमाम्नाय में वाम मार्ग से, दक्षिण-उत्तर तथा ऊर्ध्व आम्नायों में दक्ष एवं वाम दोनों मार्गों से शक्त्युपासना कही गयी है।

'रुद्रयामल' में कहा गया है -

कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात् त्रेतायां स्मृतिभाषितः। द्वापरे वैं पुराणोक्तः कालावगम सम्भवः॥

अर्थात् कलियुग में शक्ति-साधन आगम (तन्त्र) शास्त्रानुसार ही करना चाहिए। इसमें भी काली, तारा, धूमावती आदि की साधना के लिए विशेष रूप वामाचार विधि को ही उचित माना है, परन्तु मेरे विचार से ऐसा अनिवार्य नहीं है,

क्योंकि स्वामी रामकृष्ण परमहंस काली के उपासक (भक्त) होते हुए भी दक्षिणाचारी (वैष्णव) माने जाते हैं। यह अलग बात है कि वामाचार साधना शीघ्र फलदायी है।

'तारा-भक्ति' की प्रशंसा करते हुए 'तारा-रहस्य' में कहा गया है -

ज्ञात्वा तारा रहस्यं भजति यदि जनस्तारकामन्त्रराजम्,
श्रेष्ठां सिद्धिं लभेताममरमनुजैर्दुलभां तारकातः।
व्यक्त्वा तारां प्रयाति ध्रुवमतिविपदामार-पदं मोहकूपम्,
दुखं शोकञ्च सम्यग् गतिरपि सुतरांनैव भव्यां कदाचित्॥

और भी-**भक्त्या तद्गतमानसी यदि जनस्तारां भजेद् यत्नतः,**
स क्षेमङ्करमेतदेव लभते तत्त्यागतो यात्यधः।

धूमावती

दस महाविद्याओं में सातवें स्थान पर परिगणित होने वाली विद्या धूमावती विद्या है। इन दसो (महा) विद्याओं में काली, तारा, षोडशी तथा भुवनेश्वरी को 'महाविद्या', बगला, मातङ्गी तथा कमला को 'सिद्ध विद्या' एवं भैरवी, छिन्नमस्ता तथा धूमावती को 'विद्या' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इन सभी को दो कुलों 'काली-कुल' तथा 'श्री-कुल' में भी वर्गीकृत किया गया है। धूमावती का समावेश 'श्री-कुल' में वर्णित है।

प्रत्येक महाविद्या के पूजन के समय उनके दक्ष-भाग में तत्सम्बन्धित शिव (भैरव) के पूजन का भी विधान है। धूमावती क्योंकि विधवा स्वरूपा हैं, अतः इनके साथ (इनके) भैरव का पूजन नहीं किया जाता। परन्तु 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' में धूमावती के शिव का उल्लेख 'काल-भैरव' के रूप में किया गया है।

भगवती धूमावती की उत्पत्ति तथा उनके 'वैधव्य-प्राप्ति' का प्रसङ्ग 'नारद-पाञ्चरात्र' के तेरहवें अध्याय में वर्णित है। किसी समय कैलास पर्वत के शिखर पर भगवान शिव के साथ उनके अङ्क में विराजमान भगवती पार्वती ने क्षुधा (भूख) से अत्यन्त पीड़ित होने पर उनसे (शिव से) क्षुधा-शान्ति हेतु खाने के लिए यथोचित पदार्थ की याचना की। प्रत्युत्तर में शिव ने कहा कि थोड़ी देर आप प्रतीक्षा करें, आपको खाने के लिए अवश्य मैं कुछ प्रदान करुंगा। कुछ क्षण पश्चात् पार्वती ने पुनः भोजन की याचना की, परन्तु शिव ने पुनः प्रतीक्षा करने के लिए कहा। इस प्रकार अनेकों बार मांगने पर भी जब शिव ने भोजन के रूप में कुछ भी प्रदान नहीं किया तो पार्वती ने कहा हे देव! मुझे भोजन प्रदान करें। मैं अधिक विलम्ब नहीं सह सकती और ऐसा कहकर उन्होंने अपने पति शिव को ही मुख में डालकर भक्षण कर लिया। ऐसा करने पर क्षण भर में ही उनके शरीर से सघन धूमराशि की उत्पत्ति हो गई। तदनन्तर पार्वती के शरीर में ही अपनी माया से उत्पन्न शिव ने कहा-हे देवि! भद्रे! शोभने! महाभागे! तुम अपनी ज्ञान-दृष्टि से देखो (विचार करो), इस संसार में मेरे

अतिरिक्त न तो कोई पुरुष है और न ही तुम्हारे सिवा अन्य कोई स्त्री। मेरा भक्षण करने के कारण, पति-विहीना तुम विधवा हो गई हो। अत: सधवा स्त्री के लक्षण स्वरूप सिन्दूर तथा चूड़ियों का अब परित्याग कर दो। धूम के द्वारा सारा शरीर व्याप्त होने के कारण तुम्हारी यह परा मूर्ति अब 'धूमावती' के नाम से विख्यात होगी। इसे सिद्धविद्या के नाम से जाना जाएगा। जिस प्रकार से उग्रतारा, काली, भुवनेश्वरी, त्रिपुर भैरवी, छिन्नमस्ता आपकी ही मूर्तियाँ हैं, उसी प्रकार यह 'धूमावती' भी आपकी ही मूर्ति (स्वरूप) मानी जायेगी।

'स्वतन्त्र तन्त्रानुसार' जब दक्ष प्रजापति के यज्ञ में अपने पति शिव के अपमान से क्रोधित होकर भगवती सती ने अपने शरीर को यज्ञ-कुण्ड में अर्पित कर दिया था तब उससे उत्पन्न महान धूमराशि से ही धूमावती की उत्पत्ति हुई थी। इनकी उत्पत्ति का काल अक्षय तृतीय-मङ्गलवार-सन्ध्या समय कहा जाता है। भगवती धूमावती भक्तों पर कृपा करने वाली तथा उनके शत्रुओं का विनाश करने वाली कही जाती है।

संसार में रोग-दुख के मूल कारण रुद्र, यम, वरुण तथा निर्ऋति ये चार देवता माने गये हैं। अनेकों प्रकार के ज्वर, महामारी, उन्माद तथा दाह (सन्ताप) सम्बन्धित रोग रुद्र कोप के कारण, मूर्छा, मृत्यु, विकलाङ्गता आदि यम के कारण, गठिया, शूल, गृध्रसी, लकवा आदि वरुण-कोप से तथा समस्त व्याधियों में शोक, कलह, क्षुधा, तृषा, दरिद्रता आदि निर्ऋति के (कोप के) कारण होते हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' के अनुसार धूमावती तथा निर्ऋति एक ही हैं। भिखारी, क्षत-विक्षता पृथिवी, ऊसर भूमि, भग्न भवन (खण्डहर), फटे-पुराने वस्त्र, भूख-प्यास, रुदन, वैधव्य, पुत्र-सन्ताप, कलह आदि इसकी साक्षात् मूर्तियाँ हैं। इसीलिए श्रुति ने इसे 'दरिद्रता' के नाम से सम्बोधित किया है। वैसे तो यह शक्ति सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु इसका मुख्य स्रोत ज्येष्ठा नक्षत्र है। इसी से इस 'आसुरी-कलहप्रिया' शक्ति का निर्गमन होता है। इसे लक्ष्मी की ज्येष्ठा भी कहा जाता है। इसी के कारण ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला मनुष्य जीवन भर दारिद्र्य-दुख भोग करता है। भयानक मुखाकृति, विस्तृत एवं अव्यवस्थित दन्त-पंक्ति, रुक्षता आदि इसी की कृपा का परिणाम है। मनुष्य का पतन करने के कारण इसे 'अवरोहिणी' भी कहा जाता है। 'अलक्ष्मी' के नाम से भी इसी को ही जाना जाता है। इस शक्ति के स्वरूप का निरुपण ऋषियों द्वारा निम्नवत् किया गया है -

विवर्णा चञ्चला दुष्टा[१] दीर्घा च मलिनाम्बरा।
विमुक्तकुन्तला वै सा[२] विधवा विरलद्विजा॥
काकध्वजरथारूढ़ा विलम्बितपयोधरा।
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्षी धूतहस्ता वरानना[३]॥
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा[४] कलहास्पदा[५]॥

'आप्य-प्राण' को आसुर-प्राण तथा आग्नेय एवं ऐन्द्र-प्राण को दैव-प्राण कहा जाता है। आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक, वर्षा की परमावधि

पाठान्तर - १. कृष्णा। २. रुक्षा। ३. वरान्विता। ४. भीषणा। ५. कलहप्रदा

के अन्तर्गत सौर प्राण के आपोमय होने के कारण आसुर-प्राण की अपेक्षा दैव-प्राण निर्बल होता है। अतः चातुर्मास्य में आसुर-प्राण का साम्राज्य होने के कारण इस अवधि को देवताओं का सुषुप्ति-काल कहा जाता है। इसी अवधि में ही निर्ऋति का साम्राज्य रहता है। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी इसकी अन्तिम सीमा है। इसीलिए इस तिथि को धर्माचार्यों द्वारा 'नरक चतुर्दशी' नाम दिया गया है। इसी रात्रि को दरिद्रारूपी 'अलक्ष्मी' का गमन होता है तथा दूसरे ही दिन रोहिणी रूपा कमला (लक्ष्मी) का आगमन होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्ऋति रूपा धूमावती प्रमुख रूप से चातुर्मास्य में ही रहती है।

तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार धूमावती उग्रतारा का ही स्वरूप है। धूम्रवर्ण होने के कारण ही इन्हें धूमावती कहा जाता है। प्रसन्न होने पर यह देवी रोग, शोकादि को नष्ट कर देती है परन्तु कुपित होने पर समस्त सुखों तथा भोगों का विनाश भी कर देती हैं। इनकी शरणागति से विपत्ति (तथा शत्रु) नाश के साथ ही सम्पन्नता की भी प्राप्ति होती है। धनार्थी व्यक्ति को सदैव इसकी स्तुति एवं अर्चना करते रहना चाहिए।

ऋग्वेदोक्त 'रात्रि-सूक्त' में इन्हें 'सुतरा' (सुख पूर्वक तारने योग्य) कहा गया है। तारा अथवा तारिणी को इनका पूर्व रूप कहा गया है। अतः आगमों में इन्हें अभाव तथा विपत्तियों से मुक्त करके सुख प्रदान करने वाली 'भूति' कहा गया है। इसी प्रकार धूमावती को 'स्थिर प्रज्ञता' का प्रतीक भी माना जाता है। इनका 'काकध्वज' निरन्तर अतृप्त रहने वाले वासनाग्रस्त मन का प्रतीक कहा गया है। मनुष्य की दीनावस्था (दरिद्रता), भूख-प्यास, कलह आदि इसकी क्रियाएँ हैं। वैदिक दृष्टि से धूमावती कद्रु है, जो वृत्रासुर (आसुरी वृत्ति) आदि को उत्पन्न करती है।

प्रस्तुत 'फेत्कारिणी-तन्त्र' इक्कीस (२१) पटलों तथा एक हजार तीन सौ अट्ठासी (१३८८) श्लोकों में निबद्ध ग्रन्थ है। इसमें उपयुक्त तीनों महाविद्याओं की साधना के अतिरिक्त स्वर तथा व्यञ्जन वर्णों से उद्भूत शक्ति सहित विष्णु एवं शिव मूर्तियों का वर्णन, बीज कोश, कुण्ड-विवरण, स्रुक्-स्रुव संरचना विधि, प्राणायाम, भूत-शुद्धि, न्यास (सृष्ट्यादि रूप), भेद सहित पूजन विधि, मन्त्र-पुरश्चरण काल में भक्ष्यादि व्यवहार, जप-स्थान, जप-भेद, षट्कर्म साधना हेतु तिथि-नक्षत्र-ऋतु आदि का निरूपण, देवता के स्वरूप का ध्यान, वर्ण संख्यानुसार मन्त्रों के नाम, पल्लव-योग-ग्रथनादि का विवरण, मन्त्र-भेद, सुप्त-प्रबोधकाल, मन्त्र-जप के समय चित्त-धारणा, षट्-कर्मों के देवता, दिशा, आसन, देवता-ध्यान, माला-निरूपण, जप-विधि, कामनानुसार हवन द्रव्यादि के कथन के साथ ही कुक्कुट (चरणायुध) मन्त्र साधना (प्रयोग), सुमुखी साधना, गृध्रकर्ण मन्त्र साधना, भद्रकाली मन्त्र साधना, महाकाली मन्त्र प्रयोग, परिमल मन्त्र साधना, जय दुर्गा मन्त्र, आग्नेय मन्त्र (जातवेद मन्त्र), लवण मन्त्र साधना, यन्त्र लेखन द्रव्य तथा धूमावती, घुर्मुटिका मन्त्र-यन्त्र, यम-काली मन्त्र-यन्त्र, भूतलिपि, मन्त्रों के दश संस्कार, होम-द्रव्य निरूपण, होम द्रव्यों के फल, कूर्म चक्र, मन्त्रों के ऋण-धन शोधन की विधि, क्रोध-मन्त्र तथा विविध प्रकार की भूतनियों के मन्त्र एवं साधन-विधि इन सभी विषयों का कहीं

संक्षिप्त तथा कहीं विस्तार से वर्णन किया गया है। लघुकाय ग्रन्थ होने पर भी इतने विषयों का समावेश होना इस ग्रन्थ की उपयोगिता एवं महत्व का सूचक है।

पश्चिमाम्नाय का ग्रन्थ होने के कारण वाममार्गी साधकों के लिए इसका विशेष महत्व है। ग्रन्थ की समाप्ति पर उपलब्ध केवल 'मयोक्ता' तथा 'मया गदिता' शब्द इसके रचनाकार का परिचय देने में असमर्थ हैं। अत: इस ग्रन्थ के प्रणयन कर्ता का नामादि सहित उल्लेख करना असम्भव ही है।

किसी भी ग्रन्थ का अध्ययन करके, उसमें निरूपित किसी भी देवता तथा उसके मन्त्रों के महत्व का अवलोकन करके, उसके प्रति सहज ही आकर्षित (लालायित) होकर, उस देवता की साधना (ध्यान-प्रणव-मन्त्र-जपादि) आरम्भ कर देना न तो उचित होता है और न ही सरल। हम जिस देवता (शक्ति-स्वरूप) की आराधना के अग्रसर होना चाहते हैं, उस देवता के प्रति हमारे चित्त में एकनिष्ठ दृढ़ भक्ति भाव का होना अनिवार्य है। साधक के हृदय में मन-कर्म-वचन सहित अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण (शरणागति) का भाव होना चाहिए।

सदा पादाम्भोजे भजतु हृदयं भृङ्ग इव मे,
सदा पाणिद्वन्द्वं परिचरतु कर्णस्तव कथाम्।
श्रृणोति त्वत्कीर्तिं हरमहिषि गीर्गायतु सदा,
सदा दृष्टिर्भूयाद् भवदनुचरालोकन-परा॥

स्व-आराध्य (आराध्या) के प्रति इस प्रकार के भावों की उत्पत्ति सहित जब उसकी कृपा-प्राप्ति के प्रति भी चित्त में दृढ़ विश्वास की उपस्थिति होती है, तब भक्त अनायास ही करुणा-पूरित स्वर में पुकार उठता है-

कदा काले शैलेयवरतनुभवे पादयुगलम्,
मुदा द्रक्ष्ये ब्रह्मप्रमुख विबुधानां परिणुतम्।
कृपा पारावारे भवजननि - भीतैकशरणे,
शरण्ये कारुण्यं मयि वितर दीने भगवति॥

तन्त्रशास्त्र के इस महान ग्रन्थ का भाषानुवाद (अधिकांश श्लोकों का शुद्ध पाठ देते हुए) स्वनामधन्य मूर्धन्य विद्वान स्वामी शत्रुघ्न दास जी ने किया है। इस अत्यन्त क्लिष्ट एवं अशुद्ध पाठों (श्लोकों) से पूरित ग्रन्थ का अतिशुद्ध अनुवाद करके स्वामी जी ने शाक्त-साधकों को उपकृत ही किया है। श्री मधुसूदन प्रकाशन द्वारा तन्त्र शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन करके निरन्तर उन जिज्ञासु पाठकों तथा साधकों की सेवा की जा रही है, जो संस्कृत भाषा के विज्ञ नहीं हैं।

पराम्बा आदरणीय स्वामी जी एवं श्री मधुसूदन प्रकाशन के स्वामी श्री विकास थपलियाल को दीर्घायु प्रदान सहित स्वस्थ रखें। इति।

मार्गशीर्ष पूर्णिमा
२०७४

भगवती तारा-चरणचञ्चरीक
दिव्यानन्द नाथ (कौलाचार्य)
प्रयाग (उत्तर प्रदेश)

विषयानुक्रमणिका

प्रथम पटलः

१. महा(उग्र) काली-ध्यानम् ..१

२. मातृका स्वरूपं, तस्याः सशक्ति विष्णु-शिव-पञ्चाशद्मूर्ति-उत्पत्तिः ..१

३. स्वरव्यञ्जनोद्भवाः विष्णु-मूर्तयः ..२

४. स्वरव्यञ्जनोद्भवाः विष्णु-शक्तयः ..३

५. स्वरव्यञ्जनोद्भवाः रुद्र-मूर्तयः ..४

६. स्वरव्यञ्जनोद्भवाः रुद्र-शक्तयः ..४

७. मातृका स्वरूपं तदोत्पन्न-मन्त्राणां भेदः ..५

८. प्रणवस्योत्पतिः तद्स्वरूपम् ..६

९. कतिपयवर्णानां संज्ञाः ..७

द्वितीय पटलः

१०. षट्कर्मषु कुण्ड-स्थण्डिलयोः विवरणम् ..९

११. कर्मानुसारेण कुण्ड-स्थितिः ..९

तृतीय पटलः

१२. स्रुक-स्रुव-रचना विधिः ..११

१३. स्नान-न्यास-दिग्बन्धनादि ..१२

१४. प्राणायाम-विधिः ..१३

१५. भूत-शुद्धिः ..१४

१६. न्यास-निरुपणम् ..१५

१७. षडङ्ग-न्यासादि निरुपणम् ..१६

१८. अन्तर्बाह्य-पूजनम् ..१७

१९. अर्घ्यादि सहित गन्धाष्टक-निरुपणम् ..१९

२०. त्रिविधोपचार कथन सहित पूजन-प्रक्रिया निरुपणम् ..२०

२१. अशुचौ जप-निषेधः;पुरश्चरण-कर्तुनियमः ..२२

२२. मन्त्रानुष्ठानम् ..२३

२३. होम-तर्पणादौ स्वाहादि-योजनम् ..२४

२४. पौष्टिकादि कर्मसु तिथि-वार निरुपणम् ..२५

२५. षट्कर्मसु-ऋतुनक्षत्रादि निरुपणम् ..२६

२६. यन्त्र-लेखन-द्रव्याणि ..२७

२७. षट्कर्मसु-देवता-ध्यानम् ..२७

२८. वर्णसंख्यानुसारेण मन्त्राणां संज्ञाः ..२८

२९. कार्यविशेषे पल्लवादि निरुपणम् ..२९

३०. कर्मविशेषे हुं-फट्-वषडादिनियोजनम् ..३१

३१. मन्त्र-भेद-निरुपणम् ..३१

३२. सुप्त-प्रबुद्ध कालः ..३२

३३. चित्त-धारणा-निरुपणम् ..३३

३४. पृथिव्यादि मण्डलानां स्वरुपाणि तत्र चैतन्य-धारणम् ..३४

३५. षट्कर्म-देवता तद्दिशः ..३५

३६. षट्कर्मसु आसन-मुद्रा देवता ध्यानानि ..३५

३७. माला-निरुपणम् ..३७

३८. जपे अंगुलि नियमाः-दिग्निर्देशनम् ..३८

३९. षट्कर्मसु कुण्ड-निरुपणम् ..३९

४०. षट्कर्मसु होम-द्रव्याणि ..४०

४१. मन्त्र-सिद्धयुपायः ..४३

४२. वर्ण-संकेतः ..४३

चतुर्थः पटलः

४३. कुक्कुट मन्त्रोद्धारः ..४६

४४. कुक्कुट देवता-ध्यानम् ..४७

४५. पुरश्चरणाय स्थानं विधिञ्च ..४८

४६. मन्त्रवर्ण न्यास ..४९

४७. मन्त्र-पुरश्चरणम् ..५०

४८. वशीकरण-प्रयोगाः ..५०

४९. आकर्षण-प्रयोगाः ..५२

५०. विद्वेषण-प्रयोगाः ..५४

५१. स्तम्भन-प्रयोगाः ..५५

५२. उच्चाटन-प्रयोगाः ..५६

पञ्चमः पटलः

५३. मारण (मोहन वा) प्रयोगः ..५९

५४. शत्रु-अङ्ग-नाशक-प्रयोगः ..५९

५५. शत्रु-मारण-प्रयोगः॥१॥ ..५९

५६. शत्रु-मारण-प्रयोगः॥२॥ ..६०

५७. अङ्गछेदन सहित शत्रु-मारण-प्रयोगः ..६०

५८. विविध काम्य-प्रयोगाः ..६१

५९. कुक्कुट (चरणायुध) मन्त्र-प्रयोगः ..६४

षष्ठः पटलः

६०. उच्छिष्ट-पूर्विका देवी विषये जिज्ञासा ..६७

६१. उच्छिष्ट मातङ्गी विद्या महात्म्यवर्णनम् ..६७

६२. उच्छिष्ट मातङ्गी विद्या ..६८

६३. उच्छिष्ट मातङ्गी ध्यानम् ..६८
६४. सुमुखी विद्या प्रकाशनम् ..६९
६५. सुमुखी मन्त्रस्य साधनविधि-मन्त्रोद्धारश्च ..७०
६६. अस्याः साधनस्य विशेषणम् ..७०
६७. सुमुखी देव्याः ध्यानम् ..७१
६८. साधन-नियमाः, नाना काम्यप्रयोगाः ..७१
६९. साधनाचार निरुपणम् ..७४
७०. समयाचार-साधन-विधिः ..७५

सप्तमः पटलः

७१. धूमावती मन्त्रोद्धारः - ऋषि छन्दादि कथनम् ..७७
७२. धूमावती-ध्यानम् ..७७
७३. मन्त्रस्य पुरश्चरण-विधिः ..७८
७४. मन्त्रस्य विभिन्न प्रयोगाः- शत्रु ज्वर-पीडन-प्रयोगः ..७८
७५. मारणोत्सादन प्रयोगाः ..७८
७६. विविध मारणोच्चाटन प्रयोगाः ..७९
७७. विद्वेषण-प्रयोगाः ..८२
७८. वशीकरण प्रयोगाः ..८३

अष्टमः पटलः

७९. गृध्राकर्णामनु श्रोतुकामा श्रीदेवी वचनम् ..८५
८०. गृध्रकर्णामन्त्रोद्धारः ..८५
८१. मन्त्रस्य ऋषिछन्दादि ..८५
८२. भद्रकाली-ध्यानम् ..८६
८३. मन्त्र-प्रयोग-विधिः ..८७
८४. देव्याः ध्यानम् ..८७
८५. उच्चाटन-प्रयोगः ..८९

नवमः पटलः

८६. भद्रकाली-महामन्त्रोद्धारः ..९०
८७. प्रयोग-विधिः ..९१

दशमः पटलः

८८. दक्षिणाकालिका-विधि-कथन प्रतिज्ञा तद्महात्म्यञ्च ..९२
८९. श्री दक्षिणाकालिकायाः ध्यानम् ..९२
९०. दक्षिणाकालिकायाः मन्त्रोद्धारः तद्माहात्म्यञ्च ..९३
९१. सध्यान स्त्री वशीकरण प्रयोगः ..९५
९२. सर्वाकर्षण-प्रयोगः ..९६
९३. मारण-प्रयोगः ..९६
९४. प्रयोगानुसारेण देव्या मुखभावस्य चिन्तनम् ..९६
९५. नाना सिद्धयर्थ नाना प्रयोगाः ..९७
९६. यन्त्र-संरचना तत्र देव्याः पूजनम् ..१०३
९७. न्यासादि निरुपणम् ..१०४

एकादशः पटलः

९८. सार्वज्ञप्रदाविद्या-विषये देव्याः प्रश्नः ..१०७
९९. महाविद्या-माहात्म्यम् ..१०७
१००. उग्रतारा-ध्यानम् ..१०८
१०१. समाहात्म्य साधन-विधि निरुपणम् ..१०८
१०२. मन्त्रोद्धारः ..११३
१०३. मन्त्राधिकारी-वैशिष्ट्यम् ..११३
१०४. सुपात्राय मन्त्र-दानादेशः ..११४
१०५. विद्या-सिद्धि-प्रयोगः ..११४
१०६. मन्त्र-प्रभाव-कथनम् ..११५
१०७. साधन-विषये कतिपय-निर्देशः ..११६
१०८. पुनर्माहात्मयं काम्य-प्रयोगाश्च ..११६
१०९. पद्मावती-मन्त्रोद्धारः तत्प्रयोगश्च ..११८
११०. नित्यबलि-मन्त्रः ..११९
१११. द्रुत-कवित्व-प्राप्ति प्रयोगः ..१२०
११२. वशीकरण-प्रयोगः ..१२१
११३. उच्चाटन-प्रयोगः ..१२१
११४. मारण-प्रयोगः ..१२१
११५. तारा-धारण-यन्त्रम् ..१२१
११६. पूजन-विधि-वर्णनम् ..१२३
११७. भूत-शुद्धि निरुपणम् ..१२३
११८. यन्त्र-पूजनम् ..१२४

द्वादश-पटलः

११९. महाकाली-मन्त्रोद्धारः ..१२६
१२०. पूजन-विधिः (महाकाली ध्यानञ्च) ..१२७
१२१. मारण-प्रयोगः ..१२८

त्रयोदशः पटलः

१२२. परिमलमन्त्रोद्धाराः, ऋषि छन्दादि न्यास विधिश्च ..१३०
१२३. महाकृत्या ध्यानम् ..१३१
१२४. कार्यानुसार - पुष्पादि द्रव्यैः कृत्यार्चनम् ..१३२
१२५. पीठ पूजनम् ..१३२
१२६. मारण प्रयोगाः ..१३३
१२७. उच्चाटन प्रयोगः ..१३५

१२८. विविध कामनार्थे हवनम् ..१३५
१२९. महाशान्तिकर-यन्त्र-पूजन प्रयोग: ..१३८

चतुर्दश: पटल:

१३०. जयदुर्गा-ध्यानम् ..१४०
१३१. जयदुर्गा-मन्त्रोद्धार: ..१४०
१३२. षडङ्ग-न्यास: ..१४१
१३३. जयदुर्गाया: अन्यध्यान मन्त्रश्च ..१४१
१३४. ज्वालामालिनी (ज्वालामुखी) मन्त्रोद्धार: ..१४२
१३५. ज्वालामुख्या: द्वितीयो मन्त्र: ..१४३
१३६. ज्वालामुखी ध्यानम् ..१४४

पञ्चदश: पटल:

१३७. ऋषि-छन्दादि षडङ्ग-न्यास सहित आग्नेय मन्त्र वर्णनम् ..१४५
१३८. मन्त्र-वर्ण-न्यास ..१४५
१३९. मन्त्र-पद-न्यास ..१४६
१४०. दुर्गा (कात्यायनी) ध्यानम् ..१४६
१४१. प्रयोग (जप-हवन) विधि: ..१४७
१४२. पीठ-पूजनम् ..१४७
१४३. आग्नेयास्त्र-प्रयोग-विधि: ..१४९
१४४. पादाष्टक-प्रतीकानि ..१५१
१४५. पादाक्षरोत्पन्न देवता-स्वरूपम् ..१५२
१४६. प्रयोगेषु प्रतिपत्ति: ..१५३
१४७. नक्षत्र-विभाग: ..१५३
१४८. प्रयोगार्थे तिथि-दिन-राशि निर्णयम् ..१५४
१४९. आग्नेयास्त्र-मन्त्र-प्रयोगा: ..१५५
१५०. ज्वरोत्पादक-प्रयोगा: ..१५६
१५१. मारण-प्रयोगा: ..१५७
१५२. विद्वेषण-प्रयोग: ..१५८
१५३. उच्चाटन-प्रयोग: ..१५८
१५४. मोहन-प्रयोग: ..१५८
१५५. मारण-प्रयोग: ..१५८
१५६. उच्चाटन-प्रयोग: ..१५९
१५७. स्तम्भन-प्रयोग: ..१५९
१५८. नृप-वश्य-प्रयोग: ..१५९
१५९. विश्व-वश्य-प्रयोग: ..१६०
१६०. वृष्टि-प्रयोग: ..१६०
१६१. आकर्षण-प्रयोग: ..१६०
१६२. अतिदुर्गादि-मन्त्र-निरुपणम् ..१६०
१६३. कृत्यादि रोग नाशक: सर्वसिद्धिश्च प्रयोग: ..१६१
१६४. शत्रु-वश्य-प्रयोग: ..१६२
१६५. भूतग्रहरोगकृत्यादि नाशक-प्रयोग: ..१६२
१६६. भूमि-सम्पत्तिप्रद-प्रयोग: ..१६२
१६७. गृहग्रामादि-राष्ट्र-रक्षा विधानम् ..१६३
१६८. पञ्चगव्य निर्माण-विधि ..१६४
१६९. भूमि(स्थान) दोषनाशक-प्रयोग ..१६५
१७०. रक्षाकरमायु: कीर्तिप्रदञ्च यन्त्रम् ..१६६
१७१. आग्नेयमन्त्रस्य माहात्म्यम् ..१६६
१७२. आग्नेयास्त्रस्य विभिन्न प्रयोगा: ..१६७
१७३. भूमि-पुर-क्षेत्रादि-रक्षा विधानम् ..१७१
१७४. पुनश्च आग्नेयास्त्रस्य विभिन्न प्रयोगा: ..१७३
१७५. दिनास्त्र-कृत्यास्त्र-विधानम् (अस्त्रनाम-निरुपणम्) ..१७६
१७६. दिनास्त्र-प्रयोग: शत्रु-मारण-प्रयोगा: ..१७६
१७७. (पुनश्च) शत्रु-मारण-प्रयोगा: ..१८०
१७८. कृत्यास्त्रेण मारण-प्रयोगा: ..१८२

षोडश: पटल:

१७९. लवण-मन्त्र-विधानम् (मन्त्र कथनम्) ..१८९
१८०. चिटि-मन्त्रोद्धार: - न्यास निरुपणम् ..१९०
१८१. मन्त्र देवतानां ध्यानम् (वह्नि-ध्यानम्) ..१९०
१८२. रात्रि-देवता-ध्यानम् ..१९१
१८३. दुर्गा-ध्यानम् ..१९१
१८४. भद्रकाली-ध्यानम् ..१९१
१८५. पुरश्चरण पूर्वक काम्य (वश्य) प्रयोगा: ..१९१
१८६. पुत्तली-प्रयोग: (वशीकरणम्) ..१९३
१८७. मातृका न्यास मन्त्रस्य षडङ्ग-वर्ण-न्यासञ्च ..१९४
१८८. संहार क्रम (संघ) न्यास ..१९५
१८९. अग्न्यादि देवतानामुपस्थापन मन्त्रा: ..१९६
१९०. पुत्तलिका खण्डन पूर्वक हवन-विधि: ..१९७
१९१. पुत्तलिकया मारण-प्रयोग: ..१९८
१९२. वशीकरण-प्रयोगा: ..१९९

१९३. स्त्री-वशीकरण-प्रयोगः ..२००
१९४. आकर्षण-प्रयोगः ..२०२
१९५. अन्यरुपेण अग्न्यादि देवतानां प्रणाम (उपस्थापन) मन्त्राः ..२०३
१९६. कतिपयान्य-काम्य-प्रयोगाः ..२०४
१९७. साध्य-नक्षत्र-वृक्षाः ..२०४
१९८. आत्मरक्षार्थ परकृत्या-प्रणाशन-प्रयोगः ..२०५

सप्तदशः पटलः

१९९. यन्त्राणां लेखन-द्रव्यं - अष्टविषाणि च ..२०८
२००. उच्चाटनार्थे धूमावती यन्त्रं तन्मन्त्रोद्धारश्च ..२०८
२०१. विद्वेषण यन्त्र-रचना-विधिः घुर्मुटिका विद्योद्धारश्च ..२०९
२०२. मारण-यन्त्रम् (प्रथमम्) ..२१०
२०३. मारण-यन्त्रम् (निग्रह यन्त्रं वा) ..२११
२०४. उच्चाटन-यन्त्रम् ..२१३

अष्टादशः पटलः

२०५. भूतलिपि-माहात्म्यम् ..२१५
२०६. भूतलिपि देवता (वागीश्वरी) ध्यानम् ..२१५
२०७. भूतलिप्युद्धारः ..२१५
२०८. प्राण-मन्त्रः ..२१६

एकोनविंशः पटलः

२०९. मन्त्राणां दश-संस्कारः ..२१८
२१०. संस्कार-विधिः ..२१८
२११. होम-द्रव्य-मानम् ..२२०
२१२. होम-द्रव्याणां फलम् ..२२१

विंशः पटलः

२१३. कूर्म-चक्र निरुपणम् ..२२६
२१४. मन्त्र-ग्रहणे ऋण-धन-निर्णयः ..२२७
२१५. एतेषां मन्त्राणां सिद्धीर-शोधन-मनावश्यकम् ..२२७
२१६. अकडम-चक्रम् ..२२८
२१७. चतुः कोष्ठ चक्रेण सिद्धादि शोधनम् ..२२८

एकविंशः पटलः

२१८. क्रोधमन्त्राधिदेवता-ध्यानम् क्रोधमन्त्राणामुद्धारश्च ..२३०
२१९. भूतिनी-नाम वर्णनं - विभूषिणी-मन्त्र निरुपणम् ..२३०
२२०. विभूषिणी-ध्यानम् ..२३१
२२१. काम्य-प्रयोगः ..२३१
२२२. कुण्डलधारिणी-मन्त्र-निरुपण सहित तस्याः ध्यानम् ..२३२
२२३. काम्य-प्रयोगः ..२३२
२२४. सिन्दूरहारिणी-मन्त्र-निरुपणम् तद्ध्यानञ्च ..२३३
२२५. काम्य-प्रयोगः ..२३३
२२६. मन्त्र-निरुपण-पूर्वक सिंहनी-ध्यानम् ..२३३
२२७. हंसिनी-मन्त्र-तद्ध्यानञ्च ..२३४
२२८. काम्य-प्रयोगः ..२३५
२२९. नटी-मन्त्र-निरुपणम् ..२३५
२३०. नटी-ध्यानम् ..२३६
२३१. काम्य-प्रयोगः ..२३६
२३२. चेटीमन्त्र-तद्ध्यानम् ..२३६
२३३. काम्य-प्रयोगः ..२३७
२३४. कामेश्वरी भूतिनी मन्त्र तद्ध्यानञ्च ..२३७
२३५. काम्य-प्रयोगः ..२३८
२३६. रतिप्रिया-मन्त्र तद्ध्यानञ्च ..२३८
२३७. देवी (दिव्य-रूपिणी) मन्त्रः ..२३९
२३८. काम्य-प्रयोगः ..२३९
२३९. ग्रन्थकारोक्तिः (ग्रन्थ प्रशंसनम्) ..२३९

परिशिष्ट

१. षट्कर्म साधकम् (श्री दक्षिणाकालिका कवचम्) ..२४१
२. त्रैलोक्य मोहन दक्षिणा कालिका कवचम् ..२४५
३. अथर्ववेदीय तारा खड्गमाला स्तोत्र ..२५०

फेतकारिणी-तन्त्रम्

('अञ्जलि-स्वाती' हिन्दी व्याख्या संवलिता)

। अञ्जलि-स्वाती हिन्दी व्याख्या सहित।

फेत्कारिणीतन्त्रम्

अथ प्रथमः पटलः

ॐ नमः परमदेवतायै

महा (उग्र) काली-ध्यानम्

क्रोधोज्जवलन्तीं ज्वलनं वमन्तीं सृष्टिं दहन्तीं दितिजं ग्रसन्तीम्।
भीमं नदन्तीं प्रणमामि कृत्यां रोरूयमाणां क्षुधयोग्रकालीम्॥१॥

अत्यधिक क्रोध के कारण प्रज्ज्वलित अग्नि के समान, मुख से अग्नि ज्वाला निकालती हुई, समस्त सृष्टि को मानो दग्ध करती हुई सी, दैत्य समुदायों को अपना ग्रास बनाती हुई तथा तीव्र क्षुधा के कारण रोते हुए भयंकर नाद (ध्वनि) करती हुई कृत्या (सभी अभिचार कर्मों की अधि देवता) रूपिणी उग्र स्वरूप वाली श्री भगवती महाकाली की अभीष्ट सिद्धि तथा श्रेय प्राप्ति हेतु मैं वन्दना करता हूँ।

उन्मत्तभैरवं नारसिंहडामरभैरवम्।
शिवाकारं मालिन्याद्यमसिताङ्गादियामलम॥२॥
सिद्धयोगीश्वरी तन्त्रं योगिनीजालशम्बरम्।
दृष्ट्वा कृत्याविधिं फेत्कारिणीतन्त्रं विरच्यते॥३॥

उन्मत्त भैरव तन्त्र, नृसिंह तन्त्र, डामर तन्त्र, भैरव तन्त्र, विभिन्न प्रकार के शैव तन्त्र (शिव सार तन्त्र), मालिनी तन्त्र रुद्रयामलादि ग्रन्थों, सिद्धि योगीश्वर तन्त्र, योगिनी जाल तन्त्र (योगिनी तन्त्र, योगिनी हृदय तन्त्र, योगिनी विजय तन्त्र), शम्बर तन्त्रादि अनेक प्रकार के तन्त्र ग्रन्थों में उल्लिखित विभिन्न प्रकार के अभिचार कर्मों के प्रयोग विधियों का भली भाँति अवलोकन करके इस 'फेत्कारिणी तन्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना की गई है॥२, ३॥

॥ मातृका स्वरूपं, तस्याः सशक्ति विष्णु-शिव-पञ्चाशद्-मूर्ति उत्पत्तिः॥

पञ्चाशद्वर्णरूपात्मा मातृका परमेश्वरी।
तत्रोत्पन्ना निगद्यन्ते प्रत्येकं शिवशक्तितः॥४॥

अस्या एताः कलाः सर्वाः पञ्चाशद्वर्णसिद्धये।
तेभ्यः एव समुत्पन्ना वर्णा ये विष्णुशूलिनोः॥५॥
मूर्तयः शक्तिसंयुक्ता उच्यन्ते ताः क्रमेण तु।

अभेदात्मक शिव-शक्ति युता परमेश्वरी मातृका स्वरूपा है। इनसे ही पचास वर्णों की उत्पत्ति होती है। अतः प्रत्येक वर्ण भी शिव-शक्ति रूप ही हैं। ये सभी वर्ण परमेश्वरी की कला रूप हैं। पञ्चाशत् कलाओं से ही इनकी उत्पत्ति होती है। इन पचास वर्णो से ही विष्णु तथा शिव की उनकी शक्तियों सहित पचास-पचास मूर्तियों की भी उत्पत्ति होती है। उन विष्णु तथा शिव की शक्ति सहित मूर्तियों (स्वरूपों) का वर्णन क्रमशः अब कहा जा रहा है।

॥स्वर-व्यञ्जनोद्भवाः विष्णु-मूर्तयः॥

प्रथमं केशवः प्रोक्तस्ततो नारायणी मतः॥६॥
माधवोऽप्यथ गोविन्दो विष्णुश्च मधुसूदनः।
त्रिविक्रमस्तथा ख्यातो वामनः श्रीधरस्तथा॥७॥
हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदर इति स्मृतः।
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः॥८॥
एते स्वराः प्रोक्ताः कथ्यन्ते व्यञ्जनोद्भवाः।
चक्री गदी तथा शार्ङ्गी खड्गी शङ्खी हली तथा॥९॥
मुसली च ततः शूली पाशी चाप्यङ्कुशी तथा।
मुकुन्दो नन्दनो नन्दी नरी नरकजिद्धरिः॥१०॥
कृष्णः सत्यस्तथा प्रोक्तः शाश्वतः शौरिरेव च।
शूरो जनार्दनः ख्यातो भूधरो विश्वमूर्तिकः॥११॥
वैकुण्ठश्च तथा प्रोक्तो नरोत्तमस्ततो बली।
बलाग्रजस्तथा बालो वृषघ्नश्च वृषोऽपि च॥१२॥
हंसो वराहो विमलो नृसिंह इति कीर्तितः।

स्वरों से उत्पन्न (स्वर-स्वरूप) विष्णु की सोलह मूर्तियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं - केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध।

व्यञ्जनों से उत्पन्न मूर्तियाँ इस प्रकार हैं - चक्री, गदी, शार्ङ्गी, खड्गी (खड्गी), शङ्खी, हली, मुसली, शूली, पाशी, अङ्कुशी, मुकुन्द, नन्दन (नन्दज) नन्दी, नर, नरकजित्, हरि, कृष्ण, सत्य, शाश्वत् (सात्वत), शौरि,

शूर, जनार्दन, भूधर, विश्वमूर्ति, वैकुण्ठ, नरोत्तम (पुरुषोत्तम), बली, बलाग्रज (बलानुज), बाल, वृषघ्न, वृष, हंस (सिंह) वराह, विमल तथा नृसिंह। ये सभी व्यञ्जन मूर्तियाँ कही जाती हैं।

।। स्वर-व्यञ्जनोद्भवाः विष्णु-शक्तयः।।

कीर्तिः कान्तिस्तथा तुष्टिः पुष्टिर्धृतिरपि क्षमा।।१३।।
शान्तिः क्रिया दया मेधा इच्छा श्रद्धा तथा मता।
लज्जा लक्ष्मी सरस्वत्यौ प्रीति रतिरिमाः स्वराः।।१४।।
(जया दुर्गा प्रभा सत्या चण्डा वाणी विलासिनी।
विजया विरजा विश्वा विनदा सुनदा स्मृतिः।।)
ऋषिः समृद्धिः शुद्धिश्च भक्तिर्बुद्धिर्मतिः क्षमा।
रमोमा क्लेदिनी क्लिन्ना वसुधा वसुदा परा।।१५।।
परा परायणा सूक्ष्मा सन्ध्या प्रजा प्रभा निशा।
अमोघा विद्युता चैव शक्तयः सर्वकामदाः।।१६।।
शङ्खचक्रधराः सर्वा घनाभाः पीतवाससः।
केशवाद्या निजाङ्गस्थाः शक्त्याऽलङ्कृतविग्रहाः।।१७।।
एताः सस्मितवक्त्राश्च विद्युदाभाः प्रकीर्तिता।
कान्ता क्षान्ता च जात्याद्याः कमलाभयपाणिकाः।।१८।।

कीर्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, धृति, शान्ति, क्रिया, दया, मेधा, इच्छा (हर्षा), श्रद्धा, लज्जा, लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति तथा रति ये सोलह विष्णु शक्तियाँ स्वरोत्पन्ना (स्वरस्वरूपा) कही जाती है।

जया, दुर्गा, प्रभा, सत्या, चण्डा (चण्डिका) वाणी, विलासिनी, विजया, विरजा, विश्वा, विनदा, सुनदा (सुतदा), स्मृति, ऋद्धि, समृद्धि, शुद्धि, भक्ति (भुक्ति), बुद्धि, मति, क्षमा, रमा, उमा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, वसुधा, वसुदा, परा, परायणा, सूक्ष्मा, सन्ध्या, प्रजा (प्रज्ञा), प्रभा, निशा, अमोघा, तथा विद्युता ये सभी व्यञ्जनोद्भवा (व्यञ्जन स्वरूपा) विष्णु शक्तियाँ हैं। ये पूजित होने पर समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली हैं।

सभी विष्णु मूर्तियाँ बादल के समान श्याम वर्ण वाली, पीताम्बर धारिणी तथा हाथों में शंख तथा चक्र धारण की हुई हैं। स्वरों तथा व्यञ्जनों से उत्पन्न सभी शक्ति मूर्तियाँ विद्युत के समान आभा वाली, शरीर पर विभिन्न प्रकार के आभूषणों को धारण की हुई, मधुर मुस्कान युक्त मुख वाली तथा एक हाथ में कमल तथा दूसरे हाथ से अभय मुद्रा धारण की हुई

हैं। सभी शक्ति मूर्तियाँ केशव आदि अपने-अपने विष्णु मूर्तियों के गोद में विराजित हैं।

॥ स्वर-व्यञ्जनोद्भवाः रुद्र-मूर्तयः॥

श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः।
अर्घीशो भारभूतिश्च तिथीशः स्थाणुको हरः॥१९॥
झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः।
अक्रूरश्च महासेनः स्वरजा रुद्रमूर्तयः॥२०॥
ततः क्रोधीशचण्डेशपञ्चान्तकशिवोत्तमाः।
अथैकरुद्रकूर्मैक - नेत्रोर्ध्वचतुराननाः॥२१॥
अजेशः सर्वसोमेशस्तथा लाङ्गलिदारुकौ।
अर्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषाढिदण्डिनौ ॥२२॥
अद्रिमीनश्च मेषश्च लोहितश्च तथा शिखी।
छगलण्डद्विरण्डेशौ महाकालकपालिनौ॥२३॥
भुजङ्गीशः पिनाकीशः खड्गीशश्चवकस्तथा।
श्वेतो भृङ्गीशनकुली शिवः संवर्तकस्तथा॥२४॥
एते रुद्राः स्ववर्णेभ्यो जाता उडुनिभाननाः।
कान्तालिङ्गितदेहाश्च कपालशूलपाणयः॥२५॥

श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अर्घीश, भारभूति, तिथीश (अतिथीश), स्थाणु, हर, झिण्टीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर तथा महासेन। ये सोलह स्वरों से उत्पन्न रुद्र मूर्तियाँ हैं।

क्रोधीश, चण्डेश (चण्डीश), पञ्चान्तक, शिवोत्तम, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र, चतुरानन, अजेश, सर्व, सोमेश, लाङ्गलीश, दारुक, अर्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढी, दण्डी, अद्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, छगलण्ड, द्विरण्डेश, महाकाल, कपाली, भुजङ्गेश, पिनाकीश, खड्गीश, बक, श्वेत, भृगु, नकुली, शिव तथा संवर्तक ये पैंतीस व्यञ्जनों से उत्पन्न रुद्र मूर्तियाँ कही जाती हैं। रुद्र मूर्तियों का मुखमण्डल तारों (चन्द्रमा) के समान प्रकाशमान (इनके शरीर का वर्ण लाल) हैं तथा इन सभी के हाथों में त्रिशूल तथा कपाल धारित हैं। ये अपनी प्रियाओं (शक्तियों) के शरीर का आलिङ्गन किये हुए स्थित हैं।

॥ स्वर-व्यञ्जनोद्भवाः रुद्र-शक्तयः॥

पूर्णोदरी च विरजा शाल्मली तदनन्तरम्।
लोलाक्षी वर्तुलाक्षी च दीर्घघोणा तथैव च॥२६॥

सुदीर्घमुखीगोमुख्योर्नवमी दीर्घजिह्विका।
कुण्डोदर्यूर्ध्वकेशी च ततो विकृतमुख्यपि॥२७॥
ज्वालामुखी तथा चोल्कामुखी च श्रीमुखी तथा।
विद्यामुखी स्वरोत्पन्ना एताः स्युः स्वरशक्त्यः॥२८॥
महाकालीसरस्वत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विते।
गौरी त्रैलोक्यविजया तथा मन्त्रात्मशक्तिका॥२९॥
भूतमाता लम्बोदरी भाविनी नागरी तथा।
खेचरी मञ्जरी चैव रूपिणी वीरिणी तथा॥३०॥
काकोदरी पूतना च भद्रकाल्यपि योगिनी।
शङ्खिनीगर्ज्जिनीकालरात्रीकुब्जिनी एव च॥३१॥
कपर्दिनी वज्रिणी च जया च सुमुखेश्वरी।
रेवती माधवी चैव वारुणी वायवी तथा॥३२॥
रक्षोपधारिणी चान्या तथैव सहजाह्वया।
लक्ष्मीश्च व्यापिनी माया ख्यातास्तु शिवशक्त्यः॥३३॥
रुद्राङ्कस्था जवाभासा रतिसुन्दरविग्रहाः।
रक्तोत्पलकपालाभ्यां विबद्धवाहवस्तथा॥३४॥

पूर्णोदरी, विरजा, शाल्मली, लोलाक्षी, वर्तुलाक्षी, दीर्घघोणा, सुदीर्घमुखी, गोमुखी, दीर्घजिह्विका, कुण्डोदरी, ऊर्ध्वकेशी, विकृतमुखी, ज्वालामुखी, उल्कामुखी, श्रीमुखी तथा विद्यामुखी। ये सोलह स्वरोत्पन्ना रुद्र-शक्तियाँ हैं।

महाकाली, सरस्वती, सर्वसिद्धिगौरी, त्रैलोक्यविद्या, मन्त्रशक्ति, आत्मशक्ति, भूतमाता, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी, खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी, वारिणी, काकोदरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि, कुब्जिनी, कपर्दिनी, वज्रिणी (महावज्रा, वज्रिका) जया, सुमुखेश्वरी (सुमुखी), रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षोपधारिणी, सहजा, लक्ष्मी, व्यापिनी तथा माया। ये पैंतीस व्यञ्जनोद्भवा रुद्र-शक्तियाँ कही जाती हैं। ये शक्तियाँ स्व-स्व रुद्रों के अङ्क में विराजमान हैं। इनके शरीर का वर्ण जपा कुसुम के समान अरुण है तथा ये रति के समान अत्यन्त सुन्दर है। इन सभी के हाथों में लाल कमल तथा कपाल धारित हैं।

॥ मातृका-स्वरूपं तदोत्पन्न-मन्त्राणां भेदः॥

पुँप्रकृत्या स्वरूपाया मातृकायाः शुभोपमाः।
मन्त्रा जातास्त्रिलिङ्गाद्यैर्भिन्नाः क्रूराश्च नामभिः॥३५॥
पुँलिङ्गा हुंफडन्ताश्च स्वाहान्ता योषितो मताः।
नपुंसका नमोऽन्ताश्च इत्युक्ता मनवस्त्रिधा॥३६॥

मन्त्रविद्याविभागेन ते पुनर्द्विविधा मताः।
ते स्युः पुँदेवता मन्त्रा विद्याः स्त्रीदेवतास्तथा॥३७॥
पुँमन्त्राः क्लीबमन्त्राश्च योषिन्मन्त्राश्च मारणे।
शान्त्यभिचारयोर्ग्राह्या यथा जप्यन्तु मन्त्रिभिः॥३८॥
सौम्यमन्त्राः प्रधानाख्याः संयोज्याः क्रूरकर्मणा।

सभी मन्त्रों की उत्पत्ति शुभस्वरूपा मातृकाओं से होती है, क्योंकि मन्त्र वर्णात्मक होते हैं। मातृकाओं का स्वरूप पुरुष-प्रकृत्यात्मक कहा जाता है। मन्त्र शास्त्र के विद्वानों ने मन्त्रों के तीन प्रकार के भेद किये हैं। पुलिङ्ग मन्त्र, स्त्रीलिङ्ग मन्त्र तथा नपुंसक मन्त्र। जिन मन्त्रों के अन्त में 'हुं' तथा 'फट्' का योग होता है, वे मन्त्र पुलिङ्ग, जिनके अन्त में 'स्वाहा' का प्रयोग होता है, वे स्त्रीलिङ्ग तथा 'नमः' अन्त वाले मन्त्र नपुंसक मन्त्र कहे जाते हैं।

'मन्त्र' तथा 'विद्या' नाम - भेदानुसार मन्त्रों के पुनः दो भेद माने गये हैं। पुरुष देवता सम्बन्धी मन्त्रों की संज्ञा 'मन्त्र' तथा स्त्री देवता सम्बन्धित मन्त्रों को 'विद्या' कहा जाता है। मारण (वशीकरण, द्वेषोच्चाटनादि) कर्म के लिए पुलिङ्ग मन्त्र, शान्ति (पुष्टि) कर्मों में नपुंसक मन्त्र छुद्र अभिचार कर्मों के लिए स्त्री मन्त्र का प्रयोग किया जाता है।

अग्निषोमात्मक रूप से भी मन्त्र के दो भेद होते हैं। अग्नि मन्त्रों का प्रयोग क्रूर कर्मों के लिए षोमात्मक (सौम्य) मन्त्रों का प्रयोग सौम्य कर्मों के लिए किया जाता है।

['ॐ', 'र' कार, 'क्ष' कार तथा 'ह' कार की बहुलता वाले मन्त्र आग्नेय तथा 'स' कार तथा 'व' कार की बहुलता वाले मन्त्र सौम्य कहे जाते हैं। 'नमः', 'स्वाहा' आदि शान्त जातियों से युक्त होने पर आग्नेय (रौद्र) मन्त्र 'सौम्य' तथा 'हुं फट्' से पल्लवित होने पर सौम्य मन्त्र भी आग्नेय (रौद्र) हो जाते हैं।]

॥ प्रणवस्योत्पतिः तद्स्वरूपम्॥

आसीन्मन्त्रस्तु हंसाख्यो हंसस्तु परमात्मनः॥३९॥
सोऽहमिति गतोऽद्वैतमद्वैतं हंसलोपतः।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातो हंसवर्णविलोपतः॥४०॥
स चादिध्वनिसम्पन्नो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
त्रैलोक्येऽपि ततो जातास्त्रयो वेदा गुणास्त्रयः॥४१॥
त्रयोऽग्नयस्त्रय कालास्त्रयो दोषा स्वरास्त्रयः।
प्रकर्षार्णवतां प्राप्ता महाध्वनि ध्रुवादयः॥४२॥

'हंस' संज्ञक जो अजपा मन्त्र (हंसः) है, उसमें 'हं' को पुरुष रूप तथा 'सः' को प्रकृति रूप कहा गया है। इसलिए 'हंसः' को पुरुष प्रकृत्यात्मक परमात्म (ईश्वर) रूप कहा जाता है। जब विसर्गस्वरूपा शक्ति (प्रकृति) 'सः' स्वयं को पुरुष रूप 'हं' के साथ तादात्म्यावस्था का अनुभव करती है तो वह 'सोऽहम्' भाव को प्राप्त हो जाती है। यह 'सोऽहम्' मन्त्र (अद्वैत स्वरूप) परमात्मा का महामन्त्र कहा जाता है। इस अद्वैत स्वरूप महामन्त्र से 'सकार' तथा 'हकार' का लोप हो जाने पर यही 'सोऽहम्' कण्ठ को भेदकर 'ॐ' के रूप में मुख से बाहर निर्गत होता है। आदि ध्वनि (ब्रह्मा के मुख से सर्वप्रथम 'ॐ' का ही उच्चारण हुआ था) स्वरूप वाला यह वर्ण 'ॐ' ब्रह्मा-विष्णु तथा शिवरूप (त्रिदेव स्वरूप) है। इससे तीनों लोकों, तीनों वेदों, तीनों गुणों, तीन प्रकार की अग्नियों, कालों, दोषों तथा स्वरों की उत्पत्ति हुई है। वर्णों में उत्कृष्टता प्राप्त इसे 'महाध्वनि', 'ध्रुव' आदि के रूप में (नाम से) अभिव्यक्त किया जाता है।

।। कतिपयवर्णानां संज्ञाः।।

उकारः कुटिलः प्रोक्तो मकारः काल एव च।
ऐन्द्रो बली लकारश्च हंसोऽप्यथ ह उच्यते।।४३।।
विन्ध्यवासिनी माया च ईकारस्तु कुचद्वयम्।
माया लज्जा च ह्रींकारो हूंकारो कूर्च उच्यते।।४४।।
द्विठः स्वाहा समाख्याता कालाग्निर्व्यापकोऽङ्कुशः।
अस्त्रं फडित्यतो ब्रह्मा दक्षकर्णादितः शिवः।।४५।।
सकारस्तु भृगुप्राणौ नो वाणी पावकाशनः।
नागेशोज्ज्वलनो रेफो रकारस्त्विन्दुरीरितः।।४६।।
सकुलो भग एकार उकारः शिव उच्यते।
दक्षवामाविति प्रोक्तौ पाशी ऋः परिकीर्तितः।।४७।।
लोलाक्षिका लकारश्च हकारो नकुलीश्वरः।
इन्द्रासनगतो ब्रह्मा स त्रिमूर्तिश्च मन्मथः।।४८।।
ह्रौं ज्योतिस्त्रितत्त्वं ह्रीं हूं कूर्चः क्रोध ईरितः।
वायुर्यकारो विख्यातो जीमूतः कथितो बुधैः।।४९।।
वह्नेरूर्ध्वगतो महादिसहितो वर्णो नृसिंहान्वयः।
सार्णं वामविलोचनेव शशभृत् खण्डेन्दुमुक्तो ग्रहः।।५०।।
कौलिन्याः कथितं तदेतदमलं बीजं न्यसेत् सादरं
भूतप्रेतपिशाचचेटकभये रक्षा भवेद् व्याहृतम्।।५१।।

हसौस्तातीर्य इत्युक्तौ हसौर्ज्ञेयः सदाशिवः।
शून्यं ह इति कथितो भैरवाद्यैः समाहितैः॥५२॥

इति फेत्कारिणीतन्त्रे मन्त्रकोषविवरणं नाम प्रथम पटलः।

'उकार' (उ) को कुटिल, 'मकार' (म) को काल, 'ह' (तथा स) को हंस कहा जाता है। 'ईकार' (ई) को विन्ध्यवासिनी, माया तथा कुचद्वय कहते हैं। 'ह्रींकार' (ह्रीं) को माया तथा लज्जा, 'हूँकार' (हूँ) को कूर्च 'स्वाहा' को द्विठ, 'क्रों' बीज को अंकुश, कालाग्नि तथा व्यापक एवं 'अस्त्र मन्त्र' 'फट्' को कहते हैं। 'क' वर्ण को ब्रह्मा, वर्गाद्य, 'उ' वर्ण को दक्ष कर्ण तथा शिव, 'सकार' (स) को भृगु तथा प्राण एवं 'न' वर्ण को वाणी तथा पावकाशन कहा जाता है। 'रकार' (र) को नागेश, ज्वलन, रेफ तथा इन्दु कहते हैं। 'एकार' (ए) को सकुल तथा भग, 'उ' को शिव तथा दक्षकर्ण, 'ऊ' को वामकर्ण तथा 'ऋ' को पाशी कहा जाता है 'लकार' को लोलाक्षिका, 'हकार' को नकुलीश्वर तथा 'क्लीं' को मन्मथ कहते हैं। 'ह्रौं' को ज्योतिः (ज्योतिर्मन्त्र), 'ह्रीं' को त्रितत्व तथा 'हूं' को कूर्च एवं क्रोध कहा जाता है। 'यकार' को वायु तथा जीमूत कहा जाता है। 'क्ष' को नृसिंह, 'क्ष्रौं' को नृसिंह मन्त्र कहा जाता है। कौल (शाक्त) सम्प्रदाय के विद्वानों द्वारा कहे गये इन विशुद्ध बीजों का साधक को आवश्यकतानुसार आदर पूर्वक स्वाङ्गो में न्यास करना चाहिए। इससे भूत, प्रेत, पिशाच तथा चेटक आदि के भय से उसकी रक्षा होती है।

'ह्सौ' को तार्तीय कहा जाता है, सदाशिव रूप भी इसे जानना चाहिए। 'ह' को शून्य कहते हैं। समाहित चित्त भैरवों द्वारा (भी) ऐसा कहा गया है।

॥ फेत्कारिणी तन्त्र में मन्त्रकोश विवरण नामक
प्रथम पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई॥

अथ द्वितीयः पटलः

।। षट्कर्मेषु कुण्ड-स्थण्डिलयोः विवरणम्।।

श्री शिव उवाच-

अथ कुण्डविधिं वक्ष्ये शान्तिकादिक्रमेण च।
शान्तिके चतुरस्रं स्यात् पौष्टिके वृत्तमेव च।।१।।
त्रिकोणमभिचारे तु पञ्चास्त्रं मारणे मतम्।
षडस्रं मोहने चैव सप्तास्रं स्तम्भने मतम्।।२।।
शत्रूच्छेदे तथाष्टास्रं नवास्रं व्याधिहा मतम्।
होमे तु कारयेत् कुण्डमेकमेवैकहस्तकम्।।३।।

अब मैं विभिन्न प्रकार के शान्त्यादि कर्मों के अनुसार प्रयोजनीय कुण्डों के स्वरूपों के विषय में कहता हूँ। शान्ति कर्म के लिए चतुरस्र, पौष्टिक कर्म के लिए वृत्ताकार तथा अभिचार क्रिया हेतु त्रिकोणाकार कुण्ड का निर्माण कर प्रयोग करना चाहिए। मारण के लिए पञ्चकोणात्मक, मोहन के लिए षट्कोण, स्तम्भन के लिए सप्तकोणात्मक, शत्रु के सर्वथा विनाश के लिए अष्टकोण युक्त तथा रोग के निवारण के लिए नवकोणात्मक कुण्ड का प्रयोग करना चाहिए। सभी प्रकार के कुण्डों का वाह्य परिक्षेत्र तथा गहराई सामान्य रूप से एक हाथ परिमाण की होनी चाहिए। इस प्रकार कर्मानुसार यथोचित कुण्ड का सविधि निर्माण कर साधक को होम कर्म करना चाहिए। कुण्ड की संरचना सामान्य रूप से तीन मेखलाओं तथा योनियुक्त होनी चाहिए।

चतुरस्रं त्रिकोणं वा वृत्तञ्च मेखलात्रयम्।
सैकतैः स्थण्डिलं कुर्याच्चतुरङ्गुलसंस्थितम्।।४।।

विधिपूर्वक कुण्ड का निर्माण करना प्रायः अतिदुष्कर होता है, अतः साधक को बालू अथवा मिट्टी के द्वारा भूमि से चार अङ्गुल ऊँचाई तक का चौकोर, त्रिकोणाकार अथवा वृत्ताकार स्थण्डिल (वेदी), जो तीन मेखलाओं से युक्त हो, बनाकर उस पर हवन कर्म करना चाहिए।

।। कर्मानुसारेण कुण्ड-स्थितिः।।

चतुरस्रं तु पूर्वस्यां कुण्डं साम्राज्यसिद्धिदम्।
शत्रूणां तापने शस्तं योन्याख्यं वह्निकोणगम्।।५।।
अर्धचन्द्रं तु याम्यायां शत्रूणां मारणे मतम्।
त्रिकोणं नैर्ऋतेः कोणे रिपूणां व्याधिवर्धनम्।।६।।
वारुण्यां तु सदावृत्तमायुः श्रीपुष्टिवर्धनम्।
वायव्यां तु षडस्रन्तु शत्रूणां मारणे हितम्।।७।।

सौम्यायां पद्मसंज्ञं तु श्रीमेधापुष्टिदं नृणाम्।
सर्वकामप्रदं कुण्डमैशान्यामष्टकोणकम्॥८॥

॥ इति फेत्कारिणीतन्त्रे द्वितीयः पटलः॥

मण्डप, ग्राम अथवा गृह के पूर्व दिशा में चतुरस्र कुण्ड का निर्माण कर हवन करना साम्राज्य सिद्धि दायक होता है। शत्रु को पीड़ित करने के लिए आग्नेय दिशा में त्रिकोणाकार कुण्ड का प्रयोग करना चाहिए। शत्रु-मारण के लिए दक्षिण दिशा में अर्धचन्द्राकार कुण्ड बनाकर हवन करे। निर्ऋति कोण में स्थित त्रिकोण कुण्ड में हवन करने से शत्रुओं में रोगों की वृद्धि हो जाती है। पश्चिम दिशा में वृत्ताकार कुण्ड में हवन करना सदैव आयु श्री तथा पुष्टि की वृद्धि करने वाला होता है। वायव्य दिशा में षट्कोण कुण्ड शत्रु-मारण के लिए श्रेष्ठ है। उत्तर दिशा में पद्मसंज्ञक (अष्टदल कमलात्मक) कुण्ड मनुष्यों में श्री, बुद्धि तथा पुष्टि का वर्धन करने वाला होता है। ईशान कोण में स्थित अष्टकोणात्मक (अष्ट कमलदल रूप) कुण्ड सभी कामनाओं की सिद्धि करने वाला होता है।

॥ फेत्कारिणी तन्त्र में कुण्ड-स्थण्डिल विवरण नामक
द्वितीय पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई॥

अथ तृतीयः पटलः

।। स्रुक्-स्रुव-रचना-विधिः।।

अथ स्रुक् च स्रुवविधिं वक्ष्येऽहमवधारय।
षट्त्रिंशदङ्गुला स्रुक् स्याच्चतुर्विंशाङ्गुलः स्रुवः।।१।।
मुखं कण्ठस्तथा वेदी सप्त चैकाष्टभिः क्रमात्।
आयामानाहतो दण्डो विंशतिश्चतुरङ्गुलः।।२।।
वेदारामाङ्गुलैः कुण्डो गण्डी द्विचतुरङ्गुला।
खातं वेदाङ्गुलैर्वृत्तमङ्गुलद्वितयं खनेत्।।३।।
मेखला द्व्यङ्गुला तद्वच्छोभाशेषं विचिन्तयेत्।
वेदी त्र्यङ्गुलविस्तारां कुर्यात् कुण्डमुखाग्रयोः।।४।।
कनिष्ठाग्रमितं वक्त्रं स्रवद्घृतविनिर्गमे।
कार्षिकं द्व्यङ्गुलं खातं पङ्के मृगपदाकृतिः।।५।।
द्वाविंशत्यङ्गुलो दण्ड आनाहतश्चतुरङ्गुलः।
कुण्डमूलाग्रयोर्गण्डी स्रुवे काञ्चनवद् भवेत्।।६।।
सुवर्णरूप्यताम्रैर्वा स्रुक्स्रुवौ दारुजावपि।
अयोमयौ च स्रुकस्रुवौ कारस्करमयावपि।।७।।
नागेन्द्रतनये विल्वः क्षुद्रकर्मणि संस्थितौ।
चन्दनं खदिराश्वत्थप्लक्षचूतविकङ्कताः।।८।।
शम्यामलकसारश्च पलाशश्चेति दारवः।

अब मैं (शिव) स्रुक् तथा स्रुव के रचना प्रकार को कहता हूँ। हे पर्वत (हिमालय) सुता पार्वती ध्यानपूर्वक सुनकर इसे समझो (चित्त में धारण करो)।

स्रुक की लम्बाई ३६ अंगुल तथा स्रुव की २४ अंगुल होनी चाहिए। (शारदा तिलक के अनुसार स्रुक-स्रुव निर्माण के लिए शास्त्रानुमोदित किसी भी वृक्ष का सूखा, व्रण रहित नवीन, घुनादि से रहित उद्दिष्ट मान से कुछ अधिक मोटा तथा मुष्टि अंगुल मान से चौबीस अंगुल लम्बा काष्ठ खण्ड लेकर उसे ३६ अंशों में चिन्हांकित करके निर्देशित मानानुसार स्रुक की रचना करनी चाहिए।) स्रुक में २० अंगुल दण्ड का मान तथा मुख, कण्ठ एवं वेदी का मान क्रमशः सात, एक और आठ अंगुल होता है। वेदी के छः अंगुल में कण्ठ का विस्तार होना चाहिए। दण्ड के मूल तथा अग्रभाग में तीन तथा चार अंगुल के क्रम से दो कुम्भों की रचना करनी चाहिए। वेदी के मध्य में एक अंगुल की कर्णिका बनाकर उसके बाहर चारों ओर चार अंगुल मान का गर्त बनाना चाहिए। चार अंगुल मान का खात तथा तीन अंगुल मान का वृत्त बनायें।

मुख तथा वेदी के मध्य में दो अंगुल प्रमाण की मेखला का निर्माण चारों ओर करना चाहिए। स्रुक के मुख में घी गिरने के लिए कनिष्ठांगुलि प्रमाण का छिद्र बनाना चाहिए।

स्रुव का मान (लम्बाई) चौबीस अंगुल होना चाहिए। इसमें दण्ड का मान बाईस (२२) अंगुल होता है। इसके शिर का विस्तार चार अंगुल का तथा कर्ष प्रमाण (१६ माशा) घृत ग्रहण करने योग्य होना चाहिए। इसमें दो अंगुल प्रमाण का खात बनाकर उसमें पङ्क (कीचड़) में धंसे मृग पैर की भाँति आकृति बननी चाहिए। दण्ड के मूल तथा अग्रभाग में कङ्कण की भाँति दो गण्डी (कुम्भ) बनाना चाहिए।

स्रुक् तथा स्रुव की रचना सोना, चाँदी, ताँबा अथवा उपयुक्त वृक्ष के काष्ठ से करना चाहिए। क्षुद्रकर्मो में लोहा, कुचला वृक्ष की लकड़ी अथवा बिल्व काष्ठ से इसका निर्माण करना चाहिए। इसके निर्माण में चन्दन, खैर, पीपल, पाकड़, आम, विकङ्कत, शमी, आंवला, साल तथा पलाश वृक्षों के काष्ठ का प्रयोग करना चाहिए।

[उत्तर तन्त्र के अनुसार - शीशम, श्रीपर्णी, खैर, आम, श्वेत तथा रक्त चन्दन, पलाश, बरगद, विकङ्कत, शमी, बेल, गूलर, पीपल, देवदारु, नागकेशर, बबूल, अशोक, पुन्नाग, पाकड़ तथा चम्पक वृक्षों के काष्ठ का प्रयोग स्रुक्-स्रुव के निर्माण में करना चाहिए। जिन वृक्षों के तनों से दूध निकलता है, उन (क्षीरी वृक्षों जैसे कटहल, गूलर आदि) के काष्ठ द्वारा भी स्रुक्-स्रुव की रचना की जा सकती है।]

।। स्नान-न्यास-दिग्बन्धनादि।।

अस्त्राङ्गमूलविद्याभिः स्नानं कुर्याद् यथाविधिः।।९।।
पूजाप्रदेशमागत्य दत्त्वा चार्घ्यं विवस्वते।
गन्धपुष्पादिभिः सम्यग् द्वारपूजां समाचरेत्।।१०।।
कांस्यघण्टार्चनं कृत्वा द्वारमाच्छाद्य वाससा।
कृत्वोपवीतं हस्तश्च उत्तरप्राङ्मुखः शुचिः।।११।।
उपविश्यासनं योज्यं पद्मं स्वस्तिकमेव वा।
पद्मासने च विद्यार्थी कुर्यात् सर्व समाहितः।।१२।।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि वक्ष्यमाणक्रमेण तु।
श्रीकामः स्वस्तिकेनेह पश्चिमाभिमुखेन तु।।१३।।
आसीनः प्रणवेनाथ परामृज्य करावुभौ।
अङ्गुलीषु च विन्यस्य अङ्गमन्त्राणि वै क्रमात्।।१४।।
अस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धं कुर्यात् सर्वासु दिक्षु च।
अग्निप्राकारवत् कृत्वा ततो मन्त्रेण सर्वतः।।१५।।

साधक को प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर सहस्रार में गुरु ध्यान-पूजन, वन्दना आदि सभी कार्य स्व सम्प्रदायानुसार करके शौचादि से निवृत्त होकर, कुश, मृत्तिका, शुद्ध वस्त्रादि लेकर किसी नदी-तालाब पर जाकर (अथवा घर में ही) गुरूपदिष्ट मूल विद्या (मन्त्र) द्वारा यथा विधि स्नान करना चाहिए। स्नानोपरान्त शुद्ध वस्त्रादि धारण कर, तिलक-शिखाबन्धनादि करके, किसी बड़े पात्र में पूजन हेतु

आवश्यकतानुसार जल लेकर पूजा स्थल (गृह) पर आकर यथा विधि सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। तदुपरान्त (सामान्य अर्घ्य स्थापित करके) गन्ध पुष्पादि द्वारा द्वार पूजन करके, कक्ष में प्रवेश कर, कांस्य निर्मित घण्टे का पूजन करके पूजन-कक्ष के द्वार को वस्त्र से आच्छादित कर देना चाहिए। इसके पश्चात् (आसन पर) उत्तर अथवा पूर्व मुख करके पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन में बैठकर आचमन-पवित्रीकरणादि के द्वारा शुद्ध होकर हाथ में यज्ञोपवीत लेकर पूजन हेतु संकल्प करना चाहिए। विद्यार्थी को पूर्व अथवा उत्तर मुख पद्मासन में बैठ करके एकाग्रचित होकर सभी कर्म करना चाहिए। लक्ष्मी की कामना वाले व्यक्ति को पशिचमाभिमुख होकर स्वस्तिकासन में बैठना चाहिए। आसन पर बैठने के बाद "ॐ" का उच्चारण करके दोनों हाथों को धोकर (परस्पर रगड़कर) मूल मन्त्र द्वारा अंगुलियों में षडङ्ग मन्त्रों (मन्त्र-वर्णों अथवा बीजाक्षरों सहित हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा इत्यादि) का क्रम से न्यास करें। इसके बाद अस्त्र मन्त्र **'अस्त्राय फट्'** से सभी दिशाओं में दिग्बन्धन करके, अग्नि मन्त्र **'रं'** से अपने चारों ओर अग्नि प्राकार (अग्नि से निर्मित चहारदीवारी) की कल्पना करे।

॥ प्राणायाम-विधिः॥

प्राणायामत्रयं कुर्यान्मन्त्रेण प्रणवेन वा।
उच्चारयेत्तु प्रणवं स्वरेणैकेन मन्त्रवित्॥१६॥
उदरं पूरयित्वा तु वायुना यावदास्थितः।
प्राणायामो भवत्येवं पूरको देहपूरकः॥१७॥
पिधाय सर्वछिद्राणि निश्वासोच्छ्वासवर्जितः।
पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेतु प्राणायामः स कुम्भकः॥१८॥
मुञ्चेद् वायुं तथैकेन पूरयेच्चैव मन्त्रवित्।
निश्वासयोगमुक्तस्तं वायुं बाह्येन रेचयेत्॥१९॥
रेचकाह्वयः सम्प्रोक्तः प्राणायामो न संशयः।
जानू प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न बिलम्बितम्॥२०॥
क्रियते चाङ्गुलीस्फोटः सा मात्रा परिकीर्तिता।
ततो द्वादशमात्राभिः पूरकः क्रियते तु वै॥२१॥
तस्माद् द्विगुणमात्राभि रेचकः क्रियते तथा।
प्राणायामत्रयं चैव एकैकं त्रितयात्मकम्॥२२॥

तत्पश्चात् साधक को मूल मन्त्र अथवा प्रणव से प्राणायाम करना चाहिए। मन्त्रज्ञ साधक एक स्वर से प्रणव का उच्चारण करते हुए (वामनासा छिद्र से) वायु द्वारा उदर को पूरित करे। इस अवस्था में जब तक वायु द्वारा शरीर को पूरित किया जाता है, उसे देह को पूरण करने वाला पूरक प्राणायाम कहा जाता है। इसके पश्चात् समस्त (दोनों नासाछिद्रों) को बन्द करके श्वास-प्रश्वास से रहित होकर साधक पूर्ण कुम्भ की भाँति जितनी देर तक स्थित रहता है, उसे कुम्भक प्राणायाम कहते हैं। तदुपरान्त जिस नासिका छिद्र से वायु का पूरण किया था उसके अतिरिक्त दूसरे

(दक्षिण) नासा छिद्र से जब वायु का रेचन करता है तथा जब तक निःश्वास अवस्था में स्थिर रहते हुए वायु को बाहर निकालता रहता है, उसे रेचक प्राणायाम कहा जाता है।

न तो तीव्र गति से और न ही धीमी गति से बल्कि सामान्य गति से हाथ (करतल) द्वारा घुटने की प्रदक्षिणा करके चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उसे मात्रा (समय की एक सूक्ष्म माप का नाम) कहते हैं।

प्राणायाम करते समय साधक बारह (सामान्यतः सोलह) मात्राओं से पूरक (४८ मात्राओं अथवा ६४ मात्राओं से कुम्भक) तथा चौबीस (बत्तीस) मात्राओं से रेचक करे।

(पहले दक्षिण नासिका से वायु बाहर निकालकर) साधक वाम नासाछिद्र से पूरक फिर कुम्भक तथा दक्षिण नासाछिद्र से वायु का रेचन करे। यह एक प्राणायाम होता है। पुनः दक्षिण से पूरक-कुम्भक करके वाम से रेचन करे। इसके बाद फिर वाम से पूरक-कुम्भक तथा दक्षिण नासाछिद्र से रेचन करे। इस प्रकार साधक को तीन प्राणायाम करना चाहिए।

॥ भूत-शुद्धिः॥

लिङ्गरूपं हृदिस्थं तु चैतन्यं सर्वसाक्षिणम्।
प्रणवेन विनिःसार्य ब्रह्मरन्ध्राद् बहिर्बुधैः॥२३॥
तेनैव संपुटीकृत्य मस्तकोपरि विन्यसेत्।
चैतन्यरहितं देहं बाह्यं चाभ्यन्तरं तथा॥२४॥
नाभिमण्डलमध्यस्थं वायुमण्डलमध्यगम्।
यं वर्णं धूम्रवर्णन्तु ध्यात्वा तेन विशोषयेत्॥२५॥
अग्निमण्डलसंस्थेन बीजेनाग्निस्वरूपिणा।
निर्दहेदथ तं भस्मराशिं देहाकृतिं भवेत्॥२६॥
भ्रूमध्यगं हृदिस्थं वा ध्यायेदरुणमण्डलम्।
अर्धचन्द्राकृतिं श्वेतं पद्मद्वयपत्रान्वितम्॥२७॥

(उपर्युक्त भूत-शुद्धि की क्रिया बहुत ही संक्षिप्त रूप से वर्णित है। विस्तार एवं पूर्ण स्पष्ट विधि के लिए अन्य ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए।)

हृत्कमल में लिंग रूप से स्थित सर्व साक्षी स्वरूप चैतन्य (जीव) को (भावना द्वारा) प्रणव का उच्चारण करते हुए निकाल कर, सुषुम्णा मार्ग से मस्तक के ऊपर सहस्रार में ले जाकर, प्रणव से सम्पुटित करके स्थापित कर दे। फिर शरीर को बाहर-भीतर से चैतन्य रहित सा ध्यान करके, नाभिमण्डल के मध्यस्थ वायुमण्डल के मध्य में धूम्र वर्ण वायु बीज 'यं' का ध्यान करके उसके द्वारा शरीर को शोषित कर (सुखा) दे। तत्पश्चात् अग्निमण्डलस्थ अग्निरूप अग्नि बीज 'रं' का ध्यान करके उसके ऊपर शुष्क शरीर को जलाकर भस्म राशिवत् कर दे। इसके बाद भ्रूमध्य अथवा हृदस में अरुण मण्डल का ध्यान करके उसके मध्य अर्धचन्द्राकार द्विदल युक्त श्वेत कमल का ध्यान करे।

तत्रस्थेन वकारेण प्लावयेन्मधुरूपिणा।
बीजन्तु पार्थिवं न्यस्य चिन्तयेद् व्योममण्डलम्॥२८॥
प्रणवेन द्विधा कृत्वा तत्र चैतन्यरूपिणम्।
मस्तकोपरि विन्यस्य चैतन्येन च योजयेत्॥२९॥
अमृतप्लाविताद् वर्णात् सद्योजातमकल्मषम्।
आत्मानं चिन्तयेन्मन्त्री देवतारूपिणं ततः॥३०॥

तत्पश्चात् वहाँ भ्रूमध्य में स्थित अमृत बीज 'वं' का ध्यान करके उससे स्रवित होने वाली अमृत धारा से देह भस्म को आप्लावित करके पृथ्वी बीज 'लं' का न्यास कर सुदृढ़ रूप को पुनः प्राप्त शरीर का ध्यान कर व्योम मण्डल का ध्यान करे। फिर प्रणव द्वारा पुटित चैतन्य को, जो मस्तक पर न्यस्त था, प्रणव से पृथक कर पुनः हृदय में लाकर शरीर के साथ संयुक्त कर दे। अमृत वर्ण 'वं' से स्रवित अमृत द्वारा आप्लावित होने से शरीर शीघ्र ही समस्त दोषों (पापों) से रहित होकर शुद्ध हो जाता है। इसके पश्चात् (शरीर में मूल-विद्या के देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करके) साधक स्वयं को देवता रूप में स्थित हुआ सा चिन्तन करे।

॥ न्यास-निरूपणम्॥

ऋषिच्छन्दोदैवतानि स्मृत्वा न्यासं समाचरेत्।
अङ्गन्यासकरन्यासौ देहन्यास इति त्रिधा॥३१॥
उत्पत्तिस्थितिसंहारभेदभिन्नं गुणेन सः।
प्रथमं स्यात् करन्यासो देहन्यासस्तु मध्यमः॥३२॥
अङ्गन्यासस्तृतीयः स्यादिति शास्त्रस्य निर्णयः।
ॐकारं सम्पुटीकृत्य मनुना व्यापकं न्यसेत्॥३३॥
कूर्परादिकनिष्ठान्तं करन्यासास्तु पूर्वतः।
सर्वाङ्गेषु च विन्यस्य क्रमेणैवोत्क्रमेण तु॥३४॥
दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य वामाङ्गुष्ठं तथा ततः।
औत्पत्तिकोऽस्ति मन्त्राणां संहाराख्यो विपर्ययः॥३५॥
दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य उभयोरपि हस्तयोः।
कनिष्ठान्तं भवेन्नयासः स्थितिर्नाम महोदयः॥३६॥
शिरःप्रभृतिपादान्तं न्यासस्योत्पत्तिरिष्यते।
पादादिकः शिरोऽन्तस्तु सोऽपि संहरणो भवेत्॥३७॥
उदरोपक्रमो न्यासो हृदयान्तः स्थितिर्भवेत्।
मन्त्राक्षराणां विन्यासेऽप्ययमेव क्रमोत्तमः॥३८॥

भूत-शुद्धि के पश्चात् साधक को मूल-विद्या के ऋषि-छन्द-देवतादि का स्मरण (विनियोग सहित ऋष्यादि न्यास) करके अङ्ग-न्यास, कर-न्यास तथा देह-न्यास करना चाहिए। उत्पत्ति (सृष्टि), स्थिति तथा संहार भेद से न्यास तीन प्रकार का होता है। पहले कर-न्यास फिर देह-न्यास (षडङ्ग-न्यास) इसके बाद तीसरे क्रम में अङ्ग न्यास करना चाहिए, यह शास्त्र का मत है।

मन्त्र को ॐकार से सम्पुटित करके व्यापक न्यास करना चाहिए। कूर्पर (हाथ की कुहनी) से कनिष्ठा पर्यन्त पहले न्यास करके सर्वाङ्गो में अनुलोम-विलोम रूप से न्यास करना चाहिए। हाथ के दक्षिण अंगुष्ठ से प्रारम्भ कर वामांगुष्ठ पर्यन्त न्यास सृष्टि न्यास तथा इसके विपरीत वामांगुष्ठ से दक्षिणांगुष्ठ पर्यन्त न्यास करना संहार न्यास कहा जाता है। दोनों हाथों में दक्षिण अंगुष्ठ से प्रारम्भ कर कनिष्ठा पर्यन्त न्यास स्थिति न्यास कहा जाता है। शिर से पैर पर्यन्त न्यास सृष्टि न्यास तथा पैर से शिर पर्यन्त न्यास संहार न्यास कहा जाता है। उदर से प्रारम्भ करके हृदय पर्यन्त न्यास स्थिति न्यास कहलाता है। मन्त्राक्षरों के न्यास में भी यही क्रम श्रेष्ठ कहा गया है।

।। षडङ्ग-न्यासादि निरूपणम्।।

हृदि मूर्ध्नि शिखास्थाने बाहौ पार्श्वे च दिक्षु च।
नेत्रयोरङ्गमन्त्राणां षण्णां न्यासक्रमो भवेत्।।३९।।
अस्त्रान्तान्यङ्गमन्त्राणि शैवे शाक्ते विदुर्बुधाः।
नेत्रान्तानि तथोक्तानि वैष्णवे न्यासपूजयोः।।४०।।
हृदये विधिवत् कार्यो नमः शिरसि ठद्वयम्।
वषट् शिखायां कथितं कवचे हुमिति स्मृतम्।।४१।।
नेत्रेषु वौषट् कथितं न्यासनीयन्तु फट् तथा।
तेऽङ्गुष्ठवर्जमङ्गुल्यश्चतस्त्रो हृदि मूर्धनि।।४२।।
शिखायां मुष्टिरेव स्यादङ्गुष्ठकृतनासिकः।
सर्वाङ्गुलीभिर्वा उभौ पाण्योः कवचबन्धने।।४३।।
तर्जन्यादित्रयं नेत्रे हस्ते हस्ततलद्वयम्।
हस्तैर्विन्यस्य....ततो वै बन्धयेद् दिशः।।४४।।
अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां दिशः पूर्वादिकाः क्रमात्।
पञ्चाङ्गानि यदोक्तानि तदा नेत्रं परित्यजेत्।।४५।।
अनुक्ताङ्गेषु मन्त्रेषु पदशो वर्णशोऽपि वा।
तेनैर्वाङ्गानि कल्पानि मन्त्रेण सकलेन वा।।४६।।
उत्पत्तिसंज्ञको न्यासः संहाराख्यो यतेर्भवेत्।
ऋषिच्छन्दोदैवतानि शिरोवदनहृत्सु च।।४७।।
स्मरेद् जपादावात्मनि नमस्कृत्य ततोऽर्चयेत्।

हृदय, मूर्धा (शिर), शिखा स्थान, दोनों बाहों के (ऊपर) पार्श्व, नेत्रों तथा सभी दिशाओं (स्वयं के चारों ओर), इन छः स्थानों पर मन्त्र के छः अंगो (विभागों) द्वारा षडङ्ग न्यास किया जाता है। शैव तथा शाक्त साधना में, विद्वानों ने अङ्ग मन्त्रों द्वारा अस्त्रान्त (षडङ्ग) न्यास करने के लिए कहा है। वैष्णव साधना में न्यास-पूजन के समय नेत्रान्त (पञ्चाङ्ग) न्यास का विधान है। हृदय में 'नमः' (**हृदयाय नमः**), शिर पर 'स्वाहा' (**शिरसे स्वाहा**), शिखा पर 'वषट्' (**शिखायै वषट्**), कवच (बाहों) पर 'हुम्' (**कवचाय हुम्**), नेत्रों (दो अथवा तीन) में 'वौषट्' (**नेत्राभ्यां**

अथवा **नेत्रत्रयाय वौषट्**) तथा अस्त्र (दिशाओं में) न्यास 'फट्' (**अस्त्राय फट्**) से किया जाता है।

हृदय तथा मूर्धा में न्यास करते समय दाहिने हाथ की चारों अंगुलियों (अंगुष्ठ को छोड़कर) को न्यास स्थान (हृदय तथा मूर्धा पर) रखते हुए स्पर्श करते हैं। शिखा न्यास में दाहिने हाथ की मुष्टि को, अंगुष्ठ को नासिका की भाँति बाहर की ओर मोड़ कर शिखा स्थान पर रखते हैं। कवच न्यास में बांये हाथ की सभी अंगुलियों से दाहिने बाहु का (बाँह का ऊपरी भाग) तथा बायें हाथ के ऊपर से बन्धन सा बनाते हुए दाहिने हाथ की अंगुलियों से वाम बाहु का स्पर्श करते हैं। नेत्र न्यास में तर्जनी तथा मध्यमा (द्विनेत्र की स्थिति में) अथवा तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका से नेत्रों का स्पर्श (तर्जनी से दक्ष नेत्र, मध्यमा से भ्रूमध्य तथा अनामिका से वाम नेत्र का स्पर्श) करते हैं। जिन मन्त्रों की साधना में पञ्चाङ्ग न्यास का उल्लेख होता है, वहाँ नेत्र न्यास नहीं करना चाहिए। यदि मन्त्र के वर्णों का विभाजन करके (अथवा किसी भी रूप में) षडङ्ग न्यास का विधान स्पष्ट नहीं किया गया है तो मन्त्र के पदों अथवा वर्णों का यथोचित विभाजन करके अथवा सम्पूर्ण मन्त्र वर्णों से षडङ्ग न्यास करना चाहिए।

ब्रह्मचारी को विशेष रूप से सृष्टि न्यास, गृहस्थ को स्थिति न्यास तथा यति (सन्यासी) को संहार न्यास करना चाहिए। (जहाँ तीनों प्रकार से न्यास करने का उल्लेख हो, वहाँ ब्रह्मचारी को 'स्थिति-संहार-सृष्टि' क्रम से, गृहस्थ को 'संहार-सृष्टि-स्थिति' क्रम से तथा यति को 'सृष्टि-स्थिति-संहार' क्रम से न्यास करना चाहिए।)

मन्त्र के ऋषि का न्यास शिर पर, छन्द का न्यास मुख में तथा मन्त्र देवता का न्यास हृदय में करना चाहिए।

मन्त्र के जपादि से पूर्व (न्यासादि करने के पश्चात्) अपने हृदय में स्थित देवता को ध्यान सहित प्रणाम करके उसकी (मानस) अर्चना करनी चाहिध।

॥ अन्तर्बाह्य-पूजनम्॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा प्रविश्य हृदयाम्बुजम्॥४८॥
देवतां तत्र सञ्चिन्त्य मनसाराधयेत्ततः।
येन क्रमेण वै मन्त्रैर्द्रव्यैर्नानाविधैः शुभैः॥४९॥
तेन क्रमेण तेनैव मानसो याग ईरितः।
न वा चोच्चारयेन्मन्त्रं मनसैव मनुं स्मरन्॥५०॥
मुद्रां प्रदर्शयेत्तत्र देवतां भावयेत् पराम्।
तत्र चावाहनं नेष्टं हृदये मानसार्चने॥५१॥
आराध्य मनसा भक्त्या बाह्यपूजामथाचरेत्।
स्थानशुद्धिं द्रव्यशुद्धिं कृत्वा पात्राणि शोधयेत्॥५२॥
अर्घ्यपात्रादिकं तेषु कल्पयेद् विधिपूर्वकम्।
पीठपूजां विधायाथ तत्र वा इष्टदेवताम्॥५३॥

पूजयेत् परया भक्त्या विधिदृष्टेन कर्मणा।
आसनावाहने चार्घ्यं पाद्यमाचमनं तथा॥५४॥
स्नानं वासोपवीतञ्च भूषणानि च सर्वशः।
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नञ्च तर्पणम्॥५५॥
माल्यानुलेपनं चैव नमस्कारविसर्जनम्।
अष्टादशोपचाराश्च तैश्च पूजां समाचरेत्॥५६॥
शक्तिभिर्मूर्तिभिश्चैव लोकपालैश्च संयुतः।
पीठमन्त्रैः समायोगो नित्ययागः स उच्यते॥५७॥
पीठेनैव समस्तेन बहिरावरणैर्विना।
मन्त्रपूर्वकृतो यागो नित्ययागः स मध्यमः॥५८॥
अग्निकार्येण हविषा भूषणैश्च समन्वितम्।
द्रव्यशुद्धिसमायुक्तमुत्तमं पूजनं तथा॥५९॥
अग्निकार्यविहीनं तु कालमङ्गं निवेद्य च।
उपचारैर्युतं सर्वं मध्यमं पूजनं स्मृतम्॥६०॥
वस्त्रालङ्कारशोभादि वर्जयित्वा पृथग्विधि।
केवलं पुष्पयोगं तु कनिष्ठं पूजनं भवेत्॥६१॥

तीन बार प्राणायाम करके, अपने हृदय कमल में ध्यान केन्द्रित करके, वहाँ स्थित देवता का चिन्तन (देवता के स्वस्वरूप में स्थित होने की भावना) करके उसका मानसोपचार पूजन करना चाहिए। जिस विधि-क्रम से मन्त्र तथा नाना प्रकार के बाह्य द्रव्यों द्वारा बाह्य पूजा की जाती है, उसी प्रकार मन से कल्पित अनेकों प्रकार के उपचार द्रव्यों द्वारा समस्त पूजन क्रम को सम्पादित करना मानस याग कहा जाता है। इस मानस याग में मन्त्रों का स्पष्ट उच्चारण न करके मन ही मन मन्त्रों का स्मरण करना चाहिए। वहीं ध्यानावस्था में ही पूजन से सम्बन्धित विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिए तथा अपने हृदयस्थ इष्ट देवता की परम देवता रूप से भावना करनी चाहिए। हृदय में (हृदयस्थ देवता का) मानस पूजन करते समय देवता का आवाहन करने की आवश्यकता नहीं होती। मानसिक आराधना करने के पश्चात् देवता का बाह्यरूप से पूजन करना चाहिए।

पूजन के प्रारम्भ में स्थान-शुद्धि, द्रव्य (पूजनोपचार)-शुद्धि तथा पात्रादि का शोध न करके विधिपूर्वक अर्घ्यपात्रादि का स्थापन करना चाहिए। इसके पश्चात् वहीं देवपीठ पर पीठ-पूजन करके परम भक्ति के साथ विधिपूर्वक इष्ट देवता का पूजन करना चाहिए।

पीठ पर देवता के यन्त्र अथवा विग्रह स्थापित कर उसमें देवता का आवाहन करके आसनार्पण, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत सभी प्रकार के आभूषणार्पण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न (नैवेद्य), तर्पण, माल्य, अनुलेपन, प्रणाम तथा विसर्जन इन अठारह (१८) उपचारों द्वारा देवता की विधिवत् अर्चना करके पूजन कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

देवता की विभिन्न शक्तियों, मूर्तियों, लोकपालों तथा पीठस्थ देवताओं का जब मन्त्र सहित पूजन करके (देवता का) पूजन किया जाता है तो उसे (प्रथम श्रेणी का) नित्य याग कहते हैं। जब पीठ पूजन करके देवता के बहिरावरण(बाह्य-आवरण) पूजन के बिना ही उसका (देवता का) पूजन किया जाता है, तो वह मध्यम श्रेणी का नित्य याग होता है।

जिस पूजन में न्यायोचित उपायों द्वारा अर्जित द्रव्य का समावेश होता है, देवता को आभूषणों का अर्पण होता है तथा पूजन के पश्चात् हवन सामग्री (हवि) द्वारा हवन कार्य भी सम्पन्न किया जाता है, उसे उत्तम श्रेणी का पूजन-कर्म कहा जाता है।

जो पूजन-कर्म हवन कर्म से रहित तथा देश-कालानुसार जैसे-तैसे प्राप्त उपचार सामग्रियों से सम्पन्न किया जाता है, उसे मध्यम श्रेणी का पूजन-कर्म कहते हैं।

जिस पूजन-कर्म में वस्त्राभूषण आदि से देवता का अलंकरण नहीं होता, जो यथोचित विधि-विधान से पृथक मनमाने ढंग से किया जाता है तथा केवल पुष्प (के द्वारा ही) में किया जाता है, वह पूजन कर्म कनिष्ठ कहा जाता है।

।। अर्घ्यादिसहित गन्धाष्टक-निरूपणम्।।

उशीरं रोचनं चैव पाद्यपात्रे तु कल्पयेत्।
जातीकर्पूरकक्कोलबहुमूलं तमालकम्।।६२।।
चूर्णयित्वा यथा न्यायं क्षिपेदाचमनीयके।
कुशाग्राण्यक्षतं चैव यवब्रीहितिलानपि।।६३।।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि निक्षिपेदर्घ्यपात्रके।
माक्षिकं शर्करासर्पिर्दधिक्षीरयुतं सदा।।६४।।
मधुपर्कं कल्पयित्वा प्रदद्याद्विधिपूर्वकम्।
उशीरं कुङ्कुमञ्चैव मांसी मलयजं तथा।।६५।।
मुराञ्चैव तु ह्रीवेरं कुष्ठञ्चागुरुमेव च।
अष्टाङ्गान्यत्र गन्धस्य वैष्णवे कथितान्यपि।।६६।।
रोचनाकपिकाश्मीरमांसी त्वगुरुचन्दनैः।
घनचोरैरष्टगन्धः शैवे शाक्ते च शस्यते।।६७।।

देव-पूजन के समय साधक को पाद्य-पात्र के जल में खश तथा गोरोचन (अथवा चन्दन) डालना चाहिए।

अर्घ्य-पात्र के जल में कुशों के अग्र भागों (खण्डों) सहित अक्षत, जौ, धान, तिल, घृत, पीली सरसों तथा पुष्पों को डालना चाहिए।

जाती, कपूर, कङ्कोल, बहुमूल तथा तमाल को अच्छी तरह से चूर्ण करके आचमनी-पात्र के जल में डालना चाहिए।

शहद, शकर, घृत, दही तथा दूध के मिश्रण से मधुपर्क का निर्माण करके विधिपूर्वक देवता को अर्पण करना चाहिए।

वैष्णव-गन्धाष्टक - खश, कुंकुम, जटामासी, चन्दन, मुरा, ह्रीवेर, कुष्ठ तथा अगुरु ये आठ द्रव्य वैष्णव-पूजन कर्म में अष्ट गन्ध कहे गये हैं।

शाक्त (शैव) गन्धाष्टक – गोरोचन, कपि (गठिवन), कुंकुम, जटामासी, अगुरु, चन्दन, कपूर तथा चोर (भटेडर, निशाचर) ये अष्ट द्रव्य रूप अष्टगन्ध शाक्त (तथा शैव) साधना में श्रेष्ठ (प्रशंसनीय) कहे गये हैं।

अन्य तन्त्रानुसार चन्दन, अगुरु, कपूर, कुंकुम, गोरोचन, शिलाजीत, जटामासी तथा कचूर (काली हल्दी) ये शाक्तों के अष्टगन्ध कहे गये हैं। इसी प्रकार बालछड़, कुंकुम, कूठ, रक्त-चन्दन, श्वेत चन्दन, तमाल (पत्र), अगुरु तथा कपूर ये शैवों के अष्टगन्ध हैं।

।। त्रिविधोपचार कथन सहित पूजन-प्रक्रिया निरूपणम्।।

आसनं स्वागतं चार्घ्यं पाद्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च।।६८।।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा।
प्रयोजयेत्तदर्चायामुपचारांस्तु षोडश।।६९।।
अर्घ्यपाद्यासनमधुपर्कमाचमनान्यपि ।
गन्धादिका नैवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिका।।७०।।
सपर्या त्रिविधा प्रोक्ता तासामेकां समाश्रयेत्।
मनसाराधितं ध्यात्वा वामनासापुटेन तु।।७१।।
प्रणवेनाञ्जलिं कृत्वा न्यसेद् तु पूजितासने।
हृदयेनाथ मन्त्रेण कल्पयित्वा तु सन्निधिम्।।७२।।
सन्निरोधं ततः कुर्यान्मन्त्रेण कवचेन तु।
प्रणवेनाभिमुख्यञ्च कृत्वा न्यासं विधाय च।।७३।।
स्वदेहवद् देवदेहे ततः पाद्यादि कल्पयेत्।
पाद्यञ्च पादयोर्दद्यादर्घ्यं शिरसि दीयते।।७४।।
मुखे चाचमनीयं स्यान्मधुपर्कञ्च तत्र वै।
पुनराचमनं वक्त्रे दद्यान्मन्त्रविशारदः।।७५।।
पाद्यं सम्पादयाम्यस्मै इति पाद्यादि कल्पयेत्।
प्रणवादिनमोऽन्तेन मन्त्रेणानेन संयुतः।।७६।।

देवता का आवाहन करने के पश्चात् उसे आसन, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, पुनः आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वन्दन (प्रणाम) इन सोलह उपचारों के समर्पण सहित पूजन करना षोडशोपचार पूजन कहा जाता है।

अर्घ्य, पाद्य, आसन, मधुपर्क, आचमन तथा गन्ध से लेकर नैवेद्य पर्यन्त इन दश उपचारों से की गई अर्चना दशोपचार पूजन कहलाता है।

केवल गन्ध से लेकर नैवेद्य पर्यन्त पाँच उपचारों से की गई पूजा पञ्चोपचार पूजा कही जाती है।

इस प्रकार त्रिविध रूप से की गई पूजन विधियों में से किसी एक का आश्रय लेकर देवता का पूजन करना चाहिए।

हृदय में इष्ट देवता का ध्यान करके, उसका पहले मानसोपचार पूजन करें। फिर प्रणव का उच्चारण करके वाम नासाछिद्र से अञ्जलिगत पुष्प पर देवता को बाहर लाकर अर्चित पीठासन पर स्थापित कर दें। इसके बाद मूल मन्त्र द्वारा देवता का आवाहन, संस्थापन, सन्निधापन, सन्निरुद्धीकरण, सम्मुखीकरण तथा अवगुण्ठन तत्तद् मुद्रा प्रदर्शन सहित करके देवता का षडङ्ग न्यास (द्वारा सकलीकरण) करें। इसके पश्चात् देवार्चन हेतु पाद्यादि की व्यवस्था करें।

पाद्य का अर्पण देवता के पैरों पर (भावना द्वारा) तथा अर्घ्य देवता के शिर पर अर्पित करना चाहिए। तत्पश्चात् देवता को आचमन प्रदान करके मधुपर्क अर्पित करे और पुनः उसे आचमन कराये। आचमन तथा मधुपर्क देवता के मुख में (देने की भावना करते हुए) अर्पित करना चाहिए। "**ॐ मूलं पाद्यं सम्पादयामि (समर्पयामि) अस्मै (अमुक देवतायै) नमः**" इस प्रकार से प्रत्येक उपचारों के साथ मन्त्रों की योजना करके उनका समर्पण करना चाहिए।

आदावन्ते च पूजायामत्यन्तं मूलविद्यया।
पाद्यार्घ्याचमनीयानि दद्यादेतानि देशिकः।।७७।।
विसर्जनं यदात्मन्यारोपणञ्च अपेक्षितम्।
मण्डलादौ तथाचम्य क्रमस्तस्य विवक्षितः।।७८।।
सपुष्पाभ्याञ्च हस्ताभ्यां ध्यायेदेवं तु साधकः।
यागभूमिगते देव पारावारांस्तु संस्मरेत्।।७९।।
ध्यायेद देवं ततो वक्त्रे हृदये तदनन्तरम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं देवं प्रसन्नवदनेक्षणम्।।८०।।
तथात्मानं तु तं देवमेकीकृत्य विचिन्तयेत्।
विसर्जनं यदान्यत्र विमुख्याध्य तदा ददेत्।।८१।।
यथासुखासितोऽन्यत्र गच्छस्वेति विसर्जयेत्।
आचार्यैस्तु ततोऽन्यत्र क्वचिन्नेष्टं विसर्जनम्।।८२।।
किन्तु तत्रैव हस्ताभ्यां पूर्ववत्तु निवेदयेत्।
यथाशक्ति जपं कृत्वा प्राणायामत्रयं तथा।।८३।।
विन्यस्यसङ्गानि च पुनरित्थं पूजां समापयेत्।

मन्त्रज्ञ देशिक (गुरु) को पूजन के प्रारम्भ तथा समाप्ति दोनों ही स्थिति में सम्पूर्ण मूल विद्या के जप (उच्चारण) सहित देवता को पाद्य-अर्घ्य तथा आचमन प्रदान करना चाहिए। स्वसम्प्रदाय क्रम से जैसा अपेक्षित हो उसी के अनुसार देवता का सूर्यमण्डलादि में विसर्जन अथवा अपने हृदय में आरोपण करना चाहिए। यदि देवता को स्व हृदय में विसर्जित (स्थापित) करना अभीष्ट हो तो दोनों हाथों में पुष्प लेकर यागमण्डप में स्थित देवता का ऊपर से नीचे तक सम्पूर्ण रूप से ध्यान करे। भुक्ति-मुक्ति (भोग तथा मोक्ष दोनों ही) प्रदान करने वाले तथा प्रसन्नमुख अपनी (साधक की) ओर देखने वाले देवता का पहले मुख में तदनन्तर अपने हृदय में ध्यान

करके स्वयं को अपने देवता के साथ एकत्व भाव को प्राप्त हुआ सा अनुभव करे। यदि देवता का विसर्जन अन्यत्र (दूसरी जगह) करना अपेक्षित हो तो देवता को विशेषार्घ्य प्रदान करके **'यत्र सुखास्थितः तत्र गच्छ यथासुखम्'** बोलकर देवता का विसर्जन करे। कुछ आचार्यों को देवता का अन्यत्र विसर्जन अभीष्ट नहीं है। किन्तु फिर भी दोनों हाथ जोड़कर (तथा हाथों में पुष्प लेकर) पूर्ववत् निवेदन करना चाहिए। इसके पश्चात् मूलविद्या का यथाशक्ति जप करके (जप देवता को समर्पित कर) तीन बार प्राणायाम करना चाहिए। जप के पश्चात् तथा प्राणायाम से पूर्व पुनः साधक को कर-षडङ्ग न्यासादि करना चाहिए। इस प्रकार पूजन कर्म की समाप्ति करनी चाहिए।

।। अशुचौ जप निषेधः - पुरश्चरण कर्तुनियमः।।

जपकाले यदा पश्येदशुचिर्मन्त्रवित्तमः।।८४।।
प्राणायामं ततः कृत्वा ततः शेषं समाचरेत्।
यदा चैव जपेन्मन्त्री स्वयमस्यशुचिः पुनः।।८५।।
स्नात्वा चैव यथापूर्वं न्यासं कृत्वा पुनर्जपेत्।
पुरश्चरणकानीह एतानि कथयाम्यतः।।८६।।
भैक्ष्यादिसुमिताहारः सकृद्रात्रौ विधीयते।
दिवा चैव जपं कुर्यात् पुरश्चरणिको द्विजः।।८७।।
शाकयावकभक्ष्याशी चणकैः सह सर्पिषा।
दध्ना मूलैः फलैर्वापि कुर्यादशनमन्वहम्।।८८।।
ब्रह्मचर्यं तथैवोक्तं स्नानं त्रिषवणं तथा।
पूर्वाह्ने देवतायाश्च पूजां कुर्याद् विशेषतः।।८९।।
यावैर्यवान्नं शाकञ्च पयो भक्ष्यं हविष्यकम्।
पूर्वं पूर्वं प्रशस्तं स्यादशनं मन्त्रसाधने।।९०।।

यदि मन्त्र जप करते समय किसी अशुद्ध (अपवित्र) वस्तु अथवा प्राणी पर दृष्टि पड़ जाय तो जपकर्त्ता को प्राणायाम करके फिर शेष जप कार्य करना चाहिए। परन्तु कर्ता के स्वयं किसी कारणवश अशुद्ध होने पर स्नान करके पुनः न्यासादि करके जप करना चाहिए। (छींक, जम्हाई आदि आने पर अथवा अधोवायु निकलने पर साधक को दक्षिण कर्ण का स्पर्श कर आचमन करके फिर जप करना चाहिए। किसी कारणवश माला के मध्य में ही विराम करना पड़ जाय तो पुनः माला पर प्रारम्भ से ही जप करना चाहिए।)

अब मन्त्र का पुरश्चरण करने वाले साधको के लिए कुछ अनिवार्य पालनीय नियमों को कहता हूँ। साधक को भिक्षादि (अथवा बिना याचना के आकाशीय वृत्ति) से प्राप्त परिमित मात्रा में आहार (स्वल्पाहार) ग्रहण करना चाहिए। दिन भर में भोजन केवल एक बार और वह भी रात्रि में सायं सन्ध्या के पश्चात् ही ग्रहण करना चाहिए। ब्राह्मण पुरश्चरण कर्ता को दिन में जप करना चाहिए। जपकर्ता को शाक (हरी सब्जियाँ विशेषकर पत्ते वाली), जौ से बना खाद्य पदार्थ, चना के साथ घृत, दही, मूल,

फलादि ही प्रतिदिन भोजन में ग्रहण करना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तीनों सन्ध्याओं में स्नान तथा पूर्वाह्न में ही विशेष रूप से देवता का पूजन करना चाहिए। मन्त्र साधना काल में जौ से बना भोजन, शाक, दूध तथा (अथवा) हविष्यान्न का ग्रहण करना चाहिए। इनमें से प्रत्येक पदार्थ अपने से बाद वाले पदार्थ से श्रेष्ठ कहा गया है।

।। मन्त्रानुष्ठानम्।।

सर्वमन्त्राः प्रयोक्तव्याः प्रायशः प्रणवादिकाः।
अनन्यचेता आसीनो वाग्यतो विहितासनः।।९१।।
अनुतिष्ठेत्तु मन्त्राणि गुरुवन्दनपूर्वकत्।
क्षेत्रं तीर्थं वनारामदेवालयनदीह्रदाः।।९२।।
कुटीविविक्तमित्येते देशाः स्युर्मंत्रसिद्धिदाः।
मन्त्रं सदेवताभावमाचारेषु च जाप्यतः।।९३।।
कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणादौ विशेषतः।
उच्चैर्जपाद्विशिष्टं स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः।।९४।।
जिह्वाजपः शतगुणः सहस्रो मानसो जपः।
दशलक्षजपादेकवर्णो मन्त्रः प्रसिध्यति।।९५।।

अधिकतर (प्रायः) सभी मन्त्रों का जप करते समय उसके पूर्व प्रणव 'ॐ' का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। साधक को एकाग्रचित्त होकर, अपने मन को केवल मन्त्रवर्णों तथा मन्त्राधिदेवता के ध्यान में लगाकर, मौन होकर, यथोचित आसन पर बैठकर स्वगुरु की वन्दना (प्रणाम) करके मन्त्र का अनुष्ठान (जप) करना चाहिए। पुण्य क्षेत्र, तीर्थ, वन, उपवन, देवालय, नदी, विस्तृत गहरा जलाशय तट (समुद्र तट), कुटी, एकान्त स्थान ये सभी स्थल मन्त्र सिद्धिदायक कहे गये हैं। मन्त्र देवता का ध्यान करते हुए, मन्त्र तथा देवता (एवं गुरु) में एकत्व भाव की कल्पना करके मन्त्र का जप करना चाहिए। कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा सूर्य-चन्द्र ग्रहण काल में विशेष रूप से मन्त्र का जप करना चाहिए।

मन्त्र-जप सामान्यतः तीन प्रकार से किया जाता है। वाचिक, उपांशु तथा मानस। उच्च स्वर से (वाचिक) जप करने की अपेक्षा उपांशु जप करना दश गुना अधिक श्रेष्ठ (फलदायी) है। उपांशु जप (जिसमें मन्त्रोच्चारण की ध्वनि सामान्यतः कर्ता के ही श्रवण योग्य होती है) से दश तथा वाचिक से सौ गुना श्रेष्ठ जिह्वा द्वारा (वह जप जिसमें मुख के भीतर जिह्वा का संचालन होता है परन्तु मन्त्रध्वनि नहीं उत्पन्न होती) जप करना होता है। मानस जप करना (इसमें जिह्वा-संचालन भी नहीं होता केवल मन में ही मन्त्र वर्णों का उच्चारण होता है) वाचिक जप से हजार गुना श्रेष्ठ होता है।

एक वर्णात्मक मन्त्र सामान्यतः दश लाख की संख्या में जपने से सिद्ध होता है।

वर्णवृद्ध्या जपे ह्रासस्तेनान्येषां समूहयेत्।
बीजाद् द्वित्रिगुणं मन्त्रं मालासन्धौ जपक्रियाम्।।९६।।

विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्रा इति स्मृताः।
दशाक्षराधिका मन्त्रास्तदर्वाग् बीजसंज्ञकाः॥९७॥
बार्द्धके सिद्धिदा मन्त्रा मालामन्त्रास्तु यौवने।
पञ्चाक्षरात्मका बाल्ये मन्त्रास्ते सिद्धिदाः परे॥९८॥
जपाद् दशांशं सर्वत्र हवनं तर्पणं विदुः।
द्रव्याशक्तौ घृतं होमे त्वशक्तः सर्वतो जपेत्॥९९॥
मूलमन्त्राद् दशांश स्याद् गायत्रीणां जपक्रिया।
अशक्तावुक्तहोमस्य जपस्तु द्विगुणो भवेत्॥१००॥
येषां जपे च होमे च संख्या नोक्ता मया प्रिये।
तेषामष्टसहस्राणि संख्योक्ता जपहोमयोः॥१०१॥

मन्त्र में जैसे-जैसे वर्णों की वृद्धि होती है, जप की संख्या कम होती जाती है। इसी भाँति अन्य सभी मन्त्रों के विषय में समझना चाहिए।

बीज से दुगने-तिगुने वर्ण वाले (अथवा दो तीन बीजों से युक्त) मन्त्रों को माला की गाँठो (माला के मणियों) पर जपना चाहिए। बीस वर्णों से अधिक वर्ण वाले मन्त्र माला मन्त्र कहे जाते हैं। दश अक्षरों से अधिक वर्ण वाले मन्त्रों को 'मन्त्र' ही कहा जाता है। दश वर्ण अथवा इससे कम वर्ण वाले मन्त्र 'बीज' कहे जाते हैं।

माला मन्त्र (साधक के लिए) वृद्धावस्था में सिद्धिदायक कहे गये हैं। युवावस्था में मन्त्र (दश वर्णों से अधिक वर्ण वाले) तथा बाल्यावस्था में पञ्चाक्षर मन्त्र सिद्ध दायक होते हैं। अन्य सभी मन्त्र सर्वदा सिद्धि दायक होते हैं।

साधक को मन्त्र जप संख्या का दशांश (संख्या में) हवन तथा (हवन की दशांश संख्या में) तर्पण करना चाहिए। हवनीय द्रव्य न होने की स्थिति में घृत से हवन करे। इसकी भी सामर्थ्य न होने की स्थिति में जितनी संख्या में हवन करना अनिवार्य है उसकी दुगनी संख्या में मन्त्र जप करना चाहिए। मूल मन्त्र के जप का दशांश भाग मन्त्र देवता की गायत्री का भी जप करना चाहिए।

जिन मन्त्रों के अनुष्ठान आदि में जप तथा हवन की संख्या का वर्णन नहीं किया गया है, वहाँ आठ हजार की संख्या में जप-होम करना कहा गया है।

॥ होम-तर्पणादौ स्वाहादि योजनम्॥

स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण कुर्याद् होमं बलिं तथा।
नमोऽन्तेन नमस्कारमर्चनञ्च समाचरेत्॥१०२॥
मन्त्रान्ते नाम संयोज्य तर्पयामीति तर्पणम्।
संख्या नोक्ता जपे होमे चाष्टोत्तरसहस्रकम्॥१०३॥

हवन तथा बलि प्रदान करते समय मन्त्र के अन्त में **'स्वाहा'** का प्रयोग करना चाहिए। नमस्कार तथा पूजन (उपचारों के समर्पण) में **'नमः'** का योग मन्त्र के अन्त में करना चाहिए। मन्त्र के पश्चात् देवता का द्वितीयान्त नाम संयुक्त करके **'तर्पयामि'** (यथा - **मूलमन्त्रं अमुकं तर्पयामि**) बोलते हुए तर्पण करना चाहिए।

पूजनादि के समय यदि जप तथा होम की संख्या का उल्लेख क्रिया-विधि में न किया गया हो तो एक हजार आठ बार जप तथा हवन करना चाहिए।

।। पौष्टिकादि कर्मसु तिथि-वार-निरूपणम्।।

पौष्टिकादीनि कर्माणि यद्वारतिथियोगतः।
प्रारब्धव्यानि विधिनां तच्च संप्रोच्यते मया।।१०४।।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा।
बुधेज्यवारसंयुक्ता शान्तिकर्मणि पूजिता।।१०५।।
गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी।
सप्तमी पौष्टिके शस्ता अष्टमी नवमी तथा।।१०६।।
दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रदिनान्विता।
आकर्षणे त्वमावास्या नवमी प्रतिपत्तथा।।१०७।।
पौर्णमासी मन्दभानुयुक्ता विद्वेषकर्मणि।
कार्ष्णी चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दतारका।।१०८।।
उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषेषु विशेषतः।
चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावस्या तथैव च।।१०९।।
मन्दारार्कदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि।
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी तथा।।११०।।
पौर्णमासी च विज्ञेया तिथिः स्तम्भनकर्मणि।
शुभग्रहोदये शुभं चाशुभान्यशुभोदये।।१११।।

पौष्टिकादि कर्म विधिपूर्वक जिस तिथि-वार के संयोग में आरम्भ करना चाहिए, अब मैं इसके विषय में कहता हूँ।

किसी भी पक्ष की पञ्चमी, द्वितीया, तृतीया तथा सप्तमी, इन तिथियों को यदि बुधवार अथवा गुरुवार हो तो शान्ति कर्म आरम्भ करना उत्तम होता है।

पौष्टिक कर्म के लिए बृहस्पति अथवा सोमवार युक्त षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी अथवा सप्तमी (किसी भी पक्ष की) का ग्रहण करना प्रशंसनीय होता है।

आकर्षण कर्म का आरम्भ रवि अथवा शुक्रवार से युक्त अष्टमी, नवमी, दशमी अथवा एकादशी को करना चाहिए।

विद्वेषण कर्म का आरम्भ शनि अथवा रविवार युक्त अमावस्या, नवमी, प्रतिपदा अथवा पूर्णमासी तिथि में करना चाहिए।

कृष्ण पक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी यदि शनिवार से युक्त हो, तो विशेष रूप से प्रदोष काल में उच्चाटन कर्म करना चाहिए।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी अथवा अमावस्या को यदि शनि, मङ्गल अथवा रविवार हो तो मारण कर्म के लिए श्रेयस्कर है।

स्तम्भन कार्यारम्भ के लिए बुध अथवा सोम युक्त पञ्चमी, दशमी अथवा पूर्णिमा का ग्रहण करना चाहिए।

शुभ ग्रह के उदय काल में शुभ (शान्ति-पुष्टि आदि) कर्म तथा अशुभ ग्रहोदय काल में अशुभ (मारणादि) कर्म प्रारम्भ करना चाहिए।

।।षट्कर्मसु-ऋतुनक्षत्रादि निरूपणम्।।

रौद्रकर्मणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम्।
सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशकं क्रमात्।।११२।।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने।
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्यशरद्धेमन्तशैशिराः ।।११३।।
हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि।
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः।।११४।।
प्रावृडुच्चाटने ज्ञेया शरन्मारणकर्मणि।

रविवार युक्त रिक्ता तिथियों (चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी) में रौद्र कर्म एवं (साध्य के) मृत्यु-योग में मारण कर्म करना चाहिए।

दिन और रात्रि मिलाकर प्रत्येक दिन (के साठ घड़ियों में) सूर्योदय से प्रारम्भ कर क्रमशः दश-दश घड़ियों में बसन्तादि सभी (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर तथा हेमन्त) ऋतुएं होती हैं। हेमन्त ऋतु काल में शान्ति कर्म, वसन्त में वशीकरण, शिशिर में स्तम्भन, ग्रीष्म में विद्वेषण, वर्षा में उच्चाटन तथा शरद् ऋतु काल में मारण कर्म करना चाहिए।

संरिभेत् स्तम्भनं कुम्भे हर्यक्षे वृश्चिकोदये।।११५।।
द्वेषोच्चाटादिकं नक्रकुलीराजतुलोदये।
यमकन्याधनुर्मीने वश्यशान्तिकपौष्टिकम्।।११६।।
मारणं चाष्टमे राशौ रिपोर्भेदादिनिग्रहम्।
वश्यं पूर्वेऽह्नि मध्याह्ने विद्वेषोच्चाटनं लिखेत्।।११७।।
शान्तिपुष्टिस्त्वहन्यन्ते सन्ध्याकाले तु मारणम्।
अर्धरात्रे लिखेत् स्तम्भमाकृष्टिं प्राग् दिनोदयात्।।११८।।
यदन्यच्छोभनं कार्यं तत् प्रत्यूषे लिखेद् बुधः।
इन्द्रे स्तम्भनमुच्चाटमग्नौ सर्वाभिचारकम्।।११९।।
याम्ये रक्षसि विद्वेषं शान्तिं वरुणसोमयोः।
कुलोत्सादं मरुद्भागे यक्षे कलहनिग्रहौ।।१२०।।
कुर्वीत नोदितं कर्म यच्छुभं ब्रह्मणः पदे।
वश्याकृष्टौ लिखेद् भूर्जे लिखेदुच्चाटनं ध्वजे।।१२१।।
गर्दभत्वचि विद्वेषं स्तम्भनं गजचर्मणि।
प्रेतचीरे समालिख्य तापज्वरादिमारणम्।।१२२।।
विवादे च स्तम्भनादि शिलायामपि मोहनम्।

चन्द्रमा के कुम्भ, सिंह अथवा वृश्चिक राशि में होने पर स्तम्भन कर्म, मकर, कर्क, मेष अथवा तुला राशि में होने पर विद्वेषण-उच्चाटन कर्म तथा मिथुन, कन्या, धनु

अथवा मीन राशियों के उदय काल में वश्य, शान्ति तथा पौष्टिक कर्म करना चाहिए। शत्रुओं भेदन, निग्रह तथा उनके मारण के लिए उनकी अष्टम राशि में कार्यारम्भ करना चाहिए।

वश्य कर्म दिन के पूर्वाह्न में, मध्याह्न में विद्वेषोच्चाटन, शान्ति पुष्टि कर्म दिन के अन्त में तथा मारण कर्म सांय काल (सन्ध्या) में करना चाहिए। अर्धरात्रि में स्तम्भन, दिन निकलने से पहले, आकर्षण कर्म तथा अन्य जो भी शुभ कर्म हो उसे उषा (प्रभात) काल में करना चाहिए।

पूर्व दिशा की ओर मुख करके (बैठकर) स्तम्भन कर्म, आग्नेय दिशा की ओर मुख कर उच्चाटन, दक्षिण की ओर सभी अभिचार कर्म, निर्ऋति की ओर विद्वेषण तथा पश्चिम अथवा उत्तर की ओर मुख करके शान्ति कर्म करना चाहिए। कुल के विनाश के लिए वायव्य दिशा में तथा कलह एवं निग्रह (नियन्त्रण-दमन) के लिए उत्तर की ओर मुख करके कर्म करना चाहिए। इनके अतिरिक्त जिन कर्मों के विषय में ऊपर वर्णन नहीं किया गया है तथा अन्य जो भी शुभ कर्म है, उन सभी को ईशान की ओर मुख करके करना चाहिए।

वश्य-आकर्षण के लिए यन्त्र-मन्त्र भोज पत्र पर, उच्चाटन के लिए ध्वज के वस्त्र पर, विद्वेषण के लिए गदहे के चर्म पर, स्तम्भन के लिए गज चर्म पर तथा शत्रु के मारण अथवा ताप-ज्वरादि से पीड़ित करने के लिए शव के वस्त्र पर लिखना चाहिए। शत्रु से विवाद की स्थिति में उसे स्तम्भित अथवा मोहित करने के लिए पत्थर की शिला पर भी यन्त्र-मन्त्र लिखा जा सकता है।

॥ यन्त्र-लेखन-द्रव्याणि॥

वश्यां कुङ्कुमकर्पूररोचनाभिर्हरिद्रया॥१२३॥
यावेन स्तम्भनाकृष्टिं लिखेच्चानामिका सृजा।
विद्वेषं क्रोष्टुवरक्तेन काकरक्तेन मारणम्॥१२४॥
मोहं महिषरक्तेन उच्चाटं चोष्ट्रजासृजा।
विद्वेषोच्चाटनं काकपक्षेणापि च मारणम्॥१२५॥

सम्मोहन तथा वशीकरण के लिए यन्त्र लेखन कुंकुम, कपूर, गोरोचन तथा हल्दी के मिश्रण से लिखना चाहिए। स्तम्भन के लिए लाख (अथवा महावर) से, आकर्षण के लिए अनामिका अंगुली के रक्त से, विद्वेषण के लिए गीदड़ के रक्त से, मारण के लिए कौवे के रक्त से, मोह (भ्रम) के लिए भैंसे के रक्त से तथा उच्चाटन के लिए ऊँट के रक्त से यन्त्र का लेखन करना चाहिए। विद्वेषणोच्चाटन तथा मारण कार्य हेतु यन्त्र लेखन कौवे के पंख की लेखनी (कलम) द्वारा करना चाहिए। (वश्य कर्म में दूर्वा को तथा आकर्षण में मोर पंख की लेखनी का प्रयोग करना चाहिए।)

॥ षट्कर्मसु-देवता-ध्यानम्॥

वश्ये चाकर्षणे क्षोभे रक्तवर्णं विचिन्तयेत्।
निर्विषीकरणे स्तम्भे रक्तवर्णं विचिन्तयेत्॥१२६॥

शान्तौ पुष्टौ तथा तुष्टौ चाप्यायने सितं भवे।
पीतं स्तम्भनकार्येषु धूम्रमुच्चाटने स्मरेत्॥१२७॥
उन्मादे शक्रगोपाभं कृष्णवर्णं तु मारणे।
आसनं श्वेतरूपं तु सात्त्विकं समुदाहृतम्॥१२८॥
पीतवर्णं राजसे तु रक्तं श्यामुदाहृतम्।
यानमार्गस्थितं तूर्णं कृष्णं तामसमुच्यते॥१२९॥
सात्त्विकं मोक्षकामनां राजसं राज्यमिच्छताम्।
तामसं शत्रुनाशार्थं सर्वव्याधिनिवारणम्॥१३०॥
सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं तामसं तु विचिन्तयेत्।

वशीकरण, आकर्षण तथा क्षोभ उत्पन्न करने वाले (चञ्चलता-उच्चाटनादि) कर्मों के समय कर्म-देवता का ध्यान रक्तवर्ण में करना चाहिए। विपहरण, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि तथा तृप्ति (वृद्धि) कारक कर्म के समय शुभ्र-श्वेत वर्ण देवता का ध्यान करना चाहिए। स्तम्भन कार्य के समय पीतवर्ण, उच्चाटन में धूम्र वर्ण (धुआँ के समान वर्ण), उन्माद (पागलपन) उत्पन्न करने वाले कर्म मे वीर बहूटी (रक्त वर्णीय कीट विशेष) की सी आभा के समान तथा मारण कर्म करते समय कृष्ण (काला) वर्ण देवता का ध्यान करना चाहिए।

सात्विक कर्म के समय देवता का ध्यान आसन पर बैठे हुए श्वेत रूप में करना चाहिए। राजस कर्म के समय पीत, रक्त अथवा श्याम वर्ण में देवता का ध्यान करे। तामस कर्म करते समय देवता का ध्यान यान मार्ग पर स्थित सड़क पर इधर-उधर टहलते हुए तथा घने काले मेघ वर्ण में करना चाहिए। मोक्षार्थी को सात्विक ध्यान, राज्य (धन-सम्पत्ति) के इच्छुक को राजस ध्यान तथा शत्रु विनाश (मारण), सभी रोगों के निवारण तथा समस्त उपद्रवों की शान्ति हेतु तामस ध्यान करना चाहिए।

रुद्राग्नि सताक्ष्र्यगन्धर्वयक्षरक्षो हि किन्नराः॥१३१॥
पिशाचभूतदैत्येन्द्रसिद्धाः किंपुरुषाः सुराः।
सर्वेषामपि मन्त्राणामंशाः पञ्चदश स्मृताः॥१३२॥
केचिदष्टादश प्राहुः समग्राणां नृणां मताः।

रुद्र, अग्नि (अथवा मंगल), ताक्ष्र्य (गरुड़), गन्धर्व, यक्ष, रक्ष, सर्प, किन्नर, पिशाच, भूत, दैत्य, इन्द्र, सिद्ध, किम्पुरुष तथा असुर ये पन्द्रह सभी विद्वान मनुष्यों के विचार से मन्त्रों के देवता कहे गये हैं। परन्तु किसी-किसी के मत से इनकी संख्या अट्ठारह (१८) है।

॥ वर्णसंख्या भेदानुसारेण मन्त्राणां संज्ञाः॥

द्वयक्षरी कर्तरी सूची त्र्यक्षरी चतुरक्षरैः॥१३३॥
मुद्गरो मुषलः पञ्चवर्णः षड्भिस्तु शृंखलाः।
क्रकचः सप्तभिः शूलश्चाष्टाभिर्नवभिः पविः॥१३४॥
शक्तिश्च दशभिश्चैकादशभिः परशुः स्मृतः।
चक्रं द्वादशभिर्वर्णैः कुलिशं स्यात् त्रयोदशैः॥१३५॥

द्विसप्तभिश्च नाराचभुसुण्डी पक्षवर्णकाः।
पद्मं षोडशभिर्वर्णैर्मन्त्रच्छेदे तु कर्तरी॥१३६॥
भेदेन कथिता सूची भञ्जने मुद्गरः स्मृतः।
मुषलः क्षोभणे बन्धे शृंखलः क्रकचच्छिदि॥१३७॥
घाते शूलं पविस्तम्भे शक्तिराकृष्टिकर्मणि।
विद्वेषे परशुं चक्रं सर्वकर्मसु योजयेत्॥१३८॥
उत्सादे कुलिशः प्रोक्तो नाराचः सैन्यभेदने।
भुसुण्डी मारणे पद्मं शान्तिपुष्ट्यादिकर्मणि॥१३९॥
चक्रं तु रञ्जकं कर्म सर्वत्रैवं प्रयोजयेत्।
क्वचिदेवं दर्शितं तु तत्त्वागमविरोधि च॥१४०॥
सहस्राक्षरमन्त्रादेः प्रयोगविधिदर्शनात्।
यथाकामो जपः कार्यो मन्त्राणामपि मे शृणु॥१४१॥

वर्णों की संख्या के अनुसार मन्त्रों के भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। एकाक्षर मन्त्र 'कर्तरी', द्वयक्षर मन्त्र 'सूची', त्र्यक्षर मन्त्र 'मुद्‌गर' तथा चतुरक्षर मन्त्र 'मुसल' कहा जाता है। पञ्चवर्णात्मक मन्त्र 'अशनि', षडक्षर मन्त्र 'शृंखल', सप्ताक्षर मन्त्र 'क्रकच', अष्ट वर्णात्मक 'शूल', नवाक्षर 'पवि' तथा दशाक्षर मन्त्र 'शक्ति' कहा जाता है। एकादशाक्षर मन्त्र 'परशु', द्वादशाक्षर 'चक्र', त्रयोदशार्ण मन्त्र 'कुलिश', चतुर्दश वर्णों का मन्त्र 'नाराच', पञ्चदशार्ण मन्त्र 'भुशुण्डी' तथा षोडशाक्षर मन्त्र 'पदम्' कहा जाता है।

छेदन कर्म में 'कर्तरी' मन्त्र, भेदन में 'सूची' तथा भञ्जक कर्म के लिए 'मुद्‌गर' मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। क्षोभ कर्म के लिए 'मुषल' संज्ञक मन्त्र, बन्धन के लिए 'शृंखल', छिन्न-भिन्न करने के लिए 'क्रकच' मन्त्र तथा घात कर्म हेतु 'शूल' संज्ञक मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। स्तम्भन कर्म में 'पवि', आकर्षण के लिए 'शक्ति' तथा विद्वेषण के लिए 'परशु' संज्ञक मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। 'चक्र' संज्ञक मन्त्र का प्रयोग सभी कार्यों के लिए किया जा सकता है। उच्चाटन कर्म के लिए 'कुलिश', सैन्य भेदन के लिए 'नाराच', मारण के लिए 'भुशुण्डी' तथा शान्ति पुष्टि आदि के लिए 'पद्‌म' संज्ञक मन्त्र प्रयोग करना चाहिए।

कुछ विद्वान इस प्रकार से मन्त्र प्रयोग निरूपण को आगम के विरुद्ध बतलाते हैं। क्योंकि आगम (तन्त्र) शास्त्रों में इससे से भी अधिक यहाँ तक कि सहस्राक्षरादि मन्त्रों के प्रयोग की विधियाँ भी प्रदर्शित की गई हैं। कामनानुसार मन्त्रों का किस प्रकार जप करना चाहिए, अब उसके विषय में मुझसे सुनो।

॥ कार्य विशेषे पल्लवादि निरूपणम्॥

मन्त्रादौ योजनं नाम्नः पल्लवः परिकीर्तितः।
मारणे विषसंहारे ग्रहभूतविनिग्रहे॥१४२॥
उच्चाटने च विद्वेषे पल्लवो हि प्रशस्यते।
मन्त्रान्ते नामसंस्थानं योग इत्यभिधीयते॥१४३॥

शान्तिके पौष्टिके वश्ये प्रायश्चित्ते विशोधने।
मोहने दीपने योगं प्रयुञ्जन्ति मनीषिण:॥१४४॥
स्तम्भनोच्चाटनोच्छेदविद्वेषेषु स उच्यते।
नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्र: स्याद्रोध उच्यते॥१४५॥
मन्त्राभिमुख्यकरणे सर्वव्याधिनिवारणे।
ज्वरग्रहविषाद्यार्त्तिशान्तिके रोध उच्यते॥१४६॥
सम्मोहने स एवथ मन्त्रनामाक्षराणि च।
एकैकान्तरितं यत्तु ग्रथनं तत् प्रकीर्तितम्॥१४७॥
तच्छान्तिके विधातव्यं नामाद्यन्ते यथा मनु:।
तत् संपुटं भवेत्तत्तु कीलने परिभाषितम्॥१४८॥
स्तम्भे मृत्युञ्जये दिव्ये रक्षादिके च संपुट:।
मन्त्राक्षराभ्यामेकैकं साध्यनामक्षरं क्रमात्॥१४९॥
कथ्यते स विदर्भस्तु वश्यकर्मणि पौष्टिके।
एवं योगक्रम: प्रोक्त: सर्वकार्ये मनीषिभि:॥१५०॥

साध्य नाम के आदि (प्रारम्भ) में मन्त्र का संयोग करना 'पल्लव' कहा जाता है। पल्लव युक्त मन्त्र का प्रयोग मारण, विष निवारण, ग्रह-भूतादि के प्रभावों के शमन हेतु, उच्चाटन तथा विद्वेषण कर्मों में करना श्रेष्ठ कहा जाता है।

मन्त्र के आदि में साध्य-नाम की योजना 'योग' कही जाती है। शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, प्रायश्चित, विशुद्धीकरण, मोहन तथा दीपन कर्मों में बुद्धिमान साधक 'योग' का प्रयोग करते हैं। स्तम्भन, उच्चाटन, उच्छेदन तथा विद्वेषण कर्मों में भी 'योग' संज्ञक, मन्त्र का प्रयोग करना कहा जाता है। साध्य नाम के आदि मध्य तथा अन्त में मन्त्र वर्णों की स्थिति 'रोध' कही जाती है। साध्य नाम वर्णों को दो खण्डों में विभाजित करके प्रथम खण्ड से पहले, द्वितीय खण्ड के पश्चात् तथा दोनों खण्डों के मध्य मन्त्र का संयोजन करना चाहिए। मन्त्रों के अभिमुखी करण (अनुकूलन) के लिए, समस्त व्याधियों के निवारण के लिए, ज्वर, ग्रह, विष, कष्ट (दुख-पीड़ा) आदि की शान्ति के लिए तथा सम्मोहन के लिए 'रोध' मन्त्र का प्रयोग होता है।

मन्त्र के दो वर्णों के मध्य साध्य नाम के एक-एक वर्ण का संयोजन करना 'ग्रथन' कहा जाता है। शान्ति कर्म में इस प्रकार की मन्त्र योजना (ग्रथन मन्त्र) प्रयोग की जाती है।

साध्य नाम के आदि में अनुलोम रूप से तथा अन्त में विलोम रुप से मन्त्र का संयोजन करना सम्पुट कहा जाता है। इसे कीलन भी कहते हैं। स्तम्भन कर्म में, अकाल मृत्यु निवारण के लिए तथा स्वरक्षा विधान में सम्पुट मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

मन्त्र के दो-दो वर्णों के मध्य साध्य नाम के एक-एक वर्णो का समायोजन करना 'विदर्भ' कहा जाता है। वशीकरण तथा पौष्टिक कार्यों के लिए 'विदर्भ' मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार तन्त्र के विद्वानों ने समस्त कार्यों के लिए योग-क्रम (मन्त्र के साथ साध्य नाम का संयोजन) का वर्णन किया है।

(शारदा तिलक के अनुसार, ग्रथन, विदर्भ, सम्पुट, रोधन, योग तथा पल्लव का प्रयोग क्रमशः शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण कर्मों में करना चाहिए।)

।। कर्मविशेषे हुं-फट्-वषडादीनि योजनम्।।

बन्धनोच्चाटने द्वेषे संकीर्णे हुँ प्रयोजयेत्।
फट्कारं छेदने हुँफट् विघ्नग्रहनिवारणे।।१५१।।
पुष्टौ चाप्यायने वौषट् रोधने सनिकृन्तने।
अग्निकार्ये जपेत् स्वाहा नमः सर्वत्र चार्चने।।१५२।।
शान्तिपुष्टिवशद्वेषाकृष्ट्युच्चाटनमारणे ।
स्वाहा स्वधा वषट् हुं च वौषट् फट् योजयेत् क्रमात्।।१५३।।
वश्याकर्षणसन्तापज्वरे स्वाहा प्रयोजयेत्।
क्रोधोपशमने शान्तौ प्रीतौ योज्यं नमो बुधैः।।१५४।।
वषट् सम्मोहनोद्दीपपुष्टिमृत्युञ्जयेषु च।
हुंकारं प्रीतिनाशञ्च छेदने मारणे तथा।।१५५।।
उच्चाटने च विद्वेषे वौषट् चाग्निकृते वषट्।
मन्त्रज्ञापनकार्ये च लाभालाभे वषट् स्मृतम्।।१५६।।

बन्धन, उच्चाटन, द्वेष तथा संकीर्ण (बाधा-कठिनाई) आदि उत्पन्न करने वाले कर्मों में मन्त्र के साथ में 'हुं' लगाकर जप करना चाहिए। छेदन कार्य के लिए 'फट्' तथा विघ्न, अनिष्ट एवं पाप ग्रहों के दोष-निवारण के लिए 'हुं फट्' का प्रयोग करना चाहिए। पुष्टि तथा आप्यायन (तृप्ति) कर्म के समय मन्त्र का साथ 'वौषट्' का प्रयोग करना चाहिए।

अवरोधक उत्पन्न करने वाले, निकृन्तन (काटने-नष्ट) करने वाले कर्म तथा हवन कार्य में मन्त्र के साथ 'स्वाहा' का प्रयोग एवं सर्वत्र अर्चन कार्य में 'नमः' का प्रयोग करना चाहिए।

शान्ति-पुष्टि, वश्य-आकर्षण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण इन छः कर्मों में मन्त्र के साथ नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुं तथा फट्। इन छः जातियों का प्रयोग किया जाता है। पुष्टि के लिए स्वधा का प्रयोग करना चाहिए। वश्य-आकर्षण तथा ज्वर से संतापित करने के लिए मन्त्र के साथ 'स्वाहा' का प्रयोग करना चाहिए। क्रोध शान्ति के लिए, प्रीति के लिए तथा अन्य शान्तिकारक कर्मों में मन्त्र के साथ 'नमः' का संयोग करना चाहिए। सम्मोहन, उद्दीपन, पुष्टि, अकाल मृत्यु निवारण के लिए मन्त्र के साथ 'वषट्' का प्रयोग करे। प्रीतिनाश, छेदन तथा मारण कार्य में 'हुं', उच्चाटन-विद्वेषण में 'वौषट्' तथा अग्निकार्य में 'वषट्' का प्रयोग करे। मन्त्रोदीपन तथा सम्पत्तिनाश के लिए 'वषट्' का प्रयोग कहा गया है।

।। मन्त्र-भेद-निरूपणम्।।

स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिधा स्युर्मन्त्रजातयः।
स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता नमोऽन्ताश्च नपुंसकाः।।१५७।।

हुं फट् पुमांस इत्युक्ता वश्योच्चाटनकर्मसु।
क्षुद्रक्रियाद्युपध्वंसे स्त्रियोऽन्यत्र नपुंसका:॥१५८॥
ताराग्न्यन्त्यवियत्प्रायो मन्त्र आग्नेय उच्यते।
शिष्ट: सौम्य: प्रशस्तौ तौ कर्मणो: क्रूरसौम्ययो:॥१५९॥
आग्नेयमन्त्र: सौम्य: स्यात् प्रायशोऽन्ते नमोऽन्वित:।
मन्त्र: शान्तोऽपि रौद्रत्वं हुँ फट् पल्लवितो यदि॥१६०॥

आगम शास्त्र के विद्वानों ने मन्त्र के तीन भेद बताये हैं। पुरुष मन्त्र, स्त्री मन्त्र, तथा नपुंसक मन्त्र। जिन मन्त्रों के देवता पुरुष हैं, उनकी संज्ञा 'मन्त्र' ही है तथा जिन मन्त्रों की देवता स्त्री है, उन मन्त्रों को विद्या कहा जाता है। पुरुष देवतात्मक मन्त्र आग्नेय (क्रूर)तथा स्त्री देवतात्मक मन्त्र (विद्या) सौम्य कहे जाते हैं।

जिन मन्त्रों के अन्त में 'हुं तथा फट्' का प्रयोग होता है, वे पुरुष मन्त्र कहे जाते हैं। 'स्वाहा' से युक्त मन्त्र स्त्री मन्त्र तथा 'नम:' से अन्त होने वाले मन्त्र नपुंसक मन्त्र कहे जाते हैं। (प्रयोगसार के अनुसार - पुरुष मन्त्र 'वषट् तथा फट्' अन्त वाले, स्त्री मन्त्र 'वौषट् तथा स्वाहा' से अन्त होने वाले तथा नपुंसक मन्त्र 'हुं तथा नम:' अन्त वाले होते हैं।

वश्य, उच्चाटन (स्तम्भन) आदि कर्मों में पुरुष मन्त्र, क्षुद्र कर्म (अभिचारादि की शान्ति) एवं रोग विनाश में स्त्री मन्त्र तथा अभिचार कर्मों में नपुंसक मन्त्रों का प्रयोग सिद्धिदायक होता है।

जिन मन्त्रों में 'ॐ', 'र', 'क्ष' तथा 'ह' वर्णों की बहुलता होती है, वे मन्त्र आग्नेय मन्त्र कहे जाते हैं। सकार (स) तथा वकार (व) वर्णों की अधिकता वाले मन्त्र 'सौम्य' कहे जाते हैं। सौम्य कार्य के लिए सौम्य मन्त्र तथा क्रूर कर्मों के लिए आग्नेय मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

'नम:' अन्त में होने पर आग्नेय मन्त्र भी प्राय: सौम्य तथा हुं, फट् से पल्लवित (युक्त) होने पर सौम्य मन्त्र भी रौद्र (आग्नेय) हो जाते हैं।

॥ सुप्त-प्रबुद्ध काल:॥

सुप्त: प्रबुध्यमानो वा मन्त्र: सिद्धिं न यच्छति।
स्वापकालो वामबाहो जागरो दक्षिणावह:॥१६१॥
आग्नेयस्य मनो: सौम्यमन्त्र: स्यात् सुविपर्ययात्।
प्रबोधकाले जानीयादुभयोरुभयावहम्॥१६२॥
स्वापे तु नोच्यं दाराणां स्तोभयेत् स्तोभकर्मणि।

जब श्वास प्रवाह वाम नासा छिद्र से होता है तो यह काल सामान्यत: मन्त्रों के लिए सुप्तकाल कहा जाता है। दक्षिण नासिका से श्वास चलने पर जागरण काल माना जाता है। जब दोनों नासाछिद्रों से श्वास प्रवाह होता है, तो उसे प्रबोधकाल कहते हैं। सुप्त काल में जागृत मन्त्र भी जपने पर सिद्धिदायक नहीं होते हैं। क्रिया काल में दक्षिण नासिका से श्वास चलते समय आग्नेय मन्त्रों का तथा वाम नासिका से श्वास

चलते समय सौम्य मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। प्रबोधकाल में दोनों प्रकार के मन्त्रों का जप तथा प्रयोग फलप्रद होता है। किसी के द्वारा की गई क्रिया को अवरुद्ध करने के लिए निरोधक कर्म में स्त्री मन्त्रों का प्रयोग सुप्तकाल में उचित नहीं होता, इससे कर्म में बाधा उत्पन्न होती है।

।। चित्त धारणा–निरूपणम्।।

आग्नेयीं धारणां कृत्वा कुर्यादावेशनं क्रमात्।।१६३।।
माहेन्द्रीं धारणां कृत्वा संहारं तु समारभेत्।
तत्रैव दक्षिणे चित्तं कृत्वा मारणमेव च।।१६४।।
विद्वेषेच्चाटनोच्छेदे कुब्जीकरणमारभेत्।
आधारे दक्षिणे भागे विषग्रहसमागमात्।।१६५।।
सेनाञ्च स्तम्भयेत् कृत्वा कार्यारम्भञ्च मानवः।
तत्रैव वामे कर्तव्यो व्यवहारश्च शत्रुतः।।१६६।।
शान्तिकं पौष्टिकं वश्य वनितायाश्च मोहनम्।
बैन्दवे दक्षिणे भागे स्थाप्य चित्तं चरेद् बुधः।।१६७।।
कर्माभिचारविद्यां तु वामे तत्रैव साधयेत्।
आधारे कर्णिकायां तु चित्तं संस्थाप्य साधयेत्।।१६८।।
सिद्धिं सारस्वतीं चान्यां शाक्तेयीञ्चैव साधयेत्।
पौष्टिकी सिद्धिरतुला धर्मकामार्थसिद्धिदा।।१६९।।
लभ्यते हृदयान्तस्य कर्णिका स्थिरचेतसा।

आग्नेयी धारणा (अग्निमण्डल के स्वरूप का ध्यान करते हुए चित्त को वहाँ स्थिर) करके कर्म में प्रवृत्त होना (अथवा किसी को अपने प्रभाव य अधिकार में करने वाला कर्म करना) चाहिए। माहेन्द्री धारणा (मूलाधार में पृथ्वी मण्डल की धारणा) करके वहीं उसके दक्षिण भाग में चित्त को स्थापित करके संहार कर्म मारण करना चाहिए। विद्वेषण, उच्चाटन, उच्छेद तथा विषग्रह योग के प्रभाव के निराकरण के लिए आधार के दक्षिण भाग में चित्त को स्थापित करके कुब्जीकरण करना चाहिए। आग्नेयी धारणा द्वारा कार्य आरम्भ करके मूलाधार के वाम भाग (पृथ्वी मण्डल की धारणा कर उसके वाम भाग) में चित्त को स्थापित कर शत्रुवत् मानसिक व्यवहार करते हुए सेना का स्तम्भन करने वाले प्रयोग करने चाहिए।

शान्ति, पुष्टि, वश्य तथा स्त्री–मोहन कर्म के समय भ्रूमध्य स्थित द्वि–दल कमल के बिन्दु के दक्षिण भाग में चित्त को स्थापित करना चाहिए। अभिचार कर्म के समय उसके वाम भाग में चित्त को स्थापित करके साधना करनी चाहिए। सरस्वती की सिद्धि तथा अन्य शक्तियों की सिद्धि के लिए चित्त को कर्णिका पर स्थापित करके साधना करनी चाहिए। पुष्टि के लिए, अतुलनीय सिद्धि के लिए तथा धर्म–अर्थ–काम (तथा मोक्ष) की सिद्धि के लिए हृद–कमल की कर्णिका पर चित्त को स्थिर करके साधना करनी चाहिए।

(शान्ति कर्म में जल मण्डल, वश्य कर्म में अग्नि मण्डल, स्तम्भन कर्म में पृथ्वी मण्डल, विद्वेषण में आकाश मण्डल, उच्चाटन में वायुमण्डल तथा मारण में अग्निमण्डल का ध्यान (चित्त का स्थापन) करके कार्य करना चाहिए।)

।। पृथिव्यादि मण्डलानां स्वरूपाणि तत्र चैतन्य-धारणम्।।

चतुरस्रार्द्धचन्द्रञ्च त्रिकोणञ्च षडस्रक्रम्।।१७०।।
सुवृत्तञ्च पृथिव्यदिमण्डलाकृतयः क्रमात्।
पीतं शुक्लं तथा रक्तं कृष्णाभं धूम्रवर्णकम्।।१७१।।
तत्रोर्व्यादीनि बीजानि लवरं यहकारकम्।
नाभिमध्ये मण्डलं तु वायोस्तद्बीजसंयुतम्।।१७२।।
धारयेत्तत्र चैतन्यं वायुभूतविशेषकम्।
त्रिकोणं पिङ्गलो वह्निमण्डलं हृदि चिन्तयेत्।।१७३।।
धारयेत्तत्र चैतन्यं अग्निभूतं समन्ततः।
माहेन्द्रं मण्डलं कल्पे पृथिवीमण्डलाह्वयम्।।१७४।।
लकारेण युतं तत्र चैतन्यस्तम्भकं स्मरेत्।
अर्धचन्द्रं ललाटे तु श्वेतपद्मद्वयाङ्कितम्।।१७५।।
धारयेत्तत्र चैतन्यं वारिरूपं विचिन्तयेत्।
कल्पयित्वा विचारे च दक्षिणाप्लवगां महीम्।।१७६।।
वसनं लोहितं प्रोक्तमुष्णीषं लोहितं स्मृतम्।
वृत्तं दिवस्तत्षड्बिन्दुलाञ्छितं मातरिश्वनः।।१७७।।
त्रिकोणं स्वस्तिकोपेतं वह्ने रन्ध्रेण संयुतम्।
अम्भोजमम्भसे भूमेश्चतुरस्रं सवज्रकम्।।१७८।।

चौकोर, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, षट्कोण (६ बिन्दु रूप से) तथा वृत्ताकार रूप ये पाँच आकृतियाँ पृथ्वी आदि पाँच भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश नामक तत्व मण्डलों) की कही गयी हैं। इनके वर्ण क्रमशः पीत (पीला), शुक्ल (श्वेत), रक्त (लाल), कृष्ण (श्याम अथवा काली) आभायुक्त तथा धूम्र (धुएं की भांति) हैं। सभी मण्डल अपने-अपने बीजों (क्रमशः ल, व, र, य तथा ह) से युक्त (न्यस्त) हैं।

नाभि के मध्य (मूल) में वायु मण्डल है, जो अपने बीज 'य' से युक्त है। वहाँ चैतन्य की धारणा करके उसको वायु के रूप में परिवर्तित हुआ सा चिन्तन करे। हृदय में त्रिकोणाकार पिंगल वर्ण अग्नि मण्डल का ध्यान करके, वहाँ चैतन्य की धारणा (स्थापित) करके उसे चारो ओर से अग्निवत् हुआ सा अनुभव करे। मूलाधार में माहेन्द्र मण्डल, जिसे पृथ्वी मण्डल भी कहा जाता है, की कल्पना (ध्यान) करके, वहाँ चैतन्य की धारणा कर उसको स्तम्भित हुआ सा (जड़वत स्थिर) अनुभव (ध्यान) करे। यह मण्डल स्वबीज वर्ण 'ल' से युक्त है। उपर्युक्त अग्नि मण्डल 'र' बीज वर्ण से संयुक्त है।

ललाट (भ्रूमध्य) में (अर्ध चन्द्राकार) द्विदल श्वेत पदम् का चिन्तन करके, वहाँ चैतन्य को स्थिर (स्थापित) कर उसका जल रूप से (उसे जलरूप में परिवर्तित हुआ सा) ध्यान करें। ध्यान के समय पृथ्वी मण्डल (भूमि) की दक्षिण की ओर झुका हुआ (ढलानयुक्त) कल्पना करनी चाहिए। साधना काल में साधक को शरीर पर लाल वस्त्र तथा शिर लाल रंग की ही पगड़ी (अथवा कोई अन्य वस्त्र) धारण करनी चाहिए।

आकाश मण्डल वृत्ताकार, वायुमण्डल छः बिन्दुओं से युक्त वृत्ताकार, अग्निमण्डल स्वस्तिक युक्त त्रिकोणाकार तथा रन्ध्र (छिद्र) युक्त, जल का मण्डल अर्ध चन्द्राकार द्विदल पद्मवत् तथा पृथ्वी मण्डल चतुरस्र तथा वज्रयुक्त होता है।

।। षट्-कर्म-देवता तद्दिशः।।

रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली तु ताः क्रमात्।
षट् कर्मदेवताः प्रोक्ताः पूजादौ ताः प्रपूजयेत्।।१७९।।
ईशचन्द्रेन्द्र निर्ऋतिर्वाय्वग्नीनां दिशो मताः।
स दैवतं दिक्कालादि ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत्।।१८०।।

शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण रूप षट्कर्मों के क्रमशः रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, दुर्गा तथा काली देवता कहे गये हैं। श्वेत, अरुण, हल्दीवत् पीला, मिश्रित (वर्ण), श्याम तथा धूसर ये इन देवताओं के वर्ण हैं। प्रयोग के प्रारम्भ में उससे सम्बन्धित देवताओं का उन्हीं के वर्णों के समान पुष्पों से पूजन करना चाहिए।

ईशान, उत्तर, पूर्व, निर्ऋति, वायव्य तथा आग्नेय ये क्रमशः षट्कर्मों तथा तत्तद्देवताओं की दिशाएं कही गई है। साधक को भली-भाँति दिशा-कालादि का ज्ञान करके ही प्रयोगों को करना चाहिए।

।। षट्-कर्मसु आसन-मुद्रा-देवता-ध्यानानि।।

आसनान्यथ वक्ष्यामि कर्मणा विहितेन तु।
पद्मासनं पौष्टिके च शान्तिके स्वस्तिकासनम्।।१८१।।
आकृष्टौ पौष्टिके तद्वद्विद्वेषे कुक्कुटासनम्।
अर्धस्वस्तिकमुच्चाटे त्वर्धस्थापनपार्ष्णिकम्।।१८२।।
मारणे स्तम्भने तद्वद्विकटं परिकीर्तितम्।
वश्ये भद्रासनं तेषां कथ्यते चाथ भावना।।१८३।।
षणमुद्राः क्रमतो ज्ञेयाः पद्मपाशगदाह्वयाः।
मुसलाशनिखड्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु।।१८४।।
शान्तिके पौष्टिके वश्ये सौन्दर्यातिशयान्विता।
सर्वाभरणसन्दीप्ता प्राप्तकाममनोरथा।।१८५।।
ध्यातव्या देवता सम्यक् सुप्रसन्नाननाम्बुजा।
आकर्षणेऽपि तद्वच्च बडिशेनेव मत्स्यकान्।।१८६।।
साध्यमाकर्षणे द्वेषे भर्त्स्यमानं जनैरिव।
बध्यमानो जनैर्दण्डैर्दारितस्तस्करो यथा।।१८७।।

उलूको वायसाविष्टः स्मर्तव्योच्चाटने रिपुः।
स्तम्भने च शिलाक्रान्तस्तृणं पर्णादिवत् स्मरेत्॥१८८॥
आहतस्तस्करो राजपुरुषैः परशुर्यथा।
व्याघ्रेण वा निष्प्रयत्नो हन्यते मारणे पुनः॥१८९॥
यत्किञ्चिच्छवमारुह्य सन्दष्टौष्ठपुटः क्रुधा।
कर्म कुर्यात्ततो मन्त्री यथा क्रूरेषु कर्मसु॥१९०॥

अब मैं कर्मों के अनुसार उनके लिए विहित (योग्य) आसनों के विषय में कहता हूँ। पुष्टि कर्म पद्मासन में बैठकर, शान्ति कर्म स्वस्तिकासन में एवं आकर्षण तथा विद्वेषण कुक्कुटासन मे बैठकर करना चाहिए। पिछला अर्धभाग भूमि पर स्थापित करके अर्ध स्वस्तिकासन में बैठकर उच्चाटन कर्म करना चाहिए। मारण तथा स्तम्भन में विकटासन तथा वश्य कर्म में भद्रासन में बैठकर कार्य करना चाहिए।

(शा०ति० के अनुसार षट्कर्मों में क्रमशः पद्मासन, स्वस्तिक, विकट, कुक्कुट, वज्र तथा भद्रासन का प्रयोग करना चाहिए। इन कर्मों में बैठने के लिए क्रमशः गाय, गैंडा, हाथी, सियार, भेड़ तथा भैंसे के चर्म का आसन प्रयोग करना चाहिए।)

शान्ति आदि षट्कर्मों में क्रमशः पद्म, पाश, गदा, मुषल, वज्र तथा खड्ग मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है।

कार्यो की विभिन्नता के अनुसार देवताओं का ध्यान भी भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। शान्ति, पुष्टि तथा वश्य कर्म के समय तत्तद् देवता को अत्यधिक सौन्दर्य से युक्त, समस्त आभूषणों से आभूषित, नवयौवन से परिपूर्ण, स्वदीप्ति से ही अत्यन्त प्रकाशमान, विकसित कमल के समान प्रसन्न मुखमुद्रा से युक्त तथा समयानुसार सभी कामनाओं की पूर्ति का भाव लक्षित करने वाले स्वरूप से युक्त ध्यान करना चाहिए। आकर्षण कर्म में भी इसी प्रकार ध्यान करते हुए यह भी भावना करे कि जिस प्रकार वंशी (मांस अथवा खाद्य पदार्थ युक्त मछली पकड़ने का उपकरण) मछली को अपनी ओर आकर्षित करता है, उसी प्रकार देवता भी साध्य व्यक्ति को आकर्षित कर रहा है।

विद्वेषण कर्म में मनुष्यों द्वारा भर्त्सना (अपमानित-पीड़ित) किये जाते हुए साध्य का ध्यान करना चाहिए। जैसे वध के योग्य चोर को लोग दण्ड देते (डण्डे से पीटते) हैं तथा पीड़ित करते हैं, उसी प्रकार साध्य का भी चिन्तन करना चाहिए। उच्चाटन कर्म में साध्य को उल्लू अथवा कौवे से आविष्ट सा (अर्थात् उल्लू अथवा कौवे के स्वरूपवत्) ध्यान करना चाहिए। स्तम्भन कर्म में साध्य को तिनके अथवा पत्ते के समान, किसी बड़ी शिला (प्रस्तर खण्ड) द्वारा नीचे दबा हुआ सा, ध्यान करना चाहिए।

राजा के सैनिकों द्वारा जिस प्रकार परशु से चोर को आहत किया जाता है, अथवा व्याघ्र द्वारा मारे जाते हुए रूप में साध्य का ध्यान मारण कर्म में करना चाहिए। इस प्रकार के ध्यान से साधक बिना प्रयत्न किये ही अर्थात् बड़ी सरलता से अपने शत्रु का वध करने में समर्थ हो जाता है।

किसी शव पर आरूढ होकर क्रोधपूर्वक दाँतों को होठों को दवाते (चवाते) हुए देवता का ध्यान (अथवा स्वयं की इस प्रकार कल्पना) करके साधक को क्रूर-कर्म करना चाहिए।

॥ माला-निरूपणम्॥

मुक्ताभिः स्फटिकैर्वाऽपि समायोज्याक्षसूत्रकम्।
शान्तिकर्मणि मिश्रे वा जपेन्मन्त्रस्य सिद्धये॥१९१॥
प्रवालवज्रमणिभिर्वश्यपौष्टिकयोर्जपेत् ।
मत्तेभदन्तमणिभिर्जपेदाकृष्टिकर्मणि ॥१९२॥
मृतयुद्धे च शूरस्य दशनैर्गर्दभस्य च।
कृत्वाक्षमालां जप्तव्यं शत्रुमारणमिच्छता॥१९३॥
साध्यकेशसूत्रयुक्तिस्तुरङ्गदशनोद्भवैः ।
अक्षमालां समालोक्य द्वेषोच्चाटनयोर्जपेत्॥१९४॥
मृतस्य युद्धशून्यस्य दशनैर्गर्दभस्य च।
कृत्वा मालां प्रजप्तव्यं शत्रुमारणमिच्छता॥१९५॥
क्रियते शङ्खमणिभिर्धर्मकामार्थसिद्धये।
पद्माक्षैश्च जपेन्मन्त्रं सर्वकामार्थसिद्धये॥१९६॥
रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रः सर्वफलप्रदः।

शान्तिकर्म में मोती अथवा स्फटिक के मणियों से बनी अक्षमाला से जप करना चाहिए। मन्त्र की सिद्धि के लिए भी इस प्रकार की माला का प्रयोग किया जा सकता है।

वश्य कर्म में प्रवाल मूँगे की माला तथा पौष्टिक कर्म में हीरे के मणियों से बनी माला का प्रयोग करना चाहिए। आकर्षण के लिए हाथी-दाँत से बनी मणियों से निर्मित माला का प्रयोग करना चाहिए। साध्य के केशों को सूत्र (धागे) के रूप में प्रयोग कर घोड़े के दाँतों से बनी हुई संस्कारित माला द्वारा जपकर्म विद्वेषण तथा उच्चाटन कर्मों में किया जाता है।

युद्ध में शिर कटने से मरे हुए व्यक्ति के दाँतों से अथवा गदहे के दाँतों से बनी माला का प्रयोग, शत्रु को मारने की इच्छा से किये जाने वाले जप-कर्म में करना चाहिए। शंख-मणि से निर्मित माला से जप धर्म-अर्थ तथा काम की सिद्धि के लिए किया जाता है। सर्वकामना सिद्धि (विशेषकर लक्ष्मीसिद्धि) के लिए कमल गट्टे के दानों से बनी माला से जप करना चाहिए। रुद्राक्ष माला द्वारा जप करना सभी कार्यों में फलप्रद (अथवा समस्त फलों को देने वाला) होता है।

पद्मसूत्रकृता रज्जुः शस्ता शान्तिकपौष्टिके॥१९७॥
आकृष्ट्युच्चाटयोर्वाजिपुच्छबालसमुद्भवा ।
नरस्नायुविशेषैस्तु मारणे रज्जुरुत्तमा॥१९८॥
अन्यासामक्षमालानां रज्जुः कार्पासिकी शुभा।
सप्तविंशतिसंख्यातैः कृत्वा मुक्तिं प्रयच्छति॥१९९॥

अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा।
अक्षमाला विनिर्दिष्टा तत्रादौ तत्त्वदर्शिभि:।।२००।।
अष्टोत्तरशतेनैव सर्वकर्मसु पूजिता।

शान्ति तथा पौष्टिक कर्मों में मन्त्रजप के लिए कमल-नाल के सूत्रों को धागे के रूप में प्रयुक्त करके बनाई गई माला का प्रयोग करना चाहिए। आकर्षण कर्म में धागे के स्थान पर घोड़े की पूंछ के बाल को प्रयुक्त करके बनाई गई माला से जप करना चाहिए। मारण कार्य में विशेष रूप से मनुष्य के स्नायु (सूक्ष्म नसों) के द्वारा ग्रन्थित माला से मन्त्र जप करना चाहिए। अन्य कार्यों के लिए प्रयुक्त अक्ष माला में कपास से निर्मित सूत्र (धागे) का प्रयोग करना शुभ होता है।

मोक्ष की कामना से मन्त्र जप करने वाले साधक को सत्ताईस (२७) दानों से बनी माला का प्रयोग करना चाहिए। पन्द्रह मणियों (दानों) से बनी माला द्वारा जप करना अभिचार कर्मों में फलदायक होता है। विभिन्न तन्त्र शास्त्रों में प्राय: सभी विद्वानों (तन्त्र के मूल तत्व को जानने वालों) ने सभी कर्मों में जप के लिए एक सौ आठ दानों से निर्मित माला को श्रेष्ठ (प्रशंसनीय) कहा है।

(ज्ञान प्राप्ति के लिए स्फटिक की माला, लक्ष्मी के लिए कमल गट्टे की माला तथा पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्रजीवक के दानों से बनी माला द्वारा मन्त्र जप करना श्रेयस्कर होता है।)

।। जपे अंगुलिनियमा:-दिग्निर्देशनम्।।

मध्यमाङ्गुष्ठकाभ्याञ्च जपेदाकर्षणं मनुम्।।२०१।।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु विद्वेषोच्चाटयोर्जपेत्।
जपेज्ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां शत्रुमारणकर्मणि।।२०२।।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु जपेदन्येषु कर्मसु।
अङ्गुष्ठेन जपेदित्थमन्यैरङ्गुलिभि: सह।।२०३।।
अङ्गुष्ठेन बिना जप्यं कृतं तदफलं भवेत्।
जपेद् वश्ये पूर्वमुखे दक्षिणे चाभिचारके।।२०४।।
पश्चिमे धनदं विन्द्यादुत्तरं शान्तिके भवेत्।
आयुष्यरक्षां शान्तिं वा पुष्टिं वापि करिष्यति।।२०५।।
इति प्रधानं सम्बोध्य प्रार्थयेच्चाविसर्गत:।।२०६।।

देवतां सम्बोध्य तत्कर्तृकां तत् साध्याख्याय मन्त्री मन्त्र-बीजगर्भ लिखेत्। उपदेवताऽङ्गनामेकाक्षरमन्त्रश्चेत्तदेव परितो लिखेत्। सामान्यमन्त्रलेखनादौ क्रमेणावगन्तव्य:। जपहोमादौ त्वेवं संकल्प्य पूर्णाहुत्यादिकर्मावसाने तथैव प्रार्थयेदिति रहस्यम्।

आकर्षण कर्म में मध्यमा तथा अंगुष्ठ से जप करना चाहिए। विद्वेषण तथा उच्चाटन में अंगुष्ठ तथा तर्जनी से जप करना चाहिए। मारण कर्म में अंगुष्ठ तथा कनिष्ठा से जप करना चाहिए। अन्य कार्यों में अंगुष्ठ तथा अनामिका से जप करना चाहिए। इस प्रकार कर्मों के अनुसार अंगुष्ठ के साथ अन्य अंगुलियों का सहयोग करके

जप करना चाहिए। जो जप बिना अंगुष्ठ के सहयोग से किया जाता है, उस जप से सम्वन्धित कर्म निष्फल होता है।

वश्य कर्म पूर्व मुख होकर (बैठकर) तथा अभिचार कर्म दक्षिण मुख बैठकर करना चाहिए। धन प्राप्ति के लिए पश्चिम मुख तथा शान्ति कर्म में उत्तर-मुख बैठना चाहिए।

कर्म की समाप्ति (पूजनादि के विसर्जन से पहले) कर्म के प्रधान देवता का नाम सम्बोधन कारक में बोलकर 'मम आयुष्यरक्षा शान्तिं पुष्टिं च कुरु' बोलते हुए देवता से प्रार्थना करनी चाहिए।

सामान्य मन्त्र लेखन - सम्वोधन युक्त देवता का नाम, कर्ता का नाम, उसका साध्य तथा मन्त्र इन सभी को मन्त्र बीज के गर्भ में लिखकर उपदेवता अथवा अंगदेवता के एकाक्षर मन्त्र से उसे आवृत्त कर देना चाहिए। जप होमादि से पूर्व कर्मानुसार संकल्प करके समस्त क्रिया के बाद पूर्णाहुति इत्यादि के उपरान्त उपर्युक्त रूप से देवता से प्रार्थना करनी चाहिए।

।।षट्कर्मसु कुण्ड-निरूपणम्।।

अष्टास्रे चतुरस्रे वा वृत्ते चाम्बुरुहाकृतौ।
शान्तिके पौष्टिके चैव होमः स्याद् यज्ञसाधकैः।।२०७।।
कार्यः प्राग्वदनेनाथ सौम्येन वदनेन वा।
आकृष्टौ वायुकुण्डे तु कौबेरी दिङ्मुखेन तु।।२०८।।
नैर्ऋत्युदङ्मुखस्तस्मिन् कुण्डे विद्वेषणे हुनेत्।
आग्नेयीदिङ्मुखस्तत्र कुण्डे मारुतकेऽपि वा।।२०९।।
उच्चाटने हुनेन्मन्त्री मारणे याम्यदिङ्मुखः।
जुहुयाद् याम्यकुण्डे तु मन्त्री तत्साधनैस्ततः।।२१०।।
वज्रलाञ्छितकुण्डे तु ग्रहभूतनिवारणे।
वायव्यदिङ्मुखो वश्ये कुण्डे योन्याकृतौ हुनेत्।।२११।।
वज्रलाञ्छितकुण्डे तु स्तम्भे प्राग्वदनो हुनेत्।

हवन करने वाले साधकों को कार्य-सिद्धि के लिए अष्ट कोणात्मक, चतुरस्र, वृत्त अथवा अष्टदल पद्माकृति रूप कुण्डों में हवन करना चाहिए। शान्ति तथा पौष्टिक कर्म में पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख बैठकर उपर्युक्त किसी भी प्रकार के कुण्ड में हवन करना चाहिए। आकर्षण के लिए वायव्य कोण में स्थित कुण्ड में, उत्तर की ओर मुख करके बैठकर हवन करना चाहिए। विद्वेषण के लिए नैर्ऋत्य की ओर मुख करके तथा उच्चाटन में आग्नेय अथवा वायव्य दिशा की ओर मुख करके उसी वायव्य कोणस्थ कुण्ड में हवन करना चाहिए। मारण कर्म में उसके साधक को दक्षिण दिशा में स्थित कुण्ड में, दक्षिण की ओर मुख करके बैठकर हवन करना चाहिए। ग्रह-भूतादि के प्रभाव के निराकरण के लिए वायव्य दिशा (कोण) की ओर मुख करके षट्कोण कुण्ड में हवन करना चाहिए। वश्य कर्म के लिए त्रिकोण कुण्ड में

तथा स्तम्भन के लिए षट्कोण कुण्ड में, पूर्व मुख बैठ करके हवन करना चाहिए।

[शान्ति आदि षट्कर्मों में क्रमशः वृत्ताकार, पद्माकार, चतुरस्र, त्रिकोण, षट्कोण, अर्धचन्द्राकार कुण्ड पश्चिम, उत्तर, पूर्व, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं दक्षिण दिशा में (ग्राम, मण्डप अथवा साध्य के अनुसार) बनाना चाहिए।]

।।षट्कर्मसु होम-द्रव्याणि।।

द्रव्याण्यपि प्रवक्ष्यामि तत्तत्कर्मानुरूपतः।।२१२।।
शान्तिके तु पयः सर्पिस्तिलक्षीरद्रुमेण तु।
अमृताख्या लता चैव पायसं तत्र कीर्त्तितम्।।२१३।।
पौष्टिके तु प्रवक्ष्यामि होमद्रव्याण्यतः परम्।
विल्वपत्रैश्च आज्यैः स्यात् जातीपुष्पैस्तथैव च।।२१४।।
कन्यार्थी जुहुयाल्लाजैः श्रीकामः कमलैस्तथा।
दध्ना च श्रियमाप्नोति चान्नैरन्नं घृतप्लुतैः।।२१५।।
पञ्चवर्णेन पुष्पेण जुहुयाद् घृतसंप्लुतैः।
तद्वर्णं लभते वस्त्रं त्रियामा नात्र संशयः।।२१६।।
क्षीरेण सर्पिषा वापि कमलैर्मधुनाप्लुतैः।
समृद्ध्यै जुहुयान्मन्त्री महादारिद्र्यशान्तये।।२१७।।
लक्षहोमाल्लभेच्छान्तिं घृतविल्वतिलैर्निधिम्।

अब षट्कर्मों में प्रत्येक कर्म के अनुसार हवन किये जाने वाले द्रव्यों का वर्णन करता हूँ (किया जाता है)। शान्ति कर्म में दूध, घी, तिल, क्षीर वृक्षों के काष्ठ, अमृता (गिलोय) नाम की लता अथवा खीर से हवन करना कहा गया है। पौष्टिक कर्म में घृत-युक्त बिल्व पत्र, जाती पुष्पों से हवन करना चाहिए। विवाह हेतु इच्छित कन्या की कामना वाला साधक लाजा से, ऐश्वर्य की कामना वाला कमलों, लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति)की प्राप्ति के लिए दही से तथा अत्यधिक अन्न की प्राप्ति के लिए घी से भीगे हुए अन्न के द्वारा हवन करना चाहिए। अति दरिद्रता के विनाश तथा समृद्धि (धन-सम्पत्ति की प्राप्ति तथा वृद्धि) के लिए दूध (अथवा खीर), घृत अथवा मधु (त्रिमधु) से भीगे हुए कमलों द्वारा हवन करना चाहिए। घृत, बिल्व पत्र तथा तिल के मिश्रण द्वारा एक लाख बार हवन करने से शान्ति (कर्म में सफलता) प्राप्ति होती है। पाँच रंगों के पुष्पों को घी से सिक्त करके रात्रि में हवन करने से साधक पुष्पों के वर्णानुसार वस्त्रों को प्राप्त करता है।

आकर्षणे तु हवनं प्रियङ्गु बिल्वकं फलम्।।२१८।।
[जाती पलाश कुसुमैः सैन्धवैश्चैवमेव च।
राजिका लवणैर्वापि वश्यं वा पौष्टिकोदितैः।]
वश्यार्थी जातीकुसुमैराकृष्टौ करवीरजैः।
कार्पासनिम्बैस्तक्राक्तैः साध्यकेशैरथापि वा।।२१९।।
उच्चाटने काकपक्षैरथवा मोहने बुधः।
उन्मत्तबीजैर्जुहुयाद्विषरक्तेन मारणे।।२२०।।

अजापयश्च तत्सर्पिः कार्पासास्थि नृणामपि।
तन्मांसञ्चापि साध्यस्य नखरोमगणैरपि॥२२१॥
एकीकृत्य हुनेन्मन्त्री शत्रुमारणकाङ्क्षया।
लशुनैरसृजाभ्युक्ष्य गर्दभस्य च मारणे॥२२२॥
जुहुयात् सर्षपा तैलैरथवा शत्रुमारणे।
रोहीबीजैस्तिलोपैतैरुत्सादे जुहुयाद् यवैः॥२२३॥
तुषकण्टकसंयुक्तैर्बीजै कार्पासकैरपि।
सर्षपैर्लवणोपेतैर्हुनेत् सर्वाभिचारके॥२२४॥

आकर्षण कर्म में प्रियङ्गु तथा बिल्व फल के खण्डों द्वारा (घृत सिक्त करके) हवन करना चाहिए। वश्य तथा पौष्टिक कर्म में जाती तथा पलाश पुष्पों के साथ सैन्धव नमक मिलाकर अथवा राई तथा नमक के मिश्रण से हवन करना चाहिए। वशीकरण का इच्छुक जाती पुष्पों से तथा आकर्षण में करवीर के पुष्पों द्वारा भी (घी से सिक्त करके) हवन कर सकता है।

मट्ठे में भीगे हुए कपास तथा नीम के बीजों के साथ साध्य के केशों को मिलाकर अथवा कौवे के पंखों द्वारा उच्चाटन कर्म में, धतूरे के बीजों के द्वारा मोहन के लिए तथा कुचला एवं रक्त के मिश्रण द्वारा मारण कर्म में हवन करना चाहिए।

बकरी का दूध, उसी का घृत, कपास के बीज, मनुष्य की हड्डी तथा मनुष्य का मांस एवं साध्य व्यक्ति के नाखून तथा लोम (शरीर के बाल) इन सबको मिलाकर, इनके द्वारा, शत्रु को मारने की इच्छा वाला साधक हवन करे। गदहे के रक्त से लहसुन को अभिषिक्त करके अथवा सरसों के तेल द्वारा भी मारण के लिए हवन किया जा सकता है।

उच्चाटन के लिए रोही (रोहीतक-रोहेड़ा) के बीजों को तिलों के साथ मिलाकर हवन करना चाहिए। भूसी काँटे सहित जौ, कपास बीज तथा नमक को सरसों के तेल से सिक्त करके (समस्त मिश्रण द्वारा) हवन सभी अभिचार कर्मों में करना चाहिए।

काकोलूकच्छदैः क्रूरैः कारस्करविभीतकैः।
मरीचैः सर्षपैः सिक्थैरर्कक्षीरैः कटुत्रयैः॥२२५॥
कटुतैलैः स्नुहीक्षीरैः कुर्यान्मारणकर्मणि।
आयुःकामैर्घृततिलैर्दूर्वाभिराम्रपल्लवैः ॥२२६॥
पयसाक्तैराम्रपत्रैर्ज्वरं सद्यो विनाशयेत्।
गुडूची मृत्युञ्जयेन तथा शान्तौ गजाश्वयोः॥२२७॥
जुहुयात् सर्षपैर्गौरैः सद्योरोगं हरेद् गवाम्।
वृष्टिकामो वैतसीभिः समिद्भिः पत्रकैस्तथा॥२२८॥
हुत्वा पुष्टिमवाप्नोति पुत्रजीवैस्तु पुत्रकम्।
घृतगुग्गुलुहोमेन वाक्पतित्वं प्रजायते॥२२९॥

मारण कर्म में कौवे तथा उल्लू के पंख द्वारा, बाज पक्षी के मांस द्वारा, कुचला, बहेड़ा के फलों, काली मिर्च, सरसों (अथवा सरसों के तेल), मोम (श्लोक में 'सिद्धैः' भी मिलता है अर्थात् समुद्री नमक), मदार का दूध, त्रिकटु (सोंठ, पीपर तथा मरिच) तथा सेंहुड़ (थूहर) के दूध से भी हवन (किसी एक द्रव्य द्वारा अथवा कुछ के मिश्रण द्वारा) किया जाता है।

आयु (वृद्धि) की कामना वाले साधक को घृत, तिल, दूर्वा तथा आम के पत्तों से हवन करना चाहिए। दूध से सिक्त आम्रपल्लव से हवन करने पर शीघ्र ही ज्वर का नाश हो जाता है। मृत्यु जय के लिए गुडूची द्वारा हवन करना चाहिए। गज (हाथी) तथा घोड़ों की शान्ति (रोग-मुक्ति) के लिए भी गुडूची द्वारा हवन करना चाहिए। सफेद सरसों द्वारा हवन करने से शीघ्र ही गायों का रोग दूर हो जाता है। जल-वृष्टि की आकांक्षा वाला व्यक्ति बेतस (बेंत) की समिधा द्वारा तथा पुष्टि का इच्छुक उसके पत्तों द्वारा हवन करे। पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्रजीवक द्वारा हवन करना चाहिए। वाणी (भाषा) पर अधिकार प्राप्त करने के लिए (विद्वता प्राप्ति के लिए) घृत तथा गुग्गुल से हवन करना चाहिए।

मल्लिकाजातिविद्रुमनागपुन्नागसम्भवैः ।
पुष्पैः सरस्वतीसिद्धिस्तथा सर्वार्थसाधनम्॥२३०॥
पयसा लवणैर्वापि हुनेद वृष्टिनिवारणे।
रक्तपुष्पैरपामार्गैरङ्कोलैश्च सुभद्रकैः॥२३१॥
एभिर्मधुरसं सिक्तैर्मन्त्री कुर्याच्च वश्यकम्।
वातोद्धूतैः शुष्कपत्रैः काष्ठैरशनिपातितैः॥२३२॥
उष्ट्रास्थिना वा चाङ्गारैः शत्रोरुच्चाटनं तथा।
दूर्वागुडूचीगव्येन सर्पिषा तिलतण्डुलैः॥२३३॥
अन्नैः समिद्भिः पालाशैः शान्तिं कुर्याद विचक्षणः।
(घृतैस्तु तुलसी पत्रैरैश्वर्यमतुलं भवेत्।)

मल्लिका, जाती, मूँगा, नागपुष्पी तथा नागकेशर के पुष्पों से हवन करने पर सरस्वती (विद्या) की सिद्धि तथा अन्य सभी प्रकार की कामनाओं की सिद्धि होती है।

वर्षा के निवारण के लिए दूध (अथवा खीर) तथा नमक के साथ हवन करना चाहिए। रक्तपुष्प, अपामार्ग, कंकोल तथा सुभद्रक (देवदार, पुष्प अथवा समिधा)इन सभी को त्रिमधु में सिक्त करके वश्य कर्म में हवन करना चाहिए। वायु के द्वारा उड़ाकर नीचे गिराये हुए सूखे पत्तों, आकाशीय वज्रपात द्वारा गिरे हुए वृक्ष की लकड़ियों, ऊँट की हड्डियों अथवा कोयले के द्वारा (अथवा इन सभी के मिश्रण द्वारा) हवन शत्रु-उच्चाटन के लिए करना चाहिए। शान्ति के लिए दूर्वा, गुडूची, गाय के घी (अथवा पञ्चगव्य), तिल, चावल, अन्न तथा पलाशादि यज्ञीय समिधाओं द्वारा बुद्धिमान साधक को हवन करना चाहिए।

(ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए तुलसी के पत्तों को घी से सिक्त करके हवन करना चाहिए।)

[मन्त्र महोदधि के अनुसार - शान्ति कर्म में गाय के घृत से सिक्त दूर्वा द्वारा, वशीकरण में बकरी के घृत से भीगे अनार की समिधा द्वारा, स्तम्भन में भेड़ के घृत से भीगे अमलतास की समिधा द्वारा, विद्वेषण में अलसी के तेल में भीगे धतूरं की समिधा द्वारा, उच्चाटन में सरसों के तेल से सिक्त आम की समिधा द्वारा तथा मारण में सरसों के तेल में भीगे खैर की समिधाओं द्वारा हवन करना चाहिए।]

।। मन्त्र-सिद्ध्युपायः।।

सुतीर्थे प्रजपेन्मन्त्रं पूर्वं पापविमुक्तये।।२३४।।
शुद्धदेहाय मन्त्रोऽसौ ततः सिद्धिं प्रयच्छति।
न ध्यातो नार्चितो मन्त्रः सुसिद्धो न प्रसीदति।।२३५।।
ना जप्तः सिद्धिदो मन्त्रो ना हुतः फलदो भवेत्।
पूजां ध्यानं जपं होमं यथा कर्म चतुष्टयम्।
प्रत्यहं साधकः कुर्यात् स्वयं चेत् सिद्धिमिच्छति।।२३६।।
जपस्यान्तः शिवं ध्यायेद् ध्यानस्यान्तः पुनर्जपः।
जपध्यानसमायुक्तः शीघ्रं सिध्यति मन्त्रवित्।।२३७।।

सर्वप्रथम पवित्र स्थलों (तीर्थों) में बैठकर पाप से मुक्ति तथा शरीर की शुद्धि के लिए मन्त्र का जप करना चाहिए। इसके बाद ही वह मन्त्र सिद्धि प्रदान करता है।

न (केवल) ध्यान से और न ही अर्चना से मन्त्र सिद्ध होता है तथा कृपा करता है। न ही (केवल) जप से मन्त्र सिद्धिप्रद होता है और न ही (केवल) होम से फलप्रद होता है। यदि साधक सिद्धि का इच्छुक है तो स्वयं ही उसे प्रतिदिन पूजा, ध्यान, जप तथा होम चारों कर्म यथाविधि करना चाहिए। साधक को जप के अन्त में शिव का ध्यान करना चाहिए तथा ध्यान के पश्चात् पुनः (शिव मन्त्र का भी) जप करना चाहिए। जो मंत्रज्ञ साधक इस प्रकार से जप तथा ध्यान क्रिया में संलग्न रहता है, उसे शीघ्र ही सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

।। वर्ण-संकेतः।।

ईकारः स्वरमायेति आकारः पाश उच्यते।
क्रोमङ्कुशश्च हूं क्रोधः इ विष्णुश्च परापरः।।२३८।।
आद्यः सबिन्दुकः सृष्टिवर्गान्तस्तु क्ष उच्यते।
द्वाभ्यां वा बहुभिश्चैव संयुक्तः पिण्ड उच्यते।।२३९।।
ईकारः श्रीमहामाया एकारो भगसंज्ञकः।
बिन्दुश्चन्द्रश्च दण्डोऽनुस्वारो अंकार उच्यते।।२४०।।
कलाविसर्ग तद्युक्त अकारो अः प्रकीर्तितः।
मन्दिरान्त्यश्च कालाग्निःक्रोधस्तत्त्वेति क्षः स्मृतः।।२४१।।
अन्तःस्थाः स्युर्यरलवा उष्माणः शषसहास्तथा।
बाह्यं लकार एकार इति चान्ये प्रचक्षते।।२४२।।

'ई' वर्ण को (चतुर्थ) स्वर तथा माया कहते हैं। 'आ' को पाश, 'क्रों' को अंकुश, 'हूं' को क्रोध, 'इ' को विष्णु तथा 'ई' को परापर (भी) कहा जाता है। बिन्दु सहित आद्य अर्थात् 'अं' को सृष्टि अथवा 'क' को सृष्टि तथा वर्गान्त 'क्ष' को कहते हैं। दो या दो से अधिक पदार्थों (वर्णों) के संघटन से एक द्रव्य (कूट) के रूप में स्थित पदार्थ (मन्त्र) को पिण्ड कहते हैं।

'ई' को महामाया, 'ए' को भग, तथा बिन्दु, चन्द्र, दण्ड एवं अनुस्वार 'अं' को कहा जाता है। विसर्ग को कला कहते हैं, इससे युक्त 'अकार' को 'अः' कहा जाता है। 'क्ष' को मन्दिर, अन्त्य, कालाग्नि, क्रोध तथा तत्व कहा जाता है। 'य र ल व' को अन्तःस्थ तथा 'श ष स ह' को उष्माण (वर्ण) कहते हैं।

एवं श्रीकण्ठादीनां काल्याद्यन्यासां द्वादशशक्तीनामन्त्यवर्णेन न्यासो वक्ष्यते। तत्तदेव संज्ञा तद्वर्णसंज्ञात्र स्वरे द्रष्टव्येत्यलं सूचितेन।

निहन्तव्यो यदा शत्रुर्नान्यथा च स्थितिर्मता।
इत्याकुलमनास्तद्वत् कुर्याद् ब्राह्मणवर्जितम्॥२४२॥
कर्मणा प्रबलेनैव प्रतिबन्धो विरोधिना।
यदि सिद्धिं न लभते द्विस्त्रिर्वा पुनराचरेत्॥२४३॥
दैवेनापहतोऽत्यन्तमैहिकानि न कारयेत्।
नापराधोऽस्त्यत्र किञ्चित् प्राप्नुयादुपहास्यताम्॥२४४॥
सामान्यतः परिज्ञाय प्रयोगविधिमुत्तमम्।
तत्र कर्मविशेषेण कारयेदिति नान्यथा॥२४५॥

॥ इति फेत्कारिणीतन्त्रे साधारणपटलस्तृतीयः॥

मन्त्रों की साधना के समय मन्त्र के ऋष्यादि न्यास, कर-न्यास, षडङ्ग-न्यासादि के साथ आवश्यकतानुसार श्री कण्ठादि न्यास, काली आदि द्वादश शक्तियों के मातृका न्यासों को भी करना चाहिए। इसमें ५१ मातृका वर्णों से उद्‌भूत देवता-मूर्तियों का स्वसम्बन्धित वर्णों के साथ शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों में न्यास किया जाता है। इसके ज्ञान के लिए अन्यत्र (अन्य ग्रन्थों को) देखना चाहिए।

जब शत्रु का निग्रह करने में कोई भी उपाय सफल न हो तो सभी परिस्थितियों पर भली-भाँति विचार करके निश्चयात्मक (स्थिर) बुद्धि से उसके मारण का प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु किसी ब्राह्मण के प्रति मारण का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

शत्रु के कर्म (अथवा भाग्य) की प्रबलतावश अथवा उसके द्वारा किये गये प्रतिबन्ध (अवरोध) के कारण यदि कार्य में सफलता न मिले तो उसे (प्रयोग को) दो-तीनबार करना चाहिए।

प्रबल दुर्भाग्य अथवा देवता के कोपवश जो व्यक्ति नष्ट प्राय हो गया हो उसके लिए सांसारिक फल प्राप्ति कराने वाले (शान्ति-पुष्टि कारक अथवा ध न-सम्पत्तिप्रद) कर्म नहीं करना चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं है।

अन्यथा कर्म के असफल होने पर कर्ता को उपहास का पात्र बनना पड़ सकता है।

किसी भी कर्म को करने से पहले उसके विषय में विधिवत् प्रयोग-प्रक्रिया आदि के विषय में भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करके तथा अच्छी तरह सोच विचार करके ही कर्म करना चाहिए। अन्यथा परिणाम विपरीत (कर्ता के लिए हानिप्रद) भी हो सकता है।

।। फेत्कारिणी तन्त्र में साधारण पटल नामक तीसरे पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

अथ चतुर्थः पटलः

।। कुक्कुट-मन्त्रोद्धारः।।

अथ वक्ष्ये कुक्कुटानामाख्यमन्त्रवरं तथा।
जगतामुपकारार्थं क्षपणैकगुरुर्यथा।।१।।
पुरा प्रोक्तं नान्तं षष्ठस्वरपरिगतं बिन्दुमत्कुक्कुटाख्यं
स्यैतद्वा पुनरपि च पदं वीप्सितं पूर्वकं तत्
नान्तं भूतस्वरपरिगतं वेत्ति मन्त्रोऽयमुक्तः
स्यादायुः श्रीविभवसकलसुखसौभाग्यसम्पत्प्रदायी।।२।।
प्रोक्तः पञ्चदशार्णोऽयं मन्त्रः कुक्कुटदैवतः।
तत्सर्वं देवतातेजः सर्वस्य शक्तिबृंहितम्।।३।।

अब मैं क्षपणक गुरु (**मुनि**) ने जैसा कहा है उसी के अनुसार, विश्व का उपकार (कल्याण) करने के लिए कुक्कुट नामक श्रेष्ठ मन्त्र का वर्णन करता हूँ।

पहले नान्त (**प**) को बोलकर उसे षष्ठ स्वर (**ऊ**) तथा बिन्दु (**अनुस्वार**) से युक्त करे। फिर कुक्कुटाख्य (**कोलि**) का उच्चारण करे। इस प्रकार प्राप्त पद **'पूं कोलि'** को दो बार बोले। इसके बाद **'वा'** बोलकर पुन पूर्वपद को दो बार (**पूं कोलि पूं कोलि**) बोलकर नान्त (**प**) को भूतस्वर (**उ**) से युक्त कर इसके साथ **'वा'** का संयोग करके **'पुवा'** बोलकर पूरे मन्त्र का उद्धार करे।

मन्त्र स्वरूप - **''पूं कोलि पूं कोलि वा पूंकोलि पूंकोलि पु वा।''**

कुक्कुट देवता का यह पन्द्रह अक्षरों वाला मन्त्र समस्त देवताओं के तेज तथा उनकी शक्तियों को बढ़ाने वाला है। यह अपने साधक को आयु, लक्ष्मी, वैभव, समस्त सुख सौभाग्य तथा सम्पत्ति को देने वाला है।

विशेष - यहाँ इस चौथे पटल में कुक्कुट मन्त्र पन्द्रह वर्णों का कहा (दिया) गया है। पाँचवे पटल में दिये गये श्लोकों के अनुसार उद्धार करने पर यह इक्कीस वर्णों का प्राप्त होता है। छठे पटल में पुनः यही मन्त्र उन्नीस वर्णों का दिया है। (यहाँ अनावश्यक प्रतीत होने के कारण व्याख्या करते समय मूल ग्रन्थ से इसे हटा दिया गया है) ये सभी मन्त्र अशुद्ध प्रतीत होते हैं। श्री विद्यार्णव तन्त्र के अनुसार यह मन्त्र. **'चरणायुध मन्त्र'** के नाम से अष्टादशवर्णात्मक **'आ पूंकोलि पूंकोलि वा ह्रीं पूंकोलि पूंकोलि चु वा क्रों'** रूप में है।

आगे जहाँ मन्त्र के षडङ्ग-न्यास तथा वर्ण-न्यास का वर्णन है, वहाँ इन दोनों पञ्चदशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर मन्त्रों के द्वारा न्यास विधान का उल्लेख किया जा रहा है।

।। कुक्कुट देवता-ध्यानम्।।

क्षीरोदधिमध्यगते द्वीपवरे कनकमयरत्नभूमौ
अनवरतसिकतामुक्तामणिमयमृदुपवन सुशीतले।
तत्र समण्डितममलं विपुलतरुफलितरत्नफलजातं
हैमं तालम हीनं बहुमणिविलसद्विचित्रपत्रवरम्।।४।।
तं पुनरधिष्ठितं ध्यायेदधिकोज्ज्वलाङ्गमतिशोभम्।
चूडाशोभितवक्त्रं कुक्कुटमतितीक्ष्णनखचरणम्।।५।।
वक्त्रं यस्य षडाननो गिरिसुता यस्योदरं कालहा
पृष्ठं यस्य च वामकुञ्जरमुखौ पादौ च सव्येतरौ।
पक्षौ यस्य सुरद्रुमौ मणिमयीं यः शृङ्खलां बन्धुरां
आकर्षादिगुणं करोतु स तु नः सर्वानसौ कुक्कुटः।।६।।
गौरीहस्तारविन्दे त्वनिशमधिवसन् षणमुखारूढकायः
सर्वालङ्कारदीप्तः प्रचलितचरणः पक्षविक्षेपदक्षः।
हेमाभो रत्नचञ्चुमणिमयविलसद्वृत्तकण्ठः सुरूपः
पायान्नस्ताम्रचूडः सकलजननतः सर्वसिद्धिप्रदाता।।७।।

अथवा

सर्वप्रियः सागरमध्यरत्नद्वीपस्य तालाग्रनिवासकुक्कुटः।
वेद्याभिरामोऽखिलभूषणाढ्यो वशीकरोत्यासु सुसेवितोऽमरैः।।८।।

क्षीर सागर के मध्य एक सुन्दर द्वीप है, जिसकी भूमि स्वर्ण तथा रत्नों से निर्मित है। इस द्वीप में एक उपवन है, जिसमें चारों ओर फैली हुई मुलायम बालुका मुक्तामणियों (मोतियों) के समान प्रतीत होती है। इस मनोहर द्वीप में शीतल-मन्द सुगन्ध वायु प्रवाहमान है। यह उपवन रत्नरूपी फलों से परिपूर्ण बड़े-बड़े सुन्दर अनेकों वृक्षों से सुशोभित हैं। इसमें एक विशाल सरोवर है, जिसके जल में गिरे हुए वृक्षों के पत्ते बड़ी-बड़ी मणियों के समान अद्‌भुत प्रतीत होते हैं। स्वर्ण से निर्मित सीढ़ियों के कारण यह स्वर्णमय प्रतीत होता है। इस उपवन (ताल) में विराजमान अत्याधिक उज्ज्वल (श्वेताभ) अङ्गो, सुन्दर मुख तथा चूड़ (शिखा) से शोभित अति तीक्ष्ण नखों तथा चरणों वाले कुक्कुट देवता का (इस प्रकार) ध्यान करना चाहिए।

इन कुक्कुट देवता का मुख षडानन (कार्तिकेय स्वरूप), उदर पार्वती (स्वरूप), पृष्ठ भाग कालका भी विनाश करने वाले महाकाल, दोनों वाम-दक्षिण पैर सुन्दर गणेश (स्वरूप), दोनों पक्ष कल्पवृक्ष (स्वरूप) तथा शिर पर स्थित लहराता हुआ चूड मणियों से निर्मित मुकुट (स्वरूप) है। वह (ये) कुक्कुट देवता हम सभी साध क भक्तों को आकर्षणादि गुणों से सम्पन्न करे।

श्री गौरी के हस्तकमल पर सदैव विराजमान रहने वाले, कार्तिकेय को अपने शरीर (पृष्ठ) पर बिठाने वाले, समस्त आभूषणों को धारण करने के कारण प्रकाशमान, पैरों तथा पंखों का सुन्दर ढंग से संचालन करने में प्रवीण, रत्नों से मण्डित

चोंच तथा मणिमय हारों से शोभित गोल कण्ठ वाले, स्वर्ण की आभा के समान सुन्दर स्वरूप वाले, समस्त प्राणियों (सुर, मुनि, नरादि) द्वारा नमस्कृत तथा समस्त सिद्धियों के प्रदाता देवता ताम्र चूड (कुक्कुट) हम सभी की सदा रक्षा करें, अथवा अन्य प्रकार से निम्नवत् ध्यान करे।

क्षीर सागर के मध्य स्थित द्वीप में निर्मित सुन्दर सरोवर के किनारे निवास करने वाले, समस्त अङ्गो पर आभूषणों को धारण करने के कारण सुन्दर प्रतीत होने वाले, देवताओं के द्वारा भली-भाँति पूजित तथा सभी प्राणियों के प्रिय (अथवा सभी प्राणियों का प्रिय-कल्याण करने वाले) कुक्कुट देवता जो शीघ्र ही वशीकरण करने वाले हैं, वे हमारे अभीष्ट को भी वशीकृत करें।

।। पुरश्चरणाय स्थानं विधिञ्च।।

अमुष्य पूर्वमेवार्थमेकलिङ्गे शिवालये।
देवस्य महतीं पूजां कृत्वाऽऽसीन उदङ्मुखः।।९।।
पर्वताग्रे नदीतीरे वृषशून्ये शिवालये।
पश्चिमद्वारसंयुक्ते कुर्यान्मन्त्रपुरस्क्रियाम्।।१०।।
गुरुं प्रणम्य मनसा आसनं परिकल्पयेत्।
करशुद्धिं देहशुद्धिं तालत्रयमथाचरेत्।।११।।

इस मन्त्र के द्वारा प्राप्त होने वाले पूर्वोक्त अर्थों की प्राप्ति के लिए यत्नशील बुद्धिमान साधक किसी पर्वत की चोटी पर अथवा नदी के किनारे एक लिङ्ग स्थानिक शिवालय अथवा वृष-रहित शिवालय जो पश्चिम द्वारा वाला हो, उसमें उत्तर मुख बैठकर पहले कुक्कुट देवता की विस्तृत पूजा करे। तत्पश्चात् ही मन्त्र-पुरश्चरण की क्रिया आरम्भ करे।

साधक यथोचित आसन पर विधिपूर्वक बैठकर पहले मन ही मन गुरु को प्रणाम करे। इसके बाद कर-शुद्धि तथा भूत-शुद्धि करके अस्त्र मंत्र 'अस्त्राय फट्' द्वारा तीन बार ताल देकर, चारो ओर चुटकी बजाते हुए दिग्बन्धन करे।

दिग्बन्धं कारयेत् पश्चात् विद्वानस्त्रेण तत्परम्।
प्राणायामत्रयं पश्चात् प्रणवेन प्रकल्पयेत्।।१२।।
मातृकां विन्यसेत् पूर्व पश्चान्न्यासं समाचरेत्।
पक्षिमन्त्रस्य प्रथमं पदं हृदि विनिर्दिशेत्।।१३।।
द्वितीयपदमुच्चार्य शिरसैव तु कारयेत्।
वा शिखायाञ्च विन्यस्य भवेद् वर्म तृतीयकम्।।१४।।
तुरीयपदमुच्चार्य नेत्रे तु विनियोजयेत्।
पुवाभ्यां चास्त्रसंयुक्तमङ्गषट्कं विधीयते।।१५।।
पूँ हृदयाय नमो वीप्सौ तत्त्वां शिरसे स्वाहा।
पूँ शिखायै वषट् वीप्सौ तत्त्वां कवचाय हुँ।।१६।।
पूँ वीप्सितुं नेत्रत्रयाय वौषट् पूँ करतलकरपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्।
नमः स्वाहा वषट् हुँ च वौषट् च अस्त्रान्यसेत्।।१७।।

दिग्बन्धन करने के पश्चात् साधक प्रणव 'ॐ' से प्राणायाम करके अन्तर्बहिर्मातृका न्यास करे। फिर मन्त्र के पदों द्वारा (निम्नलिखित रूप से) षडङ्ग न्यास करे।

(पञ्चदशाक्षर मन्त्र)	(अष्टादशाक्षर मन्त्र)		
पूं कोलि	आं पूं कोलि	हृदयाय नमः	(हृदि-हृदय का स्पर्श करें)
पूं कोलि	पूं कोलि	शिरसे स्वाहा	(शिरसि-शिर का स्पर्श करें)
वा	वा ह्रीं	शिखायै वषट्	(शिखायां-शिखा का स्पर्श करें)
पूं कोलि	पूं कोलि	कवचाय हुम्	(वाह्वोः-वाहों का स्पर्श करें)
पूं कोलि	पूं कोलि	नेत्रत्रयाय वौषट्	(नेत्रेषुः-नेत्रों का स्पर्श करें)
पु वा	चु वा क्रों	अस्त्राय फट्	(दिक्षु-शिर के चारों ओर दक्षिणावर्त हाथ को घुमाकर बायें करतल पर तीन ताल दें)

(श्लोक १६, १७ में दिये गये न्यास अशुद्ध हैं।)

।। मन्त्र-वर्ण-न्यासः।।

पूमादि वान्तवर्णाश्च क्रमशो विन्यसेत् सुधीः।
ललाटे बिन्दुमध्ये च चक्षुःश्रवणयोरपि॥१८॥
नासाविवरयोश्चैव आस्ये कण्ठे तथा हृदि।
जठरे नाभिदेशे च लिङ्गे गुह्ये च विन्यसेत्॥१९॥
समस्तेन तु मन्त्रेण मूर्धादिव्यापकं न्यसेत्।
एवं विन्यस्तदेहस्तु ध्यायेत् पक्षिं शिवात्मकम्॥२०॥

षडङ्ग न्यास के बाद प्रथम वर्ण 'पूं' से प्रारम्भ करके अन्तिम वर्ण 'वा' तक सभी पन्द्रह वर्णों का शरीर के भिन्न अङ्गों में क्रमशः एक-एक करके न्यास करे।

पञ्चदशाक्षर मन्त्र-वर्ण न्यास - पूं नमः ललाटे। कों नमः भ्रूमध्ये। लिं नमः दक्ष नेत्रे। पूं नमः वाम नेत्रे। कों नमः दक्ष कर्णे। लिं नमः वाम कर्णे। वां नमः दक्ष नासा विवरे। पूं नमः वाम नासा विवरे। कों नमः आस्ये (मुखे)। लिं नमः कण्ठे। पूं नमः हृदि। कों नमः जठरे (उदरे) लिं नमः नाभि देशे। पुं नमः लिङ्गे। तथा वां नमः गुह्ये।

अष्टदशाक्षर मन्त्र-वर्ण न्यास - आं नमः मूर्ध्नि। पूं नमः ललाटे। कों नमः दक्ष भ्रूप्रदेशे। लिं नमः वाम भ्रूप्रदेशे। पूं नमः दक्ष नेत्रे। कों नमः वाम नेत्रे। लिं नमः दक्ष कर्णे। वां नमः वाम कर्णे। ह्रीं नमः दक्ष नासा विवरे। पूं नमः वाम नास विवरे। कों नमः मुखे। लिं नमः कण्ठे। पूं नमः कुक्षौ (उदरे)। कों नमः नाभौ। लिं नमः लिङ्गे। चुं नमः गुदे। वां नमः जानुनोः। क्रों नमः पादयोः।

इसके पश्चात् पूरे मन्त्र से पैरों से मूर्धा (शिर) तक व्यापक न्यास करना चाहिए। इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर के न्यस्त हो जाने के बाद शिवस्वरूप पक्षी (कुक्कुट) का ध्यान करे।

।। मन्त्र-पुरश्चरणम्।।

मनसा देवमभ्यचर्य षोडशैरुपचारकैः।
विज्ञाप्य बाह्ययोगेन देवं सन्तोष्य यत्नतः।।२१।।
ध्यात्वा कुक्कुटदेवं तं जपेद् भानुसहस्रकम्।
तावच्छतं तर्पयित्वा पुरश्चर्या कृता भवेत्।।२२।।
रक्षाकरणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
कर्माणि कुर्यादिष्टानि मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्।।२३।।

ध्यान के पश्चात् पहले कुक्कुट देवता का मानस पूजन करे फिर बाह्य रूप से षोडशोपचार द्वारा पूजन करके भली भाँति देवता को सन्तुष्ट करे। पूजन के बाद पुनः ध्यान करके मन्त्र का बारह हजार जप करे तत्पश्चात् बारह सौ की संख्या मे देवता का हवन तथा तर्पण करे। इस प्रकार साधक की मन्त्र पुरश्चर्या पूर्ण होती है और वह पुरश्चर्य-कृत कहा जाता है। इसके बाद मन्त्रज्ञ साधक अपनी इच्छानुसार रक्षाकरण, विद्वेषण, स्तम्भन आदि कर्म इस मन्त्र द्वारा सम्पन्न करे।

अष्टादशाक्षर मन्त्र के पुरश्चरण के लिए मन्त्र का एक लाख जप तथा जप के दशांश भाग द्वारा त्रिमधु युक्त तिलों से हवन करना चाहिए।

।। वशीकरण-प्रयोगाः।।

आलिख्य मन्त्रेण विदर्भितं यद् साध्याक्षरं तालवनस्य पत्रे।
प्राणान् प्रतिष्ठाप्य शतं तथाष्टौ जप्त्वा धृतंचेतुस वशं प्रयाति।।२४।।
ताम्बूलं यद्यष्टोत्तरसहस्रं जप्त्वा भोक्तुं दत्तं यस्याः।
वश्या नित्यं पत्युपदेशाद्दास्यत्यर्थान् प्रार्थितभोगान्।।२५।।
मन्त्रं जप्तुमथ पञ्चशतं यः कनकाह्वयत्वं मपञ्चयुतम्।
भक्ष्यभोज्यविधिषु प्रतियोज्यं सान्वयाति वशं मरणान्तम्।।२६।।
मूलं मूलकमासतैलसहितं चित्राद्वयस्य त्वचं
पुष्पं बीजसवीर्यहस्तिकुसुमं स्वनासिकान्तर्जलम्।
पत्रं रौहिणमङ्गपञ्चकमलं तद्भाण्डयुक्तं मिथो
दण्डं वापुरुषस्य तद्धृतमिदं वश्याङ्गना मन्मथः।।२७।।

किसी स्वच्छ बड़े ताल (ताड़) के पत्ते पर मन्त्राक्षरों द्वारा विदर्भित साध्य नामाक्षरों को लिखकर, उसकी साध्य के नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करके, मन्त्र का एक सौ आठ बार जप कर उस यन्त्र को साधक अपने हृदय (अथवा गले-बाँह आदि) में धारण करे तो उसका साध्य वश में हो जाता है।

यदि साधक इस मन्त्र द्वारा एक हजार बार अभिमन्त्रित पान किसी स्त्री को खिला दे तो वह सदा के लिए साधक के वशीभूत हो जाती है तथा अपने स्वामी साधक के कहने पर उसे धन सम्पत्ति तथा इच्छित भोगों को प्रदान करती है।

जो साधक धतूरे को (बीज-चूर्ण) पाँच सौ बार अभिमन्त्रित करके, उसे किसी खाद्य-पदार्थ में मिलाकर किसी को खिला देता है, तो वह व्यक्ति मरणान्त (जीवन भर) साधक के वश में रहता है।

छोटी तथा बड़ी दोनों प्रकार की मूलियों का रस, पिसी उड़द की दाल, तेल, दोनों प्रकार के चित्रक की छाल, पुष्प, बीज, नागकेशर अथवा नागपुष्पी के रस सहित पुष्प, अपनी नासिका के अन्दर का जल, रौहिणी वृक्ष का पत्र तथा कमल का पञ्चाङ्ग सबको आपस में मिलाकर तथा मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करके यदि गुप्त रूप से किसी पात्र में रखकर पुरुष स्वयं धारण करे अथवा किसी स्त्री को दे दे तो वह स्त्री हमेशा के लिए साधक के वशीभूत हो जाती है तथा उसकी दृष्टि में वह साधक कामदेव के समान हो जाता है।

अष्टोत्तरशतं जप्तं हयमारप्रसूनकम्।
सप्तरात्रं क्षिपेद् यस्या मूर्ध्नि सा वशगा भवेत्॥२८॥
भूर्जे साध्यविदर्भितं मनुमिमं संलिख्य कौलालिकी
मृत्स्नाकल्पितपुत्तली हृदि कृता प्राणान् प्रतिष्ठाप्य च।
जप्त्वा दिनं त्रिसन्ध्यमथ तामालोड्य तुत्थारसै-
र्लिप्ते वश्यमवश्यमेव भविता चान्येषु जन्मस्वपि॥२९॥
अष्टोत्तरसहस्रं जप्तं प्रसूनकाण्डं कृताञ्जलेः शिरसा।
धारयति सर्वलोके प्रियो भवेन्नियतमेव मन्त्रिवरः॥३०॥
तद्वच्छतमखवल्ली लक्ष्मीपुष्पाणि धारयेदेवम्।
समदा भद्रकविष्णुप्रियाश्च मुसलीशमन्त्रजापेन॥३१॥
मधुकञ्च दूर्वादेवीं सहां चैव यथाधृतं तथैकैकम्।
सबलोन्मूलनाय समर्थः का कथा मनुष्येषु॥३२॥
दशरविवसुरुद्रामनुसुराक्षि विश्वत्रिकैकभागेन।
अञ्जल्यादि क्रमशः संयोज्य दशमखिलं वश्यकरम्॥३३॥

कनेर वृक्ष के पुष्पों को सात रात्रियों तक, प्रतिरात्रि एक-एक पुष्प को एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करके जिस स्त्री के शिर पर डाला जाय वह वशीकृत हो जाती है।

भोजपत्र पर मन्त्राक्षरों द्वारा विदर्भित साध्य नामाक्षरों को लिखे। फिर कुम्हार के चाक की मिट्टी से साध्य की कल्पित मूर्ति (पुतली) बनाकर उसके हृदय में उक्त भोजपत्र को स्थापित करके साध्य के नाम से उस पुत्तली की प्राण-प्रतिष्ठा करे। इसके बाद किसी पात्र में नील के पौधे का रस लेकर उसमें इस पुतली को डुबोकर अथवा पुतली पर नील पौधे का रस लेपकर उसे सामने रखते हुए प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में मन्त्र का जप करे। इस प्रयोग से साध्य व्यक्ति इस जन्म की क्या कहें आगे आने वाले अन्य जन्मों के लिए भी वशीकृत हो जाता है।

हत्था जोड़ी के पुष्प भाग को (अथवा हत्था जोड़ी के साथ केसर के पुष्प को) कुक्कुट मन्त्र द्वारा एक हजार बार अभिमन्त्रित करके जो मनुष्य (मन्त्रज्ञ साधक) अपने शिर पर धारण करता है, वह अवश्य ही सभी मनुष्यों का प्रिय हो जाता है।

इसी प्रकार इन्द्रायण की लता अथवा लौंग को हत्था जोड़ी के साथ शिर पर धारण करने से वशीकरण (सर्वजन प्रियता) होता है।

इन्द्रायण, लौंग, समदा (कस्तूरी अथवा धतूरा), देवदार, तुलसी, मुसली, महुआ, दूर्वा, सहदेई, केतकी (अथवा घृतकुमारी) इन सभी में से किसी भी एक को (उसके पुष्प को) पूर्ववत् हत्थाजोड़ी के साथ धारण करने वाला मनुष्य सर्व वश्य करने में समर्थ है, सामान्य मनुष्य की क्या बात है। इन दशों पदार्थों के क्रमशः दश, बारह, आठ, ग्यारह, चौदह, तैंतीस, दो, बारह, तीन तथा एक भाग लेकर प्रत्येक को क्रमशः हत्था जोड़ी के साथ संयुक्त करके पूर्ववत् मन्त्र का जप करे। इस प्रकार सभी दशो पदार्थ सम्पूर्ण विश्व का वशीकरण करने के योग्य हो जाते हैं।

प्रत्येकैकं शतमष्टौ जप्त्वा संयोज्य दशकमपि पिष्ट्वा गुटकीकृत्य सहस्राष्टं जप्त्वा गुटिकया रचिता तिलकक्रिया सुनारीनरलोकरञ्जनार्थमिदं कपिलाघृतदीपितया तद्वत्कर्पूरगर्भया वर्त्त्या कज्जलमुद्धृतमिव तत्कर्पूरयुतम्। सहस्रपरिजप्तं दिनमनुदिननयनयुतं कुर्यादखिललोकं वश्यम्। इति वशीकरणम्।

उपर्युक्त दशों पदार्थों को, क्रमशः एक-एक करके एक सौ आठ बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करके, परस्पर मिश्रित कर भली-भाँति महीन पीसकर गोली की भाँति बना लें। पुनः एक हजार आठ बार मन्त्र का जप करने के पश्चात् इस गोली (गुटिका) के द्वारा तिलक करें। जो साधक इस प्रकार के तिलक से युक्त होता है उससे सभी सुन्दर स्त्री-पुरुष प्रसन्न रहते हैं तथा उसका प्रिय करते हैं।

किसी दीप-पात्र में कपिला गाय का घृत भरकर, उपर्युक्त पदार्थों के चूर्ण तथा कपूर से गर्भित कपास की वर्तिका (वाती) बनाकर, उसे दीपक में रखकर, प्रज्वलित करके काजल तैयार करें। फिर इस काजल में कपूर मिलाएं। एक हजार बार मन्त्र जपने के बाद जो साधक प्रतिदिन इस काजल को अपने नेत्रों में लगाता है, सम्पूर्ण लोक (प्राणि-समुदाय) उसके वशीभूत हो जाता है। यहाँ तक वशीकरण (प्रयोगों) का वर्णन किया गया।

।। आकर्षण-प्रयोगाः।।

आत्मानं कुक्कुटं ध्यात्वा स्वकीयगणशक्तया।
साध्यां शृङ्खलया कण्ठे बध्वाकर्षमनुं जपेत्।।३४।।
सहस्रमध्यरात्रे तु रात्रित्रयमतन्द्रितः।
तुरीयकुक्कुटस्यान्ते साध्यनाम च कर्म च।।३५।।
जपेत् संयोज्य वश्यार्थी काम्येषु सकलेष्वपि।

स्वयं का कुक्कुट देवता रूप से ध्यान करके, साध्या (वह स्त्री जिसके आकर्षण हेतु प्रयोग किया जा रहा है) को गले में जञ्जीर बाँधकर, साधक अपनी सम्पूर्ण मानसिक शक्ति से उसे खींचते हुए मन्त्र का जप करे। मन्त्र में चतुर्थ कुक्कुट अर्थात् कोलि पद के पश्चात् साध्य नाम तथा कर्म का संयोजन करके, तीन रात्रियों तक मध्य रात्रि में प्रतिरात्रि एक हजार की संख्या में जप उस साध्य के आकर्षण की इच्छा रखते हुए करे। अन्य सभी प्रकार के आकर्षण प्रयोगों में क्रिया इसी प्रकार करनी चाहिए।

यामारभ्य जपेदेवं योषितं मदनालसाम्॥३६॥
स्विद्यत्स्वेदार्द्रवसना मदनाकुलचेतसा।
उत्सिवन्नगुह्यजघना शिथिलांशुकभूषणा॥३७॥
चलत्पादप्रविन्यासा स्फुरद्रोमाञ्चकञ्चुका।
कामानलोष्णनिःश्वासा शोषिताधरपल्लवा॥३८॥
विकीर्णकेशपाशा च प्रेरिता घूर्णितेक्षणा।
रचिताञ्जलिरायाति सुखेनास्यालयं निशि॥३९॥

उपर्युक्त प्रयोग में साध्या के रूप में जिस स्त्री के नाम का प्रयोग किया गया है, वह इस प्रयोग के प्रभाव से मन में उत्पन्न तीव्र कामेच्छा के कारण अत्यन्त व्याकुल चित्त वाली हो जाती है। शरीर से पसीना निकलने लगता है, जिससे उसके वस्त्र भीग जाते हैं।, उसका गुह्याङ्ग तथा जघन प्रदेश आर्द्र हो जाते हैं। वस्त्र तथा आभूषण ढीले पड़ जाते हैं, चलते समय उसके पैर व्यवस्थित न पड़कर इधर-उधर पड़ते हैं। शरीर में सिहरन सी उत्पन्न होने के कारण रोएं खड़े हो जाते हैं तथा स्तनों में कम्पन (स्फुरन) सी होने लगती है। शरीर में उत्पन्न तीव्र कामाग्नि के कारण मुख से गरम-गरम सांसें निकलती है, जिससे उसके अधरोष्ठ सूख से जाते हैं। ऐसी दशा को प्राप्त वह स्त्री बालों को बिखराए (खोले) हुए तथा चञ्चल नेत्रों से इधर-उधर देखती हुई, कामवासना से प्रेरित होकर हाथ जोड़े हुए स्वयं ही प्रसन्नतापूर्वक रात्रि में साधक के गृह में चली आती है।

साध्याख्यानविदर्भितं मनुमिमं ताम्बूलपत्रोदरे
लेखन्या प्रविलिख्य कर्मसहितं प्राणान् प्रतिष्ठाप्य च।
जप्त्वाष्टौ शतमर्कदुग्धजनिता लेपे त्रिरात्रान्तरे
तप्तं दीपशिखाग्निना स्वयममूर्वश्योर्वशी चाश्रयेत्॥४०॥

साधक सर्वप्रथम पान के सामने वाले भाग पर मन्त्र से विदर्भित साध्य-नाम तथा कर्म लिखे। फिर साध्य के नाम से ही इसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके इस पर मदार के दूध का लेप करे। इसके बाद रात्रि में मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करते हुए इस पान के पत्ते को दीपक की शिखाग्नि द्वारा तपाये। इस प्रयोग को तीन रात्रियों तक करे, इससे सामान्य स्त्री ही नहीं साक्षात् उर्वशी भी आकर्पित होकर साधक के आश्रित हो जाती है। प्रत्येक रात्रि मे तपाने से पहले अर्क दूध का पत्ते पर लेप करना चाहिए।

भूर्जे मन्त्रमिदं विलिख्य सकलं साध्याह्वयाढ्यं पुटं
प्राप्तप्राणमथाष्टकोत्तरशतं जप्तं त्रिरात्रं पुनः।
क्षौद्रक्षीरगुडेष्विदं पृथगपि प्रक्षिप्य मन्त्रं जप-
न्नाकर्षत्यचिरादभीष्टवनितां नागादिलोकादपि॥४१॥

भोजपत्र पर इस कुक्कुट मन्त्र से सम्पुटित करके साध्य (स्त्री) का नाम लिखकर उसकी साध्य के नाम से ही प्राण-प्रतिष्ठा करे। इसके बाद उसे स्पर्श करते हुए एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करे। पुनः तीन रात्रियों में क्रमशः एक-एक रात्रि

को उस भोजपत्र को शहद, दूध तथा गुड़ में डालकर (प्रथम रात्रि को शहद, द्वितीय को दूध तथा तीसरी रात्रि को गुड़ में डालकर) एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करे। अथवा तीनों पदार्थों के मिश्रण में डालकर तीन रात्रियों में जप करे। इस प्रयोग से साधक अपनी अभीष्ट मानव स्त्री ही नहीं नागादि लोक की स्त्रियों का भी आकर्षण कर सकता है।

आलिख्यैव शरावके मनुमिमं तन्नामकर्मान्वितं
रात्रौ रोचनया प्रणीतपवनं जप्त्वा च साष्टौ शतम्।
तस्यानाभिमुखाङ्गजन्यभवनं संतापयन् खादिरे
वह्नौ सा तदनङ्गवेगविवशा योषा समायाति च।।४२।।
नाभिमात्रजले स्थित्वा साध्यनामविदर्भितम्।
त्रिसहस्रञ्च त्रिदिनं इष्टमाकर्षयेद् ध्रुवम्।।४३।।

मिट्टी के शरावे (प्याले जैसा पात्र) में गोरोचन से साध्य (स्त्री) की काल्पनिक आकृति बनाकर उसके ऊपर कुक्कुट मन्त्र को साध्य-नाम-कर्म सहित (विदर्भ विधि के अनुसार) लिखकर उसकी साध्य के नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करे। फिर रात्रि में मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करते हुए खैर की लकड़ी से उत्पन्न अग्नि पर इस यन्त्र को आकृति की नाभि से लेकर योनिमुख पर्यन्त तपाये। इस क्रिया से वह साध्या स्त्री काम-वेग से अत्यन्त विवश हो तीव्र गति से साधक के पास चली आती है।

किसी सरोवर अथवा नदी में नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर यदि साधक साध्य-नाम विदर्भित कुक्कुट मन्त्र का तीन हजार जप प्रतिदिन एक हजार के हिसाब से तीन दिनों में करे तो उसका साध्य निश्चित ही आकर्षित होकर उसके समीप आ जाता है। यहाँ तक आकर्षण प्रयोग का वर्णन हुआ।

।। विद्वेषण-प्रयोगा:।।

कपिरोम हिङ्गुदार्वी खरचर्मणि चूर्णयेत्।
मन्त्रं जप्तं सप्तवारं नामकर्मसम्पुटितम्।।४४।।
त्रिसहस्रं पुनस्तेन स्निग्धयोरन्तराऽन्तरा।
धूपो भवति विद्विष्टौ स्निग्धावपि विभिद्यत:।।४५।।

गठिवन की मञ्जरी, हींग तथा दारु हल्दी इन तीनों को गधे (अथवा गैंडे) के चमड़े पर रखकर महीन चूर्ण करके, साध्य-नाम-कर्म सम्पुटित (अथवा रोधित) मन्त्र द्वारा इसे सात बार अभिमन्त्रित करें। इसके बाद पुन: मन्त्र का तीन हजार जप करके जिन दो प्रेमियों में विद्वेषण करना अभीष्ट हो उन दोनों के मध्य में मन्त्र पढ़ते हुए उस अभिमन्त्रित चूर्ण को धूपित करें। इससे दोनों व्यक्ति कितने ही प्रेमी क्यों न हों उनके मध्य भेद उत्पन्न हो जाता है तथा वे परस्पर द्वेष करने लगते हैं।

तालपत्रे लिखेन्मन्त्रं नामकर्मविदर्भितम्।
विषलिप्तं द्विधा कृत्वा निखनेत् सिन्धुतीरयो:।।४६।।
मन्त्रेणानेन कर्मान्तं खादिराग्नौ सहस्रकम्।
हुनेदन्योन्यविद्वेषो भवेतामपि रागिणो:।।४७।।

जिन दो व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों के मध्य विद्वेष उत्पन्न करना है उनके नाम तथा कर्म विदर्भित अथवा संरोधित मन्त्र को ताड़ पत्र पर लिखकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके तीन हजार बार मन्त्र का जप करे। फिर उस ताड़ पत्र पर कुचला का लेप करके, उसे दो भागों में विभक्त कर समुद्र के किनारे जमीन में गाड़ दें। इसके बाद खैर की लकड़ी से अग्नि जलाकर उपर्युक्त मन्त्र द्वारा एक हजार बार हवन करें। इस प्रकार अत्यधिक प्रेम होने पर भी उनके मध्य एक दूसरे के प्रति विद्वेष उत्पन्न हो जाता है। यहाँ तक विद्वेषण प्रयोगों का वर्णन हुआ।

।। स्तम्भन-प्रयोगाः।।

आलिख्यामे शरावे च निशया मन्त्राक्षरैः पुटितम्।
मन्त्रं स्थापितपवनं सहस्रजप्तं चतुष्पथे निखनेत्।।४८।।
स्तम्भनमेतदवश्यं भविता जगताञ्च नात्र सन्देहः।

हल्दी के द्वारा मिट्टी के शरावे पर मन्त्राक्षरों से साध्य को सम्पुटित करके लिखें। फिर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा साध्य के नाम से करके मन्त्र का एक हजार जप (सम्पुट युक्त) करें। तत्पश्चात् उस शराव को चौराहे पर गाड़ दें। इससे अवश्य ही साध्य का स्तम्भन हो जाता है। इस प्रयोग से सारे जगत का भी निःसन्देह स्तम्भन किया जा सकता है।

कृत्वा प्रतिकृतिरथवा श्मशानाङ्गारकेशववसनया सम्यगधिष्ठितपवनां हृद्गते नाम्नीं समन्त्रललाटां रसनास्थितपवनां सहस्रजप्तं तदुल्कया रसनां दग्धां कृत्वा निखनेत्। श्मशानदेशे सपदि वाक्स्तम्भः।

साध्य (जिस व्यक्ति का स्तम्भन करना अभीष्ट हो) की काष्ठादि से पुतली बनाकर अथवा शव के वस्त्र पर चिता के कोयले से साध्य की आकृति बनाकर उसके मस्तक (ललाट) पर चिता के कोयले से ही कर्म सहित मन्त्र तथा हृदय पर साध्य का नाम लिखकर उसकी विधिवत् प्राण-प्रतिष्ठा करे। पुतली की जिह्वा पर वायुबीज 'यं' भी लिखना चाहिए। इसके बाद मन्त्र का एक हजार जप करके पुतली का शत्रु रूप से ध्यान कर उसकी जिह्वा को जलती हुई चिता की लकड़ी से जलाकर उसे (पुतली अथवा वस्त्र को) उसी श्मशान में गाड़ दे। इससे शीघ्र ही साध्य की जिह्वा (वाणी) का स्तम्भन हो जाता है।

आलिख्य चेष्टकायांयुगले मन्त्रं साध्यनामपुटितं निशया निशीथकाले सहस्रं जप्तं प्रतिष्ठितप्राणं बन्धनमतितीक्ष्णतरम्। स्तम्भनमतितीक्ष्णाम्बुनिः क्षिप्तम्।

शव के वस्त्र पर साध्य की दो आकृतियाँ अथवा साध्य-नाम नक्षत्र-वृक्ष के काष्ठ से उसकी दो पुतलियाँ बनाकर उन पर हल्दी के द्वारा अर्धरात्रि में मन्त्राक्षरों से सम्पुटित करके साध्य नाम को लिखकर उनकी प्राण-प्रतिष्ठा करके मन्त्र का एक हजार बार जप करे। इसके बाद उन दोनों को आपस में कसकर बाँध करके भिलावे के तेल में डाल दें। इससे साध्य का स्तम्भन हो जाता है।

लिखितमन्त्रचितामयकीलकं सहितकर्म समाहितमारुतम्।
कृतजपं त्रिसहस्रकसंख्यया पथि खनेदथ याननिवारणम्।।४९।।
विहितनिम्बतरौ रिपुनामयुङ्मनुमिमं निशया कृतनामकम्।
नवसहस्रजपाद् वसुसाधिपं पथि खनेदथ सैन्यनिरोधकम्।।५०।।

चिता की लकड़ी से कील बनाकर, उस पर मन्त्र द्वारा साध्य-नाम-कर्म को सम्पुटित करके लिखे। इसके बाद उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके कुक्कुट मन्त्र का तीन हजार जप करके उसे जिस मार्ग पर गाड़ दिया जाता है, उस मार्ग से जाने वाले रथादि यानों का स्तम्भन हो जाता है।

इसी प्रकार नीम वृक्ष के काष्ठ की कील पर साध्य-नाम-कर्म सम्पुटित मन्त्र को हल्दी से लिखकर, मंत्र का नव हजार जप करके यदि इस कील को राजा की सेना के गमन मार्ग पर गाड़ दिया जाय तो, उसकी सेना का स्तम्भन हो जाता है।

।। उच्चाटन-प्रयोगाः।।

अङ्गारकं पितृभुवो रिपुनैधनर्क्षे
जप्त्वा विनिर्मितमिदं पितृभूगताग्नौ।
दग्धवा च तद्भवविमिश्रितमत्र शत्रो-
रालिख्यनाम मनुकर्मयुगस्य मूर्ध्नि।।५१।।
क्षिप्तं उच्चाटयति चाष्टसहस्रजप्तं
जप्त्वा शिवे कुजदिने सचतुर्दशीके।
कर्मान्वयाढ्यमनुना त्रिसहस्रजप्तं
दत्तं विधाय रिपुमूर्ध्नि विनिक्षिपेत् तम्।।५२।।
उच्चाटयेद् ध्रुवमसौ रिपुमाशु चैतद्।

शत्रु के मृत्युकारक नक्षत्र में, श्मशान (चिता) की अधजली लकड़ी के द्वारा कील बनाकर उस पर (यथा - साध्य नाम + मन्त्र) साध्य-नाम-कर्म सहित मन्त्र को लिखकर, मन्त्र जपते हुए उसे चिता की अग्नि में जलायें। फिर आठ हजार बार मन्त्र का जप करके, उस कील से प्राप्त भस्म को अभिमन्त्रित करके शत्रु के शिर पर डाल दे। इससे शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। यदि मंगलवार युक्त चतुर्दशी तिथि (कृष्ण पक्ष की) हो तो उस रात्रि में साध्य-नाम-कर्म सहित मन्त्र का तीन हजार जप करके पूर्वोक्त भस्म को शत्रु के शिर पर डाल दे तो निश्चित रूप से शीघ्र ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है।

अङ्गारकं पितृभुवो रिपुपौषनर्क्षे।
जप्त्वा विनिर्मितमिदं रिपुनाम तस्मिन्
मन्त्रोपमं पुटितमष्टसहस्रजप्तम्।।५३।।
तद्वैरिवेश्मनि विनाशकरं विकीर्णम्

उपयुक्त रूप से ही अर्ध दग्ध चिता काष्ठ से, शत्रु के मृत्यु-नक्षत्र में मन्त्र जपते हुए कील बनाकर तथा उस पर मन्त्र से सम्पुटित साध्य-नाम-कर्म को लिखकर

तथा इसी रूप में मन्त्र के एक हजार आठ बार (अथवा आठ हजार बार) जप द्वारा उस कील को शत्रु के घर में फेंक दे (अथवा उस कील को पूर्ववत् जलाकर उसके अभिमन्त्रित भस्म को शत्रु के घर में फेंक दे)। इससे शत्रु का विनाश हो जाता है।

कृत्वा श्मशानस्य चतुष्टयं किलन्।
जप्त्वा सकर्माह्वयसंपुटं मनुं
सहस्रजप्तं निखनेद् द्विषां गृहे।।५४।।
तद्द्वारि चोच्चाटनमाशु जायते।

पूर्ववत् अर्धदग्ध चिताकाष्ठ से चार कीलें बनाकर उस पर मन्त्र सम्पुटित नाम-कर्म को लिखकर, पूर्ववत् ही मन्त्र का एक हजार जप करके उन्हें द्वेष करने वालों के घर तथा द्वार पर गाड़ दे। इससे शीघ्र ही उनका उच्चाटन हो जाता है।

निरस्य काकनिलयं पितृभूगताग्नौ
जप्त्वा च तद्भसितमिश्रितमन्त्रशत्रोः।।
आलिख्य नाम मनुकर्मयुगस्य मूर्ध्नि
प्रोच्चाटयेद् रिपुमष्टसहस्रजप्तम्।
जप्त्वा परे कुजदिने सचतुर्दशीके
कर्मान्वयाढ्यमनुना च सहस्रजप्तम्।।
दत्तं विधाय रिपुमूर्ध्नि विनिक्षिपेच्च
उच्चाटयेद्रिपुमसौ ध्रुवमाशु चैतत्।

कौवे के घोसले को निकाल कर उसे श्मशान की चिताग्नि में मन्त्र जपते हुए जलाकर भस्म बना ले। इसके बाद मन्त्र पूर्व साध्य नाम कर्म युक्त मन्त्र का आठ हजार बार जप करके शत्रु के मस्तक (शिर) पर फेंक दे। इससे उसका उच्चाटन हो जाता है अथवा मङ्गलवार से युक्त चतुर्दशी के दिन पूर्ववत् भस्म तैयार करके तथा पूर्ववत् ही मन्त्र का एक हजार जप करके उस शत्रु के शिर पर फेंक दे। इससे उस शत्रु का शीघ्र ही उच्चाटन हो जाता है।

श्मशानजोल्कारिपुनामकर्म
संपृक्तमन्त्रं च सहस्रजप्तम्।।५७।।
द्वारे क्षिपेदुल्कमुकमस्य शत्रोरुच्चाटयेत् सप्तदिनान्तराले।
कीलं चिताकाष्ठमयञ्च नाम कर्मान्वितं साष्टसहस्रसंख्यम्।।५८।।
मन्त्रेण जप्तं निखनेदरातिर्गेहे तदुच्चाटयति क्षणेन
उन्मत्तरसालोडितचितामसीं काकपक्षेण।
कारस्करफलकान्तरमनुं लिखेत् कर्मनामसंपुटितम्।।५९।।

प्रस्थाप्य प्राणानस्मिन् द्विषतोऽष्टविषानुलिप्तसंसिद्धम्।
तत्रैव सहस्रजप्तं श्मशानदेशे चतुष्पथे वापि॥६०॥
निखनेदरिभवने वा तन्मस्तके वा रिपोः क्षिप्तम्।
देशान्तरमथवाऽसौ यास्यति लोकान्तरं सदा रोगी॥६१॥

इत्युच्चाटनम्॥

इति चतुर्थः पटलः॥

श्मशानस्थ-चिता से प्रज्वलित लकड़ी को लेकर, उसे साध्य-नाम-कर्म युक्त मन्त्र के एक हजार जप द्वारा अभिमन्त्रित करके, जिस शत्रु के द्वार पर इसे फेंक दिया जाता है, सात दिनों के मध्य ही उसका उच्चाटन हो जाता है।

चिता काष्ठ की कील बनाकर उसे पूर्ववत् मन्त्र के एक हजार आठ बार जप द्वारा अभिमन्त्रित करके जिस शत्रु के द्वार पर गाड़ दिया जाता है, उसका शीघ्र ही उच्चाटन हो जाता है।

धतूरे के रस में चिता के कोयले का चूर्ण मिलाकर स्याही बना करके, कौवे के पंख से कुचला वृक्ष की छाल (अथवा पत्ते) पर मन्त्र-सम्पुटित साध्य-नाम-कर्म को लिखकर, शत्रु के नाम से उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके, उस पर अष्ट विषों का लेप करके फिर उसको आग में जलाकर भस्म बना ले। फिर वहीं बैठ करके अथवा श्मशान अथवा चौराहे पर बैठकर मन्त्र का एक हजार जप करे। इसके बाद इस भस्म को शत्रु के घर में (द्वार पर) गाड़ दे अथवा शत्रु के मस्तक पर छिड़क दे। इस प्रयोग से शत्रु या तो दूसरे देश (स्थान) में चला जाता है अथवा उसकी मृत्यु हो जाती है अन्यथा वह सदा के लिए रोगी हो जाता है।

॥ फेत्कारिणी तन्त्र में कुक्कुट मन्त्र विवरण नामक चौथे पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई॥

अथ पञ्चमः पटलः

।। मारण (मोहन वा) प्रयोगः।।

मन्त्रं साध्यस्य नामप्रतिपुटितमथालिख्य तालस्य पत्रे
पुत्तल्योर्निधायार्पितपवनमनोर्जपमष्टौ सहस्रकम्।
वह्नावुन्मत्तदीप्ते पितृवनजनिते तीक्ष्णतैलेन लिप्तं
हुत्वा छित्वा निशार्धे त्रिदिनपरिमितं मोहयेन्मारयेद्वा।।१।।

किसी ताड़पत्र पर साध्य (शत्रु) के नाम को पूर्वोक्त अथवा आगे कहे गये कुक्कुट मन्त्र से सम्पुटित करके लिख कर उस पत्र को मनुष्याकार रूप देकर (उसको पुतली जैसा बनाकर) उसमें शत्रु के नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करे। [अथवा शत्रु (साध्य)के जन्म-नक्षत्र-वृक्ष के काष्ठ से उसकी पुतली बनाकर उसके अन्दर (हृदय स्थान में) मन्त्रलिखित ताड़ पत्र को रख कर के प्राण-प्रतिष्ठा करे।] इस पुतली को सरसो (अथवा भिलावा) के तेल से लिप्त करके सम्पुट युक्त मन्त्र का आठ हजार जप करे। तत्पश्चात् इस पुतली के पचास खण्ड करके, अर्धरात्रि में श्मशान में धतूरे की लकड़ी से प्रज्वलित श्मशाग्नि में मन्त्रोच्चारण सहित एक-एक खण्ड से हवन करे। इस प्रयोग को तीन दिनों तक क्रम से करने पर साधक शत्रु को मोहित (पागल) कर देता है अथवा उसे मार डालता है।

।। शत्रु-अङ्ग-नाशक प्रयोगः।।१।।

साध्याख्यवृक्षकृतरूपमधिष्ठितेन
जप्तं सहस्रमपि कीलयति श्मशाने।
शस्त्रेण दारयति साधितमन्त्रमङ्गं
यद्यद्रिपोरपि विनश्यति तत्तदङ्गम्।।२।।

साध्य (शत्रु) व्यक्ति के जन्म-नक्षत्र-वृक्ष की लकड़ी से उसकी पुतली बनाकर उसमें शत्रु के नाम से ही प्राण-प्रतिष्ठापन करे। इसके बाद श्मशान में बैठकर चिता की लकड़ी से बनी कील द्वारा उस पुतली को स्पर्श करते हुए अथवा कील द्वारा जमीन के ऊपर उसे गाड़ करके मन्त्र का एक हजार जप करे। तत्पश्चात् किसी शस्त्र से इच्छानुसार पुतली के अङ्गो को काटे। इस प्रकार पुतली का जो-जो अङ्ग काटा जायगा, शत्रु का वह-वह अङ्ग नष्ट हो जायगा।

।। शत्रु-मारण-प्रयोगः।।

वैरीप्रसवमृत्तिकापदरजः संयुक्तचक्री मृदा
कृत्वा पुत्तलिकाञ्च नाम हृदये शीर्षे पदे वा लिखेत्।

अङ्गारै पितृभूगतैर्मनुभिमं तन्नामकर्मान्वितं
तस्य न्यस्य हृदीदमाशु पवनं जप्यात् सहस्रद्वयम्।।३।।
संछिद्यैव मकुञ्चितेन शतधा शस्त्रेण तां पुत्तलीम्
याम्याशाभिमुखो विभीतककाष्ठैर्दीप्ते श्मशानानले
तैलं तीक्ष्णभवं विरिच्य जुहयान्नैधन्यऋक्षेऽथवा
मन्त्री प्रेतपतेः पुरं द्रुतमसौ यास्यत्यरातिर्ध्रुवम्।।४।।

शत्रु ने जिस स्थान पर मूत्र त्याग किया हो, उस स्थान की मिट्टी, उसके पैर की मिट्टी तथा कुम्हार के चाक की मिट्टी इन तीनों मिट्टियों को मिलाकर शत्रु की पुतली बनाये। उस पुतली के हृदय, पैर तथा शिर पर क्रमशः साध्य का नाम, कर्म तथा मूल-मन्त्र को चिता के अङ्गार (कोयले) से लिखे। इसके बाद पुतली की प्राण-प्रतिष्ठा करके, उसे सरसो (अथवा भिलावे) के तेल से लिप्त करके मन्त्र का एक (दो या तीन) हजार जप करे। तत्पश्चात् उस पुतली के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा सौ खण्ड करके, बहेड़ा की लकड़ी से प्रज्वलित श्मशान की अग्नि में, रात्रि के समय दक्षिणाभिमुख होकर, उन खण्डों द्वारा हवन करे। शत्रु के निधन नक्षत्र (जन्म नक्षत्र से ७, १६ अथवा २५ वें नक्षत्र) वाले दिन ऐसा करने से शीघ्र ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

।। शत्रु-मारण-प्रयोगः।।२।।

अङ्गारवारे कुलिकोदय तु रिपो-
रालिख्य पत्रे प्रतिमाप्रतिष्ठाम्।
प्राणान् प्रतिष्ठाप्य विषानुलिप्तां
श्मशानभूमौ जुहुयाद् विनाश्यम्।।५।।

मंगलवार के दिन कुलिककाल (दशवें मुहूर्त) में ताड़-पत्र पर शत्रु की प्रतिमा बनाकर (उस पर साध्य-नाम-कर्म सहित मन्त्र लिखकर) उसकी शत्रु के नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् इस पर कुचला विष का लेप लगाकर, मन्त्र का एक हजार जप करके, श्मशान की अग्नि में इसके द्वारा (इसका खण्ड-खण्ड करके) हवन करे। इस प्रयोग से शत्रु का विनाश (मरण) हो जाता है।

।। अङ्ग-छेदन सहित शत्रु-मारण-प्रयोगः।।

रिपोः प्रतिकृतिं कृत्वा गोमयेन च तद्धृदि।
तालपत्रे समालिख्य मनुमाख्या विदर्भितम्।।६।।
विन्यस्य तत्प्रतिकृतेः स्थाप्योपरि च राजतम्।
मृन्मयं वा घटं सम्यग् गोमयेन च पूरितम्।।७।।
तत्रापि निक्षिपेत् पत्रं लिखिताख्यमनुं बुधः।
वैरिप्राणान् प्रतिष्ठाप्य तस्मिन् गोमयवारिणि।।८।।
त्रिसन्ध्यान्ते जपेत्तस्मिन् छाया यावद् भविष्यति।
दृष्ट्वा तां गोमयजले रिपुच्छायां समाहितः।।९।।
शस्त्रेण छेदयेदङ्ग तस्य स्वहृद्भीप्षितम्।
तत्तद्विनश्यति रिपोः सप्ताहान्नात्र संशयः।।१०।।

हृदयोदरकण्ठेषु विच्छिन्ने भविता मृतिः।
शिरोरोगो भवेत्तस्य व्रणे शस्त्रेण मस्तके॥११॥

गाय के गोबर के द्वारा शत्रु की प्रतिमा बनाकर, ताड़पत्र पर शत्रु के नाम विदर्भित मूल मन्त्र को लिखकर, उसे प्रतिमा के हृदय में स्थापित करके, उस प्रतिमा के ऊपर गोबर तथा जल से भरा हुआ चाँदी अथवा मिट्टी का कलश स्थापित करे। इस कलश में भी अन्य ताड़ पत्र पर पूर्वोक्त रूप से शत्रु नाम तथा मन्त्र लिखकर, डाल करके, उसमें (कलश में) शत्रु के नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। इसके बाद प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में इस कलश का स्पर्श करते हुए मूल मन्त्र का सौ-सौ बार जप करे। जैसे ही गोबर युक्त जल में शत्रु की छाया दिखाई पड़े तुरन्त ही साधक कुम्भ के नीचे स्थित प्रतिमा का अपनी इच्छानुसार जो-जो अङ्ग चाहे काट दे। ऐसा करने से शत्रु का वह-वह अङ्ग एक सप्ताह में निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है। प्रतिमा का हृदय, उदर अथवा कण्ठ को काटने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। उसके शिर में काँटा चुभाने से उसे शिरो रोग व्रणादि हो जाता है। (हृदय में काँटा चुभाने से मानसिक पीड़ा तथा पैरों में काँटा चुभाने से पैर का रोग हो जाता है।)

शुण्ठीं चित्रकहिङ्गुं च मरीचारोहिपिप्पली।
मन्दारधूममाकन्दं प्रोक्तमेतद्विषं बुधैः॥१२॥
काकमाचीमामलकीमौदुम्बरजम्बुखदिरकृष्णा च।
वंशपिप्पलनागौ रौहिणनलिनसमुद्रसारिकाः॥१३॥
हरिद्रानिम्बकुटजविकङ्कतकदम्बवकुलत्वक्संज्ञाः।
वञ्जुलपनसार्कशमी कदम्बनिम्बं प्रकाशमूलञ्च॥१४॥

उपर्युक्त श्लोक अशुद्ध ही नहीं अस्पष्ट तथा अपूर्ण भी है। इसके पूर्व के श्लोकों को कुछ सीमा तक शुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु श्लोक १४ से आगे के सभी श्लोकों को जैसे के तैसे रख दिया गया है। ये सभी श्लोक भी अशुद्ध तथा अस्पष्ट ही हैं।

श्लोक १२ में अष्ट विषों के नाम हैं, इसे पटल १७ में देखें। श्लोक १३ तथा १४ में नक्षत्र-वृक्षों के नाम दिये गये हैं, इसे पटल १६ में देखें। वैसे सौंठ, चित्रक, हींग, मरिच, कुटकी, पिप्पली, गुहधूम तथा शूरन (जिमीकंद) को भी अष्ट विष कहा जाता है।

॥ विविध काम्य-प्रयोगाः॥

ततः सहस्रं मनुमादराद् जपति यः।
स रमाभवनं भवेज्जपविधौ कपिमांसीकुसुमैः॥१५॥
अष्टोत्तर मनुमिमं प्रजपेत्सहस्रं ध्याये-महेशमनु कुक्कुट रूपमेनम्।
शश्यर्धरस्य भवनं च मनोरथाद्यैरापूर्यंते बहुविधैरपि वत्सरेण॥१६॥

जो मनुष्य नित्य लक्ष्मी के मंदिर में विधिपूर्वक कपि (गंठिवन), मांसी (जटामांसी अथवा मुरामांसी) आदि सुगन्धित द्रव्यों तथा (कनेर आदि के पीले) पुष्पों

द्वारा कुक्कुटेश्वर का पूजन करके मन्त्र का श्रद्धापूर्वक एक हजार बार जप करता है, वह अत्यधिक वैभव सम्पन्न हो जाता है।

जो मनुष्य शिवालय में भगवान शिव के इस कुक्कुट स्वरूप का ध्यान करते हुए नित्य इनके इस कुक्कुट मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करता है, भगवान शिव एक साल में ही उसके घर को अनेकों प्रकार के मनोवाञ्छित भोगों से परिपूर्ण कर देते हैं।

नित्यं प्रत्युषसि प्रतीतमनसापि पादेन भूधारणा-
च्चान्योऽन्येन समन्ततः स्वपुरतः पर्याक्षिपन्तं मुहुः।
ध्यात्वा कुक्कुटमीशरूपमथवा भूत्वैव माया स्वयं
भक्त्या यः प्रजपेदुपेन्द्रमिव तं प्राप्नोत्विवानन्दयेत्॥१७॥

नित्य प्रातः काल शय्या से उठकर (जागकर), पैरों को भूमि पर रखने से पहले, दोनों हाथों को परस्पर रगड़ करके, अपने नेत्रों पर थोड़ा मर्दन करके (तन्द्रा का निवारण करके), प्रसन्न चित्त होकर, अपने चारों ओर, सामने तथा ऊपर-नीचे एक बार (कुछ पल) देखकर, फिर कुक्कुट देवता का ध्यान करके अथवा स्वयं की कुक्कुट देवता के रूप में कल्पना करके जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करता है, वह विष्णु के समान (ऐश्वर्यशाली) होकर उन्हीं की भाँति आनन्द का भोग करता है।

तुण्डेन खण्डीकृतताल वृन्तमाच्छादयन्तं फलरत्नखण्डैः।
ध्यात्वा मनुं स्वं नयनो जपेद् यो विद्विष्टमाखण्डलवत् समेति॥१८॥

अपनी तीक्ष्ण चोंच के द्वारा ताड़-फलों के वृन्तों (डंठलों) को खण्डित करके (अथवा ताड़-पत्रों से निर्मित बड़े-बड़े पंखों के समान अपने पंखों को चोंच के द्वारा खण्डित कर उनसे गिरने वाले) रत्न रूपी फलों से पृथ्वी को आच्छादित करते हुए कुक्कुट देव का ध्यान करके तथा स्वयं को संयमित करके प्रतिदिन जो व्यक्ति कुक्कुट मन्त्र का जप करता है, वह स्वयं के प्रति विद्वेष रखने वाले अथवा दुष्ट प्रकृति के लोगों के लिए इन्द्र के समान शक्तिशाली तथा दण्ड देने में सामर्थ्यवान हो जाता है।

दोषायमाणं निजपक्वपत्रं पतत्पराद्ध्यं बहुमूख्यरत्नम्।
ध्यात्वा मणिं नियतमेव मनुं प्रजप्य
प्रौढां श्रियं भृशमवाप्य च रत्नपूर्णाम्॥१९॥

दोषयुक्त (जीर्ण) तथा पके हुए अपने गिरते हुए पंखों के साथ असंख्य बहुमूल्य रत्नों को बिखेरने वाले कुक्कुट (चरणायुध) देव का मणियों सहित (अथवा उनकी शीर्ष मणि का) ध्यान करते हुए जो व्यक्ति निरन्तर मन्त्र का जप करता है, वह अत्यधिक रत्नों से परिपूर्ण अपार ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है।

भूमौ काञ्चनमृत्तिकापदरजोराजीः किरन्तं मुदा
कूजन्तं चरणेन धान्यनिचयं नोत्कीर्य चञ्चवादिना।
सञ्चिन्त्योज्ज्वलताम्रचूडमरुणं किञ्चित्समाकुञ्चित-
ग्रीवं यः प्रजपेदमुष्य भवनं धान्यादिभिः पूर्यते॥२०॥

स्वर्ण मृत्तिका (मिट्टी) रूप पृथ्वी पर पाद सञ्चालन द्वारा रेखा सी खींचते हुए, चरणों तथा चोंच आदि के द्वारा धान्य समूह को बिखेर कर कूजते हुए तथा अपनी गरदन को थोड़ा संकुचित (सिकोड़े) हुए दीप्तिमान अरुण वर्म ताम्रचूड़ कुक्कुट देवता का ध्यान करते हुए जो मनुष्य इनके मन्त्र का जप करता है, उसका घर अन्न-भण्डार से सदैव परिपूर्ण रहता है।

दशौषधं दशभषितं मनुनामुना
कृतजपं शिरसा धृतम्।
दुरितानि रोगविषभूतभयापहं
भजतां वशीकरणमतीव रमाकरम्॥२१॥

दश औषधियों (सम्भवतः मुरामांसी, जटामांसी, बचा, कुष्ठ, शैलेय, सामान्य हल्दी, दारु हल्दी, शटी, चम्पक तथा मुस्ता) को लेकर प्रत्येक को दश-दश बार अभिमन्त्रित करके (अथवा सबके मिश्रित चूर्ण को दश बार अभिमन्त्रित करके) मन्त्र का पुनः एक सौ आठ बार जप करके शिर पर धारण करने से विपत्ति, रोग, विष प्रभाव, भूतादि का भय तथा अन्य भी किसी भी प्रकार के भयों का निवारण होता है। इसका सेवन करना अत्यन्त वशीकरणकारक तथा लक्ष्मीप्रद (अथवा प्रेयसीप्रद) होता है।

मनुना तण्डुलमनुना सहस्रजप्तं तु कुक्कुटं यो वेत्ति।
सोऽसौ कुक्कुटहंसवद् युद्धेषु चोद्जेष्यति॥२२॥

एक-एक बार मन्त्र का जप करते हुए एक-एक चावल ग्रहण करे। इस प्रकार एक हजार जप के द्वारा ग्रहण किये हुए चावल के एक हजार दानों को किसी मुर्गे को खिला दे तो वह मुर्गा अन्य अपने प्रतिद्वन्द्वी मुर्गे को शीघ्र ही पराजित कर देता है।

क्षिप्रं स्पृष्ट्वा सहस्रकमपि सञ्चिन्त्य कुक्कुटं प्रजपेत्।
जेष्यति सपदि रणे तान् सभटैश्चरणायुधैः॥२३॥

कुक्कुट देवता का ध्यान करके स्वशस्त्र का स्पर्श करते हुए इस कुक्कुट मन्त्र का एक हजार जप करने वाला साधक (राजा) चरणायुध देवता की कृपा से युद्ध में सैनिकों सहित अपने शत्रु को शीघ्र ही जीत लेता है।

समायातो बहुना किमत्र मनुना लिखितं
परिवाञ्छितं सपदि साध्यते।
अचिरेण तस्य भवने भजते वसति कमला विमला॥२४॥

इस मन्त्र के महत्व के विषय में अब और अधिक कहने से क्या लाभ। इतना सत्य है कि इस मन्त्र को जपने वाला व्यक्ति शीघ्र ही अपनी सभी कामनाओं को सिद्ध कर लेता है तथा उसके घर में चिरकाल तक लक्ष्मी तथा सरस्वती निवास करती हुई उसकी सेवा करती रहती हैं।

इति जप निरतानां कुक्कुटाख्यानलक्षः
क्षपणकमुनिराह क्षिप्तभूताकरपक्षः।

दुरितनिवहपक्षक्षेपणः सर्वभक्षः
प्रणतसुजनरक्षाविक्षतानां स्वपक्षः॥२५॥
निखिलमभिमतानामर्थिनां कल्पवृक्षः
सुरवरनरनारीरञ्जनाकृष्टिदक्षः॥२६॥
अनन्तं बिन्दुसंयुक्तं पुंकोलिद्वितयं ततः।
वांशक्तिश्चाथ पुंकोलियुगलं विगलं ततः॥२७॥
चुँकारं वरुणं तत्तदनन्ताढ्यं समुद्धरेत्।
क्रोधं तदुद्धरेन्मन्त्रं कुक्कुटस्य मनोरमम्॥२८॥

इति फेत्कारिणीतन्त्रे कुक्कुटेश्वरविवरणं नाम पञ्चमः पटलः॥

क्षपणक मुनि का कहना है कि इस प्रकार जो मनुष्य निरन्तर प्रतिदिन लगन सहित इस कुक्कुट मन्त्र को कुक्कुट देवता के ध्यान पूर्वक जपता रहता है, वह अपने प्रतिपक्षी शत्रु वर्ग को दूर फेंक देता है अर्थात् उनका समूल विनाश कर देता है। वह अपनी दृष्टि मात्र से ही समस्त आपदा समूहों का सर्वथा विनाश करने तथा अपने शरण में आये हुए सज्जन व्यक्तियों एवं स्वपक्ष वाले लोगों की रक्षा करने में सामर्थ्यवान होता है।

यह मन्त्र संसार की किसी भी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्यों के लिए कल्पवृक्ष के समान (उनकी समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला) है। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषों तथा देवताओं को प्रसन्न करने वाला एवं उनका (साधक के प्रति) आकर्षण करने वाला भी है।

कुक्कुट (चरणायुध) मन्त्रोद्धार - बिन्दुयुक्त अनन्त अर्थात् पाशबीज **'आं'**, दो बार पूंकोलि अर्थात् **पूंकोलि-पूं कोलि** (छठे पटल तथा अन्य ग्रन्थों में इसी प्रकार है) तत्पश्चात् **'वा'**, शक्ति **'ह्रीं'** पुनः **'चु'** तथा अनन्त (आ) युक्त वरुण अर्थात् **'वा'** इसके बाद अंकुश बीज **'क्रों'**। इस प्रकार निष्पन्न अष्टदशाक्षर मन्त्र -

'आं पूंकोलि पूंकोलि वा ह्रीं पूंकोलि पूंकोलि चु वा क्रों'।

विशेष - इस कुक्कुट (चरणायुध) मन्त्र के ऋषि महारुद्र, छन्द अति जगती, देवता चरणायुध, 'ह्रीं' बीज, 'क्रों' शक्ति तथा 'आं' कीलक कहे गये है।

॥ कुक्कुट (चरणायुध) मन्त्र-प्रयोग॥

साधक योगपीठ न्यास पर्यन्त सभी प्रातः कृत्य करके मूलमन्त्र से प्राणायाम कर विनियोगपूर्वक ऋष्यादि न्यास करे। यथा- **महारुद्राय ऋषये नमः** (शिरसि), **अति जगतीछन्दसे नमः** (मुखे) **श्री कुक्कुटेश्वर (चरणायुध) देवतायै नमः** (हृदये), **ह्रीं बीजाय नमः** (गुह्ये), **क्रों शक्तये नमः** (पादयोः), **पूं (अथवा वां अथवा आं) कीलकाय नमः** (नाभौ) तथा **सर्वाभीष्ट सिद्धये विनियोगाय नमः** (कृताञ्जलि - हाथ जोड़कर बोलें)। इसके पश्चात् पटल चार में दी गई विधि के अनुसार कर-षडङ्ग न्यास करके मन्त्र-वर्ण-न्यास करे। तत्पश्चात् ध्यान-मानसोपचार करके अपने सम्मुख कुंकुम चन्दनादि से अष्टदल कमल की रचना करके उसके बाहर

चार द्वारों से युक्त चतुरस्र (भूपुर) बनायें। इस पूजन यन्त्र को बनाकर (अथवा पहले से ही निर्मित यन्त्र को) अपने सामने स्थापित कर, उसकी अर्चना कर, अर्घ्यादि की स्थापना, आत्म-पूजादि करके शिव का षडङ्ग पूजन करें। तदुपरान्त देवता के अग्रभाग से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणावत् दलों में पूजन करें। यथा -

शम्भवे नमः। गौर्य्यै नमः। गणपतये नमः। कार्तिकेयाय नमः। मन्दराय नमः। पारिजाताय नमः। महाकालाय नमः। बर्हिणे नमः।

इसके बाद भूपुर के चारो ओर पूर्व (देवताग्र) से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणावत् इन्द्रादि लोकपालों का सायुध पूजन करके, यन्त्र पर कुक्कुट देवता का धूप-दीपादि से (पञ्चोपचार अथवा षोडशोपचार) पूजन करके उन्हें बलि प्रदान करें।

बलि द्रव्य - दही, दूध, शकर, मधु, ताम्बूल, कपूर तथा खीर से बलि प्रदान करना चाहिए। यह बलि दो बार-नैवेद्य से पहले तथा बाद में (भी) प्रदान किया जाता है।

बलिमन्त्र - पूं क्षं ह्रीं कुक्कुट कुक्कुट एहि एहि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय सर्वान् कामांश्च देहि देहि यं कूं ह्रीं पूं नमः कुक्कुटाय। (४८ वर्ण)

इसके पश्चात् मन्त्र का एक लाख जप करने तथा दशांश त्रिमधुयुक्त तिल से हवन, तर्पण, ब्राह्मण भोजनादि पुरश्चरण के सभी अङ्गों का पालन करने से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद ही साधक को अन्य काम्य प्रयोग करना चाहिए।

साधक को शान्ति तथा पुष्टि कर्म में उपर्युक्त रूप से अवश्य ही बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार बलिदान से संतुष्ट कुक्कुट देवता अभीष्ट दायक होते हैं। रात्रि में तीन दिनों तक (पूजनादि के पश्चात्) भात की बलि देने से साधक संसार को वश में कर लेता है।

१. दुग्ध मिश्रित गेहूँ के आटे से बने हुए पुए में घृत-कपूर मिलाकर रात्रि में तीन दिनों तक बलि देने से निश्चय ही साधक सारे विश्व को वशीभूत कर लेता है।

२. पीले पुष्पों, बेल पत्रों तथा हजार करवीर के पुष्पों से पूजन करके जो साधक नित्य मन्त्र का एक हजार जप करता है, वह जिस साध्य (मनुष्य) को उद्देश्य करके जप करता है, उसे एक सप्ताह में ही अपना दास बना लेता है।

३. बकरे तथा लावा पक्षी के मांस की बलि (पूजनोपरान्त) नित्य प्रदान करने से साधक की सभी कामनाएं पूरी होती हैं तथा सभी संकटों से वह निश्चित ही शीघ्र मुक्त हो जाता है।

४. बाल (शिर के) खोलकर तथा उत्तरमुख बैठकर आठ दिनों तक रात्रि में बारह हजार मन्त्रों का जप करने वाला साधक अपने साध्य को, सौ योजन दूर रहने पर भी अपने पास शीघ्र ही आकर्षित कर लेता है।

५. जाती फल (जायफल) तथा इलायची के चूर्ण में कपूर मिलाकर उसको स्पर्श करते हुए मन्त्र का बारह हजार जप करके उसे अभिमन्त्रित करें। फिर उसमें सिन्दूर मिलाकर सबको जल में डाल करके उबालें। तत्पश्चात् इस उबले हुए जल को लोहे के पात्र में रख दें। जो भी मनुष्य इसका स्पर्श करता है, उसका स्तम्भन हो जाता है।

६. किसी लोहार के घर से लोहे के पात्र में अग्नि लाकर उसे कनेर की समिधा से प्रज्वलित करके धतूरे तथा कुचला के चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर एक सौ आठ बार हवन करें। इस प्रकार एक सप्ताह तक हवन करने से निश्चय ही शत्रु का उच्चाटन होता है। हवन करते समय साध्य-नाम-कर्म सहित मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

७. उपर्युक्त पदार्थों द्वारा श्मशान की अग्नि (चिताग्नि) में हवन करने से तीन दिनों में शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

८. साध्य नाम-कर्म युक्त (अथवा केवल) मन्त्र से अभिमन्त्रित कोई भी खाद्य वस्तु जिसे भी खिला दिया जाता है, वह साधक के वश में हो जाता है।

९. गोरोचन, चन्दन, कुंकुम, कस्तूरी तथा कपूर आदि से बने चन्दन को मन्त्र द्वारा एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करके उसके द्वारा तिलक करने से, उस तिलक को देखने वाला वशीभूत हो जाता है।

१०. लकड़ी का कुक्कुट बनाकर उसमें देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करके, उसका स्पर्श करते हुए देवता के ध्यानपूर्वक मन्त्र का बारह हजार जप करे। इसके बाद इस कुक्कुट को रथ पर स्थापित करके उसके चारो ओर चार कवचधारी अश्वारोही योद्धाओं को नियुक्त कर, उसके साथ ही बलवान शत्रु को जीतने के लिए राजा सेना सहित रणभूमि में जाये। वीरों से घिरे हुए उस कुक्कुट को देखकर शत्रु सेना भयभीत होकर चारो ओर इस प्रकार भाग जाती है जैसे सिंह को देखते ही हाथियों का समूह पलायन कर जाता है।

।। फेत्कारिणी तन्त्र में कुक्कुटेश्वर विवरण नामक पाँचवे पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ षष्ठः पटलः

।। उच्छिष्ट-पूर्विका देवी-विषये-जिज्ञासा।।

देवी उवाच

सूचिता मे पुरा शम्भो मन्त्रा नैकविधास्त्वया।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि देवीमुच्छिष्टपूर्विकाम्।।१।।

श्री देवी ने शिव से कहा – हे देव शम्भु! आपने पहले अनेकों प्रकार के मन्त्रों का वर्णन मुझसे (उनके प्रयोगात्मक विधि-विधानों सहित) किया है। अब मैं उच्छिष्ट-पूर्विका देवी (के मन्त्र-प्रयोगादि) के विषय में सुनना चाहती हूँ।

।। उच्छिष्ट-मातङ्गी विद्या-माहात्म्यवर्णनम्।।

शम्भुरुउवाच

शृणु देवि वरारोहे देवीं तां कथयाम्यहम्।
उच्छिष्टपूर्विकां चैव मातङ्गी सर्वसिद्धिदाम्।।२।।
सर्वपापहरां देवीं सर्वदोषविवर्जिताम्।
यया विज्ञातया देव्या क्षयं गच्छन्ति चापदः।।३।।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चाङ्गजं तथा।
विषं जयति देवेशि स्वपराङ्गसमाश्रितम्।।४।।
इयं विद्या परा विद्या सर्वपापापहारिणी।
स्वर्गदा मोक्षदा चैव राज्यसौख्यफलप्रदा।।५।।

शम्भु ने कहा – हे सुन्दर स्तनों (अथवा नितम्वों) वाली देवि! अब मैं उस सर्वसिद्धिप्रदा उच्छिष्ट-पूर्विका देवी उच्छिष्ट मातङ्गी के विषय में कहता हूँ (जिसके मन्त्र-प्रयोगादि के विषय में जानकर साधक साक्षात् विद्या स्वरूप हो जाता है)। तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

यह देवी (विद्या) समस्त दोषों से रहित (अथवा दोषों को दूर करने वाली) तथा सभी (प्रकार के) पापों का विनाश करने वाली है। इसके विशेष ज्ञान से सभी प्रकार की विपत्तियों का पलायन हो जाता है।

स्थावर (धतूरा, कुचला, नीला थोथा आदि), जङ्गम (सर्प, बिच्छू आदि) कृत्रिम (रासायनिक) तथा शारीरिक दोषों से उत्पन्न सभी प्रकार के विषों को चाहे वे साधक के स्वशरीर में स्थित हों अथवा अन्य किसी के शरीर में हो, यह विद्या उनका विनाश कर देती है। परा विद्या स्वरूपा यह विद्या अपने साधकों के सभी पापों का अपहरण करने वाली, उन्हें इसी जीवन में राजाओं के समान सुख (अथवा राज्य सुख)

प्रदान करने वाली तथा उसकी इच्छानुसार मृत्यूपरान्त स्वर्ग अथवा मोक्ष प्रदान करने वाली हैं।

।। उच्छिष्ट मातङ्गी-विद्या।।

इयं देवि मया पूर्वं साधिता विषनिर्जिता।
सकृदुच्चारिता विद्या ब्रह्महत्याविशोधिनी।।६।।
सर्वपापापहन्त्रीयं लोकसौभाग्यदायिनी।
यद्युच्छिष्टमुखो भूत्वा स्मरेद्देवीं कदाचन।।७।।
तदाचान्तो भवेद् देवि विनैवाचमने कृते।
दुर्भगा सुभगा नूनं दुःखिता सुखिता भवेत्।।८।।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं शतहायनजीवितम्।
निर्धनो धनमाप्नोति मूर्खो विद्यामवाप्नुयात्।।९।।
यां यां प्रार्थयेत् सिद्धिं हठात् तां तामवाप्नुयात्।

हे देवि! पूर्वकाल में (समुद्र-मन्थन के समय उत्पन्न विप के पान करने पर) मैंने (उस) विष के प्रभाव को दूर करने के लिए इस विद्या की साधना (प्रयोग) की थी। यह विद्या एक बार के उच्चारण मात्र से ही ब्रह्महत्या के पाप से साधक को मुक्त कर देती है। यदि साधक उच्छिष्ट-मुख (जूठे मुख-कुछ खाने या भोजन करने के बाद बिना मुख धोए तथा कुल्ला किये) इस विद्या का जप करता है तो यह साधक के सभी पापों का हरण (विनाश) करके सम्पूर्ण लौकिक सौभाग्य (अथवा संसार में सभी प्रकार के सुख) प्रदान करने वाली है।

बिना आचमन किये उच्छिष्ट मुख ही इसकी साधना (जपादि) करने वाला दुर्भाग्य पीड़ित व्यक्ति निश्चित रूप से सौभाग्यवान तथा दुखी सर्वदा सुखी हो जाता है। इसकी साधना से बन्ध्या स्त्री को सौ वर्ष तक की आयु वाला पुत्र प्राप्त होता है। निर्धन व्यक्ति को धन तथा मूर्ख को सभी विद्याओं की प्राप्ति भी इसके द्वारा सुलभ हो जाती है। अधिक क्या कहें, साधक जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, इस विद्या के द्वारा उसे बलपूर्वक (अचानक ही) प्राप्त कर लेता है।

[**विमर्श**- उपर्युक्त श्लोकों में देवी उच्छिष्ट मातङ्गी का केवल माहात्म्य ही वर्णित है। इसके स्वरूप (मन्त्र), ध्यान, विनियोग, न्यासादि का उल्लेख नहीं किया गया है। अन्य ग्रन्थों के अनुसार इस विद्या के विषय में प्राप्त मन्त्रादि का प्रकाशन नीचे किया जा रहा है।

उच्छिष्ट मातङ्गी विद्या (मन्त्र) - **"नमः उच्छिष्टचण्डालि मातङ्गि सर्ववशंकरि स्वाहा।"** (उन्नीस वर्ण)

इस मन्त्र के ऋषि 'मदन', छन्द 'निचृद् गायत्री' तथा देवता 'विश्ववशंकरी मातङ्गी' है। मन्त्र के दो, तीन, तीन, तीन, छः तथा दो वर्णों द्वारा षडङ्ग न्यास किये जायेंगे।

।। उच्छिष्ट मातङ्गी-ध्यानम्।।

मातङ्गी नवयावकार्द्रचरणामुल्लासिकृष्णांशुकां
वीणोल्लासिकरां समुन्नतकुचां मुक्ता प्रवालावलीम्।

हृद्याङ्गीं सितशंखकुण्डलधरां बिम्बाधरां सस्मिता-
माकीर्णालकवेणिमब्जनयनां ध्यायेच्छुकश्यामलाम्।।

देवी (उच्छिष्ट) मातङ्गी के दोनों चरण सद्य निर्मित लाल महावर (अथवा लाख के रंग) से भीगे हुए (रञ्जित) सुशोभित हो रहे हैं। इनके शरीर पर काला रेशमी वस्त्र तथा हाथों में वीणा शोभायमान है। समान रूप से उभरे (उठे) हुए स्तन मण्डलों वाली देवी के हृदय (वक्ष) स्थल पर मोती तथा मूँगों की माला स्थित है। कानों में श्वेत शंख से निर्मित (अथवा शंख के समान शुभ्र वर्ण) कुण्डल धारित हैं। बिम्बाफल के समान अरुण अधरों पर मुस्कान विराजमान है। घुघराले बालों की चोटी (अथवा चोटियों की भाँति बालों की लटें) फैली हुई है। देवी के नेत्र कमल के समान हैं तथा इनके शरीर का वर्ण शुक (तोते) के समान श्याम (हरित) है। इसी स्वरूप में देवी मातङ्गी का ध्यान साधक को करना चाहिए।

सारसंग्रह के अनुसार इस मन्त्र के दो अन्य भेद भी हैं।

१- "**ऐं ह्रीं श्रीं नमः उच्छिष्टचण्डालि मातङ्गि सर्ववशंकरि स्वाहा।**" तथा

२- "**क्लीं ह्रीं श्रीं नमः उच्छिष्टचण्डालि मातङ्गि सर्ववशंकरि स्वाहा।**"

केवल '**क्लीं**' मन्त्र के आदि में (नमः से पहले) होने पर यह मन्त्र सभी लोगों का रञ्जन करने में समर्थ होता है। इन दोनों मन्त्र के ऋषि "सतुम्बुरु नारद' (तुम्बुरु सहित नारद) हैं। छन्द, देवता, ध्यान तथा षडङ्ग न्यास पूर्ववत् ही है।]

।। सुमुखी विद्या-प्रकाशनम्।।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि देवीं गुह्यतमां प्रिये।।१०।।
उच्छिष्टपूर्विकां चैव सुमुखीं सर्वसिद्धिदाम्।
यस्या विज्ञानमात्रेण भवेद् विद्यामयो नरः।।११।।
तस्या देवि विधिं वक्ष्ये फलमोच्चाटनादिकम्।

अब मैं एक अन्य अत्यधिक गुह्य स्वरूपा उच्छिष्ट पूर्विका देवी सुमुखी के विषय में कहता हूँ। यह देवी (भी) साधक को समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाली है। इसके विशेष (प्रयोगादि सम्बन्धित) ज्ञान मात्र से ही साधक समस्त विद्या स्वरूप (अथवा स्वयं मन्त्र स्वरूप अथवा देवी स्वरूप) हो जाता है। इस देवी की विद्या-साधना विधि का तथा उससे प्राप्त होने वाले फलों एवं उसके द्वारा किये जाने वाले उच्चाटनादि प्रायोगिक विधियों का भी मैं वर्णन करता हूँ।

देवी उवाच

को विधिः किं फलं चास्य मयि विद्यास्वरूपतः।।१२।।
कथ्यतां देव! यत्नेन रहस्येन निवेदितम्।

देवी ने कहा - हे देव (शङ्कर)! मैं आपसे निवेदन करती हूँ कि इस विद्या का स्वरूप क्या है, इसकी साधना विधि क्या है तथा इसके द्वारा क्या-क्या फल प्राप्त होता है, इन सभी का इनके रहस्यों सहित यत्नपूर्वक विस्तार से वर्णन करें।

।। सुमुखी मन्त्रस्य साधन-विधिः मन्त्रोद्धारश्च।।

विधानञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि मनोरमे।।१३।।
भोजनानन्तरं देवि विनैवाचमने कृते।
बलिं दत्त्वा प्रथमतो मूलमन्त्रेण साधकः।।१४।।
ततो मन्त्रं-जपेद् ध्यात्वा देवीं तामिष्टसिद्धये।
मन्त्रं शृणु महादेवि यथावत् कथयामि ते।।१५।।
नम उच्छिष्टशब्दं तु तथा चाण्डालिनीति च।
सुमुखीति ततो देवि कीर्त्तयेत्तदनन्तरम्।।१६।।
महापिशाचिनि पश्चाल्लज्जाबीजं ततः परम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं ठकारत्रितयं पुनः।।१७।।
सविसर्गं महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
चतुर्विंशत्यक्षरीयं विद्या सर्वार्थदायिनी।।१८।।

मेरे मन में रमने वाली (अथवा मेरे मन को रमाने वाली-आनन्द प्रदान करने वाली) हे देवि! सुनो, अब मैं इस विद्या के साधन-विधि को कहता हूँ। भोजनोपरान्त बिना आचमन (मुख धोए तथा कुल्ला) किए पहले मूल-मन्त्र द्वारा साधक देवी (सुमुखी) को बलि प्रदान करे। इसके बाद अपनी अभीष्ट सिद्धि (प्राप्ति) के लिए उस देवी का ध्यान करके उसका (यथोचित संख्या में) जप करे। हे महादेवि! मैं उस देवी के मन्त्र को जैसा उसका स्वरूप है, उसी प्रकार से कहता हूँ, सुनो!

पहले **'नमः'** शब्द का उच्चारण करे फिर **'उच्छिष्ट'** शब्द बोलकर **'चाण्डालिनि'**, **'सुमुखि'** बोलें तदुपरान्त **'देवि'**, **'महापिशाचिनि'** तथा लज्जा बीज **'ह्रीं'** बोलने के बाद विसर्ग युक्त तीन बार **'ठ'** वर्ण (ठः ठः ठः) का उच्चारण करे। हे महादेवि! चौबीस वर्णों वाली यह विद्या सभी सिद्धियों को देने वाली तथा समस्त पदार्थों को प्राप्त कराने वाली है।

मन्त्र-स्वरूप - **"नमः उच्छिष्ट चाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः।।"**

(अन्य ग्रन्थानुसार यह मन्त्र 'नमः' रहित ह्रस्व चकार युक्त है।)

।। अस्याः साधनस्य विशेषणम्।।

न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते।
नाङ्गन्यासकरन्यासौ न वर्णन्यास ईरितः।।१९।।
नारिदोषो न वा विघ्नं नाशौचो नियमो न च।
यस्य तिष्ठति मन्त्रोऽयं न स विघ्नैरवाप्यते।।२०।।

इस मन्त्र की साधना में तिथि-नक्षत्रादि के शोधन (निर्णय), किसी प्रकार के उपवास (अन्नत्याग), करन्यास-अङ्गन्यास तथा वर्ण न्यास (एवं अन्य किसी भी प्रकार के न्यास) की आवश्यकता नहीं कही गई है। मन्त्र-ग्रहण के समय मित्र-अरि आदि के निर्णय की भी आवश्यकता नहीं है। इसकी साधना में न तो किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित होता है तथा न ही अशौच (अपवित्रता-सूतक आदि का दोष)

के नियम-पालन की चिन्ता करने की आवश्यकता है। जो मनुष्य इसकी साधना करता है, उसे किसी भी प्रकार के विघ्न (संकटादि) की प्राप्ति नहीं होती है। वह सभी आपदाओं से मुक्त रहता है।

।। सुमुखी देव्याः ध्यानम्।।

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यथावज्जगदीश्वरि।
शवोपरि समासीनां रक्ताम्बरपरिच्छदाम्।।२१।।
रक्तालङ्कारसंयुक्तां गुञ्जाहारविभूषिताम्।
सुवक्त्रां षोडशाब्दां तु पीनोन्नतपयोधराम्।।२२।।
कपालकर्तृकाहस्तां परमज्योतिरूपिणीम्।
वामदक्षिणयोगेन ध्यायेन्मन्त्रविदुत्तमः।।२३।।

हे जगदीश्वरि! अब मैं इस देवी के ध्यानस्वरूप का वर्णन करता हूँ। लाल रंग के वस्त्र-आभूपण को धारण किये हुए तथा गुञ्जा के हारों से विभूषित यह (सुमुखी) देवी शव के ऊपर स्थित (विधिवत् बैठी हुई) है। सुन्दर मुख वाली सोलह वर्षीया इस देवी के पयोधर पुष्ट तथा उन्नत हैं तथा इसके वाम तथा दक्षिण हाथों में क्रमशः कपाल एवं कर्तृका धारित है। परम ज्योति स्वरूपिणी इस देवी का ध्यान प्राणायाम करके कुम्भक अवस्था में इसी स्वरूप में श्रेष्ठ मन्त्र साधक को करना चाहिए।

।। साधन-नियमाः नाना काम्य-प्रयोगाश्च।।

उच्छिष्टेन बलिं दत्त्वा जपेत्तद्गतमानसः।
उच्छिष्टेनैव कर्तव्यो जपोऽस्याः सिद्धिमिच्छता।।२४।।
उच्छिष्टं जपमानस्य जायन्ते सर्वसिद्धयः।
अपरञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि फलप्रदम्।।२५।।
होमं संतर्पणं चास्याः सहसा कार्यसिद्धये।
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा चतुरस्रं समाहितः।।२६।।
पूजयेन्मण्डले देवीं मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।
तत्र चाग्निं समाधाय वह्निरूपां व्यवस्थिताम्।।२७।।
देवीं ध्यात्वा चरेद्धोमं दधिसिद्धार्थतण्डुलैः।
सहस्रैकविधानेन राजा भवति वश्यगः।।२८।।

सिद्धि के इच्छुक साधक को पहले उच्छिष्ट मुख ही देवी को बलि प्रदान करना चाहिए। तत्पश्चात् उसी अवस्था में ही देवी के ध्यान में मन को लीन करके एकाग्रचित्त होकर इसके मन्त्र का यथेष्ट जप करना चाहिए। उच्छिष्ट मुख जप करने से ही इस मन्त्र द्वारा सभी सिद्धियों की उत्पत्ति (प्राप्ति) होती है। इसके अतिरिक्त कर्म का फल प्रदान करने वाले अन्य भी जो करणीय कर्तव्य हैं, उन्हें भी मैं कहता हूँ, सुनो!

सहज तथा शीघ्र कार्य की सिद्धि के लिए साधक को मन्त्र जप के पश्चात् होम तथा तर्पण (साथ ही अभिषेक व ब्राह्मणभोज) भी विधिवत् (तत्तद् दशांश संख्या

में) अवश्य करना चाहिए। सर्वप्रथम साधक एक स्थण्डिल (वेदी-पीठ) की रचना करके उस पर चतुरस्र मण्डल बनाकर, उसमें सावधानीपूर्वक एकाग्रचित्त से मूलमन्त्र द्वारा देवी का पूजन करे। पूजन के पश्चात् मण्डल पर अग्नि की स्थापना करके, देवी का अग्नि के रूप में ध्यान करके दधि, पीली सरसों तथा चावल के मिश्रण से विधिवत् एक हजार बार हवन करे। इस क्रिया से राजा भी साधक के वशीभूत हो जाता है।

मार्जारस्य तु मांसेन यो देव्यै होममाचरेत्।
स प्राप्नोति परां विद्यां सर्वशास्त्रवशीकृताम्॥२९॥
कुर्याच्छागस्य मांसेन होमं मधुसमन्वितम्।
सहस्रैकविधानेन भवन्ति धनसिद्धयः॥३०॥
विद्याकामश्चरेद्धोमं शर्करामधुपायसैः।
नूनं तस्य भवन्त्येव सिद्धविद्याश्चतुर्दश॥३१॥
रजस्वलाया वस्त्रेण मधुना पायसेन च।
होमं कृत्वा महादेवि त्रैलोक्यं वशमानयेत्॥३२॥

जो साधक बिलाव (नर बिल्ली) के मांस से देवी के लिए (एक हजार बार) हवन करता है उसे सभी शास्त्रों को वशीकृत करने वाली परा विद्या की प्राप्ति हो जाती है।

मधु अथवा मधुत्रय से सन्तृप्त बकरे के माँस द्वारा एक हजार बार हवन करने से साधक को धन की सिद्धि हो जाती है अर्थात् उसे यथेष्ट धन की प्राप्ति होती है।

विद्या की कामना वाला साधक यदि शकर-मधु तथा खीर के मिश्रण से विधिवत एक हजार बार हवन करे तो उसे निश्चय ही (एक मास में) चौदह विद्याएं सिद्ध (प्राप्त) हो जाती हैं।

रजस्वला के (रज से लिप्त) वस्त्र, मधु तथा खीर के मिश्रण से हवन करने पर, हे महादेवि! साधक तीनों लोकों को अपने वशीभूत कर लेता है।

नागवल्ल्या चरेद्धोमं मधुना सह सर्पिषा।
अयुतैकविधानेन सिद्धविद्या भवेद् ध्रुवम्॥३३॥
सद्यो मार्जारमांसेन घृतेन मधुना सह।
चाण्डालकेशयुक्तेन भवेदाकर्षणं ध्रुवम्॥३४॥
शशकस्य तु मांसेन मधुनालोडितेन तु।
कृत्वा होममवाप्नोति विद्यावित्तवरस्त्रियः॥३५॥
धूस्तूरार्कस्य योगेन चितावह्नौ तु मन्त्रवित्।
कोकिलाकाकपक्षैस्तु होमे शत्रून् विनाशयेत्॥३६॥
उच्चाटनाय शत्रूणां होमं कुर्याच्च मन्त्रवित्।
पूर्वोक्तेन विधानेन चिताकाष्ठहुताशने॥३७॥

मधु तथा घृत (पिघला हुआ) मिश्रित (सिक्त) पान के पत्तों द्वारा विधिवत् दश हजार बार हवन करने से साधक को निश्चय ही यह विद्या सिद्ध हो जाती है, अथवा (पाठान्तरानुसार) उसे आठों प्रकार की सिद्धि अथवा इष्ट-सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

बिलाव के ताजे मांस, घृत तथा मधु के साथ चाण्डाल के केशों को मिश्रित करके हवन करने से निश्चय ही आकर्षण की सिद्धि प्राप्त होती है, अर्थात् यथेष्ट व्यक्ति को अपने प्रति आकर्षित करने में साधक समर्थ हो जाता है।

मधु से संतृप्त (भली भाँति मिश्रित) खरगोश के मांस द्वारा हवन करने से विद्या, धन तथा श्रेष्ठ एवं सुन्दर स्त्रियों (अथवा विद्या एवं धन सम्पन्न श्रेष्ठ सुन्दर स्त्रियों) की प्राप्ति होती है।

धतूरा तथा मदार (के पुष्पों अथवा फलों)अथवा कोयल तथा कौवे के पंखों (अथवा चारों) के मिश्रण से चिताग्नि में हवन करने पर शत्रुओं का विनाश होता है।

कोयल तथा कौवे के पंखों से चिता-काष्ठ द्वारा प्रज्वलित अग्नि में, शत्रुओं के उच्चाटन के जिए मन्त्रज्ञ साधक को हवन करना चाहिए।

उलूककाकपक्षाभ्यां कुर्याद्धोमं निरन्तरम्।
द्वेषयेच्छत्रुमन्योन्यं कलहाकुलमुद्धतम्।।३८।।
उलूकपक्षहोमेन गर्भपातो भवेत स्त्रियः।
सहस्रैकविधानेन कुर्याद् होमं समाहितः।।३९।।
विल्वपत्रेः समध्वाज्यैर्मासमेकं निरन्तरम्।
अपि वन्ध्या लभेत् पुत्रं चिरजीविनमुत्तमम्।।४०।।
बन्धूककुसुमं हुत्वा रक्तं मधुसमन्वितम्।
दुर्भगाया हठाद्देवि सौभाग्यं सुखदायकम्।।४१।।

पूर्ववत् चिताकाष्ठाग्नि में उल्लू तथा कौवे के पंखों के मिश्रण द्वारा निरन्तर प्रतिदिन (एक सौ आठ अथवा एक हजार आठ बार पन्द्रह दिनों तक) हवन करने से साधक के दो शत्रुओं अथवा शत्रु-समूह में परस्पर कलह उत्पन्न होने के कारण वे अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं तथा उनमें आपस में द्वेष उत्पन्न हो जाता है।

उपर्युक्त रूप से उल्लू के पंखों के द्वारा विधिवत् एक हजार बार हवन करने से स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है। पहले देवी का ध्यान करके फिर अभीष्ट स्त्री का ध्यान करते हुए हवन करना चाहिए।

विल्वपत्रों को मधु तथा घृत में मिलाकर निरन्तर एक मास तक प्रतिदिन (एक हजार बार) हवन करने से बन्ध्या स्त्री को भी दीर्घायु वाले उत्तम पुत्र की प्राप्ति हो जाती है।

रक्त तथा मधु मिश्रित बन्धूक पुष्पों द्वारा पूर्वोक्त रूप से हवन करने पर दुर्भाग्य युक्त स्त्री भी सहसा सौभाग्यवती तथा सुख सम्पत्ति वाली हो जाती है।

प्रातरुत्थाय यः कश्चिद् होमं कुर्याद् दिने दिने।
जवापुष्येण साज्येन शतमष्टोत्तरं प्रिये।।४२।।
पण्मासस्य प्रयोगेण भवेदाकर्षणं ध्रुवम्।
देवगन्धर्वमर्त्यानां कन्या नागाङ्गजास्तथा।।४३।।
हठादागत्य कामार्त्ता बलादालिङ्गयन्ति तम्।
विद्यायै क्रियते होमस्तिलपायससमिश्रितैः।।४४।।

समाप्नोति महाविद्यां शास्त्रौघपदशालिनीम्।
मधुना रुरुमांसेन होमं कुर्यात् प्रयत्नतः॥४५॥
विद्यावान् धनवान् विद्धि शस्त्रशास्त्रवशीकृताम्॥

जो साधक प्रतिदिन प्रातः काल उठकर नित्य जपा पुष्प तथा घृत के मिश्रण से एक सौ आठ बार हवन करता है, वह छः मास के प्रयोग द्वारा देव, गन्धर्व, नाग तथा मनुष्य जाति की स्त्रियों को आकर्षित करने में अवश्य ही समर्थ हो जाता है। ये स्त्रियाँ काम से पीड़ित होकर सहसा ही आकर उस साधक का बलपूर्वक आलिङ्गन करती हैं।

विद्या प्राप्ति के लिए तिल तथा खीर के मिश्रण से हवन करने पर साधक को शास्त्र समूहों का ज्ञान प्राप्त कराने वाली महाविद्या की प्राप्ति होती है।

मधु तथा रुरु नामक हरिण के मांस के मिश्रण द्वारा प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन हवन करने से साधक विद्यावान, धनवान तथा समस्त शस्त्र एवं शास्त्रों के ज्ञान को अपने वश में कर लेता है, अर्थात् उसे सभी शस्त्रों तथा शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

॥साधनाचार निरूपणम्॥

इयं देवी महादेवि वामाचारफलप्रदा॥४६॥
दक्षिणाचारयोगेन न भवेत् फलदायिनी।
भोजनान्तरं चास्या बलिं दत्त्वा दिने दिने॥४७॥
उच्छिष्टेन जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं प्रिये।
उज्जटे वा श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे॥४८॥
बलिप्रदानतो देवि प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम्।
एषा देवी मया जप्ता भैरवाकारमिच्छता॥४९॥
इत्येषा कथिता देवी सर्वपापापहारिणी।
मन्त्रस्योच्चारणाद्देवि सर्वपापविवर्जितः॥५०॥
उच्छिष्टदूषणं नास्ति स पवित्रो भवेद् ध्रुवम्।
इत्युच्छिष्टचण्डालिनी (देवी)? भुवनत्रयविश्रुता॥५१॥
नान्या प्रवर्त्तते काचिद् विद्यां शृणु वरानने।
शृणु देवि महाविद्यां समयाकालसाधिनीम्॥५२॥

हे महादेवि! यह देवी वामाचार विधि से साधना करने पर ही अभीष्ट फल देने वाली है। दक्षिणाचार विधि से साधना करने पर यह साधक के लिए फलदायिनी नहीं सिद्ध होती। प्रत्येक दिन (साधना काल में) भोजनोपरान्त उच्छिष्ट मुख ही इस देवी के लिए बलि देकर एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करना चाहिए। किसी जनशून्य पर्णशाला (झोपड़ी-कुटिया), श्मशान, शून्य भवन अथवा चौराहे पर बलि प्रदान (तथा जप) करने से यह देवी निश्चय ही प्रत्यक्ष होकर दर्शन देती (तथा बलिग्रहण करती) है। भैरव स्वरूप की प्राप्ति की कामना से मेरे द्वारा भी इस देवी के मन्त्र का जप (पूर्व काल में) किया गया था। इस प्रकार इस सर्वपापहारिणी देवी के विषय में मैंने यह वर्णन किया है। साधक के द्वारा मन्त्रोच्चारण मात्र से ही यह

देवी उसे सभी पापों से मुक्त कर देती है। इस देवी की साधना में उच्छिष्ट मुख होना दोष नहीं माना जाता, वह साधक निश्चय ही (इस साधना के लिए) पवित्र ही होता है। तीनों लोकों में विख्यात प्रभाव वाली इस उच्छिष्ट चण्डालिनी (सुमुखी) देवी (के मन्त्र-प्रयोगादि) का मैंने तुमसे (तुम्हारी जिज्ञासानुसार) वर्णन किया। इस देवी के साधक के आगे अन्य किसी साधक की कोई भी विद्या क्रियाशील नहीं होती अर्थात् अपना प्रभाव प्रकट करने में वह असमर्थ होती है। समयाचार साधक को इसकी साध ना किस प्रकार करनी चाहिए, हे देवि! अब उसके विषय में सुनो।

।।समयाचार-साधन-विधिः।।

(पुनः) शङ्कर उवाच

न तिथिर्न च नक्षत्रं न च साध्यादिमर्चयेत्।
महाविद्येति विख्याता शिवदीक्षान्तगामिनी।।५३।।
यज्ञोपवीतं देवेशि धार्यते साधकैर्नरैः।
उच्छिष्टेनार्चयेद्देवीं महादेवेन साधिताम्।।५४।।
नाप्यनवगतस्तिष्ठेत् सर्वग्रन्थं सुविस्तरम्।
बहुनोक्तेन किं देवि त्रैलोक्यमपि साधयेत्।।५५।।
सदाकालं तु मन्त्रोऽयं स्मर्तव्यस्त्रिपुण्ड्रधारिणा।
पयसा गुडभक्तेन झषेण जुहुयान्नरः।।५६।।
आयुर्धनञ्च पुत्रांश्च विद्यामष्टादशीं लभेत्।
गोप्तव्येयं प्रयत्नेन कथितव्या न कस्यचित्।।५७।।
गुरुभक्तिः प्रकर्तव्या कायेन च धनेन च।
सुखं भुक्त्वा परे देवि प्लवञ्च साधको व्रजेत्।।५८।।
लोकापवादो न च देवि पापं नैवापरस्तिष्ठति मर्त्यलोके।
मन्त्रैकसारां धनदैकसारां विद्यैकसाराञ्च शृणुष्व विद्याम्।
सर्वोपकारां परमार्थसारा महानुभावां भुवि कामधेनुम्।।५९।।

इति शिवदीक्षान्तर्गतभवसिद्धलक्ष्मीमते पश्चिमाम्नाये फेत्कारिणीतन्त्रे उच्छिष्टचाण्डालिनीविवरणं नाम षष्ठः पटलः।।

शङ्कर (शम्भु) ने पुनः देवी से कहा - हे देवि! (समयाचारी साधक को) इस मन्त्र के ग्रहण तथा साधना के समय तिथि-नक्षत्र तथा साध्य-असाध्य आदि के विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यह विद्या (त्रिलोकी में) महाविद्या के रूप में प्रसिद्ध (जानी जाती) है। यह साधक को (उसके शिवत्व प्राप्ति में प्रतिबन्धक सभी दोषों को दूर कर उसे) शिवत्व की दीक्षा प्रदान (अन्त में शिवत्व की प्राप्ति) कराने वाली है।

यज्ञोपवीत धारी साधकों द्वारा उच्छिष्ट मुख ही शिव के साथ (अथवा शिव के द्वारा साधित) इस देवी की अर्चना करते हुए इसकी साधना करनी चाहिए। इस देवी का साधक विस्तार सहित सभी ग्रन्थों के ज्ञान से कभी वञ्चित नहीं रहता है। अधिक क्या कहें, त्रिलोकी में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस देवी के साधक के लिए

असाध्य हो अर्थात् त्रिलोक की सभी सिद्धियों तथा पदार्थों को यह साधक साधने (उसे प्राप्त करने) में समर्थ हो जाता है।

जो साधक सदैव त्रिपुण्ड्र धारण करके प्रतिदिन इस देवी के मन्त्र का यथेष्ट जप करने के पश्चात् खीर, गुड़ युक्त भात तथा मछली (अथवा मांस) से देवी के लिए हवन करता है, उसे आयु, धन, पुत्र तथा अट्ठारहों प्रकार की विद्या का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। साधक को चाहिए कि इसके मन्त्र को प्रयत्नपूर्वक सदैव गुप्त ही रखे तथा किसी भी (अनाधिकारी व्यक्ति) से कभी भी इसका वर्णन न करें। साधक को अपने शरीर तथा (न्यायोपार्जित)स्वधन से सदैव गुरु की भक्ति (सेवा) करनी चाहिए। ऐसा करने से वह इस लोक में सभी सुखों का उपभोग कर मृत्यूपरान्त देवी लोक को गमन करता है।

इसकी साधना से साधक को न ही लोक निन्दा स्पर्श करती है और न ही उसे पाप लगता है, क्योंकि वह इस मर्त्यलोक (मनुष्य लोक) में इन सबसे ऊपर उठ चुका होता है। यह विद्या समस्त मन्त्रों, धनप्रद प्रयोगों, सभी विद्याओं तथा पारमार्थिक साधनाओं की एक मात्र सारभूत विद्या है। यह विद्या सभी का उपकार करने वाली तथा महापुरुषों के लिए पृथिवी पर कामधेनु के समान (सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली) हैं।

।। शिवदीक्षान्तर्गतभवसिद्धलक्ष्मीमत से सम्बन्धित पश्चिमाम्नाय के अन्तर्गत (कथित) फेत्कारिणी-तन्त्र के उच्छिष्ट चाण्डालिनी विवरण नामक छठे पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

अथ सप्तमः पटलः

॥ धूमावती मन्त्रोद्धारः - ऋषि छन्दादि कथनम्॥

धूमावती प्रयोगोऽयमधुना लिख्यते मया।
दान्तावर्घीशबिन्द्वन्तो बीजो धूमावती द्विठः॥१॥
धूमावतीमनुः प्रोक्तः शत्रुनिग्रहकारकः।
षडङ्गा जाति संयुक्तं कल्पयेत्तेन मन्त्रवित्॥२॥
पिप्पलादो मुनिश्छन्दो निचृदेषा तु देवता।

अब मैं धूमावती देवी के मन्त्र तथा उसके प्रयोगादि के विषय में कहता हूँ। दान्तौ अर्थात् दो बार 'ध' (ध ध) को अर्घीश 'ऊ' तथा बिन्दु अनुस्वार से संयुक्त करे। इसके बाद पद 'धूमावती' तथा द्विठः 'स्वाहा' का योग कर मन्त्र का उद्धार करे। इस मन्त्र में 'धूं' बीज कहा गया है।

मन्त्र-स्वरूप - **'धूं धूं धूमावती स्वाहा''**।

धूमावती का यह मन्त्र शत्रुओं का निग्रह (दमन) करने वाला है। इस मन्त्र के ऋषि **'पिप्पलाद मुनि'**, छन्द **'निचृत्'** तथा देवता **'ज्येष्ठा धूमावती'** हैं। कर-षडङ्ग न्यास 'धां धीं धूं इत्यादि के साथ जाति (नमः, स्वाहा आदि) का संयोग करके करना चाहिए।

॥ धूमावती-ध्यानम्॥

विवर्णा चञ्चला कृष्णा दीर्घा च मलिनाम्बरा॥३॥
विमुक्तकुन्तला रुक्षा विधवा विरलद्विजा।
काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा॥४॥
सूर्पहस्तातिरूक्षाक्षी धृतहस्ता वरान्विता।
प्रवृद्धघोणातिभृशं जटला कुटिलेक्षणा॥५॥
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भीषणा कलहप्रदा।
एवंविधां समाध्यायेत् तत कर्म समाचरेत्॥६॥

देवी धूमावती का शरीर हिलता (काँपता) हुआ सा लम्बा तथा निस्तेज कृष्ण वर्ण का है। ये शरीर पर मलिन (अस्वच्छ) वस्त्र धारण किये हुए हैं। इनके शिर के केश रूखे तथा खुले हुए बिखरे से हैं। दाँत एक दूसरे से सटे हुए सघन न होकर विलग-विलग अवकाश (छिद्र) युक्त हैं। दोनों स्तन ढीले लम्बे तथा लटके हुए हैं। इनके नेत्र असुन्दर हैं अथवा ये त्रिनेत्र धारिणी हैं। ये एक हाथ में सूप तथा दूसरे हाथ में वर-मुद्रा धारण की हुई है। इनकी नाक अत्यन्त लम्बी है। दोनों नेत्र (दृष्टि) व्याकुलता पूर्ण चञ्चल तथा कुटिल (तीक्ष्ण) हैं। ये सदैव भूख-प्यास से

पीड़ित रहने वाली, भय प्रदान करने वाली (अथवा भयंकर रूप वाली) तथा परिवार में कलह (लड़ाई-झगड़ा) उत्पन्न कराने वाली हैं। इनका विग्रह-स्वरूप देखने में विधवा के समान है (अथवा ये विवस्त्रा हैं) तथा ये कौवे के आकृति युक्त ध्वज वाले रथ पर आरूढ़ हैं। इस प्रकार देवी का ध्यान करके जप-पूजनादि अन्य कर्म करना चाहिए।

॥ मन्त्रस्य पुरश्चरण विधिः॥

तचतुर्थेन वर्णेन षष्ठस्वरयुतेन च।
षड्दीर्घजातियुक्तेन कुर्यादङ्गानि मन्त्रवित्॥७॥
जपेत् कृष्णचतुर्दश्यां पुरश्चरणसिद्धये।
उपवासरतो मन्त्री शून्यागारे दिवानिशम्॥८॥
श्मशाने विपिने वापि जपेल्लक्षन्तु वाग्यतः।
सोष्णीश आर्द्रवासाश्च पुरश्चरणकर्मणि॥९॥

पुरश्चरण कर्म की सिद्धि (पूर्ण सफलता) के लिए साधक उपवास करते हुए पहले कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को मन्त्र का विनियोग न्यासादि करके उसका दिन तथा रात्रि में किसी निर्जन वन या श्मशान में जाकर वाणी पर संयम रखते हुए एक लाख जप पूर्ण करे। चतुर्दशी के जप काल में साधक को उपवास (निरन्न) व्रत का पालन करना चाहिए तथा पुरश्चरण जप के समय शिर पर पगड़ी तथा शरीर पर भीगा (जल से गीला) वस्त्र धारण करना चाहिए। एक लाख की संख्या में जप पूर्ण हो जाने पर साधक को यथा विहित संख्या में घृत से हवन तथा तर्पण (मार्जन, ब्राह्मण भोज) आदि भी करना चाहिए।

॥ मन्त्रस्य विभिन्न प्रयोगाः - शत्रुज्वर पीडन प्रयोगः॥

साध्योपरियन्त्रमालिख्य तस्मिन् संस्थाप्य शिवं जपेत्।
अवष्टभ्य शिवं शत्रुनाम्नाऽथ प्रजपेन्मनुम्॥१०॥
सहस्रादूर्ध्वतः शत्रुर्ज्वरेण परिगृह्यते।
पञ्चगव्येन शान्तिः स्याज्ज्वरस्य पयसापि वा॥११॥

भोजपत्रादि किसी फलक पर साध्य की आकृति बनाकर उस पर धूमावती यन्त्र की रचना करके उसके मध्य में साध्य नाम के साथ धूमावती का मन्त्र लिखे अथवा केवल यन्त्र ही बनाकर मध्य में साध्य के नाम के बाद मन्त्र को लिखे। अथवा केवल नाम सहित मन्त्र लिखे। फिर उसके ऊपर शिव लिङ्ग (खूँटा) स्थापित करके तथा उसको पकड़े हुए **''अमुकं (साध्य नाम द्वितीयान्त) उत्सादय-उत्सादय धूं धूं धूमावती स्वाहा''** मन्त्र का जप करे। जप की संख्या एक हजार से अधिक होते ही शत्रु (साध्य) ज्वर से पीड़ित हो जायेगा। धूमावती मन्त्र का जप करते हुए पञ्चगव्य अथवा दूध से हवन तथा साध्य का मार्जन करने से उसे ज्वर से मुक्ति तथा शान्ति की प्राप्ति हो जायेगी।

॥ मारणोत्सादन प्रयोगौ॥

मन्त्राद्यक्षरमालिख्य शत्रुनाम ततः परम्।
द्वितीयान्तं मनोः शत्रोर्नामैवं मनुना लिखेत्॥१२॥

वनेऽयुतजपाच्छत्रोर्निश्चितं मरणं भवेत्।
कृत्वा यन्त्रे रिपोराख्यामरण्ये यामिनीदले।।१३।।
उत्सादो जायते शत्रोर्मनोरयुतजापतः।

धूमावती का यन्त्र बनाकर उसके मध्य में अथवा सामान्य रूप से मन्त्र के प्रथम वर्ण 'धूं' के पश्चात् द्वितीया विभक्ति युक्त शत्रुनाम लिखे। इसके बाद शेष मन्त्र को लिखकर (अथवा पूरे मन्त्र के पश्चात् शत्रु-नाम को लिखकर) यन्त्र का पूजन करके यन्त्र -लिखित रूप से मन्त्र का किसी वन में बैठकर दश हजार जप करे। इस प्रयोग से (युद्ध स्थल में) शत्रु की मृत्यु निश्चित रूप से हो जाती है।

हल्दी के पत्ते पर धूमावती यन्त्र बनाकर उसके मध्य में **'अमुकं उत्सादय'** लिखकर बाद में धूमावती मन्त्र लिखे। अमुकं के स्थान पर द्वितीया विभक्ति में शत्रु नाम लिखे। तत्पश्चात् यन्त्र का पूजन करके यन्त्र लिखित रूप से मन्त्र का अर्द्धरात्रि में दश हजार जप करे। इस प्रयोग से शत्रु का विनाश हो जाता है। इस प्रयोग को किसी वन में स्थित होकर करें।

।। विविध मारणोच्चाटन प्रयोगाः।।

दग्ध्वा काकं श्मशानाग्नौ तद्भस्मादाय मन्त्रितम्।।१४।।
विरोधिनाम्नाष्टाशासु सद्य उच्चाटनं रिपोः।
श्मशानभस्मना कृत्वा शिवं तस्योपरि न्यसेत्।।१५।।
विरोधिनाम संल्लिख्य कृष्णपक्षेः समाचरेत्।
महिषीक्षीरधूपञ्च दद्याच्छत्रुविपत्करम्।।१६।।
महिषीरूपमाश्रित्य स्वप्ने शत्रुं निपातयेत्।

कौवे के शरीर (अथवा पंख) को चिताग्नि में जलाकर उसके भस्म को शत्रु नाम (अमुकं उच्चाटय) युक्त धूमावती मन्त्र से एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करके तद्वत् मन्त्र का जप करते हुए आठों दिशाओं में फेंकने से उस शत्रु का शीघ्र ही उच्चाटन हो जाता है।

कृष्ण पक्ष में श्मशान भस्म से शिवलिङ्ग बनाकर उसके ऊपर शत्रु का नाम (नाम के आदि मध्य तथा अन्त में पूर्ण मन्त्राक्षरों को लिखते हुए) लिखें। इसके बाद शत्रु के विपद नक्षत्र से सम्बन्धित औषधि लाकर उसमें भैंस का दूध मिलाकर इस मिश्रण के द्वारा (उसे जलाकर) शिव को धूप प्रदान करे। ऐसा करने पर वह साधक भैंस का रूप धारण करके स्वप्न में शत्रु का विनाश कर देता है।

[मन्त्रेणानेन निखनेत् तद्भस्म रिपुमन्दिरे।
शत्रुमुच्चाटयेत्तूर्णं नात्र कार्या विचारणा।।
न्यस्यपाणितले शत्रोरात्मानं चितिभस्मना।
वह्नावधोमुखं क्रुद्ध्वा तापयेदयुतं जपन्।।
धूमावती मनुं मन्त्री शत्रु यमपुरं नयेत्।]

चिता भस्म, अथवा पूर्वोक्त धूप-भस्म को, 'मन्त्र अमुकं उच्चाटय' रूप से अभिमंत्रित करके यदि शत्रु के घर में गाड़ दे तो शीघ्र ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। इसमें किसी भी प्रकार के विचार (संशय) करने की आवश्यकता नहीं है।

साधक चिता भस्म से अपनी हथेली पर शत्रु की आकृति बनाकर उस पर पल्लव विधि से शत्रु नाम (मन्त्र सहित) लिखे फिर लिखित मन्त्र का जप करते हुए दोनों करतलों (हथेली) को अग्नि के सामने रखते हुए क्रोधित अवस्था में उनको तपाये। इस प्रकार दश हजार जप करने से साधक का वह शत्रु निश्चित ही यमलोक गमन करता है।

रुद्ध्वा करतले नामार्ण द्वयोर्ध्वे रिपोर्न्यसेत्॥१७॥
जलस्थः प्रजपेन्मन्त्री हूँकारान्नाशयेदरीन्।

साधक अपने दोनों करपृष्ठों पर रोधन विधि (अथवा 'मूलं अमुकं नाशय' रूप)से मन्त्र सहित शत्रु-नाम लिखे। इसके बाद हथेलियों को अवनत करके हस्त लिखित मन्त्र का दश हजार जप जल के मध्य में खड़ा होकर करे तो वह केवल हुंकार मात्र से ही अपने शत्रु का विनाश करने में सक्षम हो जाता है।

श्मशानभस्मना लिङ्ग कृत्वा पुष्यादिनाऽर्चयेत्॥१८॥
[भगवन्निति संभाष्य मनसा कर्म चिन्तयन्।
निम्बकाकच्छदानेकी कृत्य चाष्टशतं जपेत्॥
दद्यात् धूपं साध्यनाम्ना सद्यो विद्वेषयेदरीन्।]
चिताकाष्ठनले क्षीरहोमाच्छान्तिः प्रजायते।
रजोधूपप्रदानेन गृध्ररूपेण कालिका॥१९॥
मारयत्यरिमारगत्य शान्तिर्निर्माल्यधूपतः।
वराहवालधूपेन हन्याच्छूकररूपिणीम्॥२०॥
अश्वत्थपत्रधूपेन शान्तिर्भवति नान्यथा।
शान्तिः सर्वाभिचारस्य पञ्चगव्येन जायते।
क्षीरेण वापि देवेशि मधुरत्रितयेन वा॥२१॥

साधक चिताभस्म से शिव लिङ्ग बनाकर उसे 'भगवान' शब्द से सम्बोधित करके मन ही मन कर्म का चिन्तन करते हुए पुष्पादि से उसका पूजन करे। फिर नीम के पत्ते (अथवा फल) तथा कौवे का पंख दोनों को एकत्रित करके उसे धूमावती मन्त्र से एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करके शत्रु नाम सहित मंत्र (अमुकं द्वेषय द्वेषय + मूल मन्त्र) का उच्चारण करते हुए उन नीम के पत्तों तथा कौवे के पंखों द्वारा (उन्हें जलाकर) लिङ्ग को धूप प्रदान करे। इससे शत्रुओं में परस्पर विद्वेषण हो जाता है। इस प्रयोग की शान्ति चिता काष्ठाग्नि में दूध द्वारा हवन करने से होती है।

चिताभस्म निर्मित शिव लिङ्ग का पूजन करके रक्त (स्त्री-रज) का धूप प्रदान करने से देवी कालिका गृध्र (गीध) का रूप धारण करके शत्रु का वध कर देती है। इस प्रयोग की शान्ति शिव निर्माल्य का धूप पीड़ित को प्रदान करने से होती है।

सुअर के बाल का धूप लिङ्ग को प्रदान करने से देवी सूकर रूप धारण करके शत्रु को मार देती है। इसकी शान्ति के लिए पीड़ित व्यक्ति को पीपल के पत्ते का धूप प्रदान करना चाहिए। समस्त प्रकार के अभिचारों की शान्ति के लिए पञ्चगव्य, दूध अथवा त्रिमधु (घृत-शर्करा-मधु) से हवन करना चाहिए।

कीलेत् क्षीरतरोर्विदभ्यं विलिखेन्मन्त्रेण नामाक्षरं
जप्त्वाऽऽलिख्य पदद्वये तु निखनेदुच्चाटनं विद्विषाम्।
तत्पादद्वयधूलिकीर्णहविषा दद्याद् द्विजेभ्यो बलिं
तज्जप्त्वा चितिभस्मकीर्णितमरेर्गेहे तदुच्चाटनम्॥२२॥

किसी दूध वाले वृक्ष जैसे पीपल, बरगद आदि की लकड़ी से बनी दो कीलें लेकर उन पर शत्रु की आकृति बनाकर उसके दोनों पैरों पर शत्रु के नामाक्षरों को मन्त्राक्षरों से विदर्भित करके लिखे। फिर विदर्भित मन्त्र का एक हजार जप करते हुए उन कीलों को अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर में गाड़ दें। इस प्रयोग से शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है।

शत्रु के दोनों पैरों की धूल (मिट्टी) को घृत युक्त भात में मिलाकर तथा मन्त्र विदर्भित शत्रु नाम युक्त मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करके कौवों को खिलाने से अथवा पैरों की धूल में चिता भस्म मिलाकर पूर्ववत् मन्त्र से (एक सौ आठ बार) अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर में गाड़ देने से उसका उच्चाटन हो जाता है।

ज्येष्ठा वासे श्मशाने वा निर्माल्ये पदगोचरे।
गर्दभावासभूमौ च प्रेतस्थाने चतुष्पथे॥२४॥
ऊषरे मेहनाद् भूमौ पुष्पितावासके स्वयम्।
आनीय शर्करां मन्त्री दिग्वासा दक्षिणामुखः॥२५॥
श्मशाने लोष्टं निःक्षिप्य चिताग्नौ भर्ज्जयेत्तथा।
चूर्णं तत्तु जपेल्लक्षं निक्षिपेच्छत्रुवेश्मनि॥२६॥
सेनामध्ये च सर्वेषां क्षणादुच्चाटनं भवेत्।
गर्त्ते पिपीलिकानान्तु पादभूमितले कणान्॥२७॥
घृताक्तं सप्तवारन्तु जुहुयान्मन्त्रविन्निशि।
भ्रमते काकवत् सर्वा महीमामरणादिषु॥२८॥

धूमावती के मन्दिर अथवा (तथा) श्मशान भूमि से शव के पैरों पर पड़े निर्माल्य को ग्रहण करे। इसके बाद गदहे के निवास स्थान, श्मशान, चौराहे, ऊसर भूमि, (स्वयं के) मूत्र युक्त भूमि तथा रजस्वला के निवास स्थान (पाठान्तरानुसार-मल युक्त स्थान), इन सभी स्थानों से मिट्टी लेकर, सभी को निर्माल्य सहित मिला करके मिट्टी के ढेले की भाँति बनाकर के, किसी श्मशान में रात्रि में जाकर नग्न होकर तथा दक्षिण मुख स्थित होकर उस मिट्टी के ढेले को चिताग्नि में डाल करके भूने अर्थात् जलायें। तत्पश्चात् उस ढेले को चूर्ण करके धूमावती मन्त्र का (साध्य-नाम-कर्मयुक्त) एक लाख जप करके उसे अभिमन्त्रित करे। फिर उस चूर्ण को शत्रु के घर पर फेंकने से शत्रु का तथा सेना के मध्य फेंकने से सभी शत्रु-पक्ष की सेना का उच्चाटन हो जाता है।

चींटियों के बिल की मिट्टी तथा शत्रु के पैरों के नीचे की मिट्टी लाकर दोनों को घृत में मिलाकर इसके द्वारा रात्रि में साधक साध्य-नाम-कर्म-युक्त मन्त्र से

हवन करे। नित्य कम से कम एक सौ आठ आहुतियों से हवन करना चाहिए। एक सप्ताह तक इस प्रयोग को करने से शत्रु का अपने स्थान से उच्चाटन हो जाता है तथा वह मरण काल पर्यन्त कौवे की भाँति सारी पृथ्वी पर इधर-उधर भटकता फिरता है।

कृत्वा प्रतिकृतिं शत्रोर्जन्मवृक्षेण मन्त्रवित्।
कृत्वा प्रतिष्ठां प्राणस्य विद्धा मर्मसु कण्टकैः॥२९॥
आयसैर्मन्त्रमावर्त्य वक्ष्यमाणैः प्रवेष्टयेत्।
पूर्वोक्तशर्कराभिस्तु जप्त्वा नित्यं प्रतापयेत्॥३०॥
सप्तरात्रेण तस्यापि भवत्युच्चाटनं ध्रुवम्।

शत्रु के जन्म नक्षत्र के वृक्ष की लकड़ी से उसकी आकृति बनाकर प्राण-प्रतिष्ठित करें। फिर मन्त्र का जप करते हुए लोहे की कांटों (कीलों) से उस आकृति के मर्म स्थानों को छिद्रित करके उसमें ऊपर कहे गये संग्रहित धूल कणों को भरकर पुनः उन छिद्रों में कीलों को गाड़ करके उस आकृति को रात्रि में मन्त्र का कम से कम एक सौ आठ बार जप करते हुए, अग्नि से तपायें। आकृति को कीलों से छिद्रित करते तथा धूल कणों को भरते समय भी मन्त्र का जप करते रहना चाहिए। सात रात्रियों में इस प्रयोग को करने से अवश्य ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है।

॥ विद्वेषण-प्रयोगाः॥

मुखे शल्यद्वये लिख्य सारमेयवराहयोः॥३१॥
मन्त्रेण गर्भितौ साध्यौ भौमवारोदयादिषु।
धुस्तूररससंयुक्ता चिताङ्गारेण मन्त्रिणा॥३२॥
व्यत्यस्य पृष्ठतो बध्वा केशपाशेन तं जपेत्।
श्मशाने शत्रुमार्गेवा तद्गेहे निखनेन्निशि॥३३॥
विद्वेषणं भवेत् सद्यो गौरीशङ्करयोरपि।

साधक कुत्ते तथा सुअर के मुख की हड्डी लेकर उस पर मङ्गल अथवा रविवार के दिन जिन दो व्यक्तियों के मध्य विद्वेषण कराना अभीष्ट हो, उनके नामाक्षरों को मन्त्राक्षरों से विदर्भित (गर्भित) करके लिखे अर्थात् एक हड्डी (अस्थि) पर एक व्यक्ति का तथा दूसरे पर दूसरे व्यक्ति का नाम लिखे। लेखन के लिए चिता के कोयले का चूर्ण तथा धतूरे के रस के मिश्रण का प्रयोग करे। फिर इन दोनो अस्थियों के पृष्ठ भागों को परस्पर मिलाकर एक साथ दोनों को शत्रु के केशपाश से बाँध कर मन्त्र (मूलमन्त्र+अमुक अमुकयोः विद्वेषणं कुरु) का एक हजार जप करे। तत्पश्चात् इन अस्थियों को रात्रि में श्मशान में अथवा शत्रु के आने जाने के मार्ग में अथवा उनके घर में गाड़ दे। इस प्रयोग से उन दोनों व्यक्तियों में परस्पर विद्वेष उत्पन्न हो जात है। भले ही वे आपस में गौरी-शंकर के समान प्रेम क्यों न करते हों।

अश्वत्थत्वचि मन्त्रार्णैर्दभितं साध्यमालिखेत्॥३४॥
अन्यद्विषतरोस्तद्वज्जप्त्वा उद्धृत्य विन्यासेत्।
पूर्वोक्तकण्टकैर्विद्धा न्यसेत् स्पृष्ट्वा शतम् शतम्।
विद्विष्टौ भवतस्तौ तु नाम्नामपि च तत्क्षणात्॥३५॥

जिन दो व्यक्तियों के मध्य विद्वेषण कराना अभीष्ट हो उनमें से एक की पीपल की छाल पर तथा दूसरे की विष वृक्ष (कुचला) की छाल पर आकृति बनाकर प्रत्येक के हृदयस्थल पर उनके नामाक्षरों को मन्त्राक्षरों से विदर्भित करके लिखे। तत्पश्चात् पूर्व कथित प्रयोग की भाँति आकृति के मर्म स्थानों पर काँटे गाड़ दे। सभी क्रियाओं को करते समय तथा काटों को गाड़ते समय मन्त्र का जप अवश्य करे। इसके बाद प्रत्येक को स्पर्श करते हुए सौ-सौ (एक सौ आठ) बार पूर्वोक्त विदर्भित रुप से मन्त्र का जप करें। इससे उन दोनों के मध्य शीघ्र ही विद्वेषण हो जाता है।

[किसी भी प्रयोग में साध्य की आकृति बनाने पर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा अवश्य करनी चाहिए। दो-दो मन्त्राक्षरों के मध्य साध्य के एक-एक नामाक्षरों को लिखना विदर्भित कहा जाता है।]

वर्णान्तान् विलिखेत् दर्भ्यमभितः कोणेषु मन्क्षाक्षरैः
संरुद्धान् परितः प्रभञ्जनगृहं मध्ये च साध्य पृथक्।
अङ्गारैः कनकोद्भवैरपि पदैर्मन्त्रं जपंस्ताडयेत्
कार्पासे लवणे कुजार्किदिवसे भूर्लोकविद्वेषताम्॥३६॥

पूर्वोक्त रुप से पीपल तथा कुचला वृक्ष की छाल पर अथवा अन्य किन्हीं दो फलकों पर पहले षट्कोण बनायें, फिर उसके ऊपर कोणों को स्पर्श करते हुए वृत्त बनायें। कोणों के ऊपर वायु बीज 'यं' लिखें तथा दोनों यन्त्रों में षट्कोणाकृत के मध्य एक-एक साध्य का नाम (जिनके मध्य विद्वेषण कराना है) लिखें। दोनों यन्त्रों के षट्कोणों के मध्य में उनके साध्य नामाक्षरों को मन्त्र से विदर्भित करके लिखे। यन्त्र लेखन का कार्य धतूरे के काष्ठ से निर्मित कोयले (की स्याही) से करना चाहिए। इस यन्त्र को मङ्गल अथवा रविवार को लिखना चाहिए तथा उसी दिन लिखने के बाद इसे पैरों से प्रताड़ित करते हुए धूमावती मन्त्र का जप करे। इससे दोनों साध्यों में परस्पर द्वेष उत्पन्न हो जाता है। यदि इस यन्त्र को सूती वस्त्र पर नमक से लिखे तो सारी पृथिवी के मनुष्यों में विद्वेष उत्पन्न किया जा सकता है।

॥ वशीकरण - प्रयोगः॥

आपाद्य पूर्वाञ्च मूर्ति शत्रोरालिख्य शोषयेत्।
तापयेन्निशि तं जप्त्वा वह्नेरुपरि लम्बयेत्॥३७॥
एवं सप्तदिनं द्रव्यैराजप्यालिख्य शोषयेत्।
व्योमषाग्निलशुनोन्मत्तहिङ्गुसिद्धार्थशूरणैः ॥३८॥
पिण्डैर्लवणसंपूतैरुन्मत्तद्रवसंयुतैः ।
पेषयित्वा तेन सम्यक् लिखेन्मन्त्री मनुं जपेत्॥३९॥
निःक्षिप्य प्रतिमां तत्र हुनेन्नित्यं जपेन्मनुम्।
बलिमध्ये खनेत् कीलं युक्तरूपं तथोपरि॥४०॥
वह्नि प्रज्वाल्य तत्काष्ठैर्द्रव्यसंयुक्ततो जपेत्।
सप्तरात्रं ततः कुण्डं शून्यागारे पुरा हुनेत्॥४१॥

त्रिकोणं शूलदीप्तञ्च मेखलायतनान्वितम्।
तत्रापि निखनेत् कीलं वह्नि प्रज्वाल्य पूर्ववत्॥४२॥
ततः प्रतिकृतिं मन्त्री वह्नेरुपरि लम्बयेत्।
उक्तद्रव्येण संल्लिप्तामूर्ध्वपादामधोमुखीम्॥४३॥
रक्तद्रव्यैः समाराध्य प्रज्ज्वाल्य विषवृक्षजैः।
इन्धनैः प्रतिमायाञ्च समित्प्रज्वलितां हुनेत्।
अनिलादिभिरामृत्योर्वशं याति न संशयः॥४४॥

इति फेत्कारिणीतन्त्रे धूमावतीविवरणं नाम सप्तमः पटलः॥

साध्य के जन्म नक्षत्र के वृक्ष काष्ठ से शिर से पैरों तक उसकी आकृति (पुतली) बनाकर रात्रि में उसे अग्नि के ऊपर लटकाकर तप्त करते हुए मन्त्र का यथेष्ट जप करे। इस प्रकार सात दिनों तक (रात्रि में) उसे प्रतिदिन शोषित करे। तत्पश्चात् त्रिकुट (सोंठ, पीपर तथा मरिच), चित्रक, लहसुन, धतूरा, हींग, पीली सरसों, सूरण तथा लवण पिण्ड इन सभी को पीसकर उसमें धतूरे का रस मिलाकर, इस मिश्रण से पुतली पर साध्य नाम कर्म सहित मन्त्र (जप करते हुए) लिखे। इसके बाद बलिरूप उस पुतली पर पूर्वोक्त रूप से कील गाड़कर उसे सम्मुख रख कर, जिस काष्ठ की पुतली बनाई गई है, उस काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करके पूर्वोक्त द्रव्यों द्वारा मन्त्र जपते हुए हवन करे। त्रिकोणाकार मेखलायुक्त कुण्ड बनाकर तीनों कोणों पर शूल अंकित (अथवा गाड़) कर मेखला पर पुतली को रखकर तथा कुण्ड के मध्य में कील गाड़कर उसमें अग्नि प्रज्वलित करके हवन करे। इस प्रकार से सात रात्रियों तक एकान्त कक्ष (अथवा देवी के मन्दिर) में हवन करना चाहिए। तत्पश्चात् पुतली पर पूर्वोक्त द्रव्यों (लेखन कार्य में प्रयुक्त मिश्रण) का लेपकर उसे अग्नि के ऊपर अधोमुखी लटकाकर लाल रंग के उपचार द्रव्यों से उसका पूजन करके विषवृक्ष (भिलावा) की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित करके समिधा सहित उस प्रतिमा (पुतली) का भी हवन कर दे। इस प्रयोग से निश्चय ही वह शत्रु (साध्य) मृत्युपर्यन्त साधक के वशीभूत हो जाता हे।

॥ फेत्कारिणी तन्त्र में धूमावती विवरण नामक सप्तम पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई॥

अथ अष्टमः पटलः

॥ गृध्रकर्णामनु-श्रोतुकामा श्री देवी वचनम्॥

श्री देवी उवाच

अधुना श्रोतुमिच्छामि गृध्रकर्णामनुं शिव!।

श्री देवी ने कहा – हे शिव! अब मैं गृर्धकर्णा मन्त्र के विषय में सुनना चाहती हूँ।

॥ गृध्रकर्णामन्त्रोद्धारः॥

श्री शिव उवाच

ग्रध्रकर्णामनुं देवि कथयामि श्रृणु प्रिये॥१॥
गृध्रकर्णि-पदं चोक्त्वा विरूपाक्षिपदं ततः।
लम्बस्तनिपदं पश्चाद् महोदरिपदं वदेत्॥२॥
उत्पाटयपदं भूयस्तथैवोपरि वेत्ति च।
पदान्येतानि वीप्सायै वदेत् वर्मास्त्रमेव च॥३॥
वह्निजायापदं चोक्त्वा ततो मन्त्र जपेद् बुधः।

श्री शिव ने कहा – हे प्रिये! मैं गृध्रकर्णामन्त्र का उद्धार कहता हूँ, सुनो! सर्वप्रथम 'गृध्रकर्णि' पद बोलकर फिर 'विरूपाक्षि' पुनः 'लम्वस्तनि' तत्पश्चात् 'महोदरि' इसके बाद 'उत्पाटय' पद का उच्चारण करे। फिर 'उपरि' तथा 'वेत्ति' पद बोले। अन्तिम तीनों पदों को दो-दो बार प्रयोग करे। इसके पश्चात् वर्म 'हुं' तथा अस्त्र 'फट्' के साथ वह्निजाया 'स्वाहा' का समायोजन कर मन्त्र का उद्धार करे।

मन्त्र-स्वरूप – **'गृध्रकर्णि विरूपाक्षि लम्बस्तनि महोदरि उत्पाटय उत्पाटय उपरि-उपरि वेत्ति-वेत्ति हुं फट् स्वाहा''।**

पुरश्चर्यार्णव में **'उत्पाटय'** के स्थान पर **'उत्पादय'** दिया है।

श्री विद्यार्णव तन्त्र में – **'गृध्रकर्णि – गृध्रकर्णि विरूपाक्षि-विरूपाक्षि लम्बस्तनि-लम्बस्तनि महोदरि महोदरि उत्पादय-उत्पादय हुं फट् स्वाहा''** मन्त्र दिया गया है।

॥ मन्त्रस्य ऋषि छन्दादि॥

पिप्पलादो मुनिश्रेष्ठो निवृच्छन्द उदाहृतम्॥४॥
स्वयमेव तु पञ्चाङ्गं भद्रकाली देवता स्यात्।
अयुतं मन्त्रसिद्धयर्थं मातृकान्यास-तत्परः॥५॥

इस गृध्रकर्णा मन्त्र के ऋषि 'पिप्पलाद मुनि', छन्द 'निवृत्' तथा देवता 'भद्रकाली' हैं। मन्त्र के पदों द्वारा यथाविधि पञ्चाङ्ग न्यास किये जायेंगे। मन्त्र की सिद्धि (पुरश्चरण) के लिए साधक को भूत-शुद्धि, अन्तर्बहिर्मातृका न्यासादि विधिवत करके दश हजार जप करना चाहिए। जप से पहले साधक को भली भाँति देवी का ध्यान तथा पूजन करना चाहिए। जप के पश्चात् दशांश संख्या में घृत से हवन तथा यथाविधि तर्पण, मार्जन आदि कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

पञ्चाङ्ग-न्यास - उत्पाटय-उत्पाटय हृदयाय नमः (हृदि)। **उपरि-उपरि शिरसे स्वाहा** (शिरसि)। **वेत्ति-वेत्ति शिखायै वषट्** (शिखायाम्)। **हुं फट् कवचाय हुं** (बाह्वोः)। **स्वाहा अस्त्राय फट्** (शिरस्य चतुर्दिक्षु हस्तं भ्रामयित्वा त्रितालम्)।

॥भद्रकाली-ध्यानम्॥

अतिरौद्रा महादंष्ट्रा, भृंश दीर्घा कृशोदरी।
प्रमत्तनयना शूरा, दीर्घघोणा मदान्विता॥६॥
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषा, नीलजीमूतसन्निभा।
भृकुट्याग्नीव संदीप्ता, महावदनभीषणा॥७॥
दंष्ट्रोष्ठ-कोपताम्राक्षी, रक्तदीर्घशिरोरुहा।
त्रिशूलैरुग्रदोर्दण्डा, नरकीटपलाशिनी॥८॥
अतिरक्ताम्बरा देवी, रक्तमांसासवप्रिया।
शिरोमाला-भूषिताङ्गी, पिबन्तीं शोणितासवम्॥९॥
नृत्यन्ती च हसन्ती च, पिशाचगणसेविता।
पिशाचस्कन्धमारुह्य, भ्रमन्ती वसुधातलम्॥१०॥
शंकरस्यमुखोत्पन्ना, योगिनी योगिवल्लभा।
इत्थं भूता भद्रकाली, मातृभिः परिवारिता॥११॥

देवी भद्रकाली का स्वरूप अत्यन्त उग्र एवं भयङ्कर है। बड़े-बड़े दाँत हैं। शरीर भारी तथा विशाल एवं पेट (कमर) का भाग पतला (क्षीण) है। आसवपान के कारण नेत्र चञ्चल हैं (पाठान्तर सुवृत्त नयना - आँखें गोलकार सी हैं)। अत्यन्त शक्तिशालिनी देवी की नाक लम्बी है तथा ये अपने शौर्य के अहंकार से परिपूर्ण है। वाणी अति गम्भीर गर्जनायुक्त सी है। शरीर का वर्ण नीले मेघ के समान है। भौंहें प्रज्ज्वलित अग्नि शिखा की भाँति हैं तथा मुख विशाल एवं भयंकर है। क्रोधायुक्त होकर होठों को दाँतों से दबाये हुए तथा लाल नेत्रों वाली देवी के शिर पर रक्तवर्णी बड़े-बड़े केश (जटाएं) हैं। अध म (दुष्प्रवृत्ति) के मनुष्यों का संहार करके उनका भक्षण करने वाली ये देवी अत्यन्त गाढ़े लाल रंग के वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा रक्त, मांस एवं मदिरा इन्हें अतिप्रिय है। इनके गले में नरमुण्डों की माला सुशोभित है तथा ये रक्त एवं मदिरा का पान कर रही हैं। पिशाच के कन्धे पर बैठकर, अन्य अनेक पिशाचगणों से घिरी हुई तथा हंसती-नाचती हुई सारी पृथिवी पर इधर-उधर घूम रही हैं। शंकर के मुख से प्रकट हुई, योगियों को प्रिया (अथवा जिन्हें योगी प्रिय हैं) योगिनी रूपिणी मातृ-शक्तियों से घिरी हुई भद्रकाली का इसी प्रकार ध्यान करना चाहिए।

॥ मन्त्र-प्रयोग-विधिः॥

ध्यात्वा सम्यक् समाराध्य, मन्त्र कार्यं समारभेत्।
धूमावत्याश्च यत् प्रोक्तमनया च तदाचरेत्॥१२॥
उक्तः प्रयोग एवात्र, विशेषविधिरुच्यते।
ऋज्वायतं तु निर्दोषमर्कमूलं वनान्तरात्॥१३॥
विषवृक्षं समादाय ततो होमं समाचरेत्।
शून्यागारे वने वाऽपि कुण्डं कृत्वा त्रिकोणकम्॥१४॥
विषवृक्षेन्धनैर्वह्नि प्रज्वाल्य धारयेत् सुधीः।
ततः दण्डं जपन्मन्त्री विष वृक्षस्य साधकः॥१५॥
अष्टोत्तरशतं वह्नौ तदग्नौ प्रक्षिपेद् बुधः।
सुविनीतं द्विजं वीरं कृत्वा चोत्तरसाधकम्॥१६॥
दिक्षु सर्वासु संस्थाप्य सुभटान् खड्गहस्तकान्।
कृतरक्षः समाराध्यो वह्निः क्रोध-समन्वितः॥१७॥
अष्टोत्तर शतं जप्त्वा दण्डाग्र जातवेदसि।
दत्वा सिद्धार्थके मन्त्री जुहुयात् सहस्रद्वयम्॥१८॥

देवी भद्रकाली का भलीभाँति ध्यान तथा पूजन करने के बाद ही साधक को मंत्र का प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिए। इस मन्त्र की प्रयोग विधि भी धूमावती मन्त्र की भाँति ही है। इसमें जो कुछ विशेष है उसे कहा जाता है। इसे जानकर प्रयोग करना चाहिए। साधक किसी वन में जाकर विष-वृक्ष (कुचला अथवा भिलावा अथवा वत्सनाभ) की समिधा, उसी वृक्ष का लुकाठी बनाने योग्य सीधा लम्बा दण्ड तथा शुद्ध दोष रहित मदार की जड़ हवन के लिए संग्रहीत करे। इसके बाद उसी वन में अथवा एकान्त गृह में त्रिकोण-कुण्ड बनाकर तथा विषवृक्ष की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित करके अर्कमूल (मदार की जड़) से हवन करे। साधक को कर्म में सहायक रूप से विनयशील ब्राह्मण वीर साधकों की तथा कर्म की निर्विघ्नतापूर्ण सम्पन्नता के लिए रक्षा हेतु चारों ओर हाथों में तलवार लिए हुए सैनिकों (वीर रक्षकों) की भी नियुक्ति करनी चाहिए। इस प्रकार पूर्णतया सुरक्षित होकर अग्नि का पूजन करके क्रोध युक्त होकर एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करके दण्ड के अग्र भाग को अग्नि में डालकर सरसों के द्वारा दो हजार बार हवन करे।

यष्ट्याग्रमग्नौ सुनिवेश्य पश्चात् सिद्धार्थकैस्तैलसमुक्षितैश्च।
हुनेत् सहस्रद्वयमत्र धीमान् विसृज्य वह्नि बलिदानपूर्वकम्॥१९॥

दण्ड के अग्र भाग को अग्नि में प्रवेश कराके, उसके ऊपर सरसों के तेल को धारावत् गिरा करके, बुद्धिमान साधक पीली सरसों के द्वारा ही दो हजार बार हवन करे। इसके बाद अग्नि को बलि प्रदान करके उसका विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् निम्न रूप से देवी का ध्यान करे।

॥ देव्याः ध्यानम्॥

ध्यायेद् देव्याः स्वरूपं प्रलयघननिभं रक्तवर्णोग्रनेत्रम्,
शूलाग्रप्रोतसिंह तरुणनरशिरः स्रग्धरं तीक्ष्णदंष्ट्रम्।

उल्काव्यग्रोर्ध्वहस्तं रुधिरमधुमदभ्रान्तचित्तं सुघोरम्,
शत्रूणां संघमुच्चैः करविधृतशिलादण्ड निर्घातघोरम्॥२०॥

देवी के शरीर की आभा प्रलयकालीन मेघों के समान अत्यन्त श्यामवर्ण है। दोनों नेत्र भयंकर तथा रक्तवर्ण के हैं। शूल के अग्रभाग में सिंह विंधा हुआ (अथवा शूल का अग्रभाग सिंह के मुख के समान) है। ये सद्य-खण्डित नर-मुण्डों की माला धारण किये हुए हैं। दाँत अत्यन्त नुकीले हैं। हाथ में उल्का (जलती हुई लुकाठी) लेकर उसे ऊपर करके चारों ओर घुमा रही हैं। रक्त तथा मदिरापान के कारण नशे से चञ्चल चित्त होकर इधर-उधर भ्रमण सी कर रही है एवं देखने में अत्यन्त भयङ्कर प्रतीत होती है। शत्रु समूहों के मध्य स्थिर होकर हाथों में लिए हुए शिलाखण्डों तथा दण्डों को ऊपर उठा-उठा कर उन पर तीव्रता से प्रहार कर रही है।

भावायित्वा करेणोल्कां दक्षिणेन रिपोर्मुखम्।
गत्वा दूरेण विसृजेत् तद्वत् क्रुद्धा नभः स्थिता॥२१॥
ससहायस्ततस्तीर्थं गच्छेत् पश्चात् तु वाग्यतः।
स्नात्वावश्यं शुचिर्भूत्वा कण्ठमात्रोदके स्थितः॥२२॥
जपेत् सुदर्शनं दुर्गां सावित्रीं च समाहितः।
अष्टोत्तर सहस्रं तु जपेदन्यच्छतं शतम्॥२३॥

देवी के ध्यान के पश्चात् साधक उल्का की भाँति जलते हुए दण्ड को अग्नि से निकालकर दाहिने हाथ में लेकर यह भावना करे कि मैं आकाश में स्थित होकर क्रोधपूर्वक इस उल्का को शत्रु के मुख में डाल रहा हूँ। इसके बाद कुछ दूर जाकर उल्का को फेंक दे। तदुपरान्त साधक मौन होकर सहायकों के साथ तीर्थ (नदी, तालाब आदि पुण्य क्षेत्र) में जाकर आवश्यक शुद्धि पूर्वक स्नानादि करके पवित्र होकर पुनः कण्ठ मात्र जल में खड़ा होकर सुदर्शन मन्त्र का एक हजार आठ बार जप एवं दुर्गा मन्त्र तथा गायत्री मन्त्र का सौ-सौ बार जप करे।

उत्तीर्य वाससाच्छाद्य स्वसहायः सुरालयम्।
गत्वा तु महतीं पूजां कृत्वा देवस्य चक्रिणः॥२४॥
पादयुग्मं समालम्ब्य वर्णलक्षं जपेद् बुधः।
तावज्जप्त्वा घटे सद्भिरभिषिञ्चेत् स्वकं वपुः॥२५॥
दक्षिणां विधिवद् दत्वा शान्ति-होमञ्च कारयेत्।
यद्वा दुर्गा जपेल्लक्षं सावित्री च तथैव च॥२६॥
कृत्वाभिषेकं ताभ्यां तु शक्तितो भोजयेद् द्विजान्।
दक्षिणां शक्तितो दत्वा सिद्धो भवति साधकः॥२७॥

जप के पश्चात् जल से बाहर आकर पगड़ी वस्त्रादि धारण करके मन्दिर में सहायकों के साथ जाकर श्री विष्णु देव की यथाशक्ति विस्तार पूर्वक पूजन करे। इसके बाद श्री विष्णु के दोनों पैरों में ध्यान केन्द्रित करके उनके मन्त्र का, मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने लाख का जप करे। जप के पश्चात् सहायकों सहित घट के जल से अपने शरीर का अभिषेक करे। इसके बाद सहायक ब्राह्मणादि को दक्षिणा देकर

शान्तिक हवन कराये अथवा दुर्गा मन्त्र तथा गायत्री मन्त्र का एक-एक लाख जप करके दोनों मन्त्रों से अभिमन्त्रित घटस्थ जल द्वारा सहायकों सहित स्वयं का अभिषेक करे। साधक के लिए उचित यह होगा कि मन्त्र का जप करते समय जल सहित घट का स्थापन कर ले फिर उसी जल से अभिषेक करे। तत्पश्चात् सामर्थ्यानुसार ब्राह्मणों को भोजन करा कर उन्हें (यथाशक्ति ही) दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रक्रिया का विधिवत् पालन करने वाला साधक सिद्ध हो जाता है।

रुद्रदण्डप्रयोगोऽयं दारुणो रणसूदनः।
पुरा देवासुरे युद्धे हरेण किल निर्मितः॥२८॥
तत्प्रयोगमहं वक्तुं न शक्नोमि तथाऽपि चेतु।
प्रयोगमात्र तद्वक्ष्ये विद्वेषोच्चाटनादिकम्॥२९॥

रुद्रदण्ड नामक यह प्रयोग अत्यन्त प्रबल तथा युद्ध में शत्रुओं का विनाश करने वाला है। बहुत पहले हुए देवासुर संग्राम में भगवान शिव ने इसका निर्माण किया था। इसके प्रयोग की क्रियाविधि तथा सामर्थ्य का पूर्ण रूप से वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ, फिर भी विद्वेषण-उच्चाटन आदि के लिए इसके सामान्य प्रायोगिक क्रिया-विधि को कहता हूँ।

॥ उच्चाटन-प्रयोगः॥

विभीतक फलके शत्रोर्लिखेत् नाम विदर्भितम्।
मन्त्र जप्त्वा सहस्रं तत् खनेत् पितृवने बुधः॥३०॥
उच्चाटनं भवेत् क्षिप्रमचलस्यापि किं पुनः।
मानवानां द्विजश्रेष्ठे न कर्तव्यं मनीषिभिः॥३१॥
तथैव किल तस्यैव त्रिकोणऽधोमुखं लिखेत्।
धुस्तूरबीजचूर्णेन जप्त्वा चालिप्य तत्पदे।
खनेदुच्चाट्येच्छत्रून् वाताहतरजो यथा॥३२॥

॥ इति फेत्कारिणीतन्त्रे गृध्रकर्णीविवरण नाम अष्टमः पटलः॥

बहेड़े के पत्ते (अथवा वृक्ष की छाल) पर शत्रु की आकृति बनाकर उस पर मन्त्र से विदर्भित उसका नाम लिखे। फिर मन्त्र का एक हजार जप करके उसे श्मशान भूमि में गाड़ दे। इस प्रयोग से पर्वतों का भी शीघ्र उच्चाटन हो जाता है, सामान्य मनुष्यों के लिए कौन सा कठिन कार्य है। बुद्धिमान साधकों को यह प्रयोग किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण के प्रति नहीं करना चाहिए।

पूर्ववत् बहेड़े के फलक पर शत्रु की आकृति बनाकर उस पर मन्त्र से विदर्भित शत्रुनाम लिखकर उपरोक्त मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित धतूरे के बीज के चूर्ण का उस आकृति पर लेप करके मन्त्र का एक हजार बार जप करे। इसके बाद त्रिकोणाकार गड्ढा खोदकर इस आकृति को अधोमुख करके गाड़ दे। इस प्रयोग से जैसे वायु धूल कणों को पल भर में उड़ा देती है उसी प्रकार शत्रु का भी स्वस्थान से उच्चाटन हो जायेगा।

॥ फेत्कारिणी तन्त्र में गृध्रकर्णी विवरण नामक अष्टम पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई॥

अथ नवमः पटलः

॥ भद्रकाली महामन्त्रोद्धारः॥

श्री शिव उवाच

साम्प्रतं सम्प्रवक्ष्यामि भद्रकाली महामनुम्।
श्रूयतां परमेशानि सावधानाऽवधारय॥१॥
प्रासादबीजमुद्धृत्य कालीति पदमुद्धरेत्।
महाकाली पदं चोक्त्वा किलियुग्ममतः परम्॥२॥
फडग्निवल्लभान्तोऽयं भद्रकाली महामनुः।
आराध्य प्रजपेन्नित्यमष्टोत्तरशतं मनुम्॥३॥
पदैः षड्भि षडङ्गानि जातियुक्तानि कल्पयेत्।
जपमाला विद्यातव्या अष्टाधिकशतेन च।
ध्यातव्येयं महादेवी भद्रकाली भयापहा॥४॥

श्री शिव ने कहा - हे देवी परमेश्वरि! अब मैं भद्रकाली के महामन्त्र को कहता हूँ। सावधान होकर सुनो तथा चित्त में धारण करो। सर्वप्रथम प्रासाद बीज 'हौं' का उद्धार करे। इसके बाद 'कालि' पद का उद्धार करके 'महाकालि' पद बोले, फिर दो बार 'किलि' (किलि-किलि - पुरश्चर्यार्णव तथा श्री विद्यार्णव तन्त्रानुसार किणि-किणि) का प्रयोग करके अन्त में 'फट्' तथा अग्निवल्लभा 'स्वाहा' का समायोजन कर मन्त्र का उद्धार करे। चतुर्दश वर्णात्मक इस भद्रकाली मन्त्र के पदों द्वारा क्रमशः उन्हें जातियों से संयुक्त करके षडङ्ग न्यास करे। देवी भद्रकाली की अर्चना करके साधक नित्य एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करे। जप के लिए एक सौ आठ मणियों की माला बनानी चाहिए। जप से पूर्व (षडङ्ग-न्यासादि करके ही) भक्तों के भय का अपहरण करने वाली देवी भद्रकाली का इस प्रकार (निम्नवत्) ध्यान करना चाहिए।

मन्त्र स्वरूप - **"हौं कालि महाकालि किलि-किलि (किणि-किणि) फट् स्वाहा।"**

षडङ्ग-न्यास - **हौं हृदयाय नमः** (हृदि)। **कालि शिरसे स्वाहा** (शिरसि)। **महाकालि शिखायै वषट्** (शिखायाम्)। **किलि-किलि (किणि-किणि) कवचाय हुं** (बाह्वोः)। **फट् नेत्रत्रयाय वौषट्** (नेत्रेषु)। **स्वाहा अस्त्राया फट्** (हस्तं शिरोपरिभ्रामयित्वा त्रितालम्)।

॥ भद्रकाली-ध्यानम्॥

क्षुत्क्षामा कोटराक्षी मसिमलिनमुखी मुक्तकेशी रुदन्ती,
नाहं तृप्ता वदन्ती जगदखिलमिदं ग्रासमेकं करोमि।

हस्ताभ्यां धारयन्ती ज्वलदनलशिखासन्निभं पाशमुग्रम्,
दन्तैर्जम्बूफलाभैः परिहरतु भयं पातु मां भद्रकाली।।५।।

भूख से पीड़ित भद्रकाली का शरीर अत्यन्त दुर्बल सा है। आँखे गड्ढों में धँसी सी प्रतीत होती है। मुख कालिख पुता हुआ सा अत्यन्त मलिन है। शिर के केश खुले हुए हैं तथा वे रोती हुई सी कह रही हैं कि मैं तृप्त नहीं हूँ, सारे विश्व को एक ही ग्रास (कौर) बनाकर खा जाऊँगी। वे अपने दोनों हाथों में जलती हुई अग्नि की ज्वाला के समान आभायुक्त भयंकर प्रचण्ड पाश लिये हुए हैं। इनके दाँत जामुन के समान काले हैं। ऐसे स्वरूप वाली भद्रकाली मुझ साधक के भय का निवारण करते हुए मेरी रक्षा करें।

।। प्रयोग-विधिः।।

प्रयोगाश्चात्र कर्तव्यः सामान्यपटलोदितः।
अशेष कालिका मन्त्रं कथितं कार्यसिद्धये।।६।।
इयं देवी महादेवी शत्रुनिग्रहकारिणी।
यथेष्टचेष्टया चिन्त्या धर्मकामार्थसिद्धिदा।।७।।

।। इति फेत्कारिणी तन्त्रे भद्रकाली विवरणं नाम नवमः पटलः।।

इस ग्रन्थ के सामान्य पटल में कहे गये विधि के अनुसार इस मन्त्र के प्रयोगों को करना चाहिए। इसकी सम्पूर्ण विधि श्मशान कालिका मन्त्र विधानवत् करने से कार्य की सिद्धि होती है। यह देवी भद्रकाली शत्रुओं का दमन करने वाली है। समुचित साधना तथा ध्यान करने पर यह इच्छानुसार धर्म, अर्थ तथा काम रूपी सिद्धि भी प्रदान करने वाली है।

।। फेत्कारिणी तन्त्र में भद्रकाली विवरण नामक नवम पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

अथ दशमः पटलः

॥ दक्षिणा कालिका विधि-कथन प्रतीज्ञा तद्माहात्म्यञ्च॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि पुण्याप्त्यै दक्षिणाविधिम्।
सर्वसिद्धिप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम्॥१॥
दैवैर्देवत्वविषये सिद्धैः खेचरसिद्धये।
गन्धर्वैर्दानवैर्यक्षैः स्वस्वकार्यार्थसिद्धये॥२॥
पन्नगै राक्षसैर्मर्त्यैर्मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः।
कामिभिर्धर्मिभिश्चार्थलिप्सुभिः सेवितां सदा॥३॥

(भगवान शिव ने देवी से कहा) अब मैं पुण्य प्राप्ति के लिए (पुण्य-प्राप्ति कराने वाली) दक्षिणा-कालिका के समस्त विधि-विधान को (उनके ध्यान-मन्त्र-प्रयोग-विधि सहित) कहता हूँ। यह देवी प्रत्यक्ष रूप से सभी सिद्धियों को देने वाली तथा वर्तमान में ही बड़े-बड़े पापों का विनाश करने वाली है। देवत्व प्राप्ति के लिए देवताओं द्वारा, खेचरत्व (आकाश-विचरण) प्राप्ति के लिए सिद्धों द्वारा, अपने-अपने कार्य की सिद्धि तथा अर्थ की प्राप्ति के लिए गन्धर्वों, दानवों, यक्षों, नागों (सर्पों), राक्षसों, मनुष्यों तथा मोक्ष की कामना वाले मुनियों के द्वारा एवं धर्म-अर्थ तथा काम के अभिलाषी व्यक्तियों के द्वारा सदैव इस देवी की सेवा (आराधना) की जाती रही है।

॥ श्री दक्षिणा कालिकायाः ध्यानम्॥

देवीं दक्षिणासंज्ञां तां प्रवक्ष्यामि यथा मुने।
ॐ करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्॥४॥
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषणाम्।
सद्यश्छिन्नशिरः खड्गवामाधोऽर्ध्वकराम्बुजाम्॥५॥
अभयं वरदं चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम्।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्॥६॥
कण्ठावसक्तमुण्डालीं गलद्रुधिरचर्चिताम्।
कर्णावतंसतां नीतशवयुग्मभयानकाम्॥७॥
घोरद्रंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्॥८॥
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्॥९॥

दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्॥१०॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्॥११॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्।
एवं सञ्चिन्त्य कालीं तु श्मशानालयवासिनीम्॥१२॥
प्रवक्ष्यामि मनुं तस्याः सर्वकामप्रदायकम्।

उस देवी, जिसे दक्षिणा कालिका कहा जाता है, के ध्यान स्वरूप को जैसा प्राचीन ऋषियों द्वारा कहा गया है, अब मैं वर्णन करता हूँ।

देवी दक्षिणा कालिका विशाल मुख वाली, भयङ्कर शरीर वाली, खुले हुए (शिर के) बालों वाली, चार भुजाओं वाली तथा दिव्य स्वरूप वाली हैं। इनके गले में नर-मुण्डों की माला सुशोभित है। इनके वाम भागस्थ नीचे तथा ऊपर के दोनों हाथों में क्रमशः तत्काल काटा हुआ मानव शिर तथा खड्ग एवं दक्षस्थ नीचे तथा ऊपर के हाथों में अभय तथा वर (मुद्रा) ग्रहीत हैं। षोडशवर्षीया युवती के रूप में प्रतीत होने वाली इनके शरीर की आभा (वर्ण) विशाल घने (काले) बादल के समान है तथा ये निरावरण अवस्था में स्थित हैं। इनके गले में (तत्काल) कटे हुए शिरों (मुण्डों)की माला है, उन शिरों से गिरने वाली रक्तधाराओं से सारा शरीर भीगा हुआ है। कानों में आभूषण के रूप में धारित दो किशोर शवों के कारण ये भयानक प्रतीत हो रही हैं। इनके विशाल मुख में बड़े-बड़े भयानक से प्रतीत होने वाले दाँत हैं तथा इनके दोनों स्तन पुष्ट एवं उन्नत (ऊपर उठे हुए से) हैं। (भयानक रूप से) हँसती हुई इनके कटि प्रदेश में शवों के (कटे हुए) कर-समूहों से रचित करधनी सुशोभित है। इनके फैले हुए मुख के दोनों किनारों से रक्त की धारा प्रवाहित हो रही है। नित्य श्मशान में निवास करने वाली ये अत्यधिक क्रोधावस्था के कारण (रुद्र के समान) भयंकर प्रतीत होने के साथ ही तीव्र ध्वनि कर रही (मुख से भयंकर ध्वनि निकाल रही) है। इनके तीनों नेत्र (प्रबल क्रोध के कारण) नवोदित बाल सूर्य के समान मण्डलाकार रक्तवर्णी हैं। बड़े-बड़े तथा मुख से कुछ बाहर की ओर निकले हुए से दाँतों वाली इनके शरीर का दक्षिण भाग शिर के बड़े-बड़े लम्बे केशों से आच्छादित है। इस अवस्था (स्वरूप) में ये देवी शवरूप में पड़े हुए महादेव के शरीर के ऊपर स्थित (खड़ी हुई) हैं। तीव्र-भयंकर ध्वनि करने वाली शिवाओं (सियारिनों) के द्वारा चारों ओर से घिरी हुई ये देवी महाकाल के साथ विपरीत भाव से संयोग के लिए व्याकुल सी हैं। सुख (की कल्पना से) उनका मुख प्रसन्न है तथा मुख कमल किञ्चित मुस्कान से युक्त है। इस प्रकार श्मशान रूपी गृह में वास करने वाली देवी दक्षिणा-कालिका का सम्यक् चिन्तन (स्मरण-ध्यान) करके सभी कामनाओं (के फल) को देने वाले उनके मन्त्र को मैं अब कहता हूँ।

॥ दक्षिणा-कालिकायाः मन्त्रोद्धारः, तद्माहात्म्यञ्च॥

**(क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं
हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा॥) ॥१३॥**

वर्गाद्यं वह्निसंस्थं च रतिबिन्दुसमन्वितम्।
त्रिगुणञ्च ततः कूर्चयुग्मं लज्जायुगं ततः॥१४॥
दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववच्च ततः पुनः।
ठद्वयेन समायुक्तं मनुमेनं विदुर्बुधाः॥१५॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम्।
नात्र शुद्ध्याद्यपेक्षास्ति न वा मित्रारिदूषणम्॥१६॥
न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम्।
न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं न च॥१७॥
य एनं चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकामसमृद्धिदाम्।
तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः॥१८॥

वर्गाद्य 'क्', वह्नि के साथ स्थित अर्थात् 'क्र्', रति 'ई' तथा बिन्दु अनुस्वार से युक्त अर्थात् 'क्रीं'। इसका त्रिगुण अर्थात् 'क्रीं क्रीं क्रीं', इसके बाद दो बार कूर्च 'हूं हूं' तथा दो बार लज्जा बीज 'ह्रीं ह्रीं' तत्पश्चात् 'दक्षिणे कालिके' पुनः पूर्व के सातों बीज पूर्ववत् तदुपरान्त ठद्वय अर्थात् 'स्वाहा' का समायोजन करने पर प्राप्त -
मन्त्र - **"क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा"**

बाईस अक्षरों वाले इस मन्त्र को विद्वान (तन्त्रज्ञ) पुरुषों ने मनुष्यों को सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाला कहा है। इस मन्त्र के ग्रहण में शुद्धि-अशुद्धि, मित्र-अरि दोष आदि के विचार की कोई आवश्यकता नहीं है। इसकी साधना में न ही अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता है और न ही मास-तिथि नक्षत्रादि के विषय में निर्णय (उचित-अनुचित समय के विषय में विचार) की आवश्यकता है। अत्यधिक धन खर्च करने तथा शरीर को अनावश्यक पीड़ित करने की भी इसमें आवश्यकता नहीं है। सभी लौकिक कामनाओं से सम्बन्धित पदार्थों की सदैव वृद्धि करने वाली इस दक्षिणा कालिका देवी का जो मन्त्रज्ञ साधक नित्य चिन्तन (ध्यान) करते हुए उसकी जप-पूजन आदि रूप से साधना करता है, निःसन्देह सभी सिद्धियाँ सदैव उसके हस्तगत रहती हैं।

गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनश्च पराजिताः॥१९॥
राजानोऽपि हि दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः।
वह्नेः शैत्यं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः॥२०॥
दिवारात्रिव्यत्ययञ्च स कर्तुं भवति क्षमः।
ब्रह्महत्या सुरापानमगम्यागमनं तथा॥२१॥
सर्वमाशु हरत्येव दक्षिणामेव चिन्तयेत्।
वागीश्वरसमो वाचि धनैर्धनपतिर्भवेत्॥२२॥
कामतुल्यः स नारीणां रिपुणां च यमोपमः।
सर्वस्येह जनस्येह वल्लभः कीर्तिवर्द्धनः॥२३॥

अन्ते च लभते देव्या दुर्लभाञ्च गतिं नरः।
चन्द्रसूर्यप्रभो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि॥२४॥
इत्येवमादिकं चैव बहुना कथ्यते पुनः।
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् यः स्मरेद् घोरदक्षिणाम्॥२५॥

देवी दक्षिणा-कालिका की साधना (आराधना-भक्ति) करने वाले साधक के मुख से, विद्वानों की सभा में अनायास ही सुन्दर-सुस्पष्ट गद्य तथा पद्य युक्त वाणी प्रस्फुटित होने (निकलने) लगती है। विद्वानों की सभाओं में किसी विशेष विषय पर चर्चा (वाद-विवाद) के समय उस साधक के देखने मात्र से ही बड़े-बड़े विद्वान (प्रति) वादियों की प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है, फलस्वरूप उन्हें पराजय का सामना करना पड़ता है। बड़े-बड़े अनेकों राजा भी ऐसे साधक के सेवक बन जाते हैं, फिर सामान्य मनुष्यों के सेवकत्व के विषय में कुछ कहना ही व्यर्थ है। भगवती के ऐसे सिद्ध साधक में अग्नि को शीतल, जलप्रवाह को स्तभित तथा सूर्य की गति को स्थिर कर देने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। वह दिन को रात्रि तथा रात्रि को दिन में परिवर्तित करने में समर्थ हो जाता है।

देवी दक्षिणा-कालिका के नित्य ध्यान-स्मरण-मन्त्रजप-पूजनादि से साधक के ब्रह्महत्या, सुरापान, अगम्यागमन (अवैध रूप से परस्त्री के साथ शारीरिक सम्बन्ध) आदि जैसे महापाप भी शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। इसकी साधना से मनुष्य बृहस्पति (अथवा ब्रह्मा)के समान वक्ता, धन-सम्पत्ति के द्वारा कुबेर के समकक्ष, स्त्रियों के मध्य (उनकी दृष्टि में) कामदेव के समान तथा स्वशत्रुओं के समक्ष साक्षात् यमराज के तुल्य हो जाता है। वह सभी मनुष्यों का प्रिय पात्र होने के साथ ही अपने यश को बढ़ाने वाला भी हो जाता है। शरीरान्त के पश्चात् देवी की कृपा से उसे दुर्लभगति (देवलोक-स्वर्ग) की प्राप्ति होती है। जहाँ वह चन्द्र तथा सूर्य के समान तेजस्वी एवं प्रभुत्ववान होकर दश हजार कल्प तक निवास करता है। इन सबके अतिरिक्त भी इस देवी की महिमा में और भी बहुत कुछ कहा जाता है। जो भी मनुष्य इस घोर स्वरूप वाली दक्षिणा-कालिका का नित्य स्मरण करता है उसके लिए इस लोक में ही नहीं परलोक में भी कुछ भी प्राप्त करना कभी भी असम्भव नहीं होता है।

॥ सध्यान-स्त्री-वशीकरण-प्रयोगः॥

नागयज्ञोपवीताञ्च चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्।
जटाजूटाञ्च सञ्चिन्त्य महाकालसमीपगाम्॥२६॥
कूर्चलज्जायुगं बीजद्वयं चान्ते तथैव च।
एवं सञ्चिन्त्य देवीं तु रक्तपुष्पैः समर्चयेत्॥२७॥
कामबाणसदाविद्धा निर्लज्जा विह्वला स्त्रियः।
स्वं स्वं सन्त्यज्य भर्त्तारमालिङ्गन्ते सदैव तम्॥२८॥

देवी दक्षिणा कालिका के उपर्युक्त ध्यान स्वरूप के साथ उनका नागरूप यज्ञोपवीत धारण की हुई, बड़ी-बड़ी जटाओं से युक्त तथा शिर पर अर्धचन्द्र धारण

की हुई एवं महाकाल के समीप स्थित रूप से ध्यान करके तथा लाल पुष्पों (एवं अन्य उपचारों) द्वारा उनका पूजन कर मूल बाईस वर्णों वाले मन्त्र के पश्चात् **'हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं'** का योग करके इस सत्ताईस वर्णात्मक मन्त्र का जप करे। इसके प्रभाव से काम बाण से पीड़ित स्त्रियाँ अपने-अपने पति का परित्याग करके लज्जा विहीन होकर उस साधक के पास सदैव आकर उसका आलिङ्गन करती हैं। मन्त्र जप के पश्चात् साधक को पुनः देवी का (मानस) पूजन करना चाहिए।

॥ सर्वाकर्षण प्रयोग:॥

लोहितां शूलहस्तां ताम्रकेशूलधरां तथा।
महाकालसमीपस्थां ध्यात्वा पीतैः सुपुष्पकैः॥२९॥
अभ्यर्च्य कालिकां पश्चात्तथैवान्तेऽपि योजयेत्।
आकर्षणं भवत्येव सदा स्थावरजङ्गमम्॥३०॥
स्वर्गपातालगं चापि किमन्यद् भूतले स्थितम्।
आकर्षयति सर्वं हि महाकालवचो यथा॥३१॥

देवी दक्षिणा कालिका का एक फल वाला शूल धारण किये रक्त वर्णा स्वरूप में महाकाल के निकट स्थित हुई ध्यान करके तथा पीले पुष्पों द्वारा उनका (महाकाल सहित) पूजन करके बाईस वर्ण वाले मूल-मन्त्र के आदि तथा अन्त में **'हूं ह्रीं क्रीं'** इन तीनों बीजों का संयोग करके अट्हाईस वर्णात्मक मन्त्र (अथवा **'हूं ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा हूं ह्रीं क्रीं'** मन्त्र) का जप करे। जप के पश्चात् (जप को समर्पित कर) पुनः (मानस) पूजन करे। इस जप-पूजन रूप कर्म के प्रभाव से वह साधक पृथिवी की क्या कहें स्वर्ग-पाताल में भी स्थित सभी चराचर प्राणियों का आकर्षण करने में समर्थ हो जाता है। ऐसा महाकाल का स्पष्ट कथन है।

॥ मारण-प्रयोग:॥

कपिलां द्विभुजां कर्तृकपालसव्यदक्षिणाम्।
ध्यात्वैवं हि च सर्वस्य चान्ते च द्वयमेव हि॥३२॥
एवं प्रजप्य पुष्पेण कृष्णेनैनां प्रपूजयेत्।
मारणं हि भवत्यस्य यमुद्दिश्य कृता क्रिया॥३३॥

देवी दक्षिणा-कालिका के उपर्युक्त ध्यान में उनके शरीर का वर्ण भूरा तथा वाम एवं दक्षिण हाथ में कर्तृका तथा कपाल धारण की हुई स्वरूप का चिन्तन करके सम्पूर्ण मूल मन्त्र के अन्त में **'हूं ह्रीं'** का संयोग करके चौबीस वर्णात्मक मन्त्र का (अथवा मूल मन्त्र के आदि तथा अन्त में **'हूं ह्रीं'** का योग करके छब्बीस वर्णात्मक मन्त्र का अथवा **'हूं ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके हूँ ह्रीं क्रीं स्वाहा'** मन्त्र का) जप, देवी का काले पुष्पों से पूजन करने के पश्चात् करे। इस प्रकार जिस व्यक्ति को (मारण हेतु) लक्ष्य बनाकर यह क्रिया की गई है, उनकी अवश्य ही मृत्यु हो जाती है।

॥ प्रयोगानुसारेण देव्या मुखभावस्य चिन्तनम्॥

उच्चायटयति पिङ्गाक्षी संत्रासयति केकरी।
विद्रावयति मुक्तास्या प्रोन्मत्तयति घूर्णिता॥३४॥

विक्षोभयति संक्रुद्धा संतापयति सायुधा।
संकोचयति संरुद्धा विप्रलब्धा विरोधयेत्॥३५॥
यं यं भावं जनो नेयस्तद्भावस्थां स्मरेद्यदि।
अत्र सर्वं प्रकर्तव्यं भावमात्रं विचिन्तयेत्॥३६॥

उच्चाटन कर्म के समय देवी का पिङ्गल वर्ण (भूरा अथवा पीताभ) नेत्रयुक्त ध्यान करना चाहिए। वक्र दृष्टि युक्त देवी का ध्यान शत्रु में भय उत्पन्न करता है। खुले हुए मुख के ध्यान से शत्रु का विद्रावण (पलायन), क्रोधयुक्त मुखाकृति के ध्यान से विचलन (मन में हलचल-चञ्चलता), घूर्णित (इधर-उधर घूमते हुए) नेत्रों के ध्यान से शत्रु में पागलपन तथा सायुध देवी का ध्यान शत्रु को पीड़ित करता है। संरुद्धावस्था में स्थित देवी का ध्यान शत्रु को संकुचित (क्षीण प्रभावयुक्त) करता है तथा क्षतिग्रस्त अवस्था नैराश्य की अवस्था में स्थित देवी का ध्यान शत्रुओं में ही विरोध उत्पन्न करता है। अतः साधक जिस-जिस अवस्था में शत्रु को ले जाना चाहता है, उसी भावानुसार देवी का ध्यान भी करे। साधक को सभी कर्मों में तत्तद् भावानुसार देवी का ध्यान करके ही कर्म (प्रयोग) करना चाहिए।

॥ नाना सिद्ध्यर्थं नाना प्रयोगाः॥

उच्चाटयति नैवात्र सर्वत्र सुरतो मतः।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः कृतनित्यक्रियो दिवा॥३७॥
रात्रौ नग्नः शयानश्च मैथुने च व्यवस्थितः।
अथवा मुक्तकेशश्च तेन स्युः सर्वसिद्धयः॥३८॥
स्तम्भनं मोहनञ्चैव वशीकारो विशेषतः।
नग्नां परस्त्रियं वीक्षन् प्रजपेदयुतं नरः॥३८॥
निकेतः सर्वविद्यानां पारगः सर्वदैव हि।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभं गताः॥३९॥

उच्चाटन को छोड़कर सभी सिद्धियों के प्राप्त्यर्थ प्रयोग में, विशेषतः स्तम्भन, मोहन तथा वशीकरण के प्रयोग में साधक को सम्भोग रत अवस्था में मन्त्र जप करना चाहिए। साधक प्रातः स्नान करके सफेद वस्त्र धारण कर दिनमें अपनी नित्य क्रियाओं (सन्ध्या-पूजनादि) करे तथा रात्रि में पूर्णतः नग्नावस्था में लेटे हुए, मैथुनरतावस्था में अथवा शिर के केशों को पूर्णतः खोले हुए बैठकर मन्त्र जप करे। इस प्रकार की साधना से सभी सिद्धियों की उसे प्राप्ति हो जाती है।

जो साधक (रात्रि में स्वयं नग्न रहते हुए) पर स्त्री को नग्न रूप में देखते हुए (बिना क्षोभ को प्राप्त हुए) दक्षिण कालिका के मन्त्र का दश हजार जप (यथा संभव रात्रियों में) करता है, वह सभी विद्याओं का भण्डार तथा सभी देवताओं से भी उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है। उसके दर्शन मात्र से ही वादियों (प्रतिवादियों) की आभा क्षीण हो जाती है अर्थात् उनका हृदयस्थ ज्ञान विलुप्त सा हो जाता है।

गद्यपद्यमयी तस्य वाणी सर्वविधा भवेत्।
अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः॥४०॥

प्रजपेदयुतं तावदेवं प्रतिविधिः स्मृतः।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा भगमामन्त्रेण च॥४१॥
मैथुनं यः प्रयात्येवं धनधान्यसुतान्वितः।
सर्वविद्यावतां श्रेष्ठो भवेद्वै नात्र संशयः॥४२॥
ऋतुमत्या भगं पश्यन् प्रजपेदयुतं नरः।
बालिशस्यापि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत्॥४३॥
छन्दोबद्धा च वै तस्य वाणी वक्त्रात् प्रवर्तते।

विद्वानों की सभा में उस साधक के मुख से (सुन्दर-सुस्पष्ट-रसपूर्ण) गद्य-पद्य युक्त वाणी स्वतः ही (धारा प्रवाहवत्) प्रस्फुटित होने लगती है।

अथवा साधक हविष्यान्न (शुद्ध पवित्र अन्न) का भोग करते हुए रात्रि में मुक्त शिरः केश नग्नावस्था में विधिपूर्वक ध्यानादि करके मन्त्र का पूर्ववत् दश हजार जप करे। इसके पश्चात् (अथवा प्रतिदिन निश्चित संख्या में जप के पश्चात्) इसी मन्त्र से स्त्री भग को एक सौ आठ बार (उस पर हाथ रखते हुए) अभिमन्त्रित करके उसके साथ मैथुन करे। इस प्रयोग से वह साधक धन-धान्य (सुख-सम्पत्ति) तथा पुत्र (पौत्रों) से सम्पन्न हो जाता है। इसके साथ ही निश्चित रूप से वह सभी विद्याओं का ज्ञाता तथा विद्वानों में श्रेष्ठत्व को भी उपलब्ध हो जाता है।

जो साधक (रात्रि में स्वयं नग्नावस्था में रहते हुए) ऋतुमती स्त्री के भग को देखते हुए मन्त्र का पूर्ववत् दश हजार जप करता है, बाल-बुद्धि (अथवा मूर्ख) होते हुए भी उसकी वाणी गद्य-पद्य मयी हो जाती है। उसके मुख से सुललित छन्दों से सुगठित काव्यधारा अनायास ही प्रवाहित होने लगती है।

सुरतेषु सदा जप्यं महापातकमुक्तये॥४४॥
[धनागमाय व परयोषा समागमे।
यदि योषिन्नसंसर्गस्तदा रेतः प्रयत्नतः।
समुत्सार्य ततो जप्यं सर्वकामार्थसिद्धये॥]

महापापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए सदैव मैथुनावस्था में स्थिर होकर साधक को जप करना चाहिए।

[इसी प्रकार धन प्राप्ति के लिए भी साधक को परस्त्री के साथ समागम करते हुए ही जप करना चाहिए। यदि सम्बन्ध के लिए पर स्त्री उपलब्ध न हो सके तो स्वतः प्रयत्न करके वीर्य का विसर्जन कर सर्वकामसिद्धि के लिए साधक जप करे।]

श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः।
जपेदयुतसंख्यं तु सर्वकामार्थसिद्धये॥४५॥
तत्रैव प्रेतमारूह्य यो जपेन्मन्त्रवित्तमः।
अयुतं वाग्यतो भूत्वा विभीषिकपरायणः॥४६॥
स याति परमां सिद्धिं देवैरपि सुदुर्लभाम्।
आकर्षणं वशीकारोच्चाटनं बोधनं तथा॥४७॥

स्तम्भनं मोहनञ्चैव त्रासनं ह्रासनं तथा।
वाग्मित्वञ्च धनित्वञ्च बहुपुत्रत्वमेव च॥४८॥
बहुबल्लभतां चैव सर्वप्रियत्वमेव हि।
समायाति खेचरत्वं देवत्वमपि चैव हि॥४९॥
न जरा न च मृत्युर्वा न रोगो न च वा भयम्।
न भीतिर्न मनुष्यस्य न च वाक् कायपातनम्॥५०॥
अथवा स भवेन्नित्यं चतुर्विंशतिसिद्धियुक्।

सभी कामनाओं की सिद्धि तथा सर्वार्थ प्राप्ति के लिए साधक श्मशान में जाकर शिर के केशों को खोलकर तथा पूर्णतया नग्न होकर (अर्द्धरात्रि) में मन्त्र का दश हजार जप करे।

जो मन्त्रज्ञ साधक इस अवस्था में श्मशान में स्थित होकर, बिना भयभीत हुए, मौन होकर, शव पर बैठकर अथवा पर स्त्री के साथ मैथुन-रत रहते हुए दक्षिणा-काली के मन्त्र का दश हजार जप करता है, उसे देवताओं के लिए भी अलभ्य सर्वोत्कृष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है। ऐसे साधक को आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन, बोधन (शिक्षण अथवा अन्तर्ज्ञान के जागरण), स्तम्भन, मोहन, त्रासन (कष्ट अथवा पीड़ा देना), ह्रासन (क्षति अथवा हानि पहुँचाना) आदि की सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। वह साधक (बृहस्पति के समान) वाक्चातुर्य सम्पन्न सुवक्ता, सम्पत्तिशाली, अनेकों पुत्र-पौत्रों वाला, बहुतों पर स्वामित्व की क्षमता वाला तथा सर्वजनप्रिय हो जाता है। उसे आकाश में विचरण करने की सामर्थ्य (खेचर सिद्धि) तथा देवत्व (देवताओं की समता) भी प्राप्त हो जाती है। उसे बुढ़ापा, रोग, मृत्यु आदि से तथा अन्य किसी भी प्रकार से भय की प्राप्ति नहीं होती। उसे किसी भी मनुष्य से भय नहीं होता और न ही किसी की वाणी (शाप) से उसके शरीर का पतन (मरण) होता है। वह सदा के लिए चौबीस प्रकार की सिद्धियों से सम्पन्न (क्षिति से लेकर प्रकृति पर्यन्त चौबीस तत्वों पर अधिकार सम्पन्न) हो जाता है।

स्वदेहरुधिराक्तैश्च विल्वपत्रैः सहस्रशः॥५१॥
श्मशानेऽभ्यर्च्य देवीं तु वागीशसमतां व्रजेत्।
रेतोयुक्तेन पुष्पेण अर्कस्येह सहस्रशः॥५२॥
श्मशानेऽभ्यर्च्य कालीं तु सर्वसिद्धिं स विन्दति।
धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियः सुधीः॥५३॥
जायते नात्र संदेहो महाकालवचो यथा।
श्मशाने योषितं नीत्वा सुवस्त्रां गणिकां तथा॥५४॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गी रक्तपुष्पैरलङ्कृताम्।
जपापुष्पैर्मनुं प्रोक्ष्य ततो ध्यायेत्तु चण्डिकाम्॥५५॥
ततो गत्वा लभेद्राज्यं यदि सा न भयायते।

जो साधक श्मशान में बैठकर स्वरक्त से भीगे हुए एक हजार बेल के पत्रों से देवी दक्षिणा कालिका का पूजन करता है (तथा पूजनोपरान्त मन्त्र का दश हजार

जप एवं पूवोक्त बिल्व पत्रों द्वारा एक हजार बार हवन भी करता है) वह विद्वता तथा वाक्पटुता में बृहस्पति (अथवा ब्रह्मा) की समता प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार जो साधक पूर्वोक्त रूप से श्मशान में (अर्धरात्रि में) स्ववीर्य तथा एक हजार मदार पुष्पों के मिश्रण से देवी का (सहस्र बार) पूजन करता है, उसे भगवती काली की कृपा से सभी सिद्धियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। साथ ही वह धनवान, शक्तिशाली, वाक्पटु (सुवक्ता), श्रेष्ठ बुद्धिमान तथा सभी स्त्रियों का प्रिय-पात्र भी हो जाता है। ऐसा महाकाल का वचन है, अतः इस प्रकार की सिद्धि-सम्पत्ति की प्राप्ति में किसी भी प्रकार से सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

शरीर पर रक्त चन्दन का लेप लगाये हुए तथा लाल रंग के ही पुष्प-वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किसी (पर) स्त्री अथवा गणिका (वेश्या) को श्मशान में ले जाकर साधक एक हजार जपा पुष्पों के द्वारा उसकी योनि का पूजन तथा उतने ही पुष्पों द्वारा (योनि का) प्रोक्षण मन्त्रोच्चारण सहित करे अथवा योनि-पूजन के पश्चात् उसके रज से सिक्त एक हजार पुष्पों के द्वारा (एक हजार बार ही) देवी का प्रोक्षण करे। इसके पश्चात् उसके साथ मैथुनावस्था में मन्त्र का यथेष्ट जप करे। यदि साधक इन सब क्रियाओं के मध्य भयभीत नहीं होता तथा भय के कारण वहाँ से पलायन नहीं करता तो उसे इस साधना के फलस्वरूप राज्य की प्राप्ति (अथवा राज-सुख की प्राप्ति) होती है।

श्मशानशयने चैव शवासनगतः पुनः॥५६॥
असकृत्तु जपेन्मन्त्रं सर्वथा वाऽयुतैस्तथा।
[तर्पयेच्च शवास्ये तु रक्तमांसाकस्थभिस्त्रिधा।
त्रिस्त्रिर्मन्त्रमुदीर्यैवं सर्वासिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्॥
तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा।]
रेतोभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन करणे च॥५७॥

श्मशान में (अर्धरात्रि में) सीधे मुख ऊपर की ओर किये हुए किसी शव पर बैठ करके निरन्तर अथवा दश हजार की संख्या में जप करे। जप के पश्चात् (यदि जप की संख्या कई रात्रियों में पूर्ण की जाय तो प्रत्येक बार के यथेष्ट जप के पश्चात्) उसी श्मशान में ही रक्त, मांस तथा अस्थि (तीनों के मिश्रण) से तीन बार शव के मुख में तर्पण करे। प्रत्येक तर्पण के समय तीन बार मन्त्र का उच्चारण करे। **'मूलं दक्षिणा कालिकां तर्पयामि स्वाहा'** इस मन्त्र से तर्पण करे। इस प्रयोग से साधक को निश्चित ही सर्वसिद्धि की प्राप्ति होती है।

इसी भाँति दूध (अथवा पानी), रक्तधारा तथा अपने ही हाथ से वीर्य निकालकर उसके द्वारा पूर्ववत् तर्पण करने से भी पूवोक्त सर्वसिद्धि रूप फल की प्राप्ति होती है।

मैथुनायितयोषाया भगप्रक्षालनेन च।
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि॥५८॥
मूषमार्जाररक्तेन वाग्मिता तस्य जायते।
धनित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते॥५९॥

वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः।
आज्ञया देवराजोऽपि रूपेणापि मनोभवः।।६०।।
बलेन पवनो ह्येष सर्वतत्वार्थसाधकः।

मैथुन की हुई स्त्री के भग-प्रक्षालित जल से, भेड़, भैंस, मनुष्य, चूहा तथा बिलाव के रक्त से भी पूर्ववत् तर्पण करने से वाक्पटुता, धन-सम्पत्ति तथा सर्वसिद्धियों की प्राप्ति होती है। ऐसा साधक वक्तृत्व (बोलने) में बृहस्पति के समान, धन के द्वारा कुबेर के समान, आज्ञा पालन करवाने में देवराज इन्द्रवत्, सौन्दर्य में कामदेव के तुल्य, बल में वायु के समकक्ष तथा सभी तत्वों को स्ववश करने में समर्थ हो जाता है।

साधिता साधितं मांसं सास्थि दद्यात् सदा बलिम्।।६१।।
मूषमार्जारमांसञ्च मेषमाहिषमेव च।
सर्वसास्थि प्रदातव्यं तथा मद्यसमन्वितम्।।६२।।
स्वनखछिन्नमार्जारकेशं सम्मार्जनागतम्।
निवेदयेत् श्मशाने तत् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।।६३।।

जप-पूजनादि करने के पश्चात् मूषक, बिलाव, भेड़, भैंस आदि (शास्त्रानुमोदित पशुओं-जीवों) का अस्थि सहित पकाया हुआ (अथवा कच्चा ही) शोधित मांस देवी को बलि के रूप में सदैव अर्पित करना चाहिए। सभी प्रकार के मांस को अस्थि सहित मद्य के साथ ही देवी को देना चाहिए। जो साधक अपने नाखूनों से ही बिलाव के केशों (रोमों) को नोंच (उखाड़) कर उसे स्वच्छ करके श्मशान में देवी को निवेदित करता है, वह सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

नारीरजोऽन्वितं कृत्वा पर्णानां शतमुत्तमम्।
प्रत्येकं प्रजपेन्मन्त्रं त तस्तद्धोमयेद् बुधः।।६४।।
[युगानामयुतं तेन दक्षिणा पूजिता भवेत्।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वाग्मी धीरञ्च जायते।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित पृथिव्यां यच्च विद्यते।।]
योनयुक्तं हि कुण्डं वै कृत्वा वितस्तिमानतः।
हस्तविस्तारतः कृत्वा हस्तञ्चापि तथाप्यधः।।६५।।
तत्र कार्या हि मन्त्रे वह्निस्थापनकक्रिया।
महाकालाय देवाय प्रदद्यात् प्रथमाहुतिम्।।६६।।

साधक उत्तम (भोज पत्रों, बिल्व अथवा पान के) सौ पत्तों को स्त्री रज से सिक्त करके, एक एक पत्र को मन्त्र से अभिमन्त्रित (एक-एक बार) करके उसका क्रमशः हवन करे। इस कार्य से भगवती दक्षिणा कालिका साधक द्वारा दश हजार युगों तक पूजित हो जाती है। इसके फलस्वरूप साधक वाक्पटु (सुवक्ता), धीर (साहसी, शक्तिमान, विद्वान आदि) तथा सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाता है। इस पृथिवी पर जो कुछ भी वर्तमान है, वह सब कुछ प्राप्त करना इस साधक के लिए सुलभ हो जाता है।

हवन कार्य के लिए एक हाथ लम्बे-चौड़े, इतने ही गहरे तथा एक बालिश्त

लम्बी योनि-युक्त चौकोर कुण्ड का निर्माण कर उसमें विधिवत् मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्नि की स्थापना (संस्कार आदि भी) करके पहली आहुति महाकाल के लिए प्रदान करनी चाहिए। हवन के लिए एक हाथ विस्तार तथा इतने ही गहरे त्रिकोणकुण्ड का भी साधक निर्माण कर सकता है परन्तु इसमें योनि नहीं बनानी चाहिए।

दद्यादाज्येन भक्तेन मांसेन रुधिरेण च।
कृष्णपुष्पेण साज्येन रेतसापि विशेषतः॥६७॥
रुरुमांसेन साज्येन भक्तेन रुधिरेण च।
आमिषादिकमप्येवं जुहुयात् पितृकानने॥६८॥
स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः।
दिवा चैव प्रकर्तव्यं सर्वकामार्थसिद्धये॥६९॥
रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुनेनापि तत्त्वतः।
प्रकर्त्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये॥७०॥

सर्वकामार्थ सिद्धि के लिए साधक को श्मशान में ही पूर्वोक्त कुण्ड का निर्माण करके प्रथमाहुति के बाद देवी दक्षिणा कालिका के लिए आज्य से सन्तृप्त भात, मांस, रक्त, काले पुष्पों, विशेष रूप से घृत युक्त वीर्य, रुरु नामक हिरण के मांस तथा अन्य प्रकार के भी मांसों द्वारा हवन करना चाहिए। साधक को दिन में स्नान करके पवित्र होकर शुक्लवस्त्रधारण करके देवी का जप-पूजन-हवनादि सभी कर्म करना चाहिए तथा रात्रि में नग्न होकर, शिरः केशों को मुक्त रखते हुए प्रयत्नपूर्वक मैथुन सहित पञ्च तत्वों द्वारा पूजन अथवा मैथुनावस्था में मन्त्र-जप करना चाहिए।

द्विजानाञ्चैव सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते।
शूद्राणाञ्च तथा प्रोक्तं रात्रौ दृष्टं महामतम्॥७१॥
यद्यत् कामयते चित्ते तत्तदाप्नोति नित्यशः।
महाकालं हुनेद्यत्नात् पश्चाद्देवीं प्रयत्नतः॥७२॥
त्रिधा विभज्य मन्त्रं वै यत्नात् साधकसत्तमः।
मांसं रक्तं त्वचं केशं नखं भक्तञ्च पायसम्॥७३॥
आज्यञ्चेति प्रयत्नेन होतव्यं सर्वसिद्धये।
एवं कृत्वा विधातव्यं लभते सिद्धिमुत्तमाम्॥७४॥
यद्यत् प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति नित्यशः।
देवत्वं दानवत्वञ्च सिद्धचारणतां तथा।
सदा हुत्वा समाप्नोति नित्यमेवमतन्द्रितः॥७५॥

सभी द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)साधकों को पूजन जपादि कर्म दिन में तथा शूद्रों को रात्रि में (प्राचीन परम्परानुसार शूद्रों के द्वारा दिन में द्विजों के सेवा-कार्य में व्यस्त रहने के कारण) करना चाहिए। ऐसा ही विद्वानों द्वारा निर्णीत तथा कहा गया विधान है। ऐसा करने पर साधक के मन में जिस-जिस वस्तु अथवा सिद्धि की कामना होती है, उसे वह नित्य ही (सदैव) प्राप्त करता रहता है।

हवन क्रिया के समय साधक को पहले महाकाल के जिए आहुति प्रदान करते हुए हवन करना चाहिए। तत्पश्चात् देवी के लिए हवन करना चाहिए। मूल मन्त्र को तीन भागों में विभाजित करके (यथा-प्रथम भाग पूर्व के सप्त बीजाक्षर, द्वितीय भाग 'दक्षिणे कालिके' तथा तृतीय भाग 'स्वाहा' सहित पश्चात् के सप्त बीजाक्षर) प्रत्येक भाग से क्रमशः मांस, रक्त, त्वचा, केश, नख, भात, खीर तथा आज्य से (अर्थात् मन्त्र के प्रत्येक खण्ड से प्रत्येक पदार्थ के द्वारा तीन-तीन बार) प्रयत्नपूर्वक हवन करना चाहिए। इस प्रकार साधक विधिपूर्वक कर्म करके विधान किये गये फलों तथा श्रेष्ठ सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। जो साधक नित्य आलस्य रहित होकर जप-पूजनादि के पश्चात् इस प्रकार हवन कार्य का सम्पादन करता है, वह देवत्व, दानवत्व (दानवों के समान शक्ति तथा ऐश्वर्य), सिद्धों के समान सर्वत्र विचरण करने की सामर्थ्य यहाँ तक कि जिस-जिस वस्तु प्राप्ति की कामना (प्रार्थना) उसके चित्त में उत्पन्न होती है। उसे वह सदैव प्राप्त कर लेता है।

॥ यन्त्र-संरचना तत्र देव्याः पूजनम्॥

अथ वक्ष्याम्यहं देव्या पूजाविधिमनुत्तमम्।
त्रिकोणं विन्यसेत् पूर्वं पुनः पश्चात् त्रिकोणकम्॥७६॥
नवकोणं तु तस्यान्ते तन्मध्ये स्थापयेच्छिवाम्।
एवं पञ्चदशारं वै रेखाभिः परिवेष्टयेत्॥७७॥
वहिरष्टदलं कार्यं चतुर्द्वारोपशोभितम्।
ततः पूर्वादिकोणेषु वामावर्तेन विन्यसेत्॥७८॥
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम्।
विप्रचित्तां तु विन्यस्य बहिः षट्कोणके पुनः॥७९॥
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां परत्रिकोणके न्यसेत्।
नीलां धनां बलाकाञ्च तथैवापरके त्रिके॥८०॥
मात्रां मुद्रां मितां वैचापरत्रिकोणके बुधः।
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः॥८१॥
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यश्च सस्मिताः।

अब मैं देवी दक्षिणा-कालिका के उत्तम पूजा विधान को कहता हूँ। सर्वप्रथम किसी समुचित फलक (स्वर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा भोजपत्र) पर यन्त्र की रचना करे। फलक पर पहले एक त्रिकोण बनाये। उसके बाहर उसे आवृत्त किये हुए दूसरा त्रिकोण बनाये। पुनः इसके बाहर पूर्व त्रिकोणों को आवृत्त करते हुए उसी प्रकार से तीन त्रिकोण और बनायें। इन सभी त्रिकोणों को आवृत्त करते (वृत्त पुनः) हुए अष्ट दल पद्म तथा इसके भी बाहर (वृत्त बनाकर सबसे बाहर) चार द्वारों से युक्त चतुरस्र भूपुर की रचना करे। तत्पश्चात् (यंत्र की प्राण-प्रतिष्ठा, पीठ-पूजन, मन्त्र का विनियोग, न्यासादि पूजन से पूर्व की जाने वाली सभी क्रियाओं को करके, स्व हृदय कमल से आवाहनादि के द्वारा विधिवत् बाहर निकाल करके) देवी शिवा (दक्षिणा

कालिका) को सबसे भीतरी त्रिकोण के मध्य बिन्दु पर स्थापित करे। इसके बाद (देवी का षडङ्ग पूजनादि करके) वामावर्त पूर्वादि क्रम से सर्वबाह्य त्रिकोण से आरम्भ कर सर्वान्तर त्रिकोण तक सभी कोणों में क्रमशः काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, बलाका, मात्रा, मुद्रा, तथा मिता संज्ञका देवी की नौ अङ्गभूत शक्तियों की अर्चना उनके ध्यान, आवाहन, स्थापन आदि सहित करे। ये सभी शक्तियाँ षोडशवर्षीया युवती रूप में, मुण्डमाला से विभूषित, वामहस्त से तर्जनी मुद्रा तथा दक्षिण कर में खड्ग धारण की हुई किञ्चित मुस्कान युक्त मुख-मण्डल वाली हैं।

विमर्श - कुमारीकल्पानुसार एक दूसरे को आवृत्त करते हुए पहले तीन त्रिकोणों की रचना करके उसके बाहर षट्कोण पुनः अष्टदल पद्म तथा सबसे बाहर एक रेखात्मक भूपुर की रचना करनी चाहिए। सर्वान्तर त्रिकोण के मध्य 'बिन्दु' पर बीजाक्षर 'क्रीं' लिखना चाहिए। पूजन के समय सबसे पहले षट्कोण में विधिवत् छः शक्तियों का तथा शेष नव शक्तियों का भीतरी त्रिकोणों में क्रमशः न्यास करना चाहिए।

तद्बहिरष्टदले तु ब्राह्मी नारायणी तथा॥८२॥
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता।
वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च॥८३॥
ततो मध्ये त्रिकोणान्तर्न्यसेद् देवीञ्च दक्षिणाम्।
महाकालञ्च तथैव न्यसेच्चैष विधिः स्मृतः॥८४॥
सर्वासामपि देवीनां बलिपूजा तथैव च।
अनुलेपनकं चापि विभवेनोपकल्पितम्॥८५॥
त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्तव्या सर्वासामपि सर्वदा।

इसके उपरान्त बाह्य स्थित अष्टदल पद्म में पूर्ववत् ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही तथा नारसिंही नाम वाली अष्टमातृकाओं का आवाहन-स्थापनादि सहित पूजन करे। इसके पश्चात् सबसे भीतरी त्रिकोण में देवी के दक्षिण भाग में महाकाल की विधिवत् स्थापना करके उनका भी पूजन करे। सभी देवियों की अर्चना मेंसभी पूजोपचार, चन्दनादि तथा बलिपदार्थ अपने वैभव (धन-शक्ति सामर्थ्य) के अनुसार प्रयोग करना चाहिए। सभी देवियों की पूजा तीन-तीन बार करनी चाहिए।

॥ न्यासादि-निरूपणम्॥

अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावत् कथयाम्यहम्॥८६॥
दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन मन्त्रवित्।
षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री त्रिः सकृद् वा यथासुखम्॥८७॥
पञ्चाशद्भिश्च वर्णैश्च हृदयं द्वौ भुजौ तथा।
तथा जङ्घाद्वयञ्चैव योजनीयं दिशो दश॥८८॥
पञ्चधा नवधा वापि मूलमन्त्रेण सप्तधा।
समस्ताङ्गं प्रकुर्वीत शोधितं मन्त्रवित्तमः॥८९॥

अब मैं पूजन से पूर्व तथा पश्चात् में (जप से पूर्व) किये जाने वाले अङ्गन्यास-करन्यास के विषय में विधिवत् कहता हूँ। साधक को पहले (मूल मन्त्र का विनियोग तथा ऋष्यादि न्यास करके) प्रथम बीज को छः दीर्घ स्वरों से युक्तकर (**क्रां, क्रीं, क्रूं** इत्यादि रूप से) इनके पहले प्रणव '**ॐ**' का संयोग करके तीन बार अथवा एक बार (इच्छानुसार) कर-षडङ्ग न्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् हृदय, दोनों भुजाओं तथा दोनों जङ्घाओं की दशो दिशाओं में पचास वर्णों (प्रत्येक में दश-दश वर्णों) का न्यास (**मातृका-वर्ण-न्यास**) करना चाहिए। तदुपरान्त मूल-मन्त्र द्वारा पाँच, सात अथवा नव बार सर्वाङ्गो में न्यास (**व्यापक-न्यास**) करना चाहिए।

ततः पूर्वोक्तरूपां तां घ्यायेद्वै घोरदक्षिणाम्।
योगिनीचक्रसहितां महाकालसमन्विताम्॥९०॥
संपूज्य प्रयतश्चापि बलिं च प्रतिपादयेत्।
बलिमुत्सार्य नैवेद्यं नैर्ऋत्याञ्च निवेदयेत्॥९१॥
हृदये चैव देवीं स्वे समर्प्य विधिवद् बुधः।
निर्माल्यं वै शुचौ देशे धारणीयं प्रयत्नतः॥९२॥
लक्षञ्चैव जपेन्मन्त्री हविष्याशी दिवा शुचिः।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च॥९३॥
दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत्।
होमेऽपि तर्पणे चैव यथावत् कथितो विधिः॥९४॥

इस प्रकार विधिवत् सभी आवश्यक न्यासों को करके पूर्वोक्त रूप से देवी घोर दक्षिणा (दक्षिणा-कालिका) का चक्र (यन्त्र) में स्थित योगिनियों (काली, कपालिनी आदि) तथा महाकाल सहित ध्यान एवं पूजन कर उन्हें बलि प्रदान करके नैर्ऋत्य दिशा में नैवेद्य प्रदान करना चाहिए। समस्त पूजनोपरान्त देवी को विसर्जित कर उसे अपने हृदय में पूर्ववत् स्थापित कर देना चाहिए। देवी के निर्माल्य को भी पवित्र स्थान पर ही विसर्जित करना चाहिए।

साधक को हविष्यान्न का भोजन करते हुए दिन में पवित्र होकर (पूजनोपरान्त) मन्त्र का एक लाख जप (निश्चित संख्या में प्रतिदिन जप करते हुए यथेष्ट दिनों में) करना चाहिए। इसी प्रकार रात्रि में भी अपवित्रावस्था में अथवा पवित्रावस्था में जैसे भी हो एक लाख मन्त्र जप करना चाहिए। एक लाख (दिन-रात्रि मिलाकर दो लाख) की संख्या में जप पूर्ण हो जाने पर विधिवत् तत्तद् दशांश की संख्या में (एक लाख के अनुसार) हवन, तर्पण, मार्जन (अभिषेक) तथा ब्राह्मण भोज करना चाहिए। हवन तथा तर्पण के लिए जैसा (जिन पदार्थों से करने का) विधान कहा गया है, वैसा ही करना चाहिए।

एवं देवीं कलुषदहनीं पूजयित्वा यथावद्
दत्वा तावद् बलिमपि तथा तर्पयित्वाऽभिषिच्य।
यं यं कामं रचयति मनः स्वाहितं मर्त्यलोक-
स्तं तं प्राप्य प्रयाति प्रतिपदपदवीं योगिभिः प्रार्थनीयाम्॥९५॥

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
श्मशानकालिका देवी क्रींबीजं हूँ च शक्तिकः॥९६॥
सकलसिद्ध्यर्थे विनियोगः।

इति फेत्कारिणीतन्त्रे श्मशानकालिकाकथने दशमः पटलः॥

इस प्रकार सर्वपाप विनाशिनी देवी दक्षिणा कालिका का यथाविधि पूजन, हवन, तर्पण, मार्जन तथा बलि प्रदान रूप सभी कर्मों को करने वाला साधक मन में जिस-जिस पदार्थ की कल्पना करता है उसे इसी मानवलोक में प्राप्त करके (तथा इच्छानुसार उनका भोग करके) शरीरान्त होने पर योगियों के द्वारा अभिलषित परम पद रूप स्थिति मोक्ष (अथवा देवी लोक) को प्राप्त करता है।

पूर्वोक्त बाईस वर्णात्मक मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द त्रिष्टुप्, देवता श्मशान कालिका, बीज **'क्रीं'** तथा शक्ति **'हूं'** कहा गया है। सर्वार्थ सिद्धि के लिए इसका विनियोग करना चाहिए।

विमर्श - श्री विद्यार्णव तन्त्र (तथा कुछ अन्य ग्रन्थानुसार) उपर्युक्त मन्त्र का छन्द **'उष्णिक'**, देवता दक्षिणा कालिका, बीज **'ह्रीं'**, शक्ति **'हूं'** तथा कीलक **'क्रीं'** है। चतुर्वर्ग (पुरुषार्थ) सिद्ध के लिए इसका विनियोग करना चाहिए। कर-षडङ्ग न्यास **ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा** इत्यादि रूप से करना चाहिए।

फेत्कारिणी तन्त्रान्र्गत श्मशान कालिका-वर्णन-प्रसङ्ग में दसवें पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई॥

अथ एकादशः पटलः

॥ सार्वज्ञप्रदा विद्या-विषये देव्याः प्रश्नः॥

कैलासशिखरासीनं चन्द्रखण्डविराजितम्।
वक्षःस्थले समासीना पृच्छति स्म नगात्मजा॥१॥

कैलास पर्वत के शीर्ष स्थल पर विराजमान चन्द्रशेखर शिव से, उनके वक्ष स्थल से लगकर बैठी हुई हिमाचल-पुत्री देवी पार्वती पूछती हैं।

श्री देवी उवाच

कथमीशान सार्वज्ञमलभँस्ते तपोधनाः।
कां विद्यां प्राप्य कवयो भारतादीन् प्रचक्रिरे॥२॥
श्रुत्वा नगात्मजावाक्यं रहस्यं परमेश्वरः।
प्राह प्रियां परिष्वज्य साधु साध्विति पूजयन्॥३॥

देवी ने शिव से पूछा - हे ईशान! पूर्वकाल में तपस्वी ऋषि-मुनियों ने किस प्रकार से सर्वज्ञता की प्राप्ति की थी। किस विद्या को प्राप्त करके उन विद्वानों ने महाभारत (रामायण, पुराणादि) महान काव्य ग्रन्थों की रचना की थी। देवी पार्वती के रहस्यमय वचन को सुनकर परमेश्वर शिव ने अपनी प्रिया का आलिङ्गन करके 'साधु-साधु' (तुम्हारा प्रश्न बहुत ही उत्तम है) कहकर उनका आदर किया।

॥ महाविद्या-माहात्म्यम्॥

श्रीशिव उवाच

शृणु साध्वि महाविद्यामज्ञानेन्धनदाहिनीम्।
यामवाप्य महात्मानो धर्मकामार्थमुक्तिषु॥४॥
नासाध्यं मेनिरे किञ्चित् कवयः शुद्धबुद्धयः।
वादे सदसि या वाक्यस्तम्भिनी प्रतिवादिनः॥५॥
विद्या हानिकरी विदुषां बलिदानतः।
हास्याय या सदस्यानामशुद्धजल्पनादिना॥६॥
वादिनं वाथ राजानं मन्त्रिणं वशमानयेत्।
ज्ञानमात्रेण मन्त्रस्य मतिरुग्रा प्रजायते॥७॥
जपादेव तु सार्वज्ञयं जायते नात्र संशयः।
जिह्वायां न्यसनादेव मूर्खोऽपि सुकविर्भवेत्॥८॥

शिव ने कहा - हे साध्वि! (श्रेष्ठ विचार तथा आचरण वाली) पार्वति! सुनो, अब मैं उस महाविद्या के विषय में कहता हूँ जो अज्ञान रूपी इन्धन (काष्ठ) को भली-भाँति जलाकर पूरी तरह नष्ट कर देने वाली है तथा जिसे प्राप्त करके

प्राचीन शुद्ध बुद्धि(तथा आचरण) सम्पन्न विद्वान महात्माओं ने धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों में से किसी को भी प्राप्त करना कभी भी किसी भी प्रकार से असाध्य नहीं माना।

हे देवि! यदि साधक इस विद्या के द्वारा (देवी तारा के पूजन तथा मन्त्र जप के पश्चात्) देवी को बलि प्रदान करे तो यह प्रतिपक्षी विद्वानों की विद्या (ज्ञान, बुद्धि अथवा मन्त्र सिद्धि) का विनाश (अपहरण) करने वाली सिद्ध होती है। विद्वानों की सभा में किसी विषय पर वाद-विवाद के समय प्रतिवादी की बुद्धि को यह स्तम्भित कर देती है। सभा के सदस्यों के मध्य अशुद्ध (अथवा व्यर्थ) बोलने के कारण प्रतिपक्षी हास्य (उपहास) का पात्र बन जाता है। इस मन्त्र का साधक इसके प्रभाव से प्रतिपक्षी वादियों, राजाओं तथा उनके मन्त्रियों को भी अपने वश में कर लेता है। इसके ज्ञान मात्र (सामान्य जप मात्र) से ही साधक की बुद्धि तीव्र (तीक्ष्ण) हो जाती है। इस मन्त्र का निरन्तर जप करने मात्र से ही साधक को सर्वज्ञता की प्राप्ति हो जाती है तथा जिह्वा पर इस मन्त्र का न्यास करने से मूर्ख व्यक्ति भी श्रेष्ठ कवि (अथवा विद्वान) हो जाता है। जिह्वा द्वारा स्वत: ही बिना प्रयत्न मन्त्र-जप होने लगने की स्थिति प्राप्त होनी ही वास्तविक रूप से जिह्वा पर मन्त्र का न्यास होना है।

॥ उग्रतारा-ध्यानम्॥

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा
खड्गेन्दीवरकर्तृखर्परभुजा हूंकारबीजोद्भवा
खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटोग्रनागैर्युता
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्॥९॥

(शिव रूपी) शव के हृदय पर दक्ष तथा दोनों पैरों पर वाम चरण को स्थापित किये हुए प्रत्यालीढ अवस्था में खड़ी हुई, घोर (तीव्र भयानक) स्वर में अट्टहास करने वाली, अपनी चारों भुजाओं में खड्ग, नील-कमल, कर्तृका तथा खप्पर धारण करने वाली, छोटे तथा नील (श्याम) वर्ण शरीर वाली, विशाल भूरे रंग के जटा समूहों के मध्य नागों को धारण करने वाली 'हूँकार' रूप स्वबीज से उत्पन्ना कर्तृका के ऊपर स्थिता परा शक्ति स्वरूपिणी भगवती उग्रतारा तीनों लोकों की जड़ता (शिव-शक्ति को) को अपने कपाल में लेकर उसका (संसार का) स्वयं ही विनाश करती हैं तथा प्रलय काल में सूक्ष्मावस्था में स्थित जड़रूप त्रिलोकी की जड़ता (अचेतनता) का स्वयं विनाश कर भगवती उग्रतारा अपने सौम्य रूप द्वारा पुन: त्रिलोकी का विस्तार (सृष्टि) भी करती हैं।

॥ समाहात्म्य साधन-विधि निरूपणम्॥

अव्याहतमतिः शास्त्रे विजयी वाक्पतिर्भवेत्।
महाचीनक्रमां नत्वा तारां त्रिभवतारिणीम्॥१०॥
तत्साधनविधिं वक्ष्ये मम सर्वज्ञसाधकम्।
सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित्॥११॥
न च दोषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि।
वस्त्रासनथानगेहदेहस्पर्शादिवारिणः ॥१२॥

शुद्धिं न चारयेदत्र निर्विकल्पं मनश्चरेत्।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति न वा मित्रादिदूषणम्।।१३।।
य एवं चिन्तयेद् देवीं सर्वकामसमृद्धिदाम्।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते।।१४।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा मताः।
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः।।१५।।
सर्वदा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतभोजनः।
महानिशि शुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत्।।१६।।

तीनों लोकों का उद्धार करने वाली भगवती तारा का ध्यान-प्रणाम-जपादि सभी साधनाओं को महाचीन क्रम से करने वाला साधक वाणी का स्वामी बृहस्पति के समान हो जाता है। शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को समझते समय उसकी बुद्धि कहीं भी नहीं अटकती अर्थात् शास्त्र के वास्तविक भाव का ज्ञान उसे सरलता से हो जाता है तथा उसे सर्वत्र विजय की प्राप्ति होती है।

जिस प्रकार से साधना करने पर मुझे सर्वज्ञता की प्राप्ति हुई है, भगवती तारा के उस साधन विधान का अब मैं वर्णन करता हूँ। इसकी साधना के लिए सभी समय शुभ माना गया है, कोई भी काल अशुभ नहीं माना जाता है। ध्यान-पूजन-जपादि सभी साधन कर्म दिन, रात्रि, सन्ध्याकाल अथवा अर्धरात्रि किसी भी समय साधक अपनी इच्छा तथा सुविधानुसार कर सकता है। इसकी साधना में काल की दृष्टि से कोई दोष नहीं माना जाता है। वस्त्र, आसन, स्थान, शरीर, गृह आदि की शुद्धि तथा स्पर्श दोष निवारण के लिए मात्र जल से अभिषिञ्चन करने की ही आवश्यकता होती है। स्नानादि रूप से शुद्धि करने की आवश्यकता इसके साधन में अनिवार्य नहीं है। साधक को संशय रहित होकर बिना शुद्धि-अशुद्धि का विचार किये साधना करनी चाहिए। इसके मन्त्र के विषय में साध्य-असाध्य आदि तथा मित्र-अरि आदि रूप से दोष-निर्दोष का विचार भी करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार निर्विकल्प मनःस्थिति वाला जो साधक, सभी कामनाओं की पूर्ति तथा उनकी वृद्धि करने वाली इस देवी की ध्यानपूर्वक साधना निरन्तर करता है, विद्वानों की सभा के मध्य उस साधक के मुख से गद्य-पद्यमयी वाणी का प्रवाह स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगता है। उसके देखने मात्र से ही प्रतिवादियों का तेज क्षीण हो जाता है तथा उनकी प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है। यहाँ तक कि राजा भी उसका दासत्व स्वीकार कर उसकी सेवा करने वाला हो जाता है, फिर सामान्य मनुष्यों के विषय में क्या कहा जाय, वे तो बिना दाम के गुलाम से हो जाते हैं। साधक को बिना स्नान किये तथा भोजन करने के पश्चात् ही देवी का पूजनादि सभी कर्म करना चाहिए। उसे अर्धरात्रि में पवित्र (अथवा अपवित्र किसी भी) स्थान पर मन्त्रोच्चारण सहित देवी को यथोचित बलि प्रदान करना चाहिए।

स्त्रीद्वेषो नैव कर्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियाः।
जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वं जपञ्चरेत्।।१७।।

स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् यत्र तत्राप्यचूडके।
उपहारं यथायोग्यं भक्ष्यद्रव्यान् यथारुचीन्॥१८॥
मांसं मत्स्यं दधि क्षौद्रं पयः शाकाज्यमैक्षवम्।
भक्ताद्यशेषभक्ष्याणि दत्त्वा भक्षन् जपञ्चरतेम्॥१९॥

साधक को स्त्रियों के प्रति द्वेष-भाव नहीं रखना चाहिए, वरन् उनकी विशेष रूप से पूजा (सत्कार) करनी चहिए। जप स्थान पर भूमि के नीचे नृ-कपाल को गाड़कर उसके ऊपर आसन बिछाकर तथा उसी पर स्थित होकर (बैठकर) जप करना चाहिए। स्त्री के पास जाकर (उसे अपने साथ रखकर उसके साथ सम्बन्ध करते हुए) उसे स्पर्श करते तथा देखते हुए (नृ-कपाल के उपलब्ध न होने की स्थिति में अथवा उसके साथ ही) अचूडक-आसन (चार-पाँच वर्ष का ऐसा मृत बालक जिसका चूड़ाकर्म संस्कार न हुआ हो, उसके शव को आसन के रूप में प्रयोग कर) पर बैठकर जप करना चाहिए। स्त्री अधिक आयु की (युवती) हो अथवा बालिका हो, सभी को यथायोग्य उपहार तथा उनकी रुचि के अनुसार मांस, मत्स्य, दधि, मधु (शहद), दुग्ध , शाक, घृत, गन्ने का रस (अथवा गुड़-शक्कर) भात आदि सभी खाने योग्य पदार्थ अर्पित करने चाहिए। पहले स्त्रियों को खिलाकर शेष अन्न को स्वयं ग्रहण करके साधक को जप करना चाहिए। पहले सम्पूर्ण भक्ष्य-भोज्य पदार्थों को स्त्रियों को अर्पित कर दे। उनके पूर्णतः तृप्त हो जाने पर अवशेष भोजन को स्वयं ग्रहण करके जप करना चाहिए।

दिक्कालनियमो नास्ति स्थित्यादिनियमो न च।
जपे न कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि॥२०॥
स्वेच्छया नियमोक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने।
नाधर्मो जायते तेन किञ्चिद् धर्मो महान् भवेत्॥२१॥
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेद् धृष्टमानसः।
कृतार्थं मन्यमानस्तु सन्तुष्टनिजमानसः॥२२॥
सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्च्चयेत् दलैः।
विल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः॥२३॥

भगवती तारा (उग्रतारा) की साधना में साधक को किस दिशा की ओर मुख करके बैठना चाहिए, किस विशेष तिथि (अथवा दिन तथा दिन के मध्यकाल) में जप-पूजन आदि करना चाहिए तथा किस विशेष आसन आदि में स्थिति होनी चाहिए, ऐसा कोई भी अनिवार्य नियम नहीं है। जप-पूजन-बलि आदि के लिए भी कोई विशेष काल अथवा विधि का बन्धन उसके लिए नहीं है। इस देवी के महामन्त्र की साधना में साधक की इच्छा ही सर्वोपरि है। स्वेच्छाचारिता ही इसमें वास्तविक नियम है। इस स्वेच्छाचारिता (निर्विकल्पावस्था) के कारण उसे किसी भी प्रकार से कुछ भी अधर्म की भी प्राप्ति नहीं होती बल्कि इससे महान धर्म की ही उपलब्धि होती है। दृढ़, साहस तथा विश्वासपूर्ण मनः स्थिति वाला तथा सभी प्रकार के संशयों-विकल्पों से रहित होकर स्वेच्छापूर्वक साधन करना ही यहाँ नियम कहा गया है। सुगन्धित श्वेत (पीत),

लाल कुसुमों तथा बिल्व एवं मरुबक (मरुआ) के पत्रों द्वारा देवी की अर्चना करनी चाहिए तथा इस पूजनादि कर्म के द्वारा स्वयं को कृतार्थ मानते हुए मानसिक रूप से सन्तुष्ट रहना चाहिए। इसके पूजन में तुलसी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

एकलिङ्गे श्मशाने च शून्यागारे चतुष्पथे।
तत्रस्थः साधयेद् योगी तारां त्रिभवतारिणीम्॥२४॥
अवाप्य मन्त्रं विधिवत् परितोष्य गुरुं तथा।
गौभूहिरण्यवस्त्राद्यैर्यथाविभवविस्तरैः ॥२५॥
मृदुचूडकमासीनोऽप्यन्येषु कोमलेऽपि वा।
विष्टरेषु समाश्रित्य साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥२६॥
भूतशुद्धिं विधायाथ शून्यं विश्वं विचिन्तयेत्।
निर्लेपं निर्मलं शुद्धमात्मानं तारिणीमयम्॥२७॥

योगी साधक को एक लिङ्गरूप शिवालय में, श्मशान में, शून्य (देव रहित मन्दिर अथवा एकान्त) कक्ष में अथवा चौराहे पर स्थित होकर त्रिभुवन-उद्धार-कारिणी तारा की साधना करनी चाहिए।

सबसे पहले मनुष्य अपनी धन सम्पत्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार गाय, भूमि, स्वर्ण, वस्त्रादि देकर गुरु को भली भाँति सन्तुष्ट करके उनसे विधिवत दीक्षानुसार भगवती तारा का मन्त्र (तथा साधनविधि का ज्ञान) ग्रहण करे। तत्पश्चात् उनके आदेशानुसार तथा यथाप्राप्त मृदु, चूडक (अचूडक), कोमल अथवा (कुशों से निर्मित) आसन पर विधिवत् बैठकर उत्तम सिद्धियों की प्राप्ति के लिए साधना करे। साधक पहले विधिपूर्वक भूतशुद्धि करे, तत्पश्चात् समस्त विश्व को शून्य सभी दृश्यपदार्थों से रहित चिन्तन करे अर्थात् स्वचित्त को सम्पूर्ण विषयों तथा विचारों से रहित कर दे। इस शून्यावस्था में स्वयं को सभी दोषों तथा आसक्तियों से मुक्त, सर्वमाया रहित शुद्ध अवस्था में अनुभव कर पुनः स्वयं का भगवती तारा के रूप में चिन्तन (अनुभव) करे।

अन्तरिक्षे ततो ध्यायेदांकाराद् रक्तपङ्कजम्।
भूयस्तस्योपरि ध्यायेत् टांकरात् श्वेतपङ्कजम्॥२८॥
तस्योपरि पुनर्ध्यायेद् हूंकारं नीलसन्निभम्।
ततो हूंकारजां पश्येत् कर्तृकां बीजभूषिताम्॥२९॥
कर्तृकोपरि तां ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम्।
प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्॥३०॥
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृत्तां कटौ।
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्॥३१॥
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां भीमरूपां वरप्रदाम्॥३२॥
खड्गकर्तृधरां दक्षे वामोत्पलकपालिनीम्।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेद् मौलावक्षोभ्यभूषिताम्॥३३॥

भूत-शुद्धि के पश्चात् उस ध्यानगम्य शून्याकाश के मध्य आ:कार (आंकार) से उत्पन्न रक्त कमल का ध्यान करके उसके ऊपर पुन: 'टांकार' से उत्पन्न श्वेत कमल का ध्यान करे। तदुपरान्त उसके ऊपर नील-आभा युक्त 'हूंकार' का ध्यान करके उसी हूंकार बीज से उत्पन्न तथा उसी से विभूषित कर्तृका का ध्यान करे। तत्पश्चात् उस कर्तृका के ऊपर स्वयं को भगवती तारा के रूप में स्थित हुआ सा ध्यान करे। प्रत्यालीढ अवस्था में (पैरों को शवरूप शिव के हृदय तथा चरणों एवं घुटनों के मध्य स्थापित करके) खड़ी हुई, घोर स्वरूप वाली, गले में नरमुण्डों की माला को आभूषण रूप से धारण की हुई भगवती तारा का शरीर छोटा, उदर बढ़ा हुआ, देखने में भयंकर है तथा उनके कटि भाग में व्याघ्र चर्म रूप वस्त्र लिपटा हुआ है। वे नवयौवन से सम्पन्न (अर्थात् देखने में नवयुवती के समान प्रतीत होने वाली) हैं तथा उनका मस्तक पञ्चमुद्राओं (चतु:श्वेत अस्थि-पट्टिका-संलग्न कपाल पञ्चक) से विभूषित हैं अथवा (आगे कहे गये) पञ्चमुद्राओं द्वारा वे प्रणाम के योग्य हैं। इनके तीनों नेत्र प्रात: कालीन सद्योदित बाल सूर्य के समान गोल तथा रक्त आभा से युक्त हैं। ये चार भुजाओं से युक्त हैं, इनकी जिह्वा (बार बार) मुख से बाहर निकल कर लपलपा रही है जिसके कारण ये भयंकर स्वरूप वाली प्रतीत होती हैं, फिर भी ये अपने भक्तों को उनका अभीष्ट वर प्रदान करने वाली हैं। इनके दाहिने दो हाथों में खड्ग तथा कर्तृका तथा वाम भागस्थ दो हाथों में (नील) कमल तथा कपाल गृहीत है। इनके शिरस्थ भूरे रंग की बड़ी-बड़ी जटाओं के मध्य अक्षोभ्य नाग विराजमान है। भगवती तारा के इसी रूप के अनुसार स्वयं का ध्यान करना चाहिए।

सुमुखं चतुरस्रञ्च वृत्तं गोमुखमेव च।
योनिमुद्रेति विख्याता पञ्चमुद्रा नमस्कृता॥३४॥
ज्वलच्चितामध्यगतां घोरदंष्ट्राकरालिनीम्।
सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलङ्कारविभूषिताम्॥३५॥
विश्वव्यापकतोयान्त: श्वेतपद्मान्तरस्थिताम्।
भावनारससम्पन्नो भवेद् योगी महाकवि:॥३६॥

सुमुख, चतुरस्र, वृत्त, गोमुख तथा योनिमुद्रा इन पाँच प्रकार की मुद्राओं द्वारा भगवती सदैव साधकों द्वारा प्रणम्य कही जाती है। प्रलयकाल में समस्त विश्व को अपने में लीन करके चारों ओर व्याप्त (फैले हुए) जलराशि के मध्य श्वेत कमल पर स्थित प्रज्वलित चिता के बीच में बड़े-बड़े दाढों से युक्त भयंकर मुख वाली, स्त्रियोचित आभूषणों से सज्जित गर्व पूर्ण प्रभाव से युक्त स्थित होने पर भी मुस्कान युक्त मुख मण्डल वाली भगवती तारा के पूर्वोक्त स्वरूप सहित इस प्रकार के ध्यान रस में सदैव लीन रहने का अभ्यास करने वाला साधक सिद्ध योगी तथा महान विद्वान (सभी शास्त्रों का ज्ञाता) हो जाता है।

विमर्श - श्री भगवत्पाद शंकराचार्य द्वारा 'पञ्चमुद्राविभूषितम्' का अर्थ योनि, भूतिनी, बीजदानव, धूमकेतु तथा लेलिहान संज्ञक पञ्चमुद्राओं द्वारा सन्तुष्ट होने वाली (भी) किया गया है।

जडोऽपि यदि मूर्खः स्याद् भावनावशतत्परः।
लभतेऽभिमतां वाणीं मन्त्रस्य लक्षजापतः॥३७॥
(ह्रीं स्त्रीं हूँ फट् इति मन्त्रः)
त्र्यक्षरोऽयं महामन्त्रः फट्कारान्तो हृदि स्थितः।
पञ्चरश्मिसमायुक्तोऽप्यज्ञानेन्धनदाहकः ॥३८॥

मूर्ख (अज्ञानी) व्यक्ति के हृदय में भी यदि 'फट्' युक्त तीन अक्षरों वाला (ह्रीं स्त्रीं हूँ) मन्त्र स्थित है, अर्थात् उसे गुरु द्वारा प्राप्त है तथा वह यदि भगवती तारा के इस प्रकार के ध्यान का निरन्तर अभ्यास करता हुआ उनके इस मन्त्र का एक लाख जप करता है तो उसे अपनी इच्छानुसार वाक्शक्ति (तथा ज्ञान) की प्राप्ति हो जाती है। प्रारम्भ में **'ॐ'** तथा अन्त में **'फट्'** से युक्त तीन अक्षरों **(ह्रीं स्त्रीं हूँ)** वाला यह महामन्त्र **(ॐ ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्)** साधक के हृदय में स्थित होकर उसके अज्ञान रूपी इन्धन को भस्म कर देने वाला है।

॥ मन्त्रोद्धारः॥

तस्योद्धारविधिं वक्ष्ये मम सार्वज्ञकारणम्।
प्रथमं सपरं दत्त्वा चतुर्थस्वरभूषितम्॥३९॥
रेफारूढं स्फुरद्दीप्तमिन्दुबिन्दुविभूषितम्।
स्त्रंकारञ्च ततो दद्यात् चतुर्थस्वरभूषितम्॥४०॥
दीर्घोकारसमायुक्तं हंकारं योजयेत्ततः।
फट्कारं तु ततो दद्यात् सम्पूर्णं सिद्धिमन्त्रकम्॥४१॥
कल्पयेत् स्थिरचित्तेन पण्डितोऽहं महाकविः।
अजस्रभावनाभ्यासाद् भवेद् देवो न संशयः॥४२॥

जो मेरी सर्वज्ञता का कारण है, उस मन्त्र के उद्धार का अब मैं वर्णन करता हूँ। सबसे पहले 'सपर' अर्थात् 'स' के बाद आने वाले वर्ण 'ह' को लिखकर उसे चतुर्थ स्वर 'ई' से विभूषित (युक्त) करके रेफ 'र' से आरूढ (संयुक्त) करे। पुनः इसे चन्द्र तथा विन्दु (चन्द्र बिन्दु) से समायोजित कर प्रथम बीज 'ह्रीं' का उद्धार करे। तत्पश्चात् 'स्त्रं' को चतुर्थ स्वर 'ई' से युक्त करके द्वितीय बीज 'स्त्रीं' का तथा हंकार अर्थात् 'हं' को दीर्घ 'ऊकार' अर्थात् 'ऊ' से संयुक्त करके तृतीय बीज 'हूं' का उद्धार करे। इसके बाद इन तीनों बीजों को क्रमशः लिखकर इनके अन्त में 'फट्' रूप चतुर्थ बीज का समायोजन कर सम्पूर्ण रूप से सिद्धदायक मन्त्र **'ह्रीं स्त्रीं हूं फट्'** का उद्धार करे।

जो साधक भगवती का पूजन करने के पश्चात् स्थिर (एकाग्र) मन से 'मैं विशुद्ध बुद्धियुक्त महान कवि (विद्वान) हूँ' ऐसी कल्पना करते हुए देवी के निरन्तर ध्यान सहित उनके (उपर्युक्त) मंत्र का जप रूप अभ्यास करता है, वह निश्चय ही अपनी कल्पनानुसार स्थिति तथा देवत्व (देवी स्वरूप) को भी प्राप्त कर लेता है।

॥ मन्त्राधिकारि-वैशिष्ट्यम्॥

सुविमलनखदन्तपाणिपादौ
मुदितमनाः परदूषणेषु मौनी।

हरिहरकमलोद्भवाङ्घ्रिभक्तो
भवति चिराय सरस्वतीनिवासः॥४३॥
कृतसुकृतसहस्रानेकजन्मभावै
र्यदि भवति मनुष्यो गुर्वधीनश्चिरायुः।
कथमपि मनुमेनं प्राप्य शिष्याय तस्मै
निजकुलतिलकाय ज्येष्ठपुत्राय दद्यात्॥४४

स्वच्छ किये हुए निर्मल नख, दाँत, हाथ-पैरों वाला होकर, प्रसन्न चित्त से, दूसरे मनुष्यों के दोषों के प्रति मौन भाव रखते (उनकी निन्दा न करते) हुए विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा के चरणों की भक्ति करने वाला मनुष्य ही चिर (अत्यधिक) काल तक उनकी आराधना करने के पश्चात् सरस्वती के वास स्थान स्वरूप अर्थात् नील सरस्वती के मंत्र (ह्रीं स्त्रीं हूं) को प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

अनेकों बार मानव जन्म प्राप्त कर उनमें किये हुए सत्कर्मों से उत्पन्न पुण्यों के प्रभाव से यदि मनुष्य वर्तमान जीवन में दीर्घायु को प्राप्त कर सद्गुरु के अधीन (उनके स्वामित्व में) रहकर, उनकी भली भाँति सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट करे तब कहीं जाकर किसी प्रकार से वह भगवती तारा का मन्त्र प्राप्त कर पाता है। इस प्रकार सद्गुरु से उपलब्ध मन्त्र को उसे अपने कुल (परिवार) के श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठ (सबसे बड़े) पुत्र को शिष्य रूप में स्वीकार करके विशेष रूप से प्रदान करना चाहिए।

॥ सुपात्राय मन्त्र-दानादेशः॥

न पापरतये दद्यात् नाभक्ताय कदाचन।
गुरुभक्ताय शान्ताय दद्यात् पात्रे दयात्मने॥४५॥
मनुर्विमृश्य दातव्यो ज्येष्ठस्यापि विनीतताम्।
पुत्राय किमथान्यस्मै विगोत्राय सुपौरुषः॥४६॥

सदैव पाप कर्म करने वाले तथा गुरु एवं देवता की भक्ति से रहित व्यक्ति को कभी भी इस मन्त्र की दीक्षा नहीं देनी चाहिए। जो मनुष्य शान्त चित्त, संयमी तथा सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखने वाला सुपात्र हो उसे ही मन्त्र प्रदान करना चाहिए।

जिस व्यक्ति ने इस विद्या को प्राप्त कर अपने पुरुषार्थ (प्रबल प्रयत्न) से इसे सिद्ध कर लिया है, उसे भली भाँति विचार कर (पात्र के गुण-दोष का निरीक्षण कर) अपने विनयशील ज्येष्ठ पुत्र को, पुत्रवत् शिष्य को, अधिक क्या कहें निःसन्देह अन्य गोत्र वाले सुपात्र शिष्य को भी इस विद्या की दीक्षा प्रदान करनी चाहिए।

॥ विद्या-सिद्धि-प्रयोगः॥

मधुना त्रिदिनादर्वाग्
जिह्वायां विन्यसेदमुम्।
(मन्त्री) यदि पठति पठितोऽसौ
न पठति चेन्नास्य मूर्खता भवति॥४७॥

किसी बालक के जन्म होने पर (नवजात शिशु के) उसके तीन दिन का होने से पूर्व ही यदि उसकी जिह्वा पर मन्त्र सिद्ध साधक द्वारा **'ह्रीं स्त्रीं हूं'** इस मन्त्र

का न्यास (स्वर्ण अथवा दूब की लेखनी द्वारा शहद से जीभ पर मन्त्र का लेखन) कर दिया जाय तो, बड़े होने पर किसी के द्वारा पढाये जाने पर वह पढ़े अथवा न पढ़े, कभी भी वह मूर्ख नहीं हो सकता बल्कि बिना पढ़े (अध्ययन किये) भी विद्वान हो जाता है।

।। मन्त्र-प्रभाव-कथनम्।।

गुरुचरणसरोजं सर्वदा भक्तिभावात्
परिचरति विधेयो वास्य सर्वात्मना स्यात्।
कथमपि मनुमेनं मानजन्मा नरोऽसौ
भवति जगति वादिद्वैतसिद्धान्तहन्ता।।४८।।

जो मनुष्य सद्गुरु के चरण कमलों में सदैव भक्ति भाव रखते हुए निरन्तर उनकी सेवा में संलग्न रहता है तथा किसी भी प्रकार से उन्हें सन्तुष्ट कर इस विद्या को प्राप्त करके पूर्णरूप से प्रयत्नशील होकर इसकी साधना में लीन रहता है, वह विश्व में इस विद्या के प्रभाव से प्राप्त सम्यक् ज्ञान द्वारा अनुमान जनित द्वैतवाद के खण्डन में समर्थ हो जाता है अथवा अपने प्रतिपक्षी वादियों के सिद्धान्त का खण्डन करने वाला हो जाता है।

सर्वदा गोपयेदेनं मनुं च गुरुमेव च।
तेन वीर्यवती विद्या निर्वीया स्यात् प्रकाशनात्।।४९।।
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता।
तस्मान्मन्येत सततं पितुरप्यधिकं गुरुम्।।५०।।
न कदाचिद् भवेन्मूर्खो मनुं यो वेत्ति मानवः।
त्रिलोक्यां भवति ख्यातो विधायास्य च पूजनम्।।५१।।
यस्मिन् दिवसे लभते मनुं तत्र लाभो यदि स्यात्।
नियतं लभते व्यत्ययमपि सदसत्कर्मणोरुभयोः।।५२।।
उपदेशादङ्गमन्त्रो बलिमन्त्रस्तथैव च।
ज्ञातव्या विदुषा सिद्धिरस्य मन्त्रस्य लाभतः।।५३।।

सद्गुरु द्वारा प्राप्त इस मन्त्र को सदैव गुप्त रखना चाहिए। मन्त्र के विषय में तथा उसकी साधना के विषय में किसी से उसकी चर्चा न करे और न ही किसी के सामने जप-पूजनादि क्रिया करे। यहाँ तक कि स्वगुरु के विषय में भी किसी से विशेष वार्तालाप नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य इन बातों को ध्यान में रखते हुए साधना करता है, उसी की विद्या सामर्थ्यशालिनी (सर्वसिद्धिदायिनी) होती है, अन्यथा दूसरों के सम्मुख इसका प्रकाशन (वर्णन) करने से इसका प्रभाव क्षीण हो जाता है।

मनुष्य को जन्म देने वाला पिता उसके लिए सर्वथा श्रेष्ठ तथा पूज्य माना जाता है, परन्तु ब्रह्म ज्ञान प्रदान करने वाला सद्गुरु उससे भी अधिक श्रेष्ठ तथा पूज्य है। इसलिए सद्गुरु को सदैव पिता से भी अधिक मान-सम्मान प्रदान करना चाहिए।

जो मनुष्य इस मन्त्र को जानता है तथा भगवती के पूजन सहित विधिपूर्वक जपादि रूप से इसकी साधना करता है, वह इसके प्रभाव से कभी भी मूर्ख (अज्ञानी) नहीं होता है, बल्कि तीनों लोकों में वह अपने ज्ञान के द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त करता है।

भगवती तारा के इस मन्त्र को साधक जिस दिन ग्रहण करता है यदि वह दिन (समय) उसके लिए श्रेष्ठ तथा उत्तम फलदायक होता है तो वह अपने किए हुए सत् तथा असत् दोनों प्रकार के कर्मों द्वारा प्राप्त होने वाले फलों का अतिक्रमण करके (उनसे मुक्त होकर) इस मन्त्र की साधना द्वारा प्राप्त होने वाले सभी फलों को सदैव प्राप्त करता रहता है। यहाँ तक कि उसे मोक्ष की भी उपलब्धि हो जाती है।

विद्वान गुरु के द्वारा मूल मन्त्र का उपदेश (ज्ञान-दीक्षा) प्राप्त करते समय बुद्धिमान शिष्य को उस मन्त्र के अङ्ग-मन्त्रों (मूल-मन्त्र-देवता के अङ्गभूत देवताओं के मन्त्रों) का तथा देवता को बलि प्रदान करने वाले मन्त्र का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जिससे वह मन्त्र-सिद्धि के द्वारा इसके सभी लाभों को प्राप्त कर सके।

॥ साधन-विषये कतिपय निर्देश:॥

उपांशु स्यात् शतगुण: साहस्रो मानस: स्मृत:।
अचिरादीहिता सिद्धिर्महाशङ्खस्य मालया॥५४॥
यस्मिन् मन्त्रे य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृश:।
कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्ग वा मोक्षमेव वा॥५५॥
भ्रान्तिस्तत्र न कर्तव्या सिद्धिहानि: प्रजायते।
शुद्धचित्तो भवेन्नित्यं सिद्धि: स्यादपवर्गदा॥५६॥

मन्त्र का वाचिक (स्पष्ट उच्चारण सहित) जप करने की अपेक्षा उपांशु जप (मन्त्र-जप की वह विधि जिसमें मन्त्रोच्चारण से उत्पन्न होने वाली ध्वनि केवल जप-कर्ता के ही श्रवण योग्य होती है, अन्य को केवल होंठों का हिलना मात्र ही प्रतीत होता है) सौ गुणा अधिक श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार उपांशु जप से मानस-जप (जप की वह विधि जिसमें न तो बाह्य ध्वनि ही उत्पन्न होती है तथा न ही होंठों का एवं मुख के भीतर जिह्वा का संचालन होता है) हजारों गुणा श्रेष्ठ कहा जाता है। इसके अतिरिक्त महाशंख की माला (कनपटी के पास स्थित विशेष प्रकार की अस्थि द्वारा निर्मित माला) से जप करना शीघ्र ही सभी कामनाओं की सिद्धि करने वाला होता है।

जिस मन्त्र की साधना में साधक के लिए जैसा आचरण करने का विधान किया गया है, उसी प्रकार से व्यवहार करना ही उसके लिए धर्म है। विधि के अनुसार कर्त्तव्यों का पालन करने वाला साधक अपने अभीष्ट स्वर्ग अथवा मोक्ष को प्राप्त कर कृतार्थ (पूर्ण तृप्त) हो जाता है।

मन्त्र, उसकी साधन-विधि तथा उसके द्वारा प्राप्त होने वाले फलों एवं गुरु तथा देवता पर भी कभी सन्देह अथवा अविश्वास नहीं करना चाहिए। संशय रहित निर्विकल्प तथा शुद्ध चित्त होकर नित्य साधना करने वाला मनुष्य ही (भोग तथा) मोक्ष प्रद इस मन्त्र की सिद्धि को प्राप्त करने में समर्थ होता है अर्थात् वह अपनी इच्छानुसार स्वर्ग अथवा मोक्ष (अथवा यथाकाल दोनों को) प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।

॥ पुनर्माहात्मयं काम्य-प्रयोगाश्च॥

उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशं नयेत्।
राजानं जपमात्रेण बलिना सकलं जगत्॥५७॥

इति नीलसरस्वत्याः प्रपञ्चोऽयं प्रदर्शितः।
ब्रह्मणा पूर्वमस्मभ्यं मया तुभ्यं नगात्मजे॥५८॥
सिद्धमन्त्रो यदा मन्त्री बालिशस्यापि मूर्द्धनि।
करं दत्वा दिशत्याशु सोऽपि श्लोकान् करोत्युत॥५९॥

भगवती तारा का विशेष उपचार (अधिकारानुसार मत्स्य, मद्यादि) द्रव्यों द्वारा पूजन तथा जप होमादि करने से साधक राजा की पत्नी को अपने वश में कर लेता है। मन्त्र के जप-मात्र से वह राजा को वशीभूत कर सकता है तथा (पूजन-जप के पश्चात्) देवी को बलि प्रदान करने से सारे विश्व को अपने वश में कर लेता है।

इस प्रकार उपर्युक्त रूप से यहाँ तक इतना भगवती नील सरस्वती का (उनके मन्त्र-साधन-फलादि का) विस्तार पूर्वक मैंने वर्णन किया। हे हिमाचल पुत्री पार्वती! पूर्व काल में ब्रह्मा ने मुझसे इसका वर्णन किया था और मैंने तुमसे इस समय इसका कथन किया है।

जिस मनुष्य ने इस नीलसरस्वती विद्या को सिद्ध कर लिया है, यदि वह मन्त्रज्ञ सिद्ध पुरुष किसी बालक जैसे अबोध अज्ञानी व्यक्ति के शिर पर हाथ रखकर बोलने का आदेश प्रदान करे तो वह व्यक्ति शीघ्र ही स्वरचित श्लोकों का पाठ करना आरम्भ कर देता है।

नीलसारस्वते मन्त्रे कविता विघ्नकारिणी।
अनास्था च द्वितीयं तु न किञ्चिद विघ्नकारणम्॥६०॥
क्षिप्रप्रसादा जगतां सदा नीलसरस्वतीम्।
विशेषतः कलियुगे मत्प्रसादाद् भविष्यति॥६१॥
अल्पज्ञमपि विद्वांसो मानयिष्यन्ति वाग्मिनः।
वाचस्पतिरिवाचार्यं पश्यन्मन्त्रज्ञमीदृशम्॥६२॥
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण चानुभावद्वयं भवेत्।
तात्कालिकी च कविता परैरनभिभाविता॥६३॥

नील सरस्वती मन्त्र की साधना द्वारा तात्कालिक रूप से अलौकिक कवित्व शक्ति की प्राप्ति अवश्य ही होती है। परन्तु मन्त्र-देवता-साधनादि में अनास्था (अथवा आस्था की कमी, आलस्यादि) के कारण फल प्राप्ति में बाधा पड़ती है। फलोप्लब्धि में इसके अतिरिक्त बाधा पड़ने का अन्य कोई दूसरा कारण नहीं होता है।

भगवती नील सरस्वती इस संसार में (श्रद्धा-भक्तिपूर्वक साधना करने पर) शीघ्र ही कृपा करने (प्रसन्न होने) वाली कही जाती है। मेरी (मुझ शिव की) कृपा से कलियुग में ऐसा ताो (शीघ्र कृपा दृष्टि) अवश्य ही होगा। जो मनुष्य नील सरस्वती की आराधना करता है, वह यदि अल्पज्ञ हो तो भी श्रेष्ठ प्रवचनशील विद्वानों द्वारा सदैव पूजित होता है। इस मन्त्रज्ञ साधक को विद्वान लोग बृहस्पति के समान तथा आचार्यवत् देखते (मानते) हुए उसी के अनुरूप उसका आदर (सम्मान) करते हैं।

इस नील सरस्वती मन्त्र के ज्ञान मात्र (इसकी साधना) से ही साधक को दो प्रकार की अनुभूति (ज्ञान की प्राप्ति) होती है। प्रथम तो उसे तुरन्त ही कविता करने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है, दूसरे अपनी (उपलब्ध की हुई) प्रतिभा के बल से वह किसी अन्य विद्वान (विद्वानों) के द्वारा पराजित नहीं होता है।

विद्या ब्राह्मणमित्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्।
असूयकाय मां मा दास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा॥६४॥
यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय नाविप्राय प्रमादिने॥६५॥
यद्यदृष्टवशाल्लाभो मन्त्रस्यास्य भवेत् प्रिये।
स्वगोत्रे पौरुषं नैतदन्यगोत्रं नयेत् सुधीः॥६६॥

विद्या (मन्त्र का अधिदेवता) ब्राह्मण (मन्त्रज्ञ साधक) से कहती है कि मैं तुम्हारे लिए बहुमूल्य कोश के समान हूँ। अतः सब प्रकार से मेरी रक्षा करो अर्थात् मुझे गुप्त रखो। जो मनुष्य ईर्ष्यालु प्रकृति का (सबकी निन्दा करने वाला अथवा मेरे साधकों तथा साधनों से द्वेष रखने वाला) हो उसे मेरा दान मत करो अर्थात् इस विद्या का ज्ञान निन्दक व्यक्ति को नहीं देना चाहिए। ऐसा करने पर ही मैं सामर्थ्यशालिनी अर्थात् अभीष्ट फल प्रदान करने के योग्य सिद्ध होऊँगी।

सदैव पवित्र (शुद्ध चित्त) रहने वाले तथा ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले (ब्रह्म की प्राप्ति के अनुकल आचरण करने वाले) ब्राह्मण के प्रति ही मेरा (विद्या का) कथन करना चाहिए। अर्थात् ऐसे ही श्रेष्ठ ब्राह्मण को विद्या का उपदेश करना चाहिए। जो मनुष्य ब्राह्मण (ब्राह्मणोचित कर्म करने वाला) न हो तथा अपने कर्तव्य का पालन करने में असावधान तथा आलसी स्वभाव वाला हो, उसे विद्या का उपदेश नहीं करना चाहिए।

जिस बुद्धिमान मनुष्य को सौभाग्यवश इस (नील सरस्वती) मन्त्र की प्राप्ति हो जाये, उसे अपने गोत्र के पुरुषों (शिष्यों) को ही इसका ज्ञान देना चाहिए, अन्य गोत्र वाले मनुष्यों को नहीं।

विद्यां वेदानवाप्नोति कीर्तिमायुः सुतान् बहून्।
स वासः श्रीसरस्वत्योर्यत्र सारस्वतो मनुः॥६७॥

जिस मनुष्य को इस 'ह्रीं स्त्रीं हूं' रूप त्रिवर्णात्मक सारस्वतप्रद नील सरस्वती मन्त्र का ज्ञान है तथा वह इसकी विधिवत् साधना करने वाला है उसे समस्त वेदों के ज्ञान सहित सभी विद्याओं, कीर्ति, आयु तथा अनेकों (श्रेष्ठ) सन्तानों की भी प्राप्ति होती है। वह साक्षात् सरस्वती का निवास स्थान स्वरूप हो जाता है।

॥ पद्मावती-मन्त्रोद्धारः तत्प्रयोगश्च॥

पुष्कारिण्यां जलेऽगाधे यष्टिकाष्ठं तमोग्रहे।
दन्तेनानीय तत् तूर्ण कीलकं तेन कारयेत्॥६८॥
तेन मधुघृताक्तेन पद्मिनीपत्रमात्रके।
लिखेद् वज्रावलीमध्ये मूलमन्त्रञ्च सिद्धिदम्॥६९॥
तत्कुण्डे चतुरस्रे तु निक्षिप्य जुहुयादपि।
सहस्रं क्षीरनीराक्तं पद्मानां लोहितत्विषाम्॥७०॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य पद्मे युग्मं तथैव च।
महापद्मे पदं ब्रूयात् पद्मावति पदं ततः॥७१॥

मायेे स्वाहेति मन्त्रेण यथा पूर्वं बलिं हरेत्।
एवं यः कुरुते कर्म स स्याद् द्रुतकविर्ध्रुवम्।।७२।।

किसी सरोवर (विशेष रूप से कमल-सरोवर के गहरे जल में पड़ी हुई छड़ी के समान पतली लकड़ी के टुकड़े को शनि अथवा मङ्गल के दिन (अथवा चन्द्रग्रहण के समय अथवा अर्धरात्रि में) यत्नपूर्वक दाँत से पकड़कर लाये तथा उस काष्ठ के द्वारा नोंकदार कील का निर्माण करे। तत्पश्चात् इस कील के द्वारा मधु तथा घृत के मिश्रण से कमलिनी के पत्ते पर अष्टवज्रयुक्त भूपुर बनाकर उसके मध्य में मूल मन्त्र (अथवा साध्य नाम कर्म को मन्त्र से विदर्भित करके यथा **'ह्रीं'** के पश्चात् साध्य-नाम-कर्म तत्पश्चात् शेष मन्त्र को) लिखे। इसके बाद इस पत्र को चतुरस्र कुण्ड के मध्य में रखकर अग्नि प्रज्वलित करके दुग्ध तथा जल से लिप्त लाल कमलों द्वारा एक हजार बार हवन करे। हवन करने के पश्चात् निम्न मन्त्र से देवी को बलि प्रदान करे।

प्रथम **'ॐ'** का उच्चारण करके दो बार पद्मे (पद्मे-पद्मे) पुनः **'महापद्मे'** तत्पश्चात् **'पद्मावति'** पद का प्रयोग करके **'हूं हूं (ह्रीं ह्रीं) स्वाहा'** का उच्चारण करे। इस प्रकार निष्पन्न मन्त्र **'ॐ पद्मे-पद्मे महापद्मे पद्मावति हूं हूं (ह्रीं ह्रीं) स्वाहा'** द्वारा बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार जो व्यक्ति उपर्युक्त रूप से सभी कर्म करता है, वह निश्चय ही त्वरित रूप से कविता करने की शक्ति प्राप्त कर **'द्रुत-कवि'** कहलाने का अधिकारी हो जाता है।

विमर्श – उपर्युक्त **'पद्मावती-मन्त्र'** में **'तारा-भक्ति सुधार्णव'** के **'दशम तरङ्ग'** में दिये गये **'फेत्कारिणी तन्त्र'** के उद्धरणानुसार **'माये'** पद के स्थान पर **'हूं हूं'** का प्रयोग दर्शाया गया है। कुछ ग्रन्थों में **'माये'** पद के स्थान पर दो बार लज्जा बीज **(ह्रीं ह्रीं)** का प्रयोग किया गया है। परन्तु **'आगमतत्व विलास'** के अनुसार **'पद्मे', 'महापद्मे'** तथा **'पद्मावति'** इन सम्बोधन युक्त पदों के व्यवहार (प्रयोग) को देखते हुए **'माये'** पद का भी प्रयोग स्वस्वरूप में ही (सम्बोधन युक्त होने के कारण) होना चाहिए।

।। नित्य-बलि-मन्त्रः।।

अर्धरात्रे ततो नित्यं बलिं दद्यात् चतुष्पथे।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखां च ततः परम्।।७३।।
एकजटे पदस्यान्ते महाशब्दमुदीरयेत्।
यक्षाधिपदमाभाष्य पतये पदतो मम।।७४।।
उपनीतं पदं चोक्त्वा बलिं गृह्णेति च द्विधा।
गृह्णापय द्विधा चोक्त्वा मम सर्वपदात्ततः।।७५।।
शान्तिं कुरु पदं ब्रूयात् परविद्यामनन्तरम्।
द्विधाकृष्येति च ब्रूयात् त्रुटं छिन्धीति च द्विधा।।७६।।
सर्वादि च ततो जगद्वशमानयशब्दतः।
मायास्वाहेति मन्त्रोऽयं बल्यादौ वृद्धिसिद्धितः।।७७।।
परसैन्यग्रहारिष्ट - रोगकृत्यानिवारम्।

शत्रु (राजा) के सैन्य बल को क्षीण करने के लिए, ग्रहदोष, दुर्भाग्य (उत्पात), रोग तथा कृत्या के प्रभाव का निवारण करने के लिए साधक को निम्न मन्त्र के द्वारा प्रतिदिन अर्धरात्रि में चौराहे पर देवी को बलि प्रदान करना चाहिए।

सर्वप्रथम प्रणव **'ॐ'** का उच्चारण करके हल्लेखा **'ह्रीं'** बोले। पुनः **'एकजटे'** पद के पश्चात् **'महा'** शब्द सहित **'यक्षादि'** तथा **'पतये'** बोलकर **'मम'** तथा **'उपनीतं'** बोले। इसके बाद **'बलिं'** पुनः **'गृह्ण-गृह्ण'** तदुपरान्त **'गृह्णापय-गृह्णापय'** बोलकर **'मम सर्व शान्तिं कुरु'** तथा **'परविद्यां'** के अनन्तर **'आकृष्य-'आकृष्य'**, **'त्रुट-त्रुट'**, **'छिन्धि-छिन्धि'** बोले। तदुपरान्त **'सर्व'** पुनः **'जगद्वशमानय'** शब्द के बाद **'ह्रीं स्वाहा'** का उच्चारण करे। इस प्रकार प्राप्य मन्त्र-

''ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृह्ण-गृह्ण गृह्णापय-गृह्णापय मम सर्व शान्ति कुरु कुरु पर विद्यां आकृष्य-आकृष्य त्रुट-त्रुट छिन्धि-छिन्धि सर्व जगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा॥'' कुछ ग्रन्थों में **'महायक्षाधिपतये'** के स्थान पर **'महायक्षाधिपे'** पद का प्रयोग (एकजटा पद स्त्रीलिङ्ग होने के कारण) प्राप्त होता है। प्रायः प्रत्येक काम्य कर्म में पूजन-जपादि के पश्चात् इसी मन्त्र द्वारा देवी (एकजटा) को अर्धरात्रि में बलि प्रदान किया जाता है। इससे साधक को प्रगति तथा सिद्धि की प्राप्ति होती है।

'बृहन्नील-तन्त्र', 'नील सरस्वती तन्त्र' आदि ग्रन्थों में **'परसैन्यग्रहारिष्टरोगकृत्या निवारण'** के लिए अन्य मन्त्र का उल्लेख है, जिसके द्वारा अर्ध रात्रि में साधक को देवी के लिए बलि प्रदान करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार से है -

''ॐ उग्रतारे विकटदंष्ट्रे पर पक्षं क्षोभय-क्षोभय (मोहय-मोहय) मारय-मारय खादय खादय पच-पच, मथ-मथ ये मां हिंसितुमुद्यता निन्दितुमुद्यता योगिनीचक्रसहितैस्तान् नाशय हुं फट् स्वाहा। परविद्यामाकर्ष-आकर्षय छेदय-छेदय (स्वाहा) कपिले गृह्ण-गृह्ण स्वाहा।'' कुछ शब्दों के उलट-फेर (परिवर्तन) सहित यह मन्त्र कई ग्रन्थों में प्राप्त होता है, परन्तु इससे मन्त्र के प्रभाव में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि क्रिया के समय मन्त्र के साथ ही कर्ता के मानसिक भाव की भी प्रधानता होती है।

॥ द्रुत-कवित्व-प्राप्ति-प्रयोगः॥

जिह्वायां तु मध्वाजाभ्यां जातमात्र-बालकस्य।।७८॥
नाड़ीच्छेदाद् यथा पूर्व लिखेद्धेमशलाकया।
मूलमन्त्रं लिखेन्मन्त्री यस्योष्ठे श्वेतदूर्वया।।७९॥
वाक्योच्चारणतो बालो वाग्मी द्रुतकविर्भवेत्।

नाड़ी छेदन (नाल काटने) से पहले ही नवजात शिशु की जिह्वा पर स्वर्ण लेखनी से अथवा उसके होठों पर श्वेत दूर्वा की लेखनी से, यदि मन्त्रज्ञ (मन्त्र-सिद्ध) मनुष्य, मधु तथा आज्य के मिश्रण से मूल मन्त्र **(ह्रीं स्त्रीं हूं)** को लिखे तो वह बालक वाक्योच्चारण काल से ही आशु-कवि (तुरन्त कविता की रचना करके पाठ करने वाला) तथा श्रेष्ठ वक्ता हो जाता है।

॥ वशीकरण-प्रयोगः॥

शताभिजप्तमात्रेण रोचनातिलको नरः॥८०॥
कृत्वा पश्यति यं मन्त्री तं कुर्याद् दासवद् वशम्।

मूल मन्त्र को पुरश्चरण द्वारा सिद्ध करने के पश्चात् गोराचन (अथवा कुंकुम) को इसी मन्त्र द्वारा सौ बार अभिमन्त्रित करके तिलक करने वाला मन्त्रज्ञ साधक जिस किसी को भी देखता है, उसे सेवक के समान अपने वश में कर लेता है।

॥ उच्चाटन-प्रयोगः॥

श्मशानाङ्गारमादाय मङ्गले वासे निशि॥८१॥
कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य बध्नीयाद्रक्ततन्तुना।
शताभिमन्त्रितं तच्च प्रक्षिपेदरिमन्दिरे॥८२॥
सप्ताहाभ्यन्तरे तेषामुच्चाटनमिदं महत्।

मङ्गलवार की रात्रि में श्मशान की चिता से कोयला लाकर उसे काले कपड़े में लपेटकर लाल धागे से बाँध दे। तत्पश्चात् इसे (पुरश्चरण द्वारा सिद्ध) मूल मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करके उसी समय जिस किसी (शत्रु) के घर में फेंक दिया जाय तो एक सप्ताह के मध्य ही उस व्यक्ति का प्रबल उच्चाटन हो जाता है।

॥ मारण-प्रयोग॥

नरास्थीनि लिखेन्मन्त्रं क्षारयुक्तहरिद्रया॥८३॥
सहस्रं परिसंजप्य निशायां रविवासरे।
क्षिप्यते यस्य गेहे तु मृत्युस्तस्य त्रिमासतः॥८४॥
क्षेत्रे तु शस्यहानिः स्याज्जवहानिस्तुरङ्गमे।

मानव (पुरुष) शरीर की अस्थि (हड्डी) पर नमक तथा हल्दी के मिश्रण से रविवार की अर्धरात्रि में साध्य नाम कर्म सहित मूल मन्त्र को लिखकर तथा लिखित के अनुसार ही उस पर एक हजार बार मन्त्र का जप करके (अर्थात् अभिमन्त्रित करके) जिस शत्रु के घर में उसे फेंक दिया जाता है, तीन मास में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। इस अभिमन्त्रित अस्थि को खेत में फेंकने अथवा गाड़ देने से फसल (अन्न) की हानि तथा अश्वशाला में फेंक देने से घोड़ों के वेग (गति अथवा बल) की हानि भी हो जाती है।

॥ तारा-धारण-यन्त्रम्॥

योनियुग्मे लिखेद् भूर्जे लाक्षारसेन मन्त्रवित्॥८५॥
तन्मध्ये साध्यसंयुक्तं मूलमन्त्रं लिखेत्ततः।
स्वरान् क्रमगतांश्चापि कादिवर्णान् यथाक्रमम्॥८६॥
अष्टवज्रसमायुक्तं यन्त्रमेतत् प्रयोजयेत्।
वेष्टितं पीतवस्त्रेण यत्नेन परिवेष्टयेत्॥८७॥
बध्नीयात् पट्टसूत्रेण शिशूनां कण्ठभूषणम्।
स्त्रीणां वामकरे बन्धमन्येषां दक्षिण करे॥८८॥

उपर्युक्त श्लोकों में धारण-यन्त्र की रचना तथा वर्णों के लेखन का क्रम अपूर्ण तथा अस्पष्ट वर्णित है। 'तारा-भक्ति-सुधार्णव' में 'फेत्कारिणी-तन्त्र' के उद्धरण के रूप जैसा इसका वर्णन किया गया है, उसी प्रकार से इसकी व्याख्या दी जा रही है।

स्वर्ण, रजत अथवा भोजपत्र के फलक पर अष्टगन्ध के मिश्रण द्वारा स्वर्ण लेखनी, दूर्वाखण्ड अथवा कुश मूल से इस यन्त्र की रचना (लेखन कार्य) करना चाहिए। सर्वप्रथम षट्कोण उसके बाहर अष्टदल पद्म तथा उसके भी बाह्य भाग में चार द्वारों से युक्त द्विरेखात्मक अष्टवज्र युक्त भूपुर की रचना करे। इसके बाद षट्कोण के मध्य में साध्य-नाम कर्म सहित मूल मन्त्र को लिखकर षटकोणों में क्लीव वर्णों (ऋ, ॠ, लृ, लॄ)को छोड़कर शेष दीर्घ स्वरों (आं, ईं, ऊं, ऐं औं तथा अः) को लिखे। अष्टदलों पर क्रमशः अष्टाक्षर मन्त्र (ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा) के एक-एक वर्णों को तथा व्यञ्जन के अष्ट वर्गों (क, च, ट, त, प, य, श वर्ग तथा ळ क्ष) को भूपुर के चारों ओर अष्ट वज्रों के सामने में लिखें। इस यन्त्र को पीले वस्त्र से लपेट कर उसके ऊपर लाख लिप्त कर दे। तत्पश्चात् रेशमी सूत्र से इसे बांधकर शिशु (बालक) के गले में आभूषणवत् पहना दे। इसे स्त्रियों के बाये हाथ में तथा पुरुषों के दाहिने हाथ में बांधना चाहिए।

किसी-किसी के मत से षट्कोण के बाहर केवल अष्ट वज्र युक्त एक रेखात्मक भूपुर बनाकर षट्कोणों में क्रमशः दीर्घ स्वरों का (नपुंसकों को छोड़कर) तथा वज्रों के सामने व्यञ्जन के अष्टवर्गों को लिखना चाहिए।

वन्ध्यापि लभते पुत्रं निर्धनो धनवान् भवेत्।
इयं रक्षा पुरा बद्धा ज्ञानार्थं गौतमादिभिः।
कीर्त्यर्थं पार्थिवैश्चान्यैः संग्रामे जयकाङ्क्षिभिः॥८९॥

इस यन्त्र को धारण करने से बन्ध्या स्त्री को पुत्र की तथा निर्धन व्यक्ति को धन की प्राप्ति होती है।

गौतमादि ऋषियों ने पूर्व काल में इस रक्षा यंत्र को ज्ञान की प्राप्ति के लिए धारण किया था। यश की प्राप्ति तथा सङ्ग्राम में विजय की आकांक्षा वाले अन्य-अन्य राजाओं के द्वारा भी इस यन्त्र को पूर्व काल में धारण किया गया था।

इति निगदितमेतद् गौतमाद्यैर्यदुक्तं
सकलजनहितार्थं मन्त्रवर्णस्वरूपम्।
यदधिगमवशात् स्याद्वाञ्छिताशेषसिद्धि-
र्द्रुततरकवितायै यत्नमन्यं त्यजेच्च॥९०॥

ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन गौतमादि ऋषियों ने समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए मन्त्राक्षर स्वरूप वाले (मन्त्र के वर्णों से युक्त) इस यन्त्र का वर्णन किया था। जिसे किसी भी प्रकार से (सौभाग्यवश) प्राप्त करने के पश्चात् सभी प्रकार की सिद्धियों तथा आशु कवित्व का सामर्थ्य प्राप्त करने की इच्छा वाले मनुष्य को अन्य किसी भी प्रकार का प्रयत्न करना त्याग देना चाहिए।

॥ पूजन-विधि-वर्णनम्[1]॥

अथ ते संप्रवक्ष्यामि पूजाविधिमनुत्तमम्।
आदौ जलमधिष्ठाय पादयोः क्षालनं ततः॥९१॥
द्विराचम्य शिखां बध्वा ततो भूमिविशोधनम्।
विघ्नानुत्सादयित्वा तु कुर्याद भूम्यभिमन्त्रणम्॥९२॥
यन्त्रं लिखित्वाऽधिष्ठाय पुष्पं वाक्कायमानसम्।
मृद्वासनं समध्यास्य मायां पूर्वदले लिखेत्॥९३॥
याम्ये बीजं द्वितीयं तु चोत्तरे फं पश्चिमे टं।
मध्ये बीजं लिखेत्तारं भूतशुद्धिं समाचरेत्॥९४॥

अब मैं भगवती तारा के सर्वोत्तम पूजन की विधि का वर्णन करता हूँ। स्नान-सन्ध्यादि करने के पश्चात् साधक-पूजन कक्ष में पहुँचकर पहले जल लेकर (यथाविधि मन्त्रोच्चारण सहित) हाथ पैरों को धोकर दो बार आचमन करके शिखा-बन्धन करें। इसके बाद भूमिशोधन, विघ्नों का उत्सादन (निवारण) तथा भूमि का अभिमन्त्रण करें। तत्पश्चात् मृदु (अथवा यथा उपलब्ध) आसन पर बैठ करके पुष्प तथा वाणी, काया एवं मन का शोधन कर यन्त्र (षट्कोण, अष्टदल पद्म तथा एक रेखात्मक भूपुर युक्त) की रचना करके पद्म के पूर्वदल में 'ह्रीं' दक्षिण दल में 'स्त्रीं', उत्तर में 'फं' तथा पश्चिम में 'टं' एवं षट्कोण के मध्य में 'हूं' लिखें। इसके बाद साधक भूत-शुद्धि करे।

॥ भूत-शुद्धि निरूपणम्॥

मायां नाभौ रक्तवर्णां ध्यात्वा तज्जातवह्निना।
शुष्कं पापात्मकं देहं दग्धं सञ्चिन्तयेत्ततः॥९५॥
स्त्रीकारं हृदि पीताभं तदुद्भूतेन वायुना।
भस्म प्रोत्सारितं ध्यात्वा ललाटे चिन्तयेत्ततः॥९६॥
कूर्चं तूषारवर्णाभं तदुद्भूतामृतेन तु।
तदस्थिप्लावितं कृत्वा तत्रात्मानं विचिन्तयेत्॥९७॥

साधक अपनी नाभि (मणिपूरचक्र) में रक्त वर्ण 'ह्रीं' का ध्यान करके उसके द्वारा उत्पन्न अग्नि से जलकर शुष्क हुए पापात्मक शरीर (वाम कुक्षिस्थ पाप पुरुष सहित स्व देह) का चिन्तन करे। इसके बाद हृदय (अनाहत चक्र) में 'स्त्रीं' का पीतवर्ण (पाठान्तरानुसार नील वर्ण) रूप में ध्यान करके उससे उत्पन्न वायु के द्वारा दग्ध शरीर के भस्म को बाहर निकाल देने की भावना करके, ललाट में हिम (श्वेत) वर्ण 'हूं' का ध्यान कर उसके द्वारा उद्भूत अमृत से दग्ध शरीर की अस्थियों को प्लावित (उसमें डुबो) कर उस अमृत के मध्य स्वयं का चिन्तन करे।

समस्तदोषनिर्मुक्तं निर्मलं देवतात्मकम्।
विश्वव्यापकतोयान्तां बीजोत्थबीजकर्णिकाम्॥९८॥

१-पूजन विधि के विस्तृत विवरण के लिए 'मधुसूदन प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'बृहन्नील-तन्त्रम्' का अवलोकन करें।

खर्वां श्यामां प्रत्यालीढां शवाधिरूढां चिताग्निमध्यस्थाम्।
वृत्तारुणत्रिनेत्रां मौलवक्षोभ्यभूषितां पञ्चमुद्रा-
ढ्यां मर्त्त्यशिरो मालामेकजटामुदग्रदशनास्याम्।
युवतीमुग्राहियुतां चपलचल्लोलां व्याघ्रचर्म-
कटिवस्त्रां निस्त्रिंशकर्तृकोत्पलां शुभ्रकपालां
महोदरीमीडे॥९९॥

उस विश्व व्यापक अमृत रूप जल में (जिसमें पृथिवी से लेकर शिव पर्यन्त छत्तीसो तत्व विलीन हो गये हैं) समस्त दोषों से रहित विशुद्ध तथा रक्त कमल के मध्य श्वेतकमल के ऊपर स्वबीज से उत्पन्न देवता (भगवती तारा) के रूप में स्वयं को अनुभव करे। भगवती तारा के जिस स्वरूपवत् स्वयं को अनुभव करना है, वह इस प्रकार का है –

भगवती तारा का शरीर छोटा, वर्ण श्याम तथा वह जलती हुई चिता के मध्य शव पर प्रत्यालीढ अवस्था में स्थित है। उनके तीनों नेत्र गोल तथा रक्तवर्ण हैं। शिर पर (जटाओं के मध्य) अक्षोभ्य नाग तथा मस्तक पर पञ्चमुद्रा विभूपित है। इनके गले में नरमुण्डों की माला है तथा मुख में बाहर निकले हुए दाँत हैं। इनके कटि भाग में व्याघ्र चर्म आच्छादित है तथा शरीर पर चञ्चलता पूर्वक क्रीडारत अनेकों उग्र सर्प लिपटे हुए हैं। ये नवयौवन सम्पन्ना हैं तथा इनके चारों हाथों में खड्ग, कर्तृका, (नील) कमल तथा शुभ्र कपाल गृहीत हैं। ऐसी महोदरी (बड़े पेट वाली अथवा प्रलय काल में समस्त विश्व को अपने उदर में समेट लेने वाली) भगवती एकजटा की मैं स्तुति करता हूँ।

॥ यन्त्र-पूजनम्॥

चिन्तयित्वैवमात्मानं कराङ्गन्यासमाचरेत्।
षड्दीर्घाढ्येन बीजेन पाण्यङ्गपूजनं ततः॥१००॥
आवाह्य स्थापयित्वादावर्घ्यं दत्त्वानुलेपयेत्।
श्रीमदेकजटे चैव वज्रपुष्पमित्यभिधाय च॥१०१॥
मूलेनाग्निप्रियान्तेन सतारेण यजेत् पुनः।
दत्त्वा गन्धादिकमपि बलियुक्तं निवेदयेत्॥१०२॥
अक्षोभ्यवज्रमादौ तु तारिणीं मूर्ध्नि पूजयेत्।
प्रणवाद्यग्निजायान्तं वज्रपुष्पं विनिक्षिपेत्॥१०३॥
तथा वैरोचनं शङ्खं पाण्डवं पद्मनाभकम्।
असिताभं यजेन्मन्त्री दिक्ष्वैन्द्रीतश्चतुर्दले॥१०४॥
नामकां मामकाञ्चैव पाण्डवं तारका सह।
वह्न्यादिषु चतुष्कोणे स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्यजेत् क्रमात्॥१०५॥
द्वारे पूर्वादितः पद्मान्तकं चापि यमान्तकम्।
विघ्नान्तकं समभ्यर्च्य पूजयेन्नरकान्तकम्॥१०६॥

इस प्रकार उपर्युक्त रूप से भगवती तारा (एकजटा) के स्वरूपानुसार स्वयं का चिन्तन करके साधक मूल मन्त्र के बीज **'ह्रीं'** (अथवा हूं) को छः दीर्घ स्वरों से युक्तकर **ह्रां, ह्रीं ह्रूं** (अथवा **हां हीं हूं**) इत्यादि रूप से कर-षडङ्ग न्यास करे। इसके बाद यन्त्र पर देवी का आवाहन-स्थापन आदि करके उनका षडङ्ग पूजन तथा अर्घ्यापण कर चन्दन का लेप प्रदान करे। तत्पश्चात् **'मूलं श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ (हुं फट्) स्वाहा'** मन्त्र से प्रत्येक उपचार द्रव्य पुष्प गन्धादि को अर्पित करते हुए पूजन करे। इसके उपरान्त देवी के शिर पर स्थित अक्षोभ्य नाग का **'ॐ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ (हुं फट्) स्वाहा'** मन्त्र से उपचार अर्पण करते हुए पूजन करे। तदनन्तर अष्टदल पद्म के पूर्वादि चारों दलों पर वामावर्त क्रम से वैरोचन (**वैं वैरोचन वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा**' इत्यादि रूप से), शंख पाण्डुर, पद्मनाभक तथा असिताभ का पूजन करें। इसी क्रम से आग्नेयादि चार कोण दलों पर नामक, मामक, पाण्डुर तथा तारक का पूजन करें। इसी प्रकार भूपुर के पूर्वादि चारों द्वारों पर पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक तथा नरकान्तक का पूजन करें।

नात्युच्चं नातिनीचं स्याद् ध्यात्वा मन्त्री जपेन्मनुम्।
बलिं दत्त्वा नमस्कृत्य स्तुत्वा देवीं विसर्जयेत्॥१०७॥
सयोनिगोमयेनाष्टपत्रमब्जं सुशोभनम्।
भूपुरं वसुवज्राढ्यं यन्त्रमेकजटात्मकम्॥१०८॥
बलिपूजादिकं दद्यान्निशायां क्रियते सदा।
तत्तदक्षयतां याति तारादेव्याः प्रसादतः॥१०९॥
श्रीमदेकजटेत्युक्त्वा वज्रपुष्पं प्रतीच्छतु।
तारादिवह्निजायान्तमुदीर्य यजनं चरेत्॥११०॥

इति श्रीफेत्कारिणीतन्त्रे श्रीमदेकजटाप्रकरणे एकादशः पटलः॥

पूजन के पश्चात् देवी का ध्यान करके न ही अति उच्च स्वर में और न ही अति मन्द स्वर में, बल्कि मध्यम स्वर में साधक मूल मन्त्र का यथेष्ट जप करे। इसके बाद देवी को बलि प्रदान कर, नमस्कार तथा स्तुति करके उनका विसर्जन (स्वहृदय में) कर दे।

बीजाङ्कित बिन्दु, त्रिकोण, वृत्त, अष्टदल पद्म तथा आठ वज्रों से आच्छादित भूपुर युक्त यन्त्र एक जटा कहा जाता है। **'ॐ श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा'** मन्त्र से एकजटा का पूजन यन्त्र पर करना चाहिए। किसी-किसी ग्रन्थ में 'प्रतीच्छ' के पश्चात् **'हुं फट्'** का भी प्रयोग मिलता है। पूजन के पश्चात् बलिमन्त्र द्वारा रात्रि में देवी को यथोचित बलि भी प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार बलि-पूजन सहित जो मनुष्य भगवती तारा (एकजटा) की साधना करता है, वह जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, तारा देवी की कृपा से उस-उस वस्तु को अक्षय रूप से प्राप्त करता है।

॥ श्री फेत्कारिणी तन्त्र के श्रीमदेकजटा प्रकरण के अन्तर्गत
ग्यारहवें पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई॥

अथ द्वादशः पटलः

॥ महाकाली-मन्त्रोद्धारः॥

शिव उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि महाकाली महामनुम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण नासाध्यं वर्तते भुवि॥१॥
प्रलयाग्नीरुधिरगतावूर्ध्वकेश्या समन्वितौ।
नादबिन्दु समायुक्तादेवं क्रोधद्वय पुनः॥२॥
पशुं गृहाण पदतो वर्मास्त्रानलवल्लभा।
चतुर्दशाक्षरी प्रोक्ता महाकाली ध्रुवादिका॥३॥
(ओं फ्रें फ्रें हूं हूं पशुं गृहाण हूं फट् स्वाहा)

श्री शिव कहते हैं (कि हे देवि!) अब मैं महाकाली के महामन्त्र को स्पष्ट रूप से कहता (प्रकाशित करता) हूँ। इस मन्त्र के विज्ञान मात्र (पुरश्चरण सहित प्रयोग) से साधक के लिए इस पृथिवी पर (संसार में) किसी भी कार्य को सिद्ध करना तथा कर्मानुकूल (कामनानुकूल) फल को प्राप्त करना असम्भव नहीं रह जाता है।

मूल में दिया गया मन्त्र अशुद्ध है। शुद्ध मन्त्रोद्धार इस प्रकार किया जायेगा। **'प्रलयाग्नी'** अर्थात् दो बार **'फकार'** (द्वितीया विभक्ति होने के कारण), **'रुधिर गतौ'** अर्थात् दोनों **'रेफ'** से युक्त, **'ऊर्ध्व-केश्या समन्वितौ'** अर्थात् दोनों **'एकार'** से युक्त तथा **'नादबिन्दु समायुक्तौ'** अर्थात् दोनों **'चन्द्र बिन्दु'** से युक्त। इस प्रकार प्राप्त हुआ **'फ्रेँ फ्रेँ'**। **'एवं क्रोधद्वयं पुनः'** अर्थात् दो बार **'ककार'** को पूर्ववत् **'रेफ'**, **'एकार'** तथा **'चन्द्रबिन्दु'** से युक्त करके **'क्रेँ क्रेँ'** प्राप्त करें। इसके पश्चात् **'पशुं गृहाण'** तथा **'वर्मास्त्राग्निवल्लभा'** अर्थात् **'हुँ फट् स्वाहा'** का समायोजन तथा आदि में **'ध्रुव'** अर्थात् **'ॐ'** का योग करके **''ॐ फ्रेँ फ्रेँ क्रेँ क्रेँ पशुं गृहाण हुँ फट् स्वाहा''** इस चतुदशाक्षर मन्त्र का उद्धार (मन्त्र की प्राप्ति) करें।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र में **'प्रलयाग्नि'** के लिए **'क्ष'** का प्रयोग किया गया है। मूल के **'क्रोधद्वयं'** के स्थान पर इस तन्त्र में **'क्रोधिद्वयं'** लिखा है। श्लोकों का उद्धरण फेत्कारिणी तन्त्र से निर्देशित है। इसके अनुसार मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार दिया है-

ॐ क्षें क्षें क्रें क्रें पशुं गृहाण हुं फट् स्वाहा।

'पुरश्चर्यार्णव' में भी (मेरुतन्त्रानुसार) यही मन्त्रोद्धार दिया हुआ है।

'आगमतत्व विलास' में **'क्षें क्षें'** के स्थान पर **'फ्रें फ्रें'** का उल्लेख है।

बीजकोशों में **'प्रलयाग्नि'** के लिए **'फ'** वर्ण का निर्देश है। परन्तु **'प्रलयाग्नि'** पद को **'संवर्तक'** पद के अर्थ (पर्यायवाचक) रूप में ग्रहण करें तो इसके लिए **'क्ष'** वर्ण का ग्रहण किया जायेगा। इस दृष्टि से **'फ्रें'** अथवा **'क्षें'** (दोनों में से) किसी का भी ग्रहण अशुद्ध नहीं कहा जा सकता। परन्तु मेरे विचार से **'आगमतत्वविलास'** में दिया हुआ मन्त्र **(ॐ फ्रें फ्रें क्रें क्रें पशुं गृहाण हुं फट् स्वाहा)** अधिक उचित प्रतीत होता है।

॥अन्यमन्त्रद्वयोद्धारः॥

प्रेक्तन्विकानलवधूस्तारादिपरो मनुः।
हर-द्वयं स्तम्भ्युग्मं कीलयद्वयमुद्धरेत्॥४॥
वह्निजायान्त उक्तोऽयं ध्रुवादिरपरो मनुः।

महाकाली का दूसरा मन्त्र (श्लोकानुसार उद्धार करने पर) **'ॐ ह्सौः स्वाहा'** प्राप्त होता है। इसी प्रकार तीसरा मन्त्र **'ॐ हर स्तम्भय-स्तम्भय कीलय कीलय स्वाहा'** (अथवा **ॐ ह्सौः हर-हर स्तम्भय-स्तम्भय कीलय-कीलय स्वाहा**) निष्पन्न होता है।

॥ पूजन-विधिः (महाकाली ध्यानञ्च)॥

न्यासशुद्धीनृष्यादींश्च नात्र कार्या विचारणा॥५॥
कृष्णतोयेन सम्पूर्णे कृष्णकुम्भेऽथ कालिकाम्।
ब्राह्मयादिभिश्च दूतीभिर्युक्ता सम्पूज्य भक्तितः॥६॥
पञ्चवक्त्रा महारौद्रीं प्रतिवक्त्र-त्रिलोचनाम्।
शक्तिशूलधनुर्बाणखेट खड्ग वराभयाम्॥७॥
दक्षादक्षभुजैर्देवीं विभ्राणां भोगिभूषणाम्।
अर्धचन्द्रा जटायुक्तां जिह्वाललनभीषणाम्॥८॥
निर्मांसमेदुरामस्थिणञ्जरां मुण्डमालिनीम्।
मत्तव्यालोपवीताङ्गी भूतवेतालवेष्टिताम्॥९॥
मेदोवसालिप्ताङ्गी महाप्रेताधिरूढकाम्।
ध्यात्ववं साधकः साध्यं साधयेन्मनसि स्थितम्॥१०॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही तथैवैन्द्री चामुण्डा चण्डिकाष्टमी॥११॥
पूर्वादीशानपर्यन्तं कुम्भाङ्के संस्थिता इमाः।
कर्णिकायां ततो देवीं महाकालीं भयापहाम्॥१२॥

उपर्युक्त महाकाली के मन्त्रों की साधना में शुद्धि (भूतशुद्ध्यादि), ऋष्यादि न्यास, मन्त्र न्यास (कर-षडङ्ग) आदि की आवश्यकता नहीं है।

प्रयोग के लिए पहले किसी काले (श्यामवर्ण) घट में काला ही जल भरकर उसके पूर्वादि दिशाओं में दूतियों सहित ब्राह्मी आदि देवियों की अर्चना करे। फिर उसके मध्य में समस्त भयों को दूर करने वाली महाकाली का ध्यान करके उनका पूजन करे।

पूर्व से ईशान पर्यन्त ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा तथा आठवीं चामुण्डा (महालक्ष्मी) इन देवियों की स्थित घट में होती है।

महाकाली का ध्यान इस प्रकार करें - महाकाली पाँच मुखवाली हैं। इनकी सम्पूर्ण आकृति महाभयानक (क्रोधयुक्त) है। इनके प्रत्येक मुख पर तीन नेत्र हैं। इनके दाहिने चार हाथों में शक्ति, शूल, धनुष तथा बाण एवं बायीं ओर के हाथों में खेट, खड्ग, वर तथा अभयमुद्रा धारित हैं। शरीर पर सर्पो का आभूषण सुशोभित है। जटायुक्त मस्तक पर अर्धचन्द्र स्थित है। इनकी भयानक तथा लम्बी जिह्वा लपलपा रही है। मांस रहित स्थूल अस्थि समूहों से सारा शरीर आच्छादित है अथवा सारा शरीर मांस रहित सघन अस्थि समूह सा प्रतीत होता है। इनके गले में नरमुण्डों की माला तथा शरीर पर सर्प का यज्ञोपवीत स्थित है। इनका सारा शरीर मेद तथा वसा से लिप्त है तथा भूत-वेतालों द्वारा चारों ओर से घिरी हुई ये महाकाली विशाल शव के ऊपर स्थित हैं। इस प्रकार साधक महाकाली का ध्यान करके अपने मन में स्थित साध्य (कामना) की सिद्धि के लिए यथोचित साधन (जप-पूजन प्रयोगादि) करे।

॥ मारण-प्रयोगः॥

नामोच्चारणसम्बन्ध वह्नौ प्रज्वलिते खरे।
जुहुयाद् वैरिणं क्रुद्धो देवी मन्त्र जपन यथा॥१३॥
समिधं पिचुमर्दस्य विभीतचिति काष्ठकाः।
हरं विषं राजिकां च कण्टजालरसान्विता॥१४॥
गृहधूमश्मशानास्थि-विभीताङ्गार-होमतः ।
सप्ताहाद् वैरिणं हन्ति कालिकामन्त्रयोगतः॥१५॥
उच्चाटमपराह्ने तु सन्ध्यायां मारणं तथा।
दक्षिणस्यां दिशि स्थित्वा ग्रामादेर्दक्षिणामुखः॥१६॥

॥ इति फेत्कारिणी तन्त्रे महाकाली मन्त्रत्रयाख्यानं नाम द्वादशः पटलः॥

[वामाचार साधक को पहले मन्त्रस्थ वर्णो की संख्यानुसार उतने लाख मन्त्र का जप (जैसे कि प्रथम मन्त्र का चौदह लाख जप) करके नीम की समिध ा को घृत में सिक्त करके दशांश हवन तथा यथाविधि तर्पणादि करके पुरश्चरण करना चाहिए। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर ही अन्य प्रायोगिक काम्य कर्म करना चाहिए।]

बहेड़े (विभीतक) तथा चिता की लकड़ी द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके नीम की समिधा को घृत में भिगोकर हवन करे अथवा हरताल, कुचला, राई, कण्टजाल रस, गृहधूम तथा नीम की समिधा के मिश्रण द्वारा, श्मशानस्थ विभीतक की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित करके उसमें हवन करे। हवन कार्य श्मशान में ही करना चाहिए तथा प्रति आहुति के साथ क्रुद्धावस्था में शत्रु नाम युक्त मन्त्र का जप (उच्चारण) करते हुए इस प्रकार आहुति डालना चाहिए मानो शत्रु को ही हवन कर रहे हों। सात

दिनों तक इस प्रयोग को करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। प्रयोग से पहले मन्त्र का कम से कम दश हजार जप करना चाहिए तथा एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिए।

गृह, ग्राम अथवा नगर के दक्षिण दिशा में स्थित होकर (श्मशान के अतिरिक्त) दक्षिणमुख बैठकर उच्चाटन कर्म अपराह्न (दोपहर बाद) तथा मारण कर्म सन्ध्या काल में करना चाहिए।

।। फेत्कारिणी तन्त्र में महाकाली मन्त्रत्रयाख्यान नामक
द्वादश पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ त्रयोदशः पटलः

॥ परिमलमन्त्रोद्धारः, ऋषि-छन्दादि न्यास विधिश्च॥

शिव उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि मन्त्रं परिमलात्मकम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण नासाध्यं भुवनत्रये॥१॥
रुद्रजाया महायोगिन्यतो गौरीपदं वदेत्।
भुवनभयङ्करीपदं वर्मास्त्रं चोद्धरेन्मनुम्॥२॥
षडदीर्घयुक्तबीजेन मन्त्रार्द्धेनास्त्रयोगिना।
हृदयञ्च ततोऽर्द्धेन वर्मास्त्रेण शिरः क्रमात्॥३॥
शिखा-कवच-नेत्रास्त्रमेवं न्यासक्रमः स्मृतः।
अङ्गिराश्च ऋषिर्देवी गायत्रीछन्द ईरितम्॥४॥
सिंहवक्त्रा च भूतानां भयङ्कारिण्यतः परम्।
महाकृत्या देवता चेत्युक्त्वा न्यासं समाचरेत्॥५॥

अब मैं परिमल मन्त्र का वर्णन करता हूँ। इसके विज्ञान (प्रयोग-साधन विधि आदि के जानने) मात्र से ही साधक के लिए तीनों लोकों में कुछ भी प्राप्त करना असंभव नहीं होता।

रुद्रजाया **'ह्रीं'** के पश्चात् **'महायोगिनि गौरि'** पदों के प्रयोग के अनन्तर **'भुवन भयङ्करि'** तथा वर्म **'हुं'** एवं अस्त्र **'फट्'** का संयोग करके मन्त्र- **'ह्रीं महायोगिनि गौरि भुवनभयङ्करि हुं फट्'** का उद्धार करें।

इस मन्त्र के ऋषि अङ्गिरा, छन्द देवी गायत्री तथा देवता समस्त भूतों (प्राणियों) को भयभीत करने वाली सिंहवक्त्रा महाकृत्या हैं। इसकी न्यास विधि निम्नवत् है। **अङ्गिरसे ऋषये नमः** - शिरसि। **देवीगायत्रीच्छन्दसे नमः** - मुखे। **सिंहवक्त्रा भूतानां भयङ्करी महाकृत्यायै देवतायै नमः** - हृदि। इसके बाद कृताञ्जलि होकर बोले - **मम सर्वाभीष्ट सिद्धये विनियोगः।**

श्लोकानुसार इस मन्त्र द्वारा **'कर-षडङ्ग न्यास'** निम्नवत् किये जायेंगे।

'कर-न्यास'

ह्रां ह्रीं महायोगिनि गौरि फट्	**हृदयाय नमः**	**अंगुष्ठयोः**
ह्रीं ह्रीं भुवनभयङ्करि हुं फट्	**शिरसे स्वाहा**	**तर्जन्योः**
ह्रूं ह्रीं महायोगिनि गौरि फट्	**शिखायै वषट्**	**मध्यमयोः**
ह्रैं ह्रीं भुवन भयङ्करि हुं फट्	**कवचाय हुम्**	**अनामिकयोः**
ह्रौं ह्रीं महायोगिनि गौरी फट्	**नेत्रत्रयाय वौषट्**	**कनिष्ठकयोः**
ह्रः ह्रीं भुवन भयङ्करि हुं फट्	**अस्त्राय फट्**	**करतल कर पृष्ठयोः**

'अङ्ग (षडङ्ग)-न्यास'

ह्रां ह्रीं महायोगिनि गौरि फट्	हृदयाय नमः	हृदि
ह्रीं ह्रीं भुवनभयङ्करि हुं फट्	शिरसे स्वाहा	शिरसि
ह्रूं ह्रीं महायोगिनि गौरि फट्	शिखायै वषट्	शिखायां
ह्रैं ह्रीं भुवन भयङ्करि हुं फट्	कवचाय हुम्	वाह्वो
ह्रौं ह्रीं महायोगिनि गौरी फट्	नेत्रत्रयाय वौषट्	नेत्रेषु
ह्रः ह्रीं भुवन भयङ्करि हुं फट्	अस्त्राय फट्	शिरसि करं भ्रामयित्वा त्रितालं देयः

।। महाकृत्या-ध्यानम्।।

सिंहासनां हृष्टमुखीं लम्बमानपयोधराम्।
दंष्ट्राकरालवदनां त्रिनेत्रां सर्वतोज्ज्वलाम्।।६।।
कृष्णकञ्चुकसंवीता विधूमाग्निसमप्रभाम्।
त्रिशूलचक्रचषकखट्वाङ्गकरपङ्कजाम् ।।७।।
लेलिहानां महाजिह्वां विद्युत्प्रेक्षणभीषणाम्।
ध्यात्वा कृत्यां विधानेन पूजयेन्मन्त्रवित्तमः।।८।।

प्रसन्न मुख वाली, लम्बे लटकते हुए स्तनों वाली, बड़े-बड़े दाढों से युक्त विशाल (भयङ्कर) मुख वाली चारों ओर से जलती हुई (अग्नि के समान) तीन नेत्रों वाली, काले रंग की कञ्चुकी (चोली) धारण की हुई, धूम रहित अग्नि के समान स्वच्छ (स्वर्णवत्) प्रभावाली, अपने (चारों) कर कमलों में त्रिशूल, चक्र, चषक (मद्यपात्र) तथा खट्वाङ्ग धारण की हुई, लपलपाती हुई लम्बी चञ्चल जिह्वा वाली तथा देखने में विद्युत् (आकाशीय विजली) के समान भयङ्कर प्रतीत होने वाली (अथवा विद्युत के समान भयङ्कर दृष्टि वाली) सिंहासन पर विराजमान (अथवा सिंह पर विराजमान) कृत्या का ध्यान करके मन्त्रज्ञ साधक को विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए।

[सहस्रहोमतः सिद्धिं कामितां लभते नरः।
जपादयुतसंख्याऽस्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।।
सदेष्टसिद्धिदो मन्त्रो जायते नात्र संशयः।
त्रिसन्ध्यं त्र्यधिकं त्रिंशज्जपो वश्यमनुः स्मृतः।
सदाकालं जपेन्मन्त्रं स च सिद्धिमवाप्नुयात्।।]

[इस मन्त्र का पुरश्चरण करने के लिए इसका दश हजार की संख्या में जप करना कहा गया है। जप के पश्चात् हवन, तर्पण , आदि सभी कर्म विधिपूर्वक सम्पन्न कर लेने के बाद अभीष्ट कामना की सिद्धि के लिए इस मन्त्र द्वारा एक हजार आहुतियों के प्रदान से हवन करना चाहिए। यह मन्त्र जपादि सहित विधिपूर्वक साधना करने वाले मनुष्य के लिए सदैव सिद्धिप्रद, सिद्ध होता है, इसमें किसी भी प्रकार से संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। तीनों सन्ध्यायों में तैंतीस (३३) बार नित्य जप करने से यह मन्त्र वशीकरण कारक होता है। जो मनुष्य सदैव इस मन्त्र का जप करता रहता है उसे सभी सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है।]

।। कार्यानुसार-पुष्पादि द्रव्यैः कृत्यार्चनम्।।

ध्यात्वा कृत्यामर्चयेत् रक्तपुष्पैश्च वश्यके।
कृष्णं मारणकार्येषु मांसरक्तासवैस्तथा।।९।।

महाकृत्या का उपर्युक्त रूप से ध्यान करके वश्यकर्म के लिए लाल पुष्पों द्वारा पूजन करना चाहिए। मारण कर्म में काले पुष्पों, मांस, रक्त तथा मद्य से कृत्या की अर्चना करनी चाहिए।

।। पीठ पूजनम्।।

कृत्याञ्च मदनां सर्वकुल्लां उत्सादिनीं तथा।
भीषणां श्रीमतीं चैव प्रतिष्ठाञ्च ततः पराम्।।१०।।
विद्यामभ्यर्चयेदष्टपत्रेषु क्रमतः सुधीः।
पूर्वे तु शाङ्करीं नाम शुक्लवर्णाम्बरान्विताम्।।११।।
द्विभुजां सौम्यवदनां पाशाङ्कुशधरां शिवाम्।
दक्षे भयङ्करी नाम ललज्जिह्वामधोमुखीम्।।१२।।
कृष्णवर्णां रक्तकेशीं रक्तमाल्यानुलेपनाम्।
चतुर्भुजां सिंहासनां ज्वलद्भुजकपालिनीम्।।१३।।
शूलखड्गकर्तृहस्तां सर्वाभरणभूषिताम्।
पश्चिमे वारुणीं नाम स्वर्णवर्णां हसन्मुखीम्।।१४।।
सुवर्णमालिकां शुभ्रदंष्ट्रामभयदां सदा।
उत्तरे भीषिकां नाम चतुवक्त्रां भयङ्करीम्।।१५।।
पूजयित्वा जपेन्मन्त्री नित्यमष्टोत्तरं शतम्।
अथास्या विनियोगस्तु कर्तव्यो मन्त्रिणा सदा।।१६।।

न्यास के पश्चात् ध्यान-आत्मपूजन करके भुवनेशी पीठ का पूजन कर उस पर महाकृत्या का आवाहन, षडङ्ग पूजनादि करके देवी के सामने से प्रारम्भ करके अष्टदलों पर क्रमशः कृत्या, मदना, सर्वकुल्ला (सर्वकृत्या), उत्सादिनी, भीषणी, श्रीमती, प्रतिष्ठा तथा विद्या का पूजन उनके चतुर्थ्यन्त नामों से पूर्व **'ॐ'** तथा बाद में **'नमः'** लगाकर (यथा **'ॐ कृत्यायै नमः'** इत्यादि रूप से) करे। इसके बाद देवी (महाकृत्या) के पूर्वभाग में (सम्मुख) श्वेत वस्त्र धारण की हुई (अथवा शुक्ल वर्ण वाली वर प्रदायिनी), शान्त-सुन्दर मुख वाली तथा अपनी दो भुजाओं में पाश तथा अंकुश धारण की हुई शाङ्करी का (**ॐ शाङ्कर्यै नमः**) पूजन करें। दक्षिण की ओर लम्बी लपलपाती जिह्वा वाली, मुख नीचे की ओर की हुई कृष्णवर्ण शरीर वाली, लाल रंग के केशों वाली, लाल रंग की माला धारण वाली तथा लाल चन्दन का शरीर पर लेप की हुई, अपने अग्निवत् प्रज्ज्वलित (आभायुक्त) चारो हाथों में प्रज्ज्वलित कपाल, शूल, खड्ग तथा कर्तृका धारण की हुई तथा समस्त आभूषणों से विभूषिता होकर सिंहासन पर बैठी हुई भयङ्करी नाम वाली शक्ति का पूजन करे।

महाकृत्या देवी के पश्चिम (पीछे) की ओर वारुणी नाम वाली, स्वर्ण वर्ण शरीर वाली, हास्ययुक्त मुखवाली, स्वर्ण की माला धारण की हुई, श्वेत (सुन्दर) दाढ़ों वाली तथा

सदैव (उपासकों को) अभयदान करने वाली शक्ति का (**'ॐ वारुण्यै नमः'** मन्त्र से) पूजन करना चाहिए। इसी भाँति उत्तर की ओर भीषिका नाम वाली, चार मुखों वाली तथा भय उत्पन्न करने वाली शक्ति का (**'ॐ भीषिकायै नमः'** मन्त्र से) पूजन करे। (इसके पश्चात् दिक्पालादि का भी पूजन करना चाहिए।) इस प्रकार पीठस्थ सभी देवताओं (शक्तियों) का पूजन करके साधक को नित्य मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए। पूजन के पश्चात् ही साधक को कामनानुसार मन्त्र का विनियोग करना चाहिए।

।। मारण-प्रयोगाः।।

कालं विदित्वा प्रतिमां मधूच्छिष्टेन कारयेत्।
द्वादशाङ्गुलिकां शत्रोर्नखलोमसमन्विताम्।।१७।।
हृदये नामधेयं च फट्कारं सर्वमर्मके।
अमुष्य प्राणा इह चामुष्य जीव इह स्थितः।।१८।।
(आं क्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः)
अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि चामुष्य वाङ्मनश्चक्षुः-
श्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्याग्निवल्लभा।
इति प्राणं प्रतिष्ठाय मरिचैर्लेपयेत्ततः।।१९।।
मृतब्राह्मणचाण्डालकेशाभ्यां पादयोः पृथक्।
बद्ध्वा कारस्करमये तोरणे वाप्यधोमुखीम्।।२०।।
तस्याधो मेखलायुक्तं त्रिकोणं वह्निकुण्डकम्।
चन्द्रगौरं विधायाग्निं परिस्तीर्य शरैस्तृणैः।।२१।।
विभीतकपरिध्या च कल्पयेद् यस्य मारणम्।
जुहुयान्निम्बतैलाक्तैः काकोलूकस्य पिच्छकैः।।२२।।
दारयैनं शोषयैनं मारयेत्यभिधाय च।
अष्टोत्तरशतेनैनमनया जुहुयात्ततः।।२३।।
होमान्ते विधिवत् कृत्यामाराध्याग्नेस्तु सन्निधौ।
यो मे कण्ठग्रहो वाति दूरस्थे वान्तिकेऽपि च।।२४।।
पिब क्रव्यमसृक् तस्येत्येवमुक्त्वा निवेदयेत्।
संरक्ष्याग्निं विधानेन नवरात्रं समाचरेत्।।२५।।
मृतस्तिष्ठेति हुत्वैवं भवेदस्य रिपोर्मृतिः।

किसी शत्रु के प्रति मारण का प्रयोग करने के लिए उसके जन्म नक्षत्रों (कुण्डली) के आधार पर पहले उसके मृत्युयोग का समय ज्ञात करे। तत्पश्चात् नख-लोमादि अङ्गोपाङ्ग युक्त शत्रु की मोम के द्वारा बारह अंगुल लम्बी एक काल्पनिक प्रतिमा (पुतली) बनायें। उस प्रतिमा के हृदय पर शत्रु का नाम तथा उसके सभी मर्म स्थानों पर **'फट्'** लिखकर -

आँ ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः सोऽहं अमुष्य प्राणा इह स्थिताः। इसी प्रकार **'अमुष्य जीव इह स्थितः, अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनुश्चक्षुः श्रोत्र जिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।''** रूप से (अमुष्य के स्थान

पर षष्ठी विभक्तियुक्त शत्रु का नाम बोलकर) उसमें (प्रतिमा में) शत्रु के नाम से प्राण प्रतिष्ठा करें। प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात् उस प्रतिमा पर काली मरिच (पिसी हुई) का लेप करें। इसके बाद मृत ब्राह्मण तथा चाण्डाल के केशों से उसके दोनों पैरों को अलग-अलग बाँधकर उसे कारस्कर के बने तोरण (झण्डे) पर अधोमुखी लटका दें। इसके नीचे तीन मेखलाओं से युक्त अग्नि (त्रिकोण) कुण्ड बनाकर उसमें कपूर के द्वारा (अथवा श्मशाग्नि द्वारा)अग्नि स्थापन करके उसके ऊपर शरकण्डा तथा तृण (घास) फैला दें। तदुपरान्त बहेड़े के वृक्ष-काष्ठ के मूषल से शत्रु को मारने की कल्पना करते हुए नीम के तेल से भीगे हुए कौवे तथा उल्लू के पंखों से हवन करें। मूल मन्त्र के पश्चात् **'दारय-एनं', 'शोषय-एनं', 'मारय-एनं'** (एनं के स्थान पर द्वितीया विभक्तियुक्त शत्रु का नाम प्रयोग करके) बोलते हुए एक सौ आठ बार इस प्रकार से हवन करें। हवन के पश्चात् अग्नि के समीप ही महाकृत्या का पूजन करके **'यो मे कण्ठग्रहोऽरातिर्दूरस्थो वान्तिकेऽपि पिव तूर्णमसृक् तस्य हुत्वा'** बोलते हुए उससे प्रार्थना करें। इसके बाद नवरात्रियों तक अग्नि का विधिपूर्वक संरक्षण करते हुए हवन तथा पूजन करें। प्रयोग के असफल होने की स्थिति में पुनः पूर्ववत् हवन करें। इससे अवश्य ही शत्रु की मृत्यु हो जायेगी।

अर्कक्षीरेण मरिचं पिष्ट्वा सिद्धार्थमेव च।
जले संलोड्य मन्त्रेण रिपुं ध्यात्वा निरुद्धदृक्॥२६॥
कृष्णाम्बरोत्तरीयोऽग्रपादेनाक्रम्य तद्रिपुम्।
वज्रशूलमिति ध्यात्वा अद्भिस्तस्योपरि क्षिपेत्॥२७॥
नवरात्रान्तरे शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः।

मदार (आक) के दूध के साथ काली मरिच तथा पीली सरसों को पीस करके, किसी पात्र में जल लेकर उसे उस जल में डालकर (एक सौ आठ बार) मन्त्र पढ़ते हुए चलायें। इसके बाद शत्रु का ध्यान करके, स्वयं की उत्तरीय स्थित काला वस्त्र धारण किये हुए कल्पना करके, स्थिर दृष्टि से उसे देखते हुए, शत्रु को अपने आगे के पैर (दक्षिण पैर) से दबाये हुए सा ध्यान करे। तत्पश्चात् उस जल को हाथ में लेकर उसकी वज्र-शूलवत् कल्पना करके उस (ध्यानस्थ) शत्रु पर फेंके। जल फेंकते हुए ऐसी कल्पना करे जैसे उसे शत्रु पर ही फेंका जा रहा हो। नवरात्रियों तक इस प्रकार प्रयोग करने से निःसन्देह शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

सुसमिद्धे चितावह्नौ तैलसिक्तैर्विभीतकैः॥२८॥
जुह्वतो म्रियते शत्रुः सत्यमौशनसोदितम्।

भलीभाँति प्रज्वलित चिताग्नि में तेल से भीगे हुए बहेड़े के फल अथवा काष्ठ के द्वारा हवन करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। ऐसा औशनस (उशना-शुक्राचार्य के शिष्यों) का कथन है। हवन करते समय मन्त्र के साथ साध्य नाम कर्म का भी प्रयोग करना चाहिए।

रिपोः प्रतिकृतिं कृत्वा साध्यर्क्षफलकेऽमले॥२९॥
अर्कक्षीरेण मरिचं पिष्ट्वा तत्रैव लेपयेत्।
फट्कारं हृदये कृत्वा शिवनिर्मायकूपके॥३०॥

क्षिपेत् कृष्णचतुर्दश्यां जप्त्वा मन्त्रं सहस्रशः।
सद्योऽवगाहनं कृत्वा कुर्यादस्यानुरक्षणम्।।३१।।
मन्त्रं जप्त्वा विधानेन भेदयेत् सिंहमुद्रया।
षण्मासान् म्रियते शत्रुः सन्ध्ययोरुभयोरपि।।३२।।

शत्रु के जन्म नक्षत्र से सम्बन्धित वृक्ष के काष्ठ से उसकी (बारह अंगुल लम्बी) प्रतिमा बनाकर, मदार के दूध तथा काली मरिच के मिश्रण को पीसकर उसका लेप प्रतिमा पर करे। इसके बाद किसी भी मास की कृष्ण चतुर्दशी को प्रतिमा की शत्रु-नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करके, उसके हृदय पर 'फट्' लिखकर तथा हृदय पर खूँटा गाड़कर, मूल मन्त्र का एक हजार जप करके उस प्रतिमा को कुए में डाल दें। पुनः शीघ्र ही जल में (स्वयं) डुबकी लगाकर अथवा प्रतिमा को जल में डुबाकर उसे बाहर निकाल ले। इसके बाद यथोचित संख्या में विधिवत् दोनों संध्याओं में मंत्र का जप करके सिंह मुद्रा से उस प्रतिमा का भेदन (खण्ड-खण्ड काटना) करें। इस प्रयोग से छः माह के भीतर ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

।। उच्चाटन-प्रयोगः।।

वाय्वो समुद्धृतं पर्णं शुष्कं वैभीतकं ततः।
गृहीत्वा च लिखेन्मन्त्रं कृष्णसर्पस्य शोणितैः।।३३।।
नामधेयं रिपोरन्ते वायुबीजेन वेष्टयेत्।
निखनेत्तस्य गेहे तु काकवत् भ्रमते ध्रुवम्।।३४।।

हवा के द्वारा वृक्ष से गिरे हुए विभीतक (बहेड़े) के सूखे पत्ते को लेकर उस पर काले सर्प के रक्त से शत्रुनाम लिखकर उसके बाद मन्त्र को लिखे। फिर इस लिखित भाग को वायुबीज 'यं' द्वारा वृत्ताकार रूप से वेष्टित कर (घेर) दे। तत्पश्चात् इस पत्र को शत्रु के घर में गाड़ दे। ऐसा करने पर वह शत्रु कौवे की भाँति निश्चित ही इधर-उधर भटकने लगता है।

वातोद्धूतैः शुष्कपत्रैः काष्ठैरशनिपातितैः।
उष्ट्रास्थिना चिताङ्गारैः शत्रोरुच्चाटनं भवेत्।।३५।।
दूर्वा गुडूचीगव्येन सर्पिषा तिलतण्डुलैः।
अन्नैः समिद्भिः पालाशैः शान्तिं कुर्याद्विचक्षणः।।३६।।

वायु के द्वारा गिरे हुए सूखे पत्तों, वज्रपात गिरे हुए (वृक्ष के) काष्ठों तथा ऊँट की अस्थियों पर चिता के कोयले से उपर्युक्त रूप से लेखन कार्य करके शत्रु के घर में उसे गाड़ देने से भी शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। गाड़ने से पूर्व साधक को मन्त्र का एक हजार जप भी अवश्य करना चाहिए।

दूर्वा, गुडूची (गिलोय), गोमूत्र, गोघृत (पिघला हुआ) तिल, चावल तथा अन्न से पलाश की समिधाओं से प्रज्वलित अग्नि में यदि बुद्धिमान साधक इसी (मूल) मन्त्र द्वारा हवन करे तो उच्चाटन की शान्ति होती है।

।। विभिन्न कामनार्थे हवनम्।।

लक्ष्मींविल्वफलैः पत्रैर्नन्द्यावर्तैः श्रिये तथा।
रक्तपुष्पैरपामार्गैरङ्गारैश्च सुभद्रकैः।।३७।।

मधुरत्रयसंसिक्तैरेभिः कुर्यात्तु वश्यकम।
उक्तमौशनसे तन्त्रे च्यवनस्यापि कथ्यते॥३८॥

बेल के द्वारा हवन से लक्ष्मी तथा नन्द्यावर्त के पत्रों द्वारा हवन करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। लाल अपामार्ग के पुष्पों, जपा पुष्पों, पारिभद्र के पुष्पों (अथवा अन्य किसी भी लाल पुष्पों) को मधुरत्रय (घृत, शकर तथा शहद) से सिक्त (भिगो) कर हवन करने से वश्य कर्म सिद्ध होता है। प्रतिदिन एक हजार हवन सहित न्यूनतम पन्द्रह दिनों तक प्रयोग करना चाहिए। ऐसा औशनस (शुक्राचार्य रचित) तन्त्र में तथा च्यवन ऋषि द्वारा भी कहा गया है।

शान्तिं कृत्वा विधानेन जपेत् परिमलं त्विदम्।
महाव्याधिप्रशमनं नित्यमष्टाधिकं शतम्॥३९॥
जपेदेकाग्रचित्तस्थो लोकवश्यकरं परम्।

विधिपूर्वक (ध्यान-पूजनादि) करके नित्य इस परिमल मन्त्र का एक सौ आठ बार पाठ करने से बड़े-बड़े रोगों सहित अनेकों प्रकार के (ग्रह तथा अभिचार जनित) अन्य दोषों की भी शान्ति होती है। यदि साधक एकाग्रचित्त होकर नित्य इस मन्त्र का जप करे तो वह सारे संसार को वशीकृत करने में समर्थ हो जाता है।

मनसा चिन्तयेत् कृत्यां गजारूढां वियद्गताम्॥४०॥
तस्य वश्या भवेत् क्षिप्रमश्वारूढा तथा भवे।
चौरव्याघ्रमृगादीनां सलिलादिभयापहाम्॥४१॥
सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वपापविनाशनम्।
सप्तभिमन्त्रितं तोयं पीत्वा नित्यं समाहितः॥४२॥
मेधावी च भवेद्वाग्मी तावज्जप्त्वाभिषेकतः।
सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा विषमप्यमृतं भवेत्॥४३॥
मासं पक्षं द्विमासं वा षण्मासं वत्सरं तथा।
एवं यः कुरुते मर्त्यः स पुण्यां गतिमाप्नुयात्॥४४॥

जो मनुष्य हाथी पर बैठी हुई आकाश में स्थित रूप से महाकृत्या का मानसिक ध्यान करता हुआ मन्त्र का नित्य जप करता है, उसे शीघ्र ही वशीकरण सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार अश्व पर सवार आकाश में स्थित रूप से ध्यान करते पर भी वैसे ही वशीकरण की सिद्धि होती है।

इस मन्त्र का एक बार भी श्रवण (अथवा उच्चारण) करने मात्र से ही समस्त पापों, चोर, व्याघ्र, जङ्गली पशुओं आदि तथा जल-अग्नि आदि से उत्पन्न भयों (सङ्कटों) का विनाश हो जाता है।

जो साधक (मन्त्र का नित्य जप करने के साथ ही) जल को इस मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके पीता है अथवा इसी प्रकार अभिमन्त्रित जल से स्वयं का अभिषेक करता है, वह बुद्धिमान (ज्ञानी) तथा श्रेष्ठ वक्ता (प्रवचन करने वाला) हो जाता है। इस परिमल मन्त्र द्वारा सात बार अभिमन्त्रित विष भी अमृत के समान गुणकारी हो जाता है। जो साधक (मनुष्य) पक्ष, मास, दो मास, छः मास अथवा वर्ष

पर्यन्त इस प्रकार से साधना करता है, वह पुण्यात्मा पुरुषों को प्राप्त वाली गति (स्वर्ग) को प्राप्त कर लेता है।

।। महाशान्तिकर-यन्त्र-पूजन-प्रयोगः।।

अथ वक्ष्ये विशेषेण महाशान्तिविधिक्रमम्।
सर्वसिद्धिकरं पुण्यं सर्वपापविनाशनम्।।४५।।
सर्वग्रहादिदोषाणां नाशनं सिद्धिकारणम्।
सर्वमुद्राप्रहरणं सर्वारिष्टविनाशनम्।।४६।।
अकालमृत्युमथनं सदा विजयवर्धनम्।
आयुष्यं पावनं पुष्टिलक्ष्मीसौभाग्यवश्यकृत्।।४७।।
पुत्रदं कीर्तिदं चैव अलक्ष्मीमलनाशनम्।
महाव्याधिप्रशमनमपस्मारविनाशनम् ।।४८।।
योगिनीभूतवेतालाः प्रेतकूष्माण्डपन्नगाः।
तत्र स्थाने न तिष्ठन्ति डाकिन्याद्या विशेषतः।।४९।।
कृत्यामभ्यर्चयेद् वत्से यथाविधिपुरःसरम्।

अव मैं महाशान्तिकारक प्रयोग विधि का विशेष रूप से वर्णन करता हूँ। यह प्रयोग सर्वसिद्धिकर, पुण्य प्रद (पवित्र करने वाला) सर्व पाप विनाशक, अन्य (शत्रु) कृत समस्त प्रयोगों (के प्रभाव) का नाशक, सभी बाधाओं, विपत्तियों-दुर्भाग्यों का संहारक, अकाल मृत्यु निवारक, समस्त ग्रहों के दोषों को दूर करने वाला, सदैव विजय प्रदान करने वाला, आयु, पवित्रता (चित्त शुद्धि), पुष्टि, लक्ष्मी, सौभाग्य देने वाला, वशीकरण कारक, पुत्र-पौत्र तथा यश प्रदान करने वाला, अलक्ष्मी (दरिद्रता) जनित दोषों का विनाश करने वाला तथा अपस्मार (मिर्गी) (जैसे रोगों) का नाशक एवं बड़े-बड़े रोगों को दूर करने वाला है। जिस स्थान पर साधक विधिपूर्वक महाकृत्या की अर्चना करता है, उस स्थान पर योगिनी, भूत-बेताल, प्रेत, कूष्माण्ड, सर्प तथा विशेषतः डाकिनी आदि विघ्नकारक एवं हानिप्रद शक्तियाँ स्थित नहीं रह पाती हैं।

षोडशारं लिखेत् पद्मं योनियुक्तं सबिन्दुकम्।।५०।।
तन्मध्येऽष्टदलं लिख्य यकारादीन् न्यसेत् क्रमात्।
तन्मध्ये रसकोणं तु लिखेन्मूलं मनुं स्मरन्।।५१।।
चन्द्रबिम्बं लिखेन्मध्ये तस्योर्ध्वे प्रेतमालिखेत्।
तस्य मध्ये न्यसेत् कुम्भं वस्त्रसग्रत्नभूषितम्।।५२।।
कुम्भमध्ये न्यसेत् कृत्यां सर्वलक्षणसंयुताम्।
पूजयेच्च यथान्यायं पायसं तु निवेदयेत्।।५३।।
परितोऽष्टघटे न्यस्या असिताङ्गादिभैरवाः।

महाकृत्या का अर्चन करने के लिए सबसे पहले पीठ अथवा भूमि पर निम्न प्रकार से यन्त्र की रचना करे। बिन्दु-युक्त त्रिकोण बनाकर उसके बाहर वृत्त तथा षट्कोण, षट्कोण के बाहर अष्टदल पद्म तथा इसके भी बाहर षोडश दल पदम

बनाये। अष्टदल पद्म के दलों पर पूर्वादि क्रम से 'यं रं लं वं शं षं सं हं' वर्णों को लिखकर षट्कोण पर मूल मन्त्र लिखे। त्रिकोण के ऊपर वाले वृत्त पर 'हसौः' लिखे। अन्य मतानुसार 'एँ' लिखकर उसके ऊपर वृत्त, वृत्त के ऊपर षट्कोण, इसके ऊपर अष्टदल पद्म तथा इसके बाहर षोडश दल पद्म बनाना चाहिए। षट्कोण तथा अष्टदलों पर पूर्ववत् लेखन कार्य करके वृत्त के ऊपर 'ह्सौः' लिखना चाहिए। इस यन्त्र के मध्य में वस्त्र, माला तथा रत्नों से अलंकृत कुम्भ स्थापित करे। इसके बाद पूर्व वर्णित समस्त लक्षणों से युक्त स्वरूप वाली कृत्या का ध्यान-आवाहन करके उस कलश में उसे स्थापित करे। षडङ्ग-पूजन सहित यथाविधि (पञ्चोपचार-षोडशोपचार आदि रूप से) कृत्या का पूजन करके उसे खीर निवेदित करे। तत्पश्चात् इसके चारो ओर असिताङ्गादि अष्ट भैरवों का आवाहन करके स्थापन करें।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधाशोन्मत्तभैरवः॥५४॥
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टमः स्मृतः।
गन्धपुष्पादिनाभ्यर्च्य तद्वाह्ये क्षेत्रपालकान्॥५५॥
लोकेशान्तं यजेद्देवीं तदग्रे होममाचरेत्।
जुहुयादाज्यसंसिक्तापामार्ग - तिलसर्षपान्॥५६॥
दूर्वाग्रखदिराश्वत्थैः प्रत्येकं तु शताष्टकम्।
कुण्डे वा स्थण्डिले वापि होमकर्म समाचरेत्॥५७॥
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लक्ष्मीं ध्यायेद्यथाविधि।
कुम्भमध्ये न्यसेद् देवीं दक्षिणे तु श्रियं स्मरेत्॥५८॥
वामपार्श्वे यजेद् देवीं हृल्लेखां भुवनेश्वरीम्।

आठ भैरवों के नाम इस प्रकार से हैं - असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, कोधीश, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार भैरव। गन्धपुष्पादि द्वारा इनकी अर्चना करके उसके बाह्य भाग में क्षेत्रपालों की अर्चना करनी चाहिए। इसके वाद कुम्भ के दशो दिशाओं में दिक्पालों की अर्चना करके कुम्भ में देवी की अर्चना कर उसके आगे हवन करना चाहिए। आज्य से सिक्त (भीगे हुए) अपामार्ग, तिल, सरसो, दूर्वा खण्ड (अग्रभाग), खैर तथा अश्वत्थ (पीपल) की लकड़ी इन सभी के द्वारा पृथक-पृथक एक सौ आठ (प्रत्येक के द्वारा) हवन करना चाहिए। हवन के लिए कुण्ड अथवा स्थण्डिल (चौकोर वेदी) किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है। कुम्भ में देवी के न्यास (स्थापन) पूजन के समय ही उसके दक्षिण भाग में लक्ष्मी तथा श्री का ध्यान-पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार देवी के वाम भाग में भुवनेश्वरी का ध्यान-पूजन करना चाहिए।

तस्यैव वामपार्श्वे तु पूजयेद् गणनायकम्॥५९॥
अयुतं मूलमन्त्रं तु जपेन्मृत्युविनाशनम्।
नियुतं भ्रूणहत्यां तु जपेत् परिमलं विदुः॥६०॥
महाव्याधिप्रशमनं तावज्जप्त्वाभिषेकतः।
एवं यः कुरुते मर्त्यः पुण्यां गतिमवाप्नुयात्॥६१॥

येन ज्ञातं परिमलं यस्य वक्त्रे स्थितम् सदा।
तस्यासाध्यं न विद्येत व्याध्यरिभ्यो भयं नहि।।६२।।
इत्यादिबहुले तन्त्रे ज्ञेयः परिमलो मनुः।
महाशान्तिकरः पुंसां दुःखदारिद्र्यनाशनः।।६३।।

इति श्रीपश्चिमाम्नाये फेत्कारिणीमहातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे
महाकृत्यादेवी परिमलोपाख्याने त्रयोदशः पटलः।

पुनः देवी के बायीं ओर ही गणनायक की भी पूजा करनी चाहिए। इसके पश्चात् कामनानुसार मन्त्र का यथोचित संख्या में जप करे। अकाल मृत्यु (अपमृत्यु) के विनाश के लिए दश हजार जप करना चाहिए। परिमल मन्त्र का दश लाख जप करने से भ्रूण हत्या का पाप दूर होता है। दश लाख मन्त्र का जप करने तथा अभिषेक करने से महाव्याधियों का शमन होता है। इस प्रकार से पूजन-हवन सहित जो मनुष्य यथेष्ट जप करता है, वह पुण्यवानों को गति (सद्गति-स्वर्ग) को प्राप्त करता है। जिसके द्वारा भी इस परिमल मन्त्र का साधन विधि-प्रयोग आदि सहित ज्ञान प्राप्त कर लिया गया है (तथा उसके अनुसार साधना भी की जाती है) एवं जिसके मुख में यह मन्त्र सदैव के लिए स्थित है अर्थात् जो निरन्तर उपांशु (अथवा मानसिक रूप से) जप करता है, उसके लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं होता है तथा उसे रोग एवं शत्रु का भी भय नहीं होता है। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनों सहित और भी विशेषणों से युक्त परिमल मन्त्र की अनेकों ग्रन्थों में प्रसिद्धि है। यह मन्त्र मनुष्यों को परमशान्ति (स्वरूप मुक्ति) प्रदान करने वाला तथा जीवन काल में उसके समस्त दुखों तथा दरिद्रता का नाश करने वाला है।

।। श्री पश्चिमाम्नायोक्त फेत्कारिणी महातन्त्र में शिव पार्वती संवाद के अन्तर्गत
महाकृत्यादेवी परिमलोपाख्यान नामक तेरहवें पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ चतुर्दशः पटलः

॥ जयदुर्गा-ध्यानम्॥

शिव उवाच

ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां गजमुखजननीं विश्वरूपां भवानीं
हेरम्ब पाययन्तीं स्तनमनवरतं रत्नसिंहासनस्थाम्।
ब्रह्माद्यैर्देववृन्दैर्युगकरकलितां सेवितां सिद्धसंघै
रत्नालङ्कारपूरां परमशिववधूमभ्रवर्णां त्रिनेत्राम्॥१॥

गजानन माता, विश्व स्वरूपा, परमशिव की पत्नी, जय नाम वाली दुर्गा (जय दुर्गा)का, मेघवर्णी शरीर पर पूर्ण रूपेण (सर्वाङ्गो पर यथोचित) रत्न निर्मित आभूषणों को धारण किए हुए, त्रिनेत्र धारिणी, रत्न जटित सिंहासन पर बैठकर हेरम्ब (गणेश) को निरन्तर स्तनपान कराती हुई, ब्रह्मादि देव गणों के द्वारा करबद्ध रूप से प्रणाम की जाती हुई तथा सिद्धों के समूहों द्वारा सेवा (पूजा-अर्चना) की जाती हुई रूप में ध्यान करना चाहिए।

॥जय दुर्गा - मन्त्रोद्धारः॥

एवं ध्यात्वा महादेवीं मनुं तस्य जपेत् सुधीः।
अथातः संप्रवक्ष्यामि जयदुर्गामनुं प्रिये॥२॥
यस्याः प्रसादमात्रेण स्वयं सदाशिवो भवेत्।
दुर्गे दुर्गे पदं चोक्त्वा रक्षिणीति पदं ततः॥३॥
तारादिवह्निजायान्तो जयदुर्गामहामनुः।
पातिमध्यगतं कृत्वा न्यसेत् मन्त्रपदं बुधः॥४॥

इस प्रकार उपर्युक्त रूप से महादेवी जयदुर्गा का ध्यान करके ही मन्त्र का जप करना चाहिए। हे प्रिये! अब मैं जयदुर्गा मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र के आदि में तार **(ॐ)** का प्रयोग करके **'दुर्गे-दुर्गे'** बोलकर **'रक्षिणि'** पद का उच्चारण करके अन्त में वह्नि जाया **(स्वाहा)** का प्रयोग करे। इस प्रकार जय दुर्गा मन्त्र **'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा'** का उद्धार करना चाहिए। इस मन्त्र (मन्त्रधिष्ठात्री देवता) की कृपा मात्र से साधक सदाशिव स्वरूप हो जाता है।

उपर्युक्त श्लोकार्ध में न्यास विधि स्पष्ट नहीं है। श्री विद्यार्णव तन्त्र, पुरश्चर्यार्णव, आगम तत्व विलास आदि ग्रन्थों में **'रक्षिणि'** पद के स्थान पर **'रक्षणि'** का प्रयोग है तथा इनमें षडङ्ग-न्यास की विधि भी भिन्न-भिन्न दी गई है।

॥ षडङ्ग-न्यास॥

'श्री विद्यार्णव तन्त्र' में 'नारायणीय तन्त्र' का उद्धरण देकर निम्नवत् न्यास करने का विधान दिया गया है।

ॐ ॐ हृदयाय नमः (हृदि)। **ॐ दुर्गे शिरसे स्वाहा** (शिरसि)। **ॐ दुर्गे शिखायै वषट्** (शिखायां)। **ॐ रक्षणि कवचाय हुं** (बाह्वोः)। **ॐ स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्** (नेत्रेषु)। **ॐ ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा अस्त्राय फट्** (शिरोपरि करं भ्रामयित्वा त्रितालं देयः)।

यहाँ इस मन्त्र के ऋषि **'नारद'**, छन्द **'विराट्'** तथा देवता **'भुक्ति मुक्ति फलप्रदा जय दुर्गा'** कहा गया है।

उपर्युक्त सजाति षडङ्ग मन्त्रों द्वारा हृदयादि षडङ्गों में न्यास करने से पहले अंगुष्ठादि अंगुलियों तथा करतल-कर पृष्ठों में न्यास करना चाहिए।

शारदातिलकोक्त कर-षडङ्ग न्यास

सजाति षडङ्ग मन्त्राः	कर-न्यासः	षडङ्ग (हृदयादि) न्यासः
ॐ हृदयाय नमः	अंगुष्ठयोः	हृदि
दुर्गे शिरसे स्वाहा	तर्जन्योः	शिरसि
दुर्गायै शिखायै वषट्	मध्यमयोः	शिखायां
भूत रक्षिणि कवचाय हुं	अनामिकयोः	कवचे (बाह्वोः)
ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि नेत्रत्रयाय वौषट्	कनिष्ठकयोः	नेत्रेषु
ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि अस्त्राय फट्	करतलकर पृष्ठयोः	अस्त्र न्यास (पूर्ववत्)

विशेष - शारदा तिलक (राघव भट्ट कृत पदार्थादर्श टीका) के अनुसार इस जयदुर्गा मन्त्र के ऋषि मार्कण्डेय, छन्द वृहती, देवता जय दुर्गा, बीज 'ॐ' तथा शक्ति 'स्वाहा' है। कामनासिद्धि के लिए इसका विनियोग किया जाता है। मन्त्र जपकर्ता को पहले ऋष्यादि न्यास (विनियोग सहित) करने के पश्चात् ही षडङ्ग-न्यास करना चाहिए। अन्य ग्रन्थों में जय दुर्गा का ध्यान निम्नवत् है-

कालाभ्राभां[1] कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां,
शंखं-चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिहस्कन्धाधिरुढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं,
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृत्तां सेवितां सिद्धकामैः॥

इस मन्त्र के पुरश्चरण के लिए कर्ता को मन्त्र का पाँच लाख (बाण लक्षं[2] जपेन्)जप करके दशांश की संख्या में घृत से हवन करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

॥ जयदुर्गायाः अन्य ध्यान मन्त्रश्च॥

रक्षकरीयं कथिता जयदुर्गा वर्मसंयुता।
श्यामां त्रिलोचनां ध्यात्वां ह्यात्मनं च चतुर्भुजाम्॥५॥

१. कीलालाभां - श्री विद्यार्णव तन्त्रम्। २. किसी-किसी ग्रन्थ में 'वर्ण लक्षं' पाठ प्राप्त होता है।

शंखं चक्रं च शूलासिं वहन्तीं रौद्ररूपिणीम्।
युद्धे च व्यवहारादौ जयादौ तज्जपेन्नरः॥६॥
(ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा हूँ हूँ हूँ)
जयां श्रीं पूजयेन्नित्यां खड्गं च छुरिकां तथा।
जयदुर्गामनुः प्रोक्तः कथ्यते चापरो मनुः॥७॥

साधकों की रक्षा करने वाली जयदुर्गा का मन्त्र वर्म (दीर्घ कवच) युक्त कहा गया है। इस मन्त्र के जप से पहले जयदुर्गा का अपने हृदय में ध्यान इस प्रकार करना चाहिए। भगवती जय दुर्गा का वर्ण श्याम है। वे तीन नेत्रों तथा चार भुजाओं वाली है। अपनी भुजाओं में वे शंख, चक्र, शूल तथा तलवार धारण की हुई है तथा वे रौद्र रूप में परिलक्षित होती हैं। युद्ध की स्थिति तथा शासकीय न्यायालय में किसी वाद की स्थिति आदि में विजय प्राप्ति के लिए इस मंत्र का मनुष्य को जप करना चाहिए। मन्त्र - **'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा हूँ हूँ हूँ।'**

मन्त्र का जप करने से पहले साधक को नित्य ही जयदुर्गा का पूजन करना चाहिए। युद्ध में विजय की आकांक्षा वाले व्यक्ति (राजा) को खड्ग तथा छुरिका (अपने अस्त्र-शस्त्रों) का भी इस जयदुर्गा मन्त्र से पूजन करना चाहिए। जयदुर्गा के मन्त्र कथन के पश्चात् अब अन्य मन्त्र कहते हैं।

॥ ज्वालामालिनी (ज्वालामुखी) मन्त्रोद्धारः॥

नमो भगवतीत्युक्त्वा ज्वालामालियन्यतः परम्।
गृध्रगण परिवृते द्विवठस्तारादिरीरितः॥८॥
ॐ नमो हृदयं प्रोक्तं भगवति शिरसस्तथा।
ज्वालामालिनि च शिखागृध्रगणपरिवृते ततः॥९॥
कवचं स्वाहास्त्रमित्येतज्जातियुक्तं न्यसेत्तनौ।
अभुक्त्वा नियतं चैतत् जपेन्मन्त्रं जपाज्जयी॥१०॥

'नमो भगवति' बोलकर 'ज्वालामालिनि' बोले इसके बाद 'गृध्रगणपरिवृते' तथा अन्त में 'स्वाहा' का उच्चारण कर आदि में तार 'ॐ' का संयोग करके (बाईस वर्णात्मक ज्वालामालिनी) मन्त्र का उद्धार करें।

मन्त्र - **'ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगण परिवृते स्वाहा।'**

इस मन्त्र में नेत्र को छोड़कर पञ्चाङ्ग न्यास किये जायेंगे। यथा-

ॐ नमो हृदयाय नमः (हृदि)। **भगवति शिरसे स्वाहा** (शिरसि)। **ज्वालामालिनि शिखायै वषट्** (शिखायां)। **गृध्रगणपरिवृते कवचाय हुम्** (वाह्वोः)। **स्वाहा अस्त्राय फट्** (अस्त्र न्यास)।

आ०ग० विलास में यही मन्त्र चौबीस अक्षर का (**'स्वाहा'** से पहले **'हुं फट्'** का प्रयोग करके) दिया गया है। इसमें षडङ्ग न्यास (उपर्युक्त पञ्चाङ्ग न्यास सहित **'हुं फट् नेत्रत्रयाय वौषट् - नेत्रेषु'** रूप से नेत्र-न्यास भी) करने के लिए कहा गया है।

'हृदयादि न्यास' से पहले साधक को उपर्युक्त 'सजाति षडङ्ग' मन्त्रों के द्वारा 'कर-न्यास' भी करना चाहिए।

बिना भोजन किए इन्द्रियों को चित्त सहित नियन्त्रित करके मन्त्र का (दश हजार) जप करने वाला साधक अवश्य ही विजयी (अभीष्ट सिद्ध) होता है।

।। ज्वालामुख्याः द्वितीयो मन्त्रः।।

रुद्राङ्गनाग्निजायाभ्यां रुद्धं ज्वालामुखीत्यपि।
मन्त्रान्तरं समाख्यातं ज्वालामुख्या मनुत्तमः।।११।।
दीपतैलाक्तपादोऽर्धरात्रे गुरुदिनादितः।
जपेदष्टसहस्रं तु त्रयोविंशतिवासरान्।।१२।।
प्रत्यहं पलषट्कं च ददातीति न संशयः।
नारायणीये कथितमगस्त्येन पुरा पुनः।।१३।।

'ज्वालामुखि' पद को रुद्राङ्गना **'ह्रीं'** तथा अग्निजाया **'स्वाहा'** से अवरुद्ध करके **'ह्रीं स्वाहा ज्वालामुखि ह्रीं स्वाहा'** रूप से ज्वालामुखि का एक अन्य श्रेष्ठ मन्त्र कहा गया है।

पैरों में दीपक का तेल लगाकर, अर्धरात्रि में, बृहस्पतिवार से प्रारम्भ करके तेईस दिनों तक प्रतिदिन आठ हजार मन्त्र जप करने वाले साधक को भगवती ज्वालामुखी प्रतिदिन छः पल सोना निःसन्देह रूप से प्रदान करती है।

दुर्गा नवप्रकाराः स्युः नवदुर्गा विशेषतः।
सुसिद्धिमिच्छता गोप्या नाम्नापि न समीरयेत्।।१४।।
पुत्रस्य नृपतेश्चापि धार्मिकस्य विशेषतः।
नवदुर्गाविधानेन दर्शयेत् कार्यगौरवात्।।१५।।
नृपोऽपि सम्यगाराध्य मन्त्रज्ञं विविधैर्धनैः।
निवेद्य विधिवत् पश्चात् मन्त्रग्रहणमाचरेत्।।१६।।

प्राचीन काल में अगस्त्य ऋषि के द्वारा नारायणीय प्रकरण में पुनः दुर्गा नव प्रकार की (नव भेद वाली) कही गयी है। सामूहिक रूप से विशेषतः उन्हें 'नवदुर्गा' शब्द से सम्बोधित किया जाता है। सिद्धि के इच्छुक व्यक्ति को इनके नाम तक को भी सदा गुप्त ही रखना चाहिए। हर किसी के सामने पृथक-पृथक नामोल्लेख द्वारा इनका वर्णन नहीं करना चाहिए। विशेष रूप से अपने (ज्येष्ठ-प्रिय-योग्य) पुत्र को तथा धार्मिक प्रकृति के राजा को ही उनके कार्य की गुरुता को ध्यान में रखते हुए नवदुर्गा साधन विधान सहित इसका ज्ञान कराना चाहिए। राजा को भी आवश्यक होने पर सङ्कटापन्न स्थिति में मन्त्रज्ञ साधक के पास जाकर विविध प्रकार से धनादि दान के द्वारा विधिवत् उसकी पूजा करके मन्त्र ग्रहण कर उसकी साधना करनी चाहिए।

आपत्स्वयं प्रयोक्तव्यो मारणादौ विशेषतः।
ततो मन्त्री प्रयत्नेन प्रकुर्यान्मारणक्रियाम्।।१७।।
परैरभ्यर्थितो मन्त्री राज्ञे सर्वं निवेदयेत्।
निवेद्य विधिवत् पश्चात् मन्त्रिवर्येण निर्दहेत्।।१८।।

स्मृतिमात्रेण वै मन्त्री रिपून सर्वान् विनाशयेत्।
प्रदद्यात् दक्षिणां तस्मै सहस्रं शतमेव वा॥१९॥
गवां सुवर्णनिष्काणां भूमि वा शस्यशालिनीम्।
सर्वशान्तिमवाप्नोति सर्वरक्षाकृतिर्भवेत्॥२०॥
नवदुर्गाविधानेन ध्यानस्यादौ विशेषतः।
तद्वत् कर्माणि कुर्वीत नात्र कार्या विचारणा॥२१॥

स्वयं पर विपत्ति आने पर तथा विशेष रूप से मारण आदि के प्रयोगों में साधक को इस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

किसी (असहाय सज्जन) व्यक्ति के प्रार्थना करने पर अथवा राजा के द्वारा निवेदन करने पर साधक को उनके शत्रुओं के विनाश के लिए विधिवत् इस मन्त्र का प्रयोग मारण कर्म में करके उन शत्रुओं का विनाश कर देना चाहिए। श्रेष्ठ मन्त्रज्ञ (सिद्ध व्यक्ति) केवल स्मृति (मन्त्र-जप) मात्र से ही सभी शत्रुओं का विनाश कर सकता है।

कर्म की समाप्ति पर राजा को हजार अथवा सौ गायें, स्वर्ण मुद्राएं तथा फसल से सम्पन्न अथवा उपजाऊ भूमि दक्षिणा के रूप में मन्त्रज्ञ को देना चाहिए। इससे राजा को सभी प्रकार से शान्ति प्राप्त होती है तथा उसकी सब प्रकार से भली-भाँति रक्षा होती है।

उपर्युक्त मन्त्रों की साधना में ध्यान-पूजनादि सभी कर्म विशेष रूप से नवदुर्गा विधान के अनुसार ही करना चाहिए। इस विषय में किसी भी प्रकार से संशय नहीं करना चाहिए।

॥ ज्वालामुखी-ध्यानम्॥

कृष्णा त्रिलोचनां शङ्खचक्रशूलासिधारिणीम्।
ज्वालामुखीं भीमरूपां ध्यायेत् त्रैलोक्यभीतिदाम्॥२२॥

इति फेत्कारिणीमहातन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे जयदुर्गा
गृध्रगणपरिवृतज्वालामुखीकथनं नाम-चतुर्दश पटलः॥

ज्वालामुखी-मन्त्र साधना में देवी ज्वालामुखी का श्याम वर्णा, त्रिनेत्रधारिणी, शंख-चक्र-शूल-तलवार से सन्नद्ध चतुर्भुजा, भयंकर स्वरूप वाली तथा तीनों लोकों को भय प्रदान करती हुई सी ध्यान करना चाहिए।

॥ फेत्कारिणी महातन्त्र के शिव पार्वती संवाद के अन्तर्गत
जयदुर्गा गृध्रगणपरिवृत ज्वालामुखी कथन नामक चौदहवें पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई॥

अथ पञ्चदशः पटलः

।। ऋषि छन्दादि षडङ्ग-न्यास सहित आग्नेयमन्त्र-वर्णनम्।।

श्रीशिव उवाच

आग्नेयमभिधास्यामि मन्त्रं सर्वार्थसाधकम्।
मारीचिः कश्यपः प्रोक्तो मनुरस्य महामनोः।।१।।
त्रिष्टुप्छन्दो देवताऽत्र जातवेदोऽग्निरीरितः।
नवभिः सप्तभिः षड्भिः सप्तभिः पुनरष्टिभिः।
सप्तभिर्मूलमन्त्रार्णैः षडङ्गविधिरीरितः।।२।।
जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः परषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।

इति आग्नेय मन्त्र इति चतुश्चत्वारिंशदक्षरं ज्ञेयम्। इति मूलेनैव षडङ्गानि।

श्री शिव ने कहा - अब मैं समस्त कामनाओं के साधक आग्नेय (त्रिष्टुभ्) मन्त्र का वर्णन करता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि मरीचि-पुत्र कश्यप, छन्द त्रिष्टुप्, देवता जातवेद अग्नि हैं। इस मन्त्र (ऋचा) का बीज 'रं' तथा शक्ति 'ह्रीं' है। मूल मन्त्र के नौ, सात, छः, सात, आठ तथा सात अक्षरों द्वारा क्रमशः षडङ्ग न्यास करना चाहिए। मन्त्र 'जातवेदसे०' इत्यादि रूप से मूल में ही स्पष्ट है। यह अग्नि मन्त्र चौवालीस अक्षरों का है। इसका षडङ्ग न्यास निम्नवत् है।

षडङ्ग न्यासः - **जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः। सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा। निदहाति वेदः शिखायै वषट्। स नः परषदति कवचाय हुँ। दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्। सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्।** इन षडङ्ग मन्त्रों द्वारा पहले कर-न्यास (अंगुष्ठादि में) फिर षडङ्ग-न्यास (हृदय, शिरादि अङ्गो में)किया जायेगा।

।।मन्त्र-वर्ण-न्यासः।।

अङ्गुष्ठगुल्फजङ्घासु जानुनोरुरुयुग्मके।
कट्यन्धुनाभिषु हृदि स्तनयोः पार्श्वयोर्द्वयोः।।४।।
पृष्ठे च स्कन्धयोर्मध्ये बाहुमूलेऽपिबाहुषु।
प्रकूर्परप्रकोष्ठेषु मणिबन्धतलेषु च।।५।।
मुखनासाक्षिकर्णेषु मस्तमस्तिष्कमूर्द्धसु।
क्रमेण विन्यसेद् वर्णान् विद्वान् मन्त्रसमुद्भवान्।।६।।

पैरों के दोनों अंगुष्ठों, गुल्फों, जंघाओं, जानुओं, ऊरुओं में, कटि, गुह्य, नाभि, हृदय, दोनों स्तनों तथा दोनों पार्श्वों में, पीठ में, दोनों कन्धों में, मध्य (ग्रीवा

के पृष्ठ भाग) में, दोनों बाहुमूलों, दोनों उपबाहुओं, दोनों कूर्परों (कुहनियों), दोनों प्रकोष्ठों, दोनों मणिबन्धों तथा दोनों करतलों में, मुख, नासिकाओं (दोनों), दोनों नेत्रों, दोनों कर्णों, ललाट, मस्तिष्क तथा मूर्धा में क्रमशः मन्त्र के वर्णों का न्यास करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक अङ्ग में एक-एक वर्णों का न्यास करते हुए मन्त्र के चवालीसों वर्णों का न्यास शरीर में यथा स्थान करना चाहिए।

॥ मन्त्र-पद-न्यासः॥

शिरोललाटनयनकर्णौष्ठरसनासु च।
सकण्ठबाहुहृत्कुक्षिकटिगुह्योरुजानुषु ।
जङ्घयोः पादयोर्न्यसेत् पदान्यस्य मनोः सुधीः॥७॥

अत्राक्षरविन्यासे द्वयोः स्थाने एकैकमक्षरम्। पदन्यासे चोच्चरेदेकं बाह्वोरेकमुरुजानुजङ्घाचरणद्वयेषु चैकैकं न्यसेत्।

आग्नेय मन्त्र (त्रिष्टुव् ऋचा) के जातवेदसे, सुनवाम, सोमम् अरातीयत्, नि, दहाति, वेदः, स, नः, पर, षदति, दुर्गाणि, विश्वा, नावा, इव, सिन्धुम् दूरिताति तथा अग्निः इन अट्ठारह पदों का न्यास क्रमशः शिखा, ललाट, दोनों नेत्र, दोनों कान, ओष्ठ, जिह्वा, कण्ठ, दोनों बाहुओं, हृदय, उदर (कुक्षि), कटि, लिङ्ग दोनों ऊरुओं, घुटनों, जंघाओं तथा चरणों में करे।

अक्षर-न्यास के समय नेत्र, कर्ण, चरण, गुल्फ आदि सभी द्वि-अङ्गात्मक स्थानों पर दो-दो वर्णों का न्यास करना चाहिए। पद-न्यास के समय नेत्रों तथा कर्णों में दो-दो पदों का परन्तु बाहुओं, ऊरुओं, घुटनों, जंघाओं तथा चरणों एवं अन्य सभी अङ्गों में भी एक-एक पद का न्यास किया जायेगा।

॥ दुर्गा (कात्यायनी) ध्यानम्॥

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रा स्मेरत्॥९॥

दक्षिणपार्श्वे चक्रखड्गशरवराणि वामपार्श्वे शङ्खखेटकधनुरभयानि क्वापि।

आकाशीय मेघमालान्तर्गत चमकने वाली विद्युल्लता (रेखा) की भाँति प्रभा वाली, सक्रुद्धावस्था के कारण भयङ्कर प्रतीत होने वाली, सिंह के स्कन्ध पर बैठी हुई, हाथों में तलवार तथा ढाल धारण की हुई कन्याओं द्वारा सेविता, अपने दक्षस्थ (चार) हाथों में चक्र, गदा, तलवार तथा ढाल एवं वामस्थ हाथों में बाण, धनुष, त्रिशूल तथा तर्जनी मुद्रा धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली तथा मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण करने वाली अग्नि स्वरूपिणी भगवती दुर्गा का (उपर्युक्त मन्त्र-साधना के समय इसी स्वरूप में) स्मरण (ध्यान) करना चाहिए।

अन्य मतानुसार दक्ष भाग में चक्र, खङ्ग, बाण तथा वर मुद्रा एवं वाम भाग में शंख, ढाल, धनुष तथा अभय मुद्रा धारण की हुई ध्यान करना चाहिए।

॥ प्रयोग (जप-हवन) विधिः॥

मन्त्रवर्णसहस्राणि जपेन्मन्त्रं विशालधीः।
तदन्ते तिलसिद्धार्थचित्रमूलैः समिद्वरैः॥१०॥
क्षीरद्रुमाणामाज्येन हविषान्नैर्घृतान्वितैः।
चतुश्चत्वारिंशदाढ्यंचतुश्शतसमन्वितम् ॥११॥
चतुःसहस्रं जुहुयादर्चिते हव्यवाहने।

ध्यान के पश्चात् मन्त्र का चवालीस हजार जप करना चाहिए। जप के पश्चात् तिल, पीली सरसों, चित्रक की जड़, पलाश की समिधा, दूध वाले वृक्ष की समिधा, आज्य (पिघला घी), खीर, अन्न तथा घृत (जमा हुआ) इन नव पदार्थों के मिश्रण से अथवा प्रत्येक के द्वारा पृथक-पृथक चार सौ चौरानवे आहुतियों द्वारा कुल चार हजार चार सौ चवालीस बार हवन करना चाहिए। हवन से पूर्व प्रज्वलित अग्नि का विधिवत् पूजन आदि भी करना चाहिए।

॥ पीठ-पूजनम्॥

मण्डले सर्वतोभद्रे षट्कोणाङ्कितकर्णिके।
विधिना वक्ष्यमाणेन पीठं देव्याः प्रपूजयेत्॥१२॥

षड्गुणितं यन्त्रं कृत्वा कोणेषु दुर्गाबीजमालिख्य बहिर्वीथ्यादिकं परिकल्प्य-

जयाख्यां विजयां भद्रां भद्रकालीमनन्तरम्।
सुमुखीं दुर्मुखीं संज्ञां पश्चाद् व्याघ्रमुखीं पुनः॥१३॥
अथ सिंहमुखीं दुर्गां नवशक्तीः प्रपूजयेत्।
आसनं सिंहमन्त्रेण दद्यादुक्तेन देशिकः॥१४॥
[प्रणवानन्तरं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय च।
महासिंहाय वर्मास्त्रनतिः सिंहमनु स्मृतः॥]

सर्वतोभद्रमण्डल के मध्य स्थित पद्म की कर्णिका (मध्य) में षड्गुणित यन्त्र बनाकर कही गई विधि के अनुसार देवी का पूजन करना चाहिए।

षड्गुणित यन्त्र - साधक को सर्वतोभद्र मण्डल के अष्टदल पद्म के मध्य में अपनी अंगुलियों के माप से छः अंगुल प्रमाण का (त्रिज्या वाला) पहले एक वृत्त बनाना चाहिए। पुनः इसके बाहर छः अंगुल की दूरी पर दूसरा वृत्त तथा इसके भी बाहर छः अंगुल अन्तर पर तीसरा वृत्त बनाना चाहिए। तत्पश्चात् सबसे भीतर वाले वृत्त के मध्य में, उसकी परिधि को किञ्चित स्पर्श करते हुए, पूर्व, आग्नेय, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य तथा ईशान कोणों वाले दो परस्पर सम्पुटित त्रिकोणों द्वारा षट्कोण बनाना चाहिए। यदि इस यन्त्र को सर्वतोभद्र मण्डल के अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर बनाना हो तो इसके बाहर अष्टदल पद्म की भी रचना करनी चाहिए। इस यन्त्र के मध्य में (षट्कोण के भीतर) 'ह्रीं' के मध्य साधक के नामाक्षरों को भी लिखना चाहिए।

इस यन्त्र में स्थित षट्कोण के प्रत्येक कोण में दुर्गा बीज 'दुः' लिखकर, इस (यन्त्र) पर त्रिष्टुभ् (आग्नेय) मन्त्र की नव शक्तियों का पूजन करना चाहिए।

ये नव-शक्तियाँ निम्न प्रकार से हैं - जया, विजया, भद्रा, भद्रकाली, सुमुखी, दुर्मुखी, व्याघ्रमुखी, सिंहमुखी तथा दुर्गा। इनमें से प्रथम आठ का पूजन पूर्वादि क्रम से आठ दलों पर तथा दुर्गा का पूजन यन्त्र के मध्य में करना चाहिए। पूजन के समय सिंह मन्त्र के द्वारा इन शक्तियों को आसन प्रदान (अथवा पीठ-पूजन) करना चाहिए। पूजन के लिए इन शक्तियों के चतुर्थी विभक्ति युक्त नामों से पहले **'ॐ'** तथा पश्चात् में **'नमः'** का प्रयोग करना चाहिए। यथा-**'ॐ जयायै नमः'** इत्यादि।

प्रणव (**ॐ**) के पश्चात् **'वज्रनखदंष्ट्रायुधाय'** तथा **'महासिंहाय'** का प्रयोग कर वर्म **'हुं'** अस्त्र **'फट्'** तथा नति **'नमः'** का संयोग करने से सिंह मन्त्र सिद्ध होता है।

सिंह मन्त्र - ''ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः।''

मूर्ति मूलेन सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत्।
(सर्वविद्यामयी ब्रह्मविद्यामन्नपूर्णान्तर्गतामुच्यते)।।१५।।
षडङ्गानि यथापूर्वं केशरेष्वर्चयेत् सुधीः।
अग्न्यादिपादाष्टकोत्पन्ना मूर्तयोऽर्च्या बहिः पुनः।।१६।।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः।
अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः।।१७।।
कौमारतेजाः स्यात् विश्वमुखो देवमुखस्ततः।
ततो भूसलिलाग्निवाय्वथात्मनेनमोऽन्वितान्।।१८।।
चतुर्दिक्षु समभ्यचर्य कोणेष्वेतत् कलाः पुनः।
ततश्च पूर्वादिदिक्षु पृथिव्यादिचतुष्टयम्।।१९।।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिरितीरिताः।
कलाचतुष्टयं कोणेषु संपूज्य यथाविधि।।२०।।

मूल मन्त्र से मध्य में दुर्गा-मूर्ति की कल्पना (यथा - **'मूलं दुर्गायाः मूर्ति कल्पयामि'** इत्यादिरुप से) करके **'मूलं सर्व विद्यामयीं ब्रह्मविद्यामन्नपूर्णान्तर्गतां दुर्गा आवाहयामि, स्थापयामि'** इत्यादि रूप से दुर्गा का आवाहन-स्थापन करके पूजन करना चाहिए। इसके पश्चात् अष्टदल पद्म के केशरों (वाले प्रथम आवरण) में षडङ्ग-मन्त्रों से षडङ्ग पूजन **आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, मध्य** तथा **चारों दिशाओं** में करें। तदुपरान्त इसके बाहर (द्वितीय आवरण रूप अष्टदलों में) आग्नेय मंत्र (त्रिष्टुभ् ऋचा) के **अग्न्यादि** आठ पादों से उत्पन्न अग्नि की आठ मूर्तियों **जातवेद, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजा, विश्वमुख** तथा **देवमुख** का पूर्वादि क्रम से पूजन करना चाहिए।

तदनन्तर (तृतीय आवरण रूप दलाग्रों में) पूर्वादि चार दिशाओं में **पृथिवी, जल, अग्नि** तथा **वायु** की उनके बीजों (**लं, वं, रं** तथा **यं**) को पहले तथा **'आत्मने नमः'** को बाद में जोड़कर (**लं पृथिव्यात्मने नमः, वं जलात्मने नमः, रं अग्न्यात्मने नमः** तथा **यं वाय्वात्मने नमः** रूप से) पूजन करे। इसके बाद आग्नेयादि कोण दिशाओं में **निवृत्यै नमः, प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः** तथा **शान्त्यै नमः** रूप से चारो कलाओं का पूजन करे।

पूर्वादिदिक्षु संपूज्या जार्णाद्या वर्णशक्तयः।
जाग्रता तपनी वेदगर्भा दहनरूपिणी॥२१॥
सेन्दुखण्डा शुम्भहन्त्री नभश्चारिण्यनन्तरम्।
वागीश्वरी मद्वहा सोमरूपा मनोजवा॥२२॥
मरुद्वेगा रात्रिसंज्ञा तीव्रकोपा यशोवती।
तोयात्मिका पुनर्नित्या दयावत्यपिहारिणी॥२३॥
तिरस्क्रिया वेदमाता तत्परा दमनप्रिया।
समाराध्या नन्दिनी च परा रिपुविमर्दिनी॥२४॥
षष्ठी च दण्डिनी तिग्मा दुर्गा गायत्र्यनन्तरम्।
निरवद्या विशालाक्षी श्वासोद्वाहा च नादिनी॥२५॥
वेदन वह्निगर्भा च सिंहवाहाह्वया तथा।
धुर्या दुर्विषहा पश्चाद्रिरंसा तापहारिणी॥२६॥
त्यक्तदोषा निःसपत्ना चत्वारिंशच्चतुर्युताः।
लोकपालांस्तथाऽभ्यर्चेत् व्रजाद्यायुधसंयुतान्॥२७॥
इत्थं पूजादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन् साधकोत्तमः।
आग्नेयास्त्राधिकारी स्यात् तद्विधानमुदीर्यते॥२८॥

तत्पश्चात् (चतुर्थ आवरण के रूप में) मन्त्र के चौवालीस वर्णों की **'जाग्रतादि'** चौवालीस वर्णशक्तियों की पूर्वादि चारो दिशाओं में ग्यारह-ग्यारह के क्रम से पूजन करें। इन शक्तियों के नाम निम्नवत् हैं। जाग्रता, तपनी, वेदगर्भा, दहनरूपिणी, सेन्दुखण्डा, सुम्भ (शुम्भ) हन्त्री, नभश्चारिणी, वागीश्वरी, मदवहा, सोमरूपा, मनोजवा, मरुद्वेगा, रात्रि, तीव्रकोपा, यशोवती, तोयात्मिका, नित्या, दयावती, हारिणी, तिरस्क्रिया, वेदमाता, दमनप्रिया, समाराध्या, नन्दिनी, परा, रिपुमर्दिनी, षष्ठी, दण्डिनी, तिग्मा, दुर्गा, गायत्री, निरवद्या, विशालाक्षी, श्वासोद्वाहा, नादिनी, वेदना, वह्निगर्भा, सिंहवाहा, धुर्या, दुर्विषहा, रिरंसा, तापहारिणी, त्यक्तदोषा तथा निःसपत्ना।

इन सभी शक्तियों के चतुर्थी विभक्ति युक्त नामों के साथ **'नमः'** जोड़कर (**ॐ जाग्रतायै नमः** इत्यादि रूप से) पूजन करना चाहिए। इसके बाद (पाँचवे आवरण के रूप में) पूर्वादि क्रम से ही दशो दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों (लोकपालों) तथा (छठे आवरण में) उनके वज्रादि आयुधों का विधिवत् पूजन करना चाहिए। इस प्रकार से की गई पूजाओं (तथा मन्त्र जप हवनादि) के द्वारा इस अग्नि मन्त्र में सिद्ध होने पर ही श्रेष्ठ साधक आग्नेयास्त्र के प्रयोग का अधिकारी होता है। अब इस आग्नेयास्त्र मन्त्र के प्रयोग-विधान को मैं कहता हूँ।

॥ आग्नेयास्त्र-प्रयोग-विधिः॥

आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्तं विलोमपठितो मनुः।
पूर्वोक्ता एवं ऋष्याद्या मन्त्रस्य परिकीर्तिताः॥२९॥
प्रतिलोमक्रमादस्य षडङ्गानि प्रकल्पयेत्।
मन्त्रन्यासपदन्यासौ विदध्यात् प्रतिलोमतः॥३०॥

ध्यानभेदान् विजानीयाद् गुर्वादेशान्न चान्यथा।
पूर्ववज्जपक्लृप्तिः स्याद् जुहुयात् पूर्वसंख्यया॥३१॥
पञ्चगव्यसुपक्वेन चरुणा तस्य सिद्धये।
अर्चनं पूर्ववत् कुर्यात् तत् शक्तीः प्रतिलोमतः॥३२॥
सर्वत्र देशिकः कुर्यात् गायत्र्या द्विगुणं जपम्।
क्रूरकर्माणि कुर्वीत प्रतिलोमविधानतः॥३३॥

आग्नेय मन्त्र के चौवालीस वर्णों के विलोम पाठ को आग्नेयास्त्र कहा जाता है। इस अस्त्र मन्त्र के ऋष्यादि पहले कहे गये अग्निमन्त्र के ही समान हैं। इस अस्त्र मन्त्र के षडङ्ग न्यास भी विलोम क्रम से ही किये जाते हैं। इस मन्त्र के विनियोगादि निम्नवत् किये जायेंगे।

विनियोगः - **अस्य श्री आग्नेयास्त्र मन्त्रस्य** मरीचिपुत्र **कश्यप ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, उग्रकृत्या देवता , शत्रु क्षयार्थे विनियोगः**। (प्रपञ्चसार के अनुसार इस मन्त्र का बीज '**रं**' तथा शक्ति '**ह्रीं**' है।)

ऋष्यादि न्यासः - ॐ मरीचिपुत्र कश्यप ऋषये नमः (शिरसि)। **ॐ त्रिष्टुप् छन्दसे नमः** (मुखे)। **ॐ उग्रकृत्या देवतायै** नमः (हृदये)। [**ॐ रं बीजाय नमः** (गुह्ये)। **ॐ ह्रीं शक्तये नमः** (पादयोः)।] **ॐ शत्रुक्षयार्थे जपे विनियोगाय नमः** (कृताञ्जलिः)। विलोम मन्त्र से करशुद्धि करके -

षडङ्ग न्यासः - 'ग्निस्त्यतारिदु धुंसिं' अस्त्राय फट्। 'ववेना श्ववि णिर्गादु' नेत्रत्रयाय वौषट्। 'तिदषरप नः स' कवचाय हुम्। 'दः वे तिहादनि' शिखायै वषट्। 'तोयतीराममसो' शिरसे स्वाहा। मवानसु सेदवेतजा हृदयाय नमः।

इन षडङ्ग-मन्त्रों द्वारा हृदयादि अङ्गो में न्यास (षडङ्ग-न्यास) करना चाहिए।

इसके पश्चात् मन्त्र-वर्ण न्यास तथा पदन्यास भी विलोम क्रम से करें। इस आग्नेयास्त्र मन्त्र देवता का ध्यान पूर्व के ध्यान से भिन्न है। इसे गुरु उपदेश द्वारा ही जानना चाहिए, अन्य किसी भी प्रकार से नहीं। पूर्वोक्त संख्या में इस मन्त्र का जप करके पूर्व कथित संख्या में ही इस मन्त्र से हवन भी करना चाहिए। जो साधक पञ्चगव्य में पकाये गये चरु से हवन करता है, उसे सिद्धि की प्राप्ति होती है। जप हवनादि साधक को पश्चिम मुख बैठकर करना चाहिए। दूध वाले वृक्षों की समिधा, सरसो, तिल तथा घृत से भी पृथक-पृथक हवन किया जा सकता है। मन्त्र की शक्तियों का भी पूर्ववत् दलों में अर्चन प्रतिलोम विधि से ही करना चाहिए। देशिक (गुरु अथवा साधक-कर्मकर्ता) को किसी प्रयोग के अन्तर्गत किये गये अस्त्र मन्त्र-जप की दुगनी संख्या में गायत्री (मन्त्र देवता की गायत्री अथवा ब्रह्मगायत्री) का जप भी करना चाहिए। क्रूर कर्मो को प्रतिलोम विधि से ही साधक को करना चाहिए।

विशेष - कामनानुसार आग्नेय (त्रिष्टुभ) मन्त्र की साधना दो प्रकार से की जाती है। प्रथम अनुलोम विधि में वर्ण, पद, पादादि तथा न्यासों का क्रम अनुलोम ही रहता है। द्वितीय प्रतिलोम (विलोम) विधि में उपर्युक्त वर्ण, पद, पदादि का क्रम प्रतिलोम हो जाता है।

प्रतिलोम मन्त्र जप में पादों का क्रम मन्त्र के अन्तिम पाद से तथा वर्णों का क्रम मन्त्र के अन्तिम वर्ण से प्रारम्भ होता है।

प्रतिलोम पाठ - ग्निस्त्यतारिदु धुंसिंववेना श्वाविणिर्गादु तिदषरपनःस।
दोवेतिहादनि तोयतीराामम सोमवानसु सेदवेतजा।।

अष्टपादात्मक (अनुलोम रूप) आग्नेय मन्त्र के समान ही अस्त्र (आग्नेयास्त्र) मन्त्र भी आठ पाद (प्रतिलोम रूप से) वाले होते हैं। अतः इस मन्त्र को अष्टाङ्ग भी कहा जाता है। विलोम पाठ करने से मन्त्र के सभी (२५) दोष नष्ट हो जाते हैं। मन्त्र का पाठ (जप) अनुलोम करें अथवा प्रतिलोम इसके आठ पादों में प्रथम तीन पाद पाँच-पाँच वर्णों के, चतुर्थ पाद सात वर्णों का, पाँचवाँ तथा छठवाँ पाद छः-छः वर्णों का तथा सातवाँ एवं आठवाँ पाद पाँच-पाँच वर्णों वाला होता है।

प्रतिलोम साधना (अस्त्र मन्त्र की साधना) में कामनानुसार तत्तत् प्रयोगों और उनकी क्रियाविधियों का आरम्भ साधक को योग्य गुरु के संरक्षण में उनके निर्देशानुसार ही करना चाहिए। अन्यथा साधक के लिए यह हानिप्रद भी हो सकता है।

वाञ्छित कामनाओं की सिद्धि तथा आपद समूहों के निवारण हेतु भी सद्गुरु के पाद्पदमों में प्रणाम करके उन्हीं की आज्ञा तथा निर्देशानुसार विधिपूर्वक मन्त्र देवता के ध्यान सहित प्रतिलोम रूप से षडङ्ग-न्यास, वर्ण-न्यास, पद न्यासादि करके वर्ण प्रतिलोम अथवा पद प्रतिलोम विधि से मन्त्र का विहित संख्या में जप करना चाहिए।

।। आग्नेयास्त्र-देवता-ध्यानम्।। (शारदा तिलकोक्तम्)

मध्ये तालवनस्याऽग्निर्वप्राढये वह्निभूतले।
महतस्तालवृक्षस्य मूलाभ्यासविराजिते।।
सिंहस्कन्धाग्निकोणे वा चलच्चरणसंस्थिताम्।
तडित्कोटिसमप्रख्यां कल्पान्तदहनोज्ज्वलाम्।।
अकृत्रिमोग्रंदष्ट्रास्यां घण्टामालास्फुरत्कटिम्।
शूलभोगीन्द्रडमरूविद्युद्वह्नीन् ज्वलत्प्रभान्।।
दधानांकरदण्डैः स्वैर्भूषामदबलाकुलैः।
भूषितां भूषणैरूग्रैः फणीन्द्रकल्पितैः।।
अग्न्यादिवर्णमयीं देवीं संविद्रूपां विचिन्तयेत्।।इति।।
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म कर्तव्यमनुलोमतः।
प्रयोगकाले प्रजपेदष्टौ पादान् विलोमतः।।३४।।
शोधितो जायते पश्चाद् मन्त्रोऽयं विधिनाऽमुना।

शान्ति तथा पौष्टिक कर्म के समय अनुलोम विधि से मन्त्र का जप (अनुलोम विधि से ही न्यासादि सहित) करना चाहिए। प्रयोग काल में मन्त्र के आठों पदों का विलोम जप (पाठ) कर लेने से मन्त्र का शोधन (दोषों का निराकरण) हो जाता है।

।। पादाष्टक-प्रतीकानि।।

ग्न्याद्यिः पञ्चाक्षरः पादो ज्ञेयो ज्ञानेन्द्रियात्मकः।।३५।।
धुमाद्योऽन्यः पञ्चवर्णः स्मृतः कर्मेन्द्रियात्मकः।
श्वाद्यस्तृतीयः पञ्चार्णः पञ्चभूतमयः स्मृतः।।३६।।

त्याद्यः सप्ताक्षरः पादश्चतुर्थो धातुरूपकः।
दः पूर्वः पञ्चमः पाद ऊर्मिरूपः षडक्षरः।।३७।।
तोवर्णादिः षडर्णोऽन्यः षाट्कौशिकमयो मतः।
सोपूर्वः पञ्चवर्णोऽन्यः शब्दादिमय ईरितः।।३८।।
सेवर्णाद्यष्टमो ज्ञेयः पञ्चार्णो वचनादिकः।
एवं तत्त्वसमायोगात् पादक्लृप्तिरुदाहृता।।३९।।

'ग्न्यादि' (**ग्निस्त्यतारिदु**) पञ्चाक्षर रूप प्रथम पाद पञ्च ज्ञानेन्द्रियात्मक (**नासिका, रसना, नेत्र, त्वक्** तथा **कर्ण** के प्रतीक), 'धुमाद्य' पञ्चवर्ण रूप द्वितीय पाद (**धुंसिंववेना**) पञ्च कर्मेन्द्रियात्मक (**उपस्थ, पायु, पाद, पाणि** तथा **वाक्** के प्रतीक) तथा 'श्वाद्य' पञ्चवर्ण रूप तृतीय पाद (**श्वाविणिर्गादु**) पञ्च भूतात्मक (**पृथिवी, जल, अग्नि, वायु** तथा **आकाश** के प्रतीक) हैं। 'त्याद्य' सप्ताक्षर रूप चतुर्थ पाद (**तिदषरपनःस**) सप्तधात्वात्मक (**त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा** तथा **शुक्र** का प्रतीक), 'दःपूर्व' षडक्षर रूप पञ्चम पाद (**दःवेतिहादनि**) षड्र्म्यात्मक (छः ऊर्मि रूप - **बुमुक्षा-भूख, पिपासा-प्यास, शोक, मोह, जरा** तथा **मृत्यु** का प्रतीक) तथा 'तोवर्णादि' अन्य षडाक्षर रूप षष्ठ पाद (**तोयतीराममम**) षाट्कोशिकमय (छः कोशात्मक - शुक्र से निर्मित **मज्जा, अस्थि** तथा **स्नायु** एवं रक्त से निष्पन्न **त्वचा, मांस** तथा **शोणित** का प्रतीक) है। 'सोपूर्व' पञ्चवर्ण रूप सप्तम पाद (**सोमवानसु**) शब्दादिमय (**शब्द, स्पर्श, रूप, रस** तथा **गन्ध** का प्रतीक) कहा गया है। 'सेवर्णाद्य' पञ्चवर्ण रूप अष्टमपाद (**सेदवेतजा**) वचनादि रूप (**वचन, आदान, गति, विसर्जन** तथा **आनन्द** का प्रतीक) कहा जाता है। इस प्रकार तत्वों के सम्बन्ध से पाद-कल्पना का वर्णन किया गया है।

[अनुलोम रूप से भी आठो पाद क्रमशः **ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पञ्चभूत, सप्तधातु, षडूर्मि, षट् कोशमय, शब्दादि रूप** तथा **वचनादिरूप** माने गये हैं।]

।। पादाक्षरोत्पन्न-देवता-स्वरूपम्।।

तत्तत्पादाक्षरोत्पन्नास्तावत्ये वह्निदेवताः।
प्रधानमूर्तिप्रतिमाः स्वस्ववर्णोदितप्रभाः।।४०।।
प्रज्वलत्केशवदना भीमदंष्ट्रा भयानकाः।
देवता इन्द्रियोत्पन्ना ऊर्ध्वदृष्टय ईरिताः।।४१।।
देवता भूतपादोत्थास्तिर्यग्वक्त्राः प्रकीर्तिताः।
धातुरूपाक्षरोत्पन्ना उभयाननशोभिताः।।४२।।
ऊर्मिजा ऊर्ध्ववदनाः कोशोत्थास्तिर्यगाननाः।
एताःसर्वाःस्मृताःक्लीबा इन्द्रियार्थोद्भवाः स्त्रियः।।४३।।

आग्नेय (अस्त्र) मन्त्र के उन-उन (सभी अष्ट) पादाक्षरों से उत्पन्न जितनी वर्ण शक्तियाँ हैं, उतने ही अग्नि देवता हैं। इन सभी की आकृति (स्वरूप) प्रधान (अग्नि) मूर्ति के समान ही है। प्रत्येक वर्ण शक्ति (अग्नि-देवता) की आभा उनके

उत्पादक वर्ण की आभा के समान ही होती है। इस भाँति चौवलीस वर्णों वाले मन्त्र से उत्पन्न चौवालीस प्रकार के वह्नि देवता हैं। ये सभी मूर्तियां देखने में भयानक, प्रज्वलित अग्नि के समान केश तथा मुखवाली एवं भयङ्कर (बड़े-बड़े) दाढों वाली हैं।

ज्ञान-कर्मेन्द्रिय रूप आदि के दो पादों से उत्पन्न दस देवता ऊपर की ओर दृष्टि वाले, पञ्चभूतात्मक पादोद्भव देवता सम्मुख दृष्टि वाले, सप्त धात्वात्मक पादाक्षरोत्पन्न देवता उभय (ऊर्ध्वाधो) मुखी, षडूर्मि रूप पादोत्पन्न देवता ऊर्ध्व मुखी (ऊपर की ओर दृष्टि वाले), तथा कोशात्मक पादोद्भव देवता सम्मुख दृष्टि वाले कहे गये हैं। ये सभी देवता नपुंसक कहे गये हैं। इन्द्रियार्थों (अन्तिम दो पादाक्षरों) से उत्पन्न वर्ण देवता स्त्री रूप तथा नीचे की ओर एवं सामने की ओर मुख (दृष्टि) वाले हैं।

॥प्रयोगेषु प्रतिपत्तिः॥

अधस्तिर्यङ्मुखोपेता ईरितावर्णदेवताः।
स्वाभिमुख्यः स्मृताः सौम्ये पराङ्मुख्योऽन्यकर्मणि॥४४॥
आभ्योऽसंख्याः समुत्पन्ना देवता ज्वलिताननाः।
याभिर्मन्त्री दहेत् शत्रोः राज्यं सगिरिकाननम्॥४५॥
अस्त्रं मनुष्यनक्षत्रैष्वारभेत विचक्षणः।
आसुरेषु प्रयुञ्जीत देवतासु च संहरेत्॥४६॥

जो वर्ण देवता तिर्यङ्मुखवाले अर्थात् अपने सामने की ओर देखने वाले कहे गये हैं, उनका प्रयोग (स्मरणादि) सौम्य कर्मों में किया जाता है। ऊर्ध्व मुख तथा अधोमुख (दृष्टि) वाले देवता अन्य (क्रूर) कर्मों में प्रयोजनीय हैं। इन वर्ण (अग्नि) देवताओं से पुनः से समुत्पन्न प्रज्वलित मुख वाले असंख्य (अनन्त) वह्नि देवता है।। कोई भी मन्त्र साधक इनके (इन असंख्य देवताओं के) प्रयोग द्वारा शत्रु के पर्वतों-जङ्गलों सहित समस्त राज्य को जलाकर भस्म कर सकता है।

अस्त्र-मन्त्र का प्रारम्भ मानव नक्षत्रों में, क्रिया-विधि (का विस्तार) आसुर नक्षत्र में तथा कर्म का उपसंहार (समापन) देव नक्षत्रों में करना चाहिए।

॥नक्षत्र-विभागः॥

पूर्वोत्तरत्रयं पश्चात् भरण्यार्द्रा च रोहिणी।
इमानि मानुषाण्याहुर्नक्षत्राणि मनीषिणः॥४७॥
ज्येष्ठा शतभिषा मूला धनिष्ठाश्लेषकृत्तिका।
चित्रा मघा विशाखाः स्युस्तारा राक्षसदेवताः॥४८॥
अश्विनी रेवती पुष्या स्वाती हस्ता पुनर्वसुः।
अनुराधा मृगशिरः श्रवणं देवतारकाः॥४९॥

भग, अर्यमा, जल, विश्वेदेव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, यम, शिव तथा ब्रह्मा संज्ञक देवताओं से अधिष्ठित क्रमशः पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, भरणी, आर्द्रा तथा रोहिणी नाम वाले इन नौ नक्षत्रों को विद्वान पुरुषों ने मानुष नक्षत्र कहा है।

इन्द्र, वरुण, राक्षस, वसु, सर्प, अग्नि, त्वष्टा, पितर तथा इन्द्राग्नि नामक देवताओं से अधिष्ठित क्रमशः ज्येष्ठा, शतभिषा, मूल, धनिष्ठा, आश्लेषा, कृत्तिका, चित्रा, मघा तथा विशाखा नाम वाले इन नौ नक्षत्रों को राक्षस नक्षत्र कहा जाता है।

अश्विनी कुमार, पूषा, बहस्पति, वायु, सूर्य, अदिति, मित्र, चन्द्र तथा विष्णु देवताओं से अधिष्ठित क्रमशः अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा तथा श्रवण नाम वाले इन नौ नक्षत्रों को देव नक्षत्र कहा जाता है।

मारण, मोहनादि अभिचार कर्मों के लिए अस्त्र मन्त्र का आरम्भ मानुष नक्षत्र में, प्रयोग (क्रिया-विधि) आसुर (राक्षस) नक्षत्रों में तथा कर्म का विसर्जन (संहरण-समाप्ति) देव-नक्षत्रों में बुद्धिमान साधक को करना चाहिए।

॥ प्रयोगार्थे तिथि-दिन-राशि-निर्णयम्॥

देवता इन्द्रियोत्पन्ना ऊर्ध्वदृष्टय ईरिताः।
उपक्रमेत नन्दासु रिक्तास्वस्त्रं विसर्जयेत॥५०॥
भद्रास्वाहरणं कुर्यात् जयास्वात्यन्तमुत्तमम्।
उपक्रमो भौमवारे शनिवारे विसर्जनम्॥५१॥
प्रतिसंहरणं वारे गुरोः शुक्रस्य वा भवेत्।
स्थिरेषु राशिष्वारम्भश्चरेषु च विसर्जनम्॥५२॥
अस्त्रसंहरणं कुर्यादुभयात्मसु देशिकः।
कृष्णपक्षेऽनलेनास्त्रं विसृजेच्छशिना पुनः॥५३॥
शुक्लपक्षे क्रमादस्त्रं पुनरात्मनि संहरेत्।
भानुना मोक्षसंहारौ कुर्यात् पक्षद्वये सुधीः॥५४॥

(यहाँ श्लोक संख्या ५० की प्रथम पंक्ति का उल्लेख अनावश्यक प्रतीत होता है।) प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी नाम वाली नन्दा तिथियों में साधना का आरम्भ, रिक्ता तिथियों, चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी तिथियों में अस्त्र का विसर्जन (प्रयोगिक क्रिया) तथा भद्रा तिथियों द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी में आग्नेयास्त्र का आहरण (कर्म की समाप्ति) करना चाहिए। विशेषकर जया तिथियों तृतीया, अष्टमी तथा त्रयोदशी को आहरण करना अत्यन्त श्रेष्ठ होता है।

इसी प्रकार मङ्गलवार को अस्त्रमन्त्र का आरम्भ तथा शनिवार को प्रयोग करना चाहिए। बुद्धिमान साधक को गुरु अथवा शुक्रवार को अस्त्र का प्रति संहरण करना चाहिए।

स्थिर राशियों वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुम्भ में अस्त्र का आरम्भ, चर राशियों मेष, कर्कट, तुला तथा मकर में अस्त्र का विसर्जन (प्रयोग) तथा उभयात्मक (चराचर रूप) राशियों मिथुन, कन्या, धनु तथा मीन में संहरण (समापन) करना चाहिए।

अग्नि को नक्षत्रों का तथा चन्द्रमा को तिथियों की आत्मा कहा जाता है। सूर्य इन्ही अग्नि तथा चन्द्र के आश्रय से अस्त्रों का विसर्जन तथा आहरण करता है। कृत्यास्त्र के

प्रयोग में साधक को ही दिनकर (सूर्य) माना जाता है। दिनकर (सूर्य) रूप साधक द्वारा कृष्णपक्ष में मध्य नाडी सुषुम्णा का आश्रय लेकर दक्षिण नासिका अग्निरूप पिङ्गला नाड़ी में स्थित अग्नि प्रधान अस्त्र देवताओं का विसर्जन करना चाहिए। शुक्ल पक्ष में वाम नासिका सोमात्मक इडा नाड़ी में स्थित सौम्य तेजस् प्रधान (अस्त्र) देवताओं का पुनः स्वयं में आहरण करना चाहिए। इस प्रकार विद्वान साधक द्वारा दोनों पक्ष में विसर्जन तथा संहार (आहरण) सूर्य द्वारा, सषुम्णा नाड़ी के आश्रय से करना चाहिए।

कृष्ण पक्ष में दक्षिण नासिका से स्वर प्रवाह की स्थिति में अस्त्रों का प्रयोग तथा शुक्लपक्ष में वाम नासिका से स्वर प्रवाह की स्थिति में अस्त्रों का आहरण करना चाहिए। सुपुम्ना नाड़ी से स्वर प्रवाह की स्थिति में अस्त्रों का विसर्जन (प्रयोग) तथा आहरण, बुद्धिमान साधक को दोनों पक्षों में करना चाहिए।

॥ आग्नेयास्त्र (मन्त्र)-प्रयोगाः॥

पश्चिमाखिमुखो भूत्वा कर्म सर्वत्र साधयेत्।
नक्षत्रवृक्षसकलान् साध्याख्यान् कर्मसंयुतान्॥५५॥
तत्तन्मन्त्राक्षरोपेतान् मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया।
जुहुयादेधिते वह्नौ मारयेद्रिपुमात्मनः॥५६॥
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णा चतुर्दशी।
धुस्तूरविषवृक्षाक्षभूरुहोत्थान् समिद्वरान॥५७॥
राजितैलेन संलिप्तान् पृथक् सप्तसहस्रकम्।
जुहुयात् संयतो भूत्वा रिपुर्यमपुरं व्रजेत्॥५८॥

साधक को पश्चिममुख बैठकर सङ्कल्प से लेकर कर्म समाप्ति पर्यन्त सभी कर्मों को करना चाहिए।

(श्री प्रपञ्चसार तन्त्रानुसार अनुलोम तथा प्रतिलोम (कार्यभेदानुसार) आग्नेय मन्त्र (अस्त्र) देवता (शक्ति) कात्यायनी दुर्गा की 'अनुपराग्वक्त्र' स्थिति होनी चाहिए, अर्थात् अनुलोम प्रयोग (रक्षादि कर्म) में 'अनुवक्त्रा' (पूर्वाभिमुखी) एवं प्रतिलोम प्रयोग (निग्रहादि कर्म) में पराग्वक्त्रा (पश्चिमभिमुखी) कात्यायनी दुर्गा की प्रधान मूर्ति मध्य में स्थापपित करके मन्त्रवर्णों से उत्पन्न चौवालीस वर्णशक्तियों को ग्यारह-ग्यारह भागों में विभाजित कर पूर्वादि चारो दिशाओं में स्थापित करके पूजन-जपादि कर तदुपरान्त हवन करना चाहिए।)

मारण-प्रयोगः - शत्रु के नाम नक्षत्र की प्रादेश मात्र लम्बी समिधा खण्डों पर साध्य का नाम, कर्म तथा अस्त्र मन्त्र के चौवालीस वर्णों (प्रतिलोम मन्त्र) को लिखकर प्रज्वलित अग्नि में साधक को चौवालीस बार हवन करना चाहिए। इससे वह अपने शत्रु को मारने में सफल हो जाता है।

यदि साधक ब्रह्मचर्यादिपूर्वक संयमित रहते हुए धतूरा, साध्य-नाम-नक्षत्र वृक्ष तथा विभीतक की समिधाओं को सरसों के तेल में भिगोकर तीनों के द्वारा अलग-अलग सात-सात हजार बार अस्त्र मन्त्र (प्रतिलोम मन्त्र) से हवन करे तो वह अपने शत्रु को यमपुर भेज देता है। इस प्रयोग को कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ

करके उसी पक्ष की चतुर्दशी तक करना चाहिए। प्रतिदिन प्रत्येक समिधा द्वारा एक हजार बार हवन करे।

[मारण कर्म में शत्रु के नाम-नक्षत्र की समिधा, काली मिर्च, समुद्री नमक तथा हींग के खण्डों (किसी भी एक पदार्थ) को भिलावा के बीजों से प्राप्त तेल में भिगोकर यथेष्ट संख्या में हवन करना चाहिए।]

॥ ज्वरोत्पादक-प्रयोगा: ॥

सप्तरात्रं प्रजुहुयात् सिद्धार्थस्नेहलोलितैः।
आर्द्रवस्त्रो विष्टिकाले मरिचैर्मनुनाऽमुना॥५९॥
निगृह्यते ज्वरेणारिः प्रलयाग्निसमेन सः।
तालपत्रे समालिख्य शत्रुनाम यथाविधिः॥६०॥
आग्नेयास्त्रेण संवेष्ट्य कुण्डमध्ये निखन्य तत्।
जुहुयान्मरिचैः क्रुद्धो ज्वराक्रान्तः स जायते॥६१॥
तदादाय क्षिपेत्तोये शीतले स वशो भवेत्।
पिष्ट्वाऽपामार्गबीजानि मरिचं मधुसंयुतम्॥६२॥
अत्युष्णलवणे तोये निःक्षिप्य क्वाथयेत्ततः।
ऋक्षवृक्षप्रतिकृतेर्हृदये वदने नसि॥६३॥
किञ्चित्किञ्चित् क्षिपेत्तोयं दर्व्या कारस्करोत्थया।
आग्नेयमुच्चरेद् मन्त्रं सोऽचिरात् ज्वरितो भवेत्॥६४॥

पानी से भीगा हुआ वस्त्र पहन करके, विष्टि नामक करण में, अस्त्र मन्त्र का प्रतिदिन (एक हजार) जप तथा रात्रि में सरसों के तेल से भीगे हुए काली मिर्च का (जप की संख्या के बराबर) हवन करे। सात रात्रि के प्रयोग से शत्रु (प्रलाप तथा मूर्छा युक्त) प्रलयाग्नि के समान सन्निपातिक ज्वर से आकान्त हो जाता है।

ताड़-पत्र (अथवा भोज-पत्र) पर शत्रु का नाम लिखकर उसके दोनों ओर (अथवा वृत्ताकार रूप से चारो ओर) आग्नेयास्त्र मन्त्र (प्रतिलोम रूप से जातवेद मन्त्र) लिखे। तत्पश्चात् इसे कुण्ड के मध्य में गाड़कर (अथवा भूमि में गाड़कर उसके ऊपर वेदी बनाकर) उसमें अग्नि स्थापन तथा पूजन करके (तेल से भीगे हुए) काली मिर्च द्वारा क्रुद्धावस्था में हवन करे। इससे शत्रु तीव्र ज्वर से पीड़ित हो जाता है। हवन के पश्चात् उस यन्त्र (लिखित ताड़ अथवा भोज पत्र) को निकाल कर शीतल जल में डाल देने से शत्रु वश में हो जाता है।

अपामार्ग के बीजों को काली मिर्च तथा मधु के साथ पीसकर, अत्यधिक गरम नमक युक्त अथवा समुद्र के गरम जल में डालकर उसे उबाले अर्थात् उसका क्वाथ बनाये। तत्पश्चात् शत्रु-नाम-नक्षत्र-वृक्ष काष्ठ द्वारा पहले से ही निर्मित की हुई शत्रु प्रतिमा के हृदय, मुख तथा नासिका में उस जल को थोड़ा -थोड़ा करके कारस्कर-काष्ठ से निर्मित कड़छी (चम्मच) से डाले। जल डालते समय (तथा उबालते समय भी) आग्नेयास्त्र मन्त्र का साथ क उच्चारण करता रहे। इस प्रकार वह शत्रु शीघ्र ही ज्वर से पीड़ित हो जायेगा। प्रतिमा निर्माण के पश्चात् उसकी शत्रु नाम से प्राण-प्रतिष्ठा कर लेना श्रेष्ठ होता है।

॥ मारण-प्रयोगाः॥

क्वाथिमेऽम्भसि तां क्षिप्त्वा हन्यात् शत्रुमयत्नतः।
तीक्ष्णस्नेहेन संल्लिप्तां शत्रोः प्रतिकृतिं निशि॥६५॥
तापयेदेधिते वह्नौ प्रतिलोमं मनुं जपन्।
ज्वरेण बाध्यते सद्यो होमादस्य मृतिर्भवेद्॥६६॥
सामुद्रे लवणे हिङ्गुविषजीरकलोडिते।
क्वाथिते पुत्तलीं साध्य नक्षत्रतरुनिर्मिताम्॥६७॥
अधोवक्त्रां विनिक्षिप्य यष्ट्या विषतरूत्थया।
तच्छिरस्ताडनं कुर्याद् जपेदस्त्रं विलोमतः॥६८॥
सप्ताहान्मरणं याति शत्रुर्ज्वरविमोहितः।

उपर्युक्त (श्लोक ६२, ६३ में वर्णित) उबले हुए जल में यदि साधक शत्रु की उस काष्ठ प्रतिमा को डाल दे तो, अनायास ही वह उसका मारण कर देता है।

उपर्युक्त रूप से शत्रु की प्रतिमा बनाकर (शत्रु नाम कर्म पश्चात् अस्त्र-मन्त्र लिखकर तथा उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके) उसे सरसों के तेल से लिप्त करके, यदि साधक रात्रि में प्रतिलोम रूप से जातवेद मन्त्र (अस्त्र-मन्त्र) का जप करते हुए उस प्रतिमा को प्रज्वलित अग्नि में (अधोमुख) तपाता है तो शत्रु शीघ्र ही ज्वर से पीड़ित हो जाता है। यदि अस्त्रमन्त्रोच्चारण सहित प्रतिमा का हवन कर दें तो उसकी मृत्यु भी हो जाती है।

साध्य (शत्रु) के नाम-नक्षत्र-वृक्ष के काष्ठ से उसकी प्रतिमा बनाकर (पूर्ववत् प्राण प्रतिष्ठा करके), किसी घड़े में गृहीत समुद्र के जल में अथवा समुद्री नमक युक्त सामान्य जल में, हींग, जीरा तथा कुचला के मिश्रण को डालकर उस जल को उबाले। तत्पश्चात् उस उबलते हुए जल में उस शत्रु-प्रतिमा को अधोमुख डालकर कुचले की छड़ी से प्रतिमा के शिर पर प्रहार करते हुए जातवेदस् मन्त्र का प्रतिलोम जप एक हजार बार करे। इस प्रकार सात रात्रियों में उबलते हुए जल में प्रतिमा को डालकर शिर पर उपर्युक्त रूप से प्रहार करते हुए मन्त्र का जप करे। इस प्रयोग से शत्रु ज्वर-पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।

आदित्यरथनागेन्द्रग्रस्ताङ्घ्रिं तद्विषाहतम्॥६९॥
नग्नं तैलेन लिप्ताङ्गं दग्धं भानुमरीचिभिः।
अधोमुखं निजरिपुं ध्यात्वा क्वाथितवारिणा॥७०॥
तर्पयेद् भानुमालोक्य शत्रुर्मृत्युप्रियो भवेत्।

सूर्य के रथ पर स्थित, सर्परूपी रस्सी से आबद्ध चरण तथा उसके विष से पीड़ित (दुखी), नग्न, तिल के तेल से लिप्त शरीराङ्ग युक्त, प्रज्ज्वलित सूर्य की किरणों से सन्दग्ध तथा नीचे की ओर मुख करके बैठे हुए (अथवा वायु प्रेरित अग्निमण्डल की उद्दीप्त ज्वालाओं से व्याकुल मुखाकृतियुक्त) शत्रु का ध्यान करके सूर्य की ओर देखते हुए पूर्वोक्त क्वथित जल से (उसकी ओर जल फेंकते हुए) उसका तर्पण करे। तर्पण करते समय अस्त्र मन्त्र (प्रतिलोम मन्त्र) का जप भी करता रहे। इस प्रयोग से शत्रु मृत्यु (काल) का प्रिय हो जाता है अर्थात् उसकी मृत्यु हो

जाती है। क्वथित (उबले हुए गरम) जल द्वारा तर्पण कुचला-काष्ठ की कलछी से करना चाहिए।

॥ विद्वेषण-प्रयोगः॥

बिभ्रन्तीं मुसलं शूलं ध्यायेत् कालघनप्रभाम्॥७१॥
कार्पासबीजैर्निम्बस्य पत्रैर्मेषीघृतप्लुतैः।
हुत्वा विद्वेषयेत् शत्रून् मन्त्रेणानेन देशिकः॥७२॥

(सरसों के तेल से सिक्त) कपास के बीजों तथा नीम के पत्तों को भेड़ के घी से लिप्त (भिगो) करके, काले बादलों के समान शरीर वर्ण वाली तथा मुषल एवं त्रिशूल धारण की हुई देवी कात्यायनी का ध्यान करके, साध्य-नाम कर्म युक्त अस्त्र मन्त्र से (उपर्युक्त द्रव्यों द्वारा) यदि साधक हवन करे तो शत्रुओं का विद्वेषण होता है।

॥ उच्चाटन-प्रयोगः॥

बिभ्राणां तर्जनीं शूलं ध्यात्वा देवीं भयङ्करीम्।
महिषीघृतसंयुक्तैः पल्लवैर्विषवृक्षजैः॥७३॥
हुत्वा रिपोः क्षणात् सेनामुच्चाटयति मन्त्रवित्।
ध्यात्वा देवीं पुराप्रोक्तां चरुभिर्मरिचादिभिः॥७४॥
अजारुधिरसंसिक्तैः जुहुयाद् दिवसत्रयम्।
रिपोरुच्चाटनं कुर्यात् हेलया नात्र संशयः॥७५॥

तर्जनी मुद्रा तथा शूल (त्रिशूल) धारण की हुई तथा भयंकर स्वरूप में स्थित भगवती दुर्गा का ध्यान करके, भैंस के घी से भीगे हुए कुचला के पत्तों द्वारा, पूर्ववत् अस्त्र मन्त्र का उच्चारण करते हुए हवन करने से शत्रु (अथवा उसकी सेना) का शीघ्र ही उच्चाटन हो जाता है।

उपर्युक्त रूप में देवी का ध्यान करके, बकरी के रक्त से संतृप्त मरिचि (अथवा सरसों) अथवा चरु (उबले-पके हुए चावलों-भात) के मिश्रण से तीन दिनों तक रात्रि में अस्त्र मन्त्र द्वारा हवन करने से साधक निःसन्देह अनायास ही शत्रु का उच्चाटन करने में समर्थ हो जाता है।

॥ मोहन-प्रयोगः॥

अग्निशूलधरां दुर्गां ज्वलन्तीं प्रलयाग्निवत्।
ध्यात्वा सर्षपतैलाक्तैर्बीजैर्धुस्तूरसम्भवैः॥७६॥
हुत्वा विमोहयेत् शत्रून् मरिचैर्वा ससर्षपैः।

प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित आभायुक्त तथा त्रिशूल धारण की हुई दुर्गा का ध्यान करके सरसों के तेल से भीगे हुए धतूरे के बीजों से अथवा सरसों (राई) सहित मरिच द्वारा हवन करने से वह देवी शत्रु को पागल (मोहित) कर देती है।

॥मारण प्रयोगः॥

कालाञ्जननिभां दुर्गां शूलखड्गधरां स्मरेत्॥७७॥
नक्षत्रवृक्षसंभूतैर्व्रणकृत्स्नेहसंप्लुतैः।
समिद्वरैः प्रजुहुयात् हन्यान्मासेन वैरिणम्॥७८॥

काले अञ्जन (काजल) के समान आभा (शरीर-वर्ण) वाली, त्रिशूल तथा तलवार धारण की हुई दुर्गा का स्मरण करके, शत्रु-जन्म-नक्षत्र-वृक्ष की समिधा को भिलावा के बीजों से निर्मित तेल (अथवा घृत) में भिगोकर हवन करने से वह देवी दुर्गा एक माह में ही शत्रु को मार देती है।

॥ उच्चाटन-प्रयोगः॥

सिंहाधिरूढां धावन्तीं धावमानं रिपुं प्रति।
शरान् कार्मुकनिर्मुक्तान वह्निज्वालामुखाकुलान्।।७९।।
मुञ्चन्तीं संस्मरन् दुर्गां तर्पयेदुष्णवारिणा।
भानुबिम्बं समालोक्य रिपोरुच्चाटनं भवेत्।।८०।।
स्पृशेच्च हृदयं मन्त्री तथा रक्षार्थमात्मनः।

सिंह पर आरूढ़ दुर्गा का, प्रज्वलित अग्नि के समान मुख वाले बाणों को धनुष के द्वारा छोड़ती हुई तथा भयभीत होकर भागते हुए शत्रु के पीछे दौड़ती हुई सी ध्यान करके, सूर्य बिम्व की ओर देखते हुए, अस्त्र मंत्र का उच्चारण करते हुए, उष्ण (गरम) जल से उसका (सूर्य का) तर्पण करे अर्थात् उसकी ओर जल फेंके। इससे शीघ्र ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। प्रयोग के पश्चात् स्वरक्षा हेतु साधक उस जल सहित अपने हृदय का स्पर्श करे।

॥ स्तम्भन-प्रयोगः॥

अतिदुर्गामयोमुष्टिं गदाहस्तां विचिन्तयेत्।।८१।।
विद्युद्दामसमानाभां महिषीघृतसंप्लुतैः।
पुलाकैर्जुहुयाद् निम्बबिभीतकसमिद्वरैः।।८२।।
कोद्रवैरथवा शत्रोः सेनायाः स्तम्भनं भवेत्।

लोहे की मूँठ युक्त गदा धारण की हुई विद्युत माला के समान पीताभ अतिदुर्गा का ध्यान करके (करते हुए) भैंस के घृत युक्त पुलाक (भात-पिण्ड), नीम तथा बहेड़े की समिधा अथवा कोदो (एक प्रकार का अन्न) से (एक हजार बार) अस्त्र-मन्त्र (अथवा अति दुर्गा मन्त्र) का उच्चारण करते हुए हवन करने से शत्रु सेना का स्तम्भन होता है। साधक को हवन से पूर्व अस्त्र मन्त्र (अथवा अति दुर्गा मन्त्र) का दश हजार बार जप अवश्य कर लेना चाहिए। किसी भी हवन क्रिया में जहाँ संख्या का उल्लेख न किया गया हो, दश हजार जप के पश्चात् एक हजार बार हवन करना चाहिए। यह सामान्य नियम है।

॥ नृप-वश्य-प्रयोगः॥

आत्तपाशाङ्कुशां रक्तां गाणिदुर्गामनुं स्मरेत्।
लोणैः समधुरैः साध्यवृक्षकाष्ठैर्धितेऽनले।।८३।।
जुहुयात् निशि सप्ताहान्मन्त्रविद् वशयेन्नृपान्।

पाश तथा अंकुश धारण की हुई रक्त वर्णी गाणि दुर्गा का ध्यान करते हुए, साध्य नाम-नक्षत्र वृक्ष-काष्ठों से प्रज्वलित अग्नि में, नमक तथा त्रिमधु के मिश्रण से, गाणि दुर्गा मन्त्र द्वारा हवन करने से साधक राजाओं को वश में कर लेता है। इस प्रयोग को एक सप्ताह तक (अर्ध) रात्रि में करना चाहिए।

॥ विश्व-वश्य-प्रयोगः॥

पाशाङ्कुशधरां रक्तां विश्वदुर्गां विचिन्तयेत्॥८४॥
फलिनीकुसुमैः फुल्लैश्चन्दनाम्भःसमुक्षितैः।
जुहुयान्निशि यो मन्त्री तस्य विश्वं वशं भवेत्॥८५॥

पाश तथा अंकुश धारिणी विश्व दुर्गा का ध्यान करके, चन्दन के तेल से सिक्त (भीगे हुए) प्रियंगुलता (काकुन) तथा नागकेसर के पुष्पों से विश्व दुर्गा मन्त्रोच्चारण सहित जो साधक रात्रि में हवन करता है, सारा विश्व उसके वश में हो जाता है।

॥ वृष्टि-प्रयोगः॥

शरच्चन्द्रनिभां देवीं विगलत्परमामृताम्।
पाशाङ्कुशधरां ध्यात्वा सिन्धुदुर्गां समिद्वरैः॥८६॥
वैतसैर्मधुना सिक्तैर्जुहुयाद् वृष्टिसिद्धये।

परमामृत का वर्षन करती हुई शरत्पूर्णिमा की ज्योत्सना के समान आभा वाली तथा पाश एवं अंकुश धारिणी सिन्धु दुर्गा का ध्यान करके बेंत (नरकुल) की समिधा को मधु (अथवा मधुत्रय - घृत-शक्कर-शहद) से भिगो कर सिन्धु दुर्गा मन्त्र द्वारा हवन करने से वर्षा होती है।

॥ आकर्षण-प्रयोगः॥

कपालं त्रिशिखं पाशमङ्कुशं बिभ्रतीं करैः॥८७॥
जपाकुसुमसंकाशामग्निदुर्गां विचिन्तयेत्।
हुत्वा लवणपुत्तल्या मधुरत्रयुक्तया॥८८॥
आकर्षेद् वाञ्छितान् साध्यान् मन्त्रविन्नात्र संशयः।

जपाकुसुम के समान (रक्त) आभावाली कपाल, त्रिशूल, पाश तथा अंकुश धारण की हुई अग्नि दुर्गा का ध्यान करते हुए, शत्रु की त्रिमधु-मिश्रित नमक से बनी हुई पुतली का अग्निदुर्गा मन्त्रोच्चारण सहित हवन करने से साधक अपने अभीष्ट साध्यों को आकर्षित करने में निःसन्देह ही सफल हो जाता है।

॥ अतिदुर्गादि-मन्त्र-निरूपणम्॥

अतिदुर्गेयमत्याद्या षदन्ता त्रिष्टुवीरता॥८९॥
दुर्वर्णन्ता च गाण्याद्या गाणिदुर्गा समीरिता।
विश्वाद्या ण्यक्षरान्ता विश्वदुर्गा समीरिता॥९०॥
सिन्ध्वाद्या सा वकारान्ता सिन्धुदुर्गा निगद्यते।
त्यन्तामग्न्यादिकामेनामग्निदुर्गा विदुर्बुधाः॥९१॥

उपर्युक्त श्लोकों के अनुसार अतिदुर्गा आदि देवताओं के मन्त्र निम्नवत् होंगे।

अति दुर्गा मन्त्रः - अति दुर्गाणि....दुरितात्यग्नि जातवेदसे......परषत्॥
गाणिदुर्गा मन्त्रः- गाणि विश्वा....दुरितात्यग्नि जातवेदसे.......परषदति दुः॥
विश्वदुर्गा मन्त्रः- विश्वानावेव.....दुरितात्यग्नि जातवेदसे.......दुर्गाणि॥

सिन्धुदुर्गा मन्त्रः- सिन्धुं दुरितात्यग्निं जातवेदसे...नावेव॥

अग्निदुर्गा मन्त्रः- अग्निः जातवेदसे ....दुरितति॥

ये सभी मन्त्र चौवालीस वर्णात्मक त्रिष्टुभ् छन्द वाले हैं।

प्रयोगानुसार उपर्युक्त देवताओं का ग्रन्थ में उल्लिखित स्वरूपों के अनुसार ध्यान भी करने को कहा गया है। परन्तु स्थिर ध्यान सुगम न होने के कारण, उनके ध्यान-मन्त्रों का पाठ भी ध्यान के साथ कर लेना चाहिए। अतः इन देवताओं के ध्यान मन्त्रों को निम्नवत् ग्रहण किया जा सकता है।

अतिदुर्गा-ध्यानम् - **अयोमुष्टि गदाहस्तां रक्षार्थमात्मनस्त्वहम्।**
विद्युद्दाम-समानाभां विचिन्तयाम्यति दुर्गाम्॥

गाणिदुर्गा-ध्यानम् - **स्वहस्ताभ्यां पाशांकुशधरां हृत्पद्मे च स्थिताम्।**
रक्तवर्णां गाणिदुर्गां ध्यायाम्यहं मुहुर्मुहुः॥

विश्वदुर्गा-ध्यानम् - **विभ्रन्तीमंकुशं पाशं रक्ताभां हृदयास्थिताम्।**
विश्वरूपां विश्वदुर्गां विश्ववश्यकृतां भजे॥

सिन्धुदुर्गा-ध्यानम् - **शरच्चन्द्रनिभां देवीं विगलत्परमामृताम्।**
पाशांकुशधरां सिन्धुदुर्गां परिचिन्तयामि॥

अग्निदुर्गा-ध्यानम् - **कपालं त्रिशिखं पाशमंकुशं विभ्रतीं करैः।**
जपाकुसुमसङ्काशामग्निदुर्गां ध्यायाम्यहम्॥

॥ कृत्यादिरोगनाशकः-सर्वसिद्धिश्च प्रयोगः॥

अङ्गणे स्थण्डिलं कृत्वा सुगन्धिकुसुमादिभिः।
देवीमभ्यर्चयेन्नित्यं प्रागुक्तेनैव वर्त्मना॥९२॥
आहरेद् रात्रिषु बलिं चरुणा सर्वसिद्धये।
कृत्यारोगभयद्रोहभूतारीन् नाशयेदयम्॥९३॥
यथावदग्निमाराध्य गन्धपुष्पैर्मनोरमैः।
स्थित्वा तस्याग्रतो मन्त्री जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥९४॥
जपोऽयं सर्वसिद्ध्यै स्यान्नात्र कार्या विचारणा।

स्वगृह के आंगन में वेदी बनाकर उस पर सुगन्धित पुष्पादि उपचारों से पूर्वोक्त विधि के अनुसार नित्य देवी की अर्चना करें तथा सर्व (कार्य) सिद्धि के लिए रात्रि में चरु के द्वारा देवी को बलि प्रदान करे तो साधक कृत्या के प्रभावों, रोग, किसी भी प्रकार के भय तथा द्रोह (शत्रुता-लड़ाई-झगड़ा)करने वाले अपने शत्रुओं का नाश कर देता है।

पूर्ववत् वेदी बनाकर तथा उस पर सुन्दर-सुगन्धित उत्तम पुष्पों (तथा अन्य उपलब्ध उपचारों) द्वारा यथाविधि अग्नि की स्थापना तथा उनका पूजन करके, उसके सम्मुख ही बैठकर, साधक स्थिर चित्त होकर अग्नि देवता का चिन्तन करते हुए मन्त्र का यथोचित संख्या में (नित्य) जप करे। इस प्रकार नित्य जप करना साधक के लिए निश्चित रूप से सर्वसिद्धि प्रद होता है।

॥ शत्रु-वश्य-प्रयोगः॥

लवणैर्मधुना सिक्तैर्जुहुयात् पश्चिमामुखः॥९५॥
मन्त्रार्णसंख्यया मन्त्री रिपुमेव वशं नयेत्।

नमक (समुद्री) को मधु (अथवा मधुर त्रय) से सिक्त करके, (यथेष्ट संख्या में मन्त्र जप करने के पश्चात्) पूर्वोक्त रूप से स्थापित-पूजित अग्नि में पश्चिम की ओर मुख करके मन्त्र वर्ण संख्या के बराबर (४४ बार) उसके द्वारा हवन करने से साधक स्वशत्रु को अपने वश में कर लेता है।

॥ भूतग्रहरोगकृत्यादि नाशक-प्रयोगः॥

शालीन् प्रक्षाल्य संशोष्य शुद्धान् कुर्वीत तण्डुलान्॥९६॥
जपित्वा पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्याहने।
चरुं पचेज्जपन् मन्त्रमवतार्य पुनः सुधीः॥९७॥
अर्चयित्या विशदधीर्देवीमग्नौ यथा पुरा।
जुहुयात् चरुणानेन साज्येनाष्टसहस्रकम्॥९८॥
पात्रे संपातनं कुर्वन् साध्यं तत् प्राशयेत् पुनः।
शिष्टं तन्निखनेद् द्वारि संपातं प्राङ्गणान्तरे॥९९॥
कृत्यारोग विनश्यन्ति सह भूतग्रहामयैः।
परैरुत्पादिता कृत्या पुनस्तानेव भक्षयेत्॥१००॥

शालि नामक धानों को धोकर तथा सुखाकर उससे प्राप्त चावलों को शुद्ध करके तथा इन्हें पञ्चगव्य में मिला करके, सुसंस्कृत (शुद्ध समिधाओं से वेदी अथवा कुण्ड में प्रज्ज्वलित तथा पूजित) अग्नि पर, उसके द्वारा चरु पकाये। पकाते समय कृत्यास्त्र मन्त्र (विलोम रूप से अति दुर्गा मन्त्र) का जप भी करता रहे। पकने पर चरु को उतार कर नीचे रख दे। इसके बाद बुद्धिमान साधक देवी (अति दुर्गा) का यथाविधि पूजन करके, तैयार चरु में घृत मिलाकर उसके द्वारा उसी अग्नि में मन्त्रोच्चारण सहित आठ हजार बार हवन करे। हवन करते समय किसी अन्य पात्र में हुतशेष चरु का सम्पातन भी करता रहे। तदुपरान्त इस सम्पात रूप चरु को बुद्धिमान साधक कृत्यादि से पीड़ित साध्य को थोड़ा सा खिलाये। शेष सम्पातित चरु को साध्य के घर, आंगन तथा द्वार पर भूमि में गाड़ दे। इस प्रयोग से कृत्या-जनित प्रभाव तथा रोग एवं भूतग्रहादि से उत्पन्न रोगों का विनाश हो जाता है तथा शत्रुओं द्वारा उत्पन्न (प्रेपित) कृत्या पुनः वापस लौट कर उन शत्रुओं को ही खा जाती है।

[यदि इस सम्पात रूप चरु को साधक स्वयं साधक खाता है तो उसकी सब प्रकार से रक्षा होती है। उसके देखने मात्र से ही उस पर प्रयुक्त कृत्या नष्ट हो जाती है तथा दुष्ट ग्रह आदि भयभीत हो जाते हैं। क्रोधित हई कृत्या वापस जाकर अपने प्रयोक्ता का ही सर्वथा विनाश कर देती है।]

॥ भूमि-सम्पत्तिप्रद-प्रयोगः॥

व्रीहिभिर्हविषा क्षीरैः पयोवृक्षसमिद्वरैः।
आज्यैर्मधुत्रयोपेतैरेतैर्दशशतं पृथक्॥१०१॥
जुहुयात् सम्पदां भूमिः साधको भवति ध्रुवम्।

चावल, हवि अन्न(तिल, जौ आदि), दूध तथा दूध वाले वृक्ष की समिधा एवं आज्य इन सबको पृथक-पृथक मधुत्रय से संसिक्त करके प्रत्येक के द्वारा एक एक हजार बार हवन करने से साधक को निश्चित रूप से धन-सम्पत्ति तथा भूमि की प्राप्ति होती है।

।। गृह-ग्रामादि-राष्ट्र-रक्षा विधानम्।।

भास्करे मेषराशिस्थे मन्त्रज्ञोऽनुगुणे दिने।।१०२।।
नद्यां सागरगामिन्यां सततं पुष्कलाम्भसि।
उद्धृत्यादाय सिकताः संशोष्य परिशोधयेत्।।१०३।।
न्यस्य ताः पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने।
भर्जयेन्मनुना सिद्ध्यै दर्व्या ब्रह्मतरूत्थया।।१०४।।
सिंहमेषधनुःस्थेऽर्के कृष्णपक्षेऽष्टमीतिथौ।
विशाखाकृत्तिकामूलाहस्तोत्तरमघासु च।।१०५।।
रौहिण्यां श्रवणे वारौ मन्दवाक्पतिदैवतौ।
विहायाऽन्येषु कुर्वीत सिकतास्थापनं सुधीः।।१०६।।
गृहग्रामादिराष्ट्राणां रक्षार्थं सिकताः शुभाः।
प्रस्थाढकघटोन्मानान्मध्यादिष्ववटेष्वथ ।।१०७।।
नवसु प्रक्षिपेज्जप्त्वा तेषु संपूजयेत् क्रमात्।
मध्यादिदेवीमस्त्राणि कपालान्तानि देशिकः।।१०८।।
चक्रं शङ्खमसिं खेटं बाणं चापं त्रिशूलकम्।
कपालं स्वस्वमन्त्रेण संपूज्यान्ते बलिं हरेत्।।१०९।।
नक्षत्रग्रहराशीनां लोकेशानां बलिं हरेत्।
विहिता यत्र रक्षेयं वर्द्धन्ते तत्र संपदः।।११०।।
क्षुद्रग्रहमहारोगासौरभूतसरीसृपाः ।
अमुना विलयं यान्ति विधिना नात्र संशयः।।१११।।

गृह, नगर (ग्राम) तथा राष्ट्र-रक्षा कार्य के लिए क्रमशः एक प्रस्थ (१६ मुट्ठी), एक आठक (४ प्रस्थ) तथा एक घट (द्रोण) के बराबर (१६ प्रस्थ) बालुका, जब सूर्य मेष राशि में स्थित हो, उस समय अत्यधिक जल से परिपूर्ण किसी समुद्रगामिनी नदी से निकाल करके साधक को लाना चाहिए। उसे धूप में सुखाकर तथा सूपादि के द्वारा भली-भाँति साफ करके, बारह हजार आग्नेय-गायत्री मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करके उस बालुका को नौ भागों में विभक्त कर पञ्चगव्यों से भरे हुए नौ घटों में उसे डाल देना चाहिए। तत्पश्चात् त्रिष्टुभा (आग्नेय मन्त्र) शक्ति तथा उसके आवरण देवताओं का पूजन करके, पलाश की समिधा से अग्नि प्रज्वलित कर, अग्नि का जननादि संस्कार तथा पूजनादि करके जातवेद मन्त्र का जप करते हुए तथा पलाश की कलछी से चलाते हुए उसी अग्नि पर उस बालुका को सिद्ध करने के लिए भूनना चाहिए। सिंह, मेष तथा धनु किसी भी राशि में सूर्य के स्थित होने पर तिथियों में कृष्ण पक्ष की अष्टमी को, विशाखा, कृत्तिका, मूल, हस्त, तीनों उत्तरा, मघा, रोहिणी तथा श्रवण नक्षत्र होने पर एवं शनि अथवा गुरुवार होने पर, इन सभी

तिथि-नक्षत्र तथा वारों को छोड़कर अन्य कोई भी तिथि, नक्षत्र तथा दिन होने पर सिकता (बालुका) स्थापन तथा रक्षा-विधान करना चाहिए। गृह, ग्रामादि तथा राष्ट्रों की रक्षा के लिए यह बालुका शुभ होती है।

जिस ग्राम (गृह), नगर अथवा राष्ट्र की रक्षा का विधान करना हो, उसकी सीमान्त आठ दिशाओं तथा मध्य में क्रमशः नौ कुण्डों (गड्ढों) का निर्माण कर उसमें उपर्युक्त नौ घटों को एक-एक करके स्थापित कर देना चाहिए। तत्पश्चात् मध्य वाले घट में मूल जातवेद मन्त्र से त्रिष्टुमा शक्ति (मन्त्र देवता कात्यायनी दुर्गा) का आवाहन प्राण प्रतिष्ठादि करके उसका पूजन कर आठों दिशाओं वाले घट में देवी के अस्त्रों चक्र, शंख, कृपाण, खेट, बाण, धनुष, त्रिशूल तथा कपाल का (ॐ चक्राय नमः इत्यादि मन्त्र रूप से) पूजन करके उन्हें बलि प्रदान करना चाहिए। इसके पश्चात् जिन दिनों, ग्रहों, नक्षत्रों, करणों तथा राशियों में यह प्रयोग आरम्भ किया गया है, उनके देवताओं, लोकपालों तथा उनके आयुधों को उनके स्व-स्व मन्त्रों से बलि प्रदान करना चाहिए।

इस रक्षा विधान द्वारा संरक्षित स्थान (गृह, ग्राम, राष्ट्रादि) की सम्पत्ति सदैव वृद्धि को प्राप्त होती रहती है। क्षुद्र-ग्रहजनित दोष, महारोग (महामारी), अन्तरिक्ष लोक, भूतादि (भूतलोक) जनित तथा सर्पादि से प्राप्त होने वाले भय उस स्थान से सर्वथा विलुप्त हो जाते हैं। इस रक्षा विधान से वह स्थान निःसन्देह सर्वथा निर्भय तथा सुरक्षित हो जाता है। उपर्युक्त प्रयोग में पञ्चगव्य युक्त एक ही एक ही बड़े घट में शोधित बालुका को भूनने के पश्चात् भी अन्य नौ घटों में उन्हें स्थापित किया जा सकता है।

सिकतानां विशुद्धानां विकारकुडवं सुधीः।
पञ्चगव्ययुतं पात्रे ब्रह्मवृक्षविनिर्मिते॥११२॥
निक्षिप्य विधिना यत्र स्थापयेत्तत्र सम्पदः।
दिने दिने प्रवर्द्धन्ते कालवृष्ट्यादिभिः सह॥११३॥
महोत्पाता विनश्यन्ति कृत्याद्रोहमहाग्रहाः।

उपर्युक्त शोधित तथा संस्कृत पञ्चगव्य युक्त बालुका को सोलह कुडव की मात्रा में (एक कुडव चौथाई प्रस्थ के बराबर माना जाता है), पलाश के वृक्ष की काष्ठ से निर्मित पञ्चगव्य से भरे हुए पात्र में डालकर पूर्वोक्त रूप से उसमें देवी की उसके आयुधों सहित पूजन-बलि प्रदान सहित अन्य पूजनादि को भी विधिवत् करके जिस नगर, राष्ट्रादि के मध्य में गाड़ दिया जाता है, उस स्थान में समायानुकूल वर्षा होने के साथ ही उसकी सम्पदा दिनो-दिन बढ़ती रहती है। कृत्या प्रभाव, बैर भाव तथा बड़े-बड़े ग्रहों के कारण वहाँ होने वाले महान उत्पात सर्वथा विनष्ट हो जाते हैं।

॥ पञ्चगव्य निर्माण-विधि॥

चरुं गव्याशमनां कुर्यात् स्थापनं विधिनाऽमुना॥११४॥
गोमूत्रं प्रस्थमानं स्याद् गोमयं च तदर्धकम्।
आज्यात् सप्तगुणं क्षीरं गोमूत्रात् त्रिगुणं दधि॥११५॥

गोमूत्रेण समं सर्पिः सर्वं वा सममुच्यते।
गावः स्युः कपिलश्वेतश्यामधूमारुणप्रभाः॥११६॥
अभावे गदिताः सर्वाः सर्वथा कपिलोद्भवम्।

उपर्युक्त विधि के अनुसार चरु-गव्य तथा पत्थर की स्थापना करने से भी पूर्वोक्त फल की प्राप्ति होती है।

शारदा तिलक के अनुसार पञ्चगव्य में चावल (शालि), जौ, मूँग, माष, गेहूँ, बेल का बीज, तिल, कमल का बीज तथा कमल के पत्ते डालकर, इन सभी को मोम के पात्र में रख करके नागयोग में जमीन में गाड़ना चाहिए।

श्री प्रपञ्चसार तन्त्रानुसार पूवोक्त सिद्ध बालुका को मिट्टी अथवा पत्थर के नीचे भी पञ्चगव्य सहित स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार (मिट्टी अथवा पत्थर के नीचे) गाड़ी गई बालुका से भूमि-विवाद की समाप्ति के साथ ही क्रमशः साधक की पुष्टि (समृद्धि) भी होती रहती है।

पञ्चगव्य का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए। किसी पात्र में एक प्रस्थ मात्रा के बराबर गोमूत्र ग्रहण करें। उसमें आधा प्रस्थ गाय का गोबर (अथवा गोबर को कपड़े से निचोड़ कर उसका द्रव) मिलाये। गोमूत्र के बराबर गोघृत, गोमूत्र से तीन गुना दधि तथा घृत का सात गुना अथवा पाँचों को बराबर मात्रा में ग्रहण कर इन सबको परस्पर मिश्रित कर दे। दूध, दही, घृत, गोमूत्र तथा गोबर क्रमशः कपिला श्वेत, श्याम, धूम्र तथा अरुण (लाल) वर्ण वाली गायों का ग्रहण करना चाहिए। इन गायों के अभाव में सभी पदार्थों को कपिला गाय ही का ग्रहण करना चाहिए।

अन्य मतानुसार दो भाग गोमूत्र, एक भाग गोबर, आठ भाग दूध, इतना ही दही तथा चार भाग अथवा दो भाग्य आज्य (पिघला हुआ घी) पञ्चगव्य निर्माण के लिए ग्रहण करना चाहिए।

॥ भूमि (स्थान) दोष-नाशक यन्त्रम्॥

एकोनपञ्चाशत् कोष्ठे फलके ब्रह्मशाखिनः॥११७॥
विहाय कोणकोष्ठानि शक्त्याद्यं जातवेदसम्।
लिखित्वा मध्यकोष्ठेषु पूजयेत् तत्र देवताः॥११८॥
कृत्वा होमं समं पातं निखनेत्तु यथा पुरा।
दद्याद्वलिं यथापूर्वं अस्य पूर्वोदितं फलम्॥११९॥

पलाश-वृक्ष-काष्ठ-फलक (चौकोर पटरे) पर उनचास (४९) चतुरस्र कोष्ठक युक्त रेखाकृति बनाकर मध्य वाले कोष्ठ में माया बीज **'ह्रीं'** (अथवा कामबीज **'क्लीं'** तथा मायावीज **'ह्रीं'** के मध्य साध्य नाम कर्माक्षरों को) लिखें। तदुपरान्त कोण वाले चारो कोष्ठों को छोड़कर शेष चौवालीस कोष्ठों मे जातवेदस मन्त्र के चौवालीस वर्णों को पूर्वादि दक्षिणावर्त क्रम से लिखें। इसके बाद यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा कर मध्य में जातवेद मन्त्र की देवता तथा कोष्ठों के वर्ण-देवताओं (जाग्रतादि) का पूजन करके अपने समीप ही अग्नि का स्थापन पूजन करके उसमें घृत द्वारा जातवेदस् मन्त्र से एक हजार आठ बार हवन करें। हवन करते समय स्रुवा

द्वारा घृत का सम्पात यन्त्र पर करें। इस यन्त्र को दोष युक्त स्थान पर भूमि में गाड़ कर वहाँ देवता को बलि प्रदान करें। इस प्रयोग से भी पूर्वोक्त फल की प्राप्ति उस स्थान-भूमि से सम्बन्धित सभी प्रकार के दोषों-उपद्रवों की शान्ति होती है।

।। रक्षाकरमायुः श्रीकीर्ति प्रदञ्च यन्त्रम्।।

मध्ये मायाष्टकोष्ठेषु पादानष्टौ कृत्वा मातृकार्णैःपरीतम्।
भूबिम्बस्थं सर्वभूतामयघ्नं रक्षायुःश्रीकीर्तिदं यन्त्रमेतत्।।१२०।।

नौ चतुरस्र कोष्ठात्मक आकृति का रेखांकन करके उसके मध्य कोष्ठक में **'ह्रीं'** लिखकर उसके चारों ओर के आठ कोष्ठकों में जातवेदस् मन्त्र के आठों पादों को लिखें। यन्त्र के चारों ओर परिधि पर सभी मातृका वर्णों को क्रमशः लिखकर इसके बाह्य भाग में भूपुर की रचना करें। इस यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा, पूजनादि करने के पश्चात् इसे धारण करने से धारणकर्ता को यह सर्वप्रकार से रक्षा करता है। यह यन्त्र समस्त भूतों से प्राप्त होने वाले भयों तथा रोगों को नष्ट करने वाला तथा आयु, लक्ष्मी तथा यश प्रदान करने वाला है। यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा-पूजन के पश्चात् पूर्वोक्त रूप से हवनादि करके ही यन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

।। आग्नेयमन्त्रस्य माहात्म्यम्।।

आग्नेयास्त्रस्य जानाति विसर्गादानकर्मणी।
यः पुमान् गुरुणा शिष्टस्तस्याधीनं जगत्त्रयम्।।१२१।।

गुरु के उपदेश द्वारा जो मनुष्य आग्नेयास्त्र को विसर्ग तथा आदान (प्रयोग तथा उपसंहार) सहित जानता है, सारी त्रिलोकी उसके वश में हो जाती है। उसके लिए कुछ भी प्राप्त करना तथा कोई कार्य सिद्ध करना असम्भव नहीं होता।

जातप्रज्ञोऽथवा राजा द्रविणोऽराति वा तथा।
एवं शब्दस्य शक्तिःस्यात् जातवेदास्तथा स्मृतः।।१२२।।
यजामहे स्वयं देवं सोमेन भुवेश्वरम्।
वह्निरूपेण तिष्ठन्तं परमात्मानमव्ययम्।।१२३।।
अराते द्रविणं चापि विद्यां चापि हरप्रिये।
पुत्रादक्षादिकान् सर्वान् सम्यग्ज्ञानं तथैव च।।१२४।।
दत्त्वा चतुर्हरिर्देवः सर्वलोकपितामहः।
यः सम्यक् सर्वलोकानां मित्रत्वं सम्यगाचरेत्।।१२५।।
चित्रभानुर्महादेवः क्षुत्पिपासादिकं मम।
व्यपोहतु महादेवः पुरुषार्थविबोधनः।।१२६।।
नौर्यथा दुस्तरं सिधुं तरत्येव न संशयः।
पुरस्क्रियायुतं चास्य दशांशं घृतहोमतः।।१२७।।

जैसे 'जातप्रज्ञ' व्यक्ति में जन्म से ही स्वाभाविक ज्ञान-शक्ति होती है अथवा राजा, द्रविण, अराति आदि शब्दों में अपने अर्थ का ज्ञान कराने का स्वाभाविक सामर्थ्य

(शब्द-शक्ति) होता है, उसी प्रकार 'जातवेद' मन्त्र भी अपनी सामर्थ्य से ही साधक की कार्यसिद्धि में समर्थ कहा जाता है।

संसार का स्वामी जो अव्यय (अविनाशी) परमात्मा है, वही सोम तथा अग्नि (एवं सूर्य) के रूप (अथवा सौम्य तथा उग्र) में स्थित है। हम सभी उसी का (भिन्न-भिन्न रूपों में) पूजन करते हैं।

जो सभी लोकों के पितामह ब्रह्मा हैं, उन्होंने (अपने) शत्रुओं को भी धन, शिवभक्तों को विद्या तथा अपने दक्षादि सभी पुत्रों को सम्यक ज्ञान देकर कहा कि उन्हें सभी लोगों के साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए।

अग्नि रूप में स्थित महादेव मेरी भूख-प्यास आदि शारीरिक व्यथा को दूर करें। क्योंकि वे महादेव ही मनुष्य के पुरुषार्थ के लिए जागृत (प्रेरित) करने (तथा इसके अनुसार फल देने) वाले हैं।

जिस प्रकार सुदृढ़ नौका के द्वारा कोई भी नाविक सरलता से अति गम्भीर तथा विशाल सागर को भी पार कर लेता है, उसी प्रकार इस 'आग्नेयास्त्र-मन्त्र' के पुरश्चरण तथा दशांश संख्या में गो-घृत से हवन के द्वारा साधक कठिन से कठिन कार्य को भी सहजता से सिद्ध कर लेता है।

।। आग्नेयास्त्रस्य विभिन्न प्रयोगाः।।

अश्वत्थवृक्षं संस्पृस्य शनैश्चरदिने जपेत्।
इष्टसिद्धिमवाप्नोति भयं चाशु विनश्यति॥१२८॥
यः सहस्रं जपेन्नित्यं ब्रह्माप्नोति न संशयः।
सर्वदुर्गेषु यो नित्यं स्मरेन्मन्त्रमतन्द्रितः॥१२९॥
दुर्गाणि निस्तरेत् सद्यो नात्र कार्या विचारणा।
धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुष्टिवर्द्धनम्॥१३०॥
किमत्र बहुनोक्तेन पुरुषार्थचतुष्टयम्।
दुर्गागारं समाश्रित्यं साधयन्ति मनीषिणः॥१३१॥

शनिवार के दिन पीपल के वृक्ष का स्पर्श करते हुए (उसके समीप नीचे बैठकर) मन्त्र का जप करने से साधक को इष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है तथा शीघ्र ही उसके समस्त भयों (भय के कारणों) का विनाश हो जाता है।

जो मनुष्य नित्य (जीवन पर्यन्त) इस मन्त्र का दश हजार जप प्रतिदिन करता है, उसे निश्चय ही ब्रह्म (ईश्वर अथवा मुक्ति) की प्राप्ति हो जाती है। जो मनुष्य सभी प्रकार की कठिन परिस्थितियों तथा विपत्तियों के समय सावधान चित्त होकर नित्य मन्त्र का जप करता है, वह निःसन्देह शीघ्र ही समस्त आपदाओं से मुक्त हो जाता है।

इस आग्नेयास्त्र मन्त्र की साधना द्वारा मनुष्य को धन-धान्य, सौभाग्य, यश, आयु, आरोग्य, पुष्टि (समृद्धि) अधिक क्या कहें चारों पुरुषार्थों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) की भी प्राप्ति सहज सम्भव है। इसके लिए बुद्धिमान साधक को विशेष रूप से भगवती दुर्गा के मन्दिर में स्थित होकर साधना (जपार्चनादि) करनी चाहिए।

सावित्री सहिता दुर्गा महासिद्धिकरी स्मृता।
पूजिता विधिना सा च सर्वमिष्टं प्रयच्छति॥१३२॥
अपूजिता वै सर्वेषामनिष्टमपि दास्यति।
अपामार्गशतं हुत्वा गोष्ठे शान्तिकरी भवेत्॥१३३॥
सर्वानभिमुखी कर्तुमधुना लवणेन च।
दुर्गमार्गे भये द्यूते व्यवहारे जले रणे॥१३४॥
बन्धने व्यसने राज्ञो मन्त्रं तु मनसा जपेत्।
जपमात्रेण विप्राणां सर्वं संसाधयेद् यथा॥१३५॥
राजन्यवैश्ययोर्नित्यं जपहोमाभिषेचनैः।
यमुद्दिश्य जपेद्विप्रस्तत्तदाप्नोत्यसंशयम्॥१३६॥

गायत्री मन्त्र के साथ (इसके द्वारा सम्पुटित करके) दुर्गा (आग्नेयास्त्र मन्त्र) का जप करना महासिद्धिदायक (शीघ्र ही फल देने वाला) कहा जाता है। विधिपूर्वक पूजा करने पर वह साधक की समस्त अभिलाषाओं को प्रदान करने वाली सिद्ध होती हैं। परन्तु यदि इसका पूजन न किया जाय (अथवा अविधिपूर्वक किया जाय) तो यह सभी प्रकार के अनिष्टों (विपत्तियों) को देने वाली होती है।

गो (पशु) शाला में बैठकर अपामार्ग की समिधाओं द्वारा आग्नेयास्त्र मन्त्रों का उच्चारण करते हुए एक सौ आठ बार हवन करने से पशुओं (के रोगादि) की शान्ति होती है। समस्त प्राणियों (विशेषकर मनुष्यों) को अपने अनुकूल करने के लिए साधक को मधु तथा नमक के साथ हवन करना चाहिए।

दुर्गम (कठिन-वन्य अथवा पर्वतीय) मार्ग पर गमन करते समय, किसी भी प्रकार के भय की उपस्थिति (या सम्भावना) होने पर, प्रतिद्वन्द्वी के साथ द्यूत-क्रीड़ा (जुआ खेलने) के समय, मन्त्री आदि के साथ सामान्य अथवा विशेष व्यवहार के समय, जल (नौकायन आदि) तथा युद्ध-स्थल में स्थिति के समय, बन्धन में पड़ने (अथवा सम्भावना होने) पर एवं दुर्भाग्य (अथवा किसी भी प्रकार की विपत्ति अथवा दोषपूर्ण प्रवृत्ति अथवा पशुओं के आखेट आदि के लिए वन में स्थित) काल में राजा (अथवा राज-बन्धन में पड़े तथा उसके द्वारा प्राप्त संकट की स्थिति में मनुष्य) को मन ही मन (मानसिक रूप से) आग्नेयास्त्र मन्त्र अथवा दुर्गा मन्त्रों का जप करना चाहिए।

जिस प्रकार यह आग्नेयास्त्र मन्त्र केवल जप मात्र से ही ब्राह्मणों के समस्त कार्यों की सिद्ध (सफलता प्रदान) कर देता है उसी प्रकार क्षत्रिय तथा वैश्य जातीय मनुष्य भी इस मन्त्र से जप-होम-अभिषेक आदि क्रियाएं जिस उद्देश्य के लिए करता है, उसे अवश्य ही प्राप्त कर लेता है।

आदित्यमण्डलं पश्यन् जानुदघ्ने जले स्थितः।
यावदस्तमनुं विप्रः सर्वान् कामनवाप्नुयात्॥१३७॥

आपदं निस्तरेद्विप्र आत्मनो वा परस्य वा।
आदित्यमण्डलासीनां दुर्गां दुर्गहरां शिवाम्॥१३८॥
शङ्खचक्रधरां सौम्यां वरदाभयधारिणीम्।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च रक्ताभां जातवेदसीम्॥१३९॥
चिन्तयित्वा जगद्धात्रीं पश्यन्नादित्यमण्डलम्।
आस्यदघ्ने जले स्थित्वा जपेत्तद्गतमानसः॥१४०॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
महद्भिः पातकैः सर्वैः पातकैरुपपातकैः॥१४१॥
पापैश्च मुच्यते घोरैस्तथा रोगभयादिभिः।

किसी सरोवर अथवा नदी में घुटने तक जल में खड़े होकर सूर्यमण्डल को देखते हुए सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त मन्त्र का जप करने वाला ब्राह्मण (साधक) अपनी समस्त कामनाओं को सिद्ध (प्राप्त) कर लेता है। वह ब्राह्मण (विद्वान साधक) अपनी विपत्ति हो अथवा किसी अन्य की, सभी से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

यदि साधक मुख तक स्थित जल में खड़े होकर, सौम्याकृतिवाली, त्रिनेत्रों वाली, चार भुजाओं वाली तथा भुजाओं में शंख-चक्र-वर एवं अभयमुद्रा धारण की हुई, आपद्नाशिनी अग्निस्वरूपा अथवा जातवेद मन्त्र की अधिदेवता तथा विश्व को धारण करने वाली शिवा स्वरूपिणी दुर्गा का रक्ताभ रूप में सूर्यमण्डल के अन्तर्गत चिन्तन करके उसी में अपने चित्त को एकाग्रकर आग्नेयास्त्र मन्त्र का एक हजार आठ बार जप (नित्य) करता है, तो वह अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति कर लेता है। यहाँ तक कि इस जप क्रिया द्वारा वह सभी छोटे-मोटे दोषों के साथ ही बड़े-बड़े दोषों (अपराधों), पापों तथा भयानक-दुस्तर रोगों एवं भयों से भी मुक्त हो जाता है।

जलस्य मण्डले मन्त्री जुहुयादनया जलम्॥१४२॥
सूर्यवारं समारभ्य शतमष्टोत्तरं बुधः।
सुवर्णं लभते मन्त्री सद्यो रत्नान् स्वरूपतः॥१४३॥
नाभिदघ्ने जले स्थित्वा मण्डलाभिमुखः स्वयम्।
देव्याऽभिषिच्यमानोऽहं यत्नैरपि विचिन्तयेत्॥१४४॥
अभिषिञ्चेत् स्वकं देहं जलैर्मन्त्राभिमन्त्रितैः।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं शत्रुनाशं जलं च यम्॥१४५॥
सौभाग्यमचलां लक्ष्मीं लभते नात्र संशयः।

किसी सरोवर अथवा नदी में सुविधानुसार गहराई तक जल में खड़े होकर अपने सामने जल-तल पर प्रतिबिम्बित सूर्य मण्डल में, आग्नेयास्त्र मन्त्रों का उच्चारण करते हुए जल के द्वारा ही एक सौ आठ बार हवन करे। इस क्रिया के द्वारा साधक को शीघ्र ही स्वर्ण तथा स्पष्टतः रत्नों की प्राप्ति होती है। इस प्रयोग को रविवार से प्रारम्भ (करके लगभग चालीस दिनों तक) करना चाहिए।

इसी प्रकार जल में प्रतिबिम्बित सूर्य मण्डल के सामने नाभि-मात्र गहराई तक जल में खड़े होकर, स्वयं का देवी रूप में चिन्तन करते हुए, उस मण्डलस्थ जल से मन्त्रोच्चारण सहित अपना अभिषेक करे। ऐसा करने से साधक को, निश्चित रूप से आयु, आरोग्य, सौभाग्य, अचला लक्ष्मी तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, साथ ही उसके शत्रुओं का विनाश भी हो जाता है।

प्रभूतैरिन्धनैरग्निं स्थाप्य प्रज्वाल्य वाग्यतः॥१४६॥
अष्टदिक्षु च मध्ये च गन्धपुष्पादिभिर्यजेत्।
प्राच्यामग्निमहादुर्गा मन्त्राणामधिदेवताम्॥१४७॥
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्मनसा वाथ वै शिवाम्।
शङ्खं चक्रं धनुष्चापं दधतीं मृत्युतर्जनीम्॥१४८॥
वामे चक्रमसिं चेषुं सन्नद्धां विविधायुधैः।
पवित्रां सिंहाधिरूढां गायत्रीं कुमारीं जपेत्॥१४९॥
ध्यायेदीप्सितसिद्धिदां त्रिनयनां सिंहाधिरूढां शिवाम्।
ध्यायन् जपेदष्टोत्तरशतं मन्त्रदेशिकोत्तमः।
प्रक्षिपेत् काष्ठशलाकां ज्वलितेऽग्नौ मुहुर्मुहुः।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि विनश्यन्ति भयानि च॥१५०॥
किमत्र बहुनोक्तेन राज्यं शत्रुहतं लभेत्।

साधक अपने सम्मुख किसी कुण्ड अथवा वेदी पर अत्यधिक मात्रा में समिधाओं को स्थापित करके मौन रहते हुए यथाविधि अग्नि प्रज्वलित करके, उसकी आठों दिशाओं में गन्ध-पुष्पादि द्वारा उस अग्नि का पूजन करके अग्नि के पूर्व दिशा में मन्त्रों की अधिदेवता अग्निरूपिणी महादुर्गा शिवा की गन्धपुष्पादि द्वारा अथवा मानसिक पूजन करे। पूजन के पश्चात् कौमार्यावस्था में स्थित गायत्री स्वरूपिणी महादुर्गा का सिंह पर आरूढ़ तथा दक्षिण हाथों में शंख, चक्र, धनुष तथा मृत्यु को प्रताड़ित करने वाली तर्जनी मुद्रा एवं वाम हाथों में चक्र, तलवार, बाण तथा अनेकों अन्य प्रकार के आयुधों को धारण की हुई स्थिति में ध्यान करके आग्नेयास्त्र मन्त्र का जप करना चाहिए। उपर्युक्त श्लोकों में आयुधों की स्थिति का वर्णन उचित प्रतीत नहीं होता है। श्री विद्यार्णव तन्त्रानुसार अग्नि स्वरूपिणी अष्टभुजा दुर्गा को हाथों में चक्र, गदा, तलवार, खेट, बाण, धनुष, पाश तथा तर्जनीमुद्रा धारण की हुई स्थिति में ध्यान करना चाहिए।

इसके पश्चात् वाञ्छित सिद्धियों को प्रदान करने वाली त्रिनेत्र धारिणी, सिंहारूढ़ दुर्गा का ध्यान करते हुए तथा मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करते हुए यथोचित हवनीय (सम्भवतः पलाश) काष्ठ खण्ड को प्रज्वलित अग्नि में बार-बार डालना चाहिए। इस प्रयोग द्वारा साधक के सभी कार्य सिद्ध होते हैं तथा उसके समस्त भयों (भय के कारणों) का विनाश हो जाता है। अधिक क्या कहें, उपर्युक्त विधि के अनुसार साधना करने से राजा अपने शत्रुओं का वध करके पुनः अपने राज्य को भी प्राप्त कर लेता है।

आयुरारोग्यकामस्तु समाधाय हुतनाशनम्॥१५१॥
प्राच्यामग्नेरधिष्ठात्रीं दुर्गां गन्धादिनाऽर्चयेत्।
हुनेद् दुर्गां पार्षदाय तथैकैकाहुतिं क्रमात्॥१५२॥
पार्श्वयोश्च तथा दुर्गां पार्षदेभ्यस्ततः क्रमात्।
तिलेन जुहुयादाज्यं व्याहृतिभिस्ततः परम्॥१५३॥
क्रूरग्रहविनाशाय गोमूत्राक्तैः सकण्टकैः।
तदग्ने जुहुयान्मन्त्री सर्वग्रहं विनश्यति॥१५४॥
अश्वत्थः प्रथमो ज्ञेयो द्वितीयो वट उच्यते।
उदुम्बरस्तथा प्लक्षो वृक्षाणां क्रम ईरितः॥१५५॥
चतुर्णां क्षीरवृक्षाणां सन्निधौ जुहुयात् क्रमात्।
मध्वक्तैस्तु तथा सर्वैर्वश्याः स्युर्मरणान्तिकम्॥१५६॥
पुरञ्जनपदं राष्ट्रं तद्वदेव वशं नयेत्।
तथा वर्णाश्च चत्वारो वश्याः स्युश्च यथाक्रमम्॥१५७॥

दीर्घायु तथा आरोग्य (रोग रहित-स्वास्थ्य) की कामनावाला साधक किसी कुण्ड अथवा वेदी पर सविधि अग्नि स्थापन (प्रज्वलित) करके, पूर्व की दिशा में आग्नेयास्त्र मन्त्र की अधिदेवता दुर्गा का गन्धपुष्पादि द्वारा पूजन करके मन्त्रोच्चारण सहित एक सौ आठ बार आज्य युक्त तिल से हवन करे। इसके बाद दुर्गा की पार्श्व शक्तियों (अथवा आयुधों), तथा पार्षदों के लिए एक-एक आहुति द्वारा हवन करे। तदुपरान्त पञ्च व्याहृतियों के लिए घृत से हवन करे। क्रूर-ग्रह-दोषों के विनाश के लिए कण्टकयुक्त समिधा को गोमूत्र से सिक्त(भिगो) करके हवन करना चाहिए। इस प्रकार के हवन से सभी ग्रहो के दोषों की शान्ति होती है।

पीपल, बरगद, गूलर तथा प्लक्ष इन चार दुग्ध वाले वृक्षों की समिधाओं को मधु (अथवा त्रिमधु) में भिगोकर क्रमशः हवन करने से क्रमशः ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों ही वर्ण के मनुष्य मृत्यु पर्यन्त साधक के वशीभूत हो जाते हैं। इस प्रकार के हवन से क्रमशः गृह, ग्राम, नगर तथा राष्ट्र के भी सभी मनुष्य जीवन पर्यन्त साधक के प्रति वशीकृत हो जाते हैं।

॥ भूमि-पुर-क्षेत्रादि रक्षा विधानम्॥

पलाशवृक्षं संस्पृश्य यन्त्रसारैस्तु पञ्चभिः।
छित्त्वा परशुना भित्त्वा पञ्चधा तं क्रमेण तु॥१५८॥
प्राच्यां प्राग्दक्षिणांशश्च प्रतीच्यंशस्तथैव च।
उदीच्यंशश्च सन्ध्यादौ मासपक्षदिनं ततः॥१५९॥
शङ्खं चक्रं च जलजं ताञ्च कौमोदकीं तथा।
पञ्चगव्येन संगृह्य स्वैस्वैर्मन्त्रैर्विधानतः॥१६०॥

तत्रावाह्य विशोध्य तां समाराध्य यथाक्रमम्।
एवमेव क्रमेणैव मन्त्रयेच्च शतं शतम्॥१६१॥
समापयेच्चतुः शंङ्खं शङ्खादिषु यथाक्रमम्।
अभ्यर्च्य देवदेवेशीं मनुनानेन भक्तितः॥१६२॥
स्मृतं नैव जपेन्मन्त्रमभिमन्त्र्य च भक्तितः।
अग्रहारपुरक्षेत्रगृहवप्रादिषु क्रमात्॥१६३॥
चतुर्दिक्षु च मध्ये च खनित्वा हस्तमात्रकम्।
पञ्चगव्यं विनिःक्षिप्य तथा शङ्खादि विन्यसेत्॥१६४॥
स्वे स्वे स्थाने समभ्यर्च्य पूजयित्वव दलान्यपि।
ध्यायेत् समन्ततो दुर्गा सिंहारूढां यथाविधि॥१६५॥
यस्यैवं कुरुते राज्ये स देशो निरुपद्रवः।
धनधान्यसमृद्धश्च सदा निष्कण्टको भवेत्॥१६६॥
पञ्चवक्त्रमयं नास्ति न कथञ्चन सम्भवेत्।

उपर्युक्त श्लोकों में जिस रक्षा विधान का वर्णन है वह अस्पष्ट होने के साथ ही अपूर्ण भी है। उपयुक्त प्रयोग विधि निम्नवत् है।

किसी पलाश के वृक्ष को जिसका मुख्य तना काफी मोटा हो, उसे स्पर्श करते हुए आमन्त्रित करके, काटकर अथवा किसी कारीगर से कटवा कर उसके मुख्य तने को परशु (कुल्हाड़ी) आदि लौह शस्त्र से पाँच खण्ड कर दें। खण्ड करते समय क्रमशः पहले पूर्व भाग से फिर दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा मध्य से खण्डित करना चाहिए। इसके पश्चात् किसी कुशल शिल्पी द्वारा उसके पूर्व खण्ड से शंख, दक्षिण खण्ड से (नन्दन नामक) तलवार, पश्चिम खण्ड से चक्र, उत्तर खण्ड से शार्ङ्ग नामक धनुष तथा मध्य खण्ड से कौमोदकी नामक गदा (इन पाँच विष्णु आयुधों) का निर्माण करायें।

तदुपरान्त इन पाँचों आयुधों को पञ्चगव्य में रखकर प्रत्येक आयुध पर एक-एक दुर्गा का आवाहन पूजन करके उसी दुर्गा मन्त्र द्वारा उन आयुधों को सौ-सौ बार अभिमन्त्रित करे अर्थात् एक अस्त्र पर एक दुर्गा का आवाहन-पूजन तथा उसके मन्त्र द्वारा सौ बार अभिमन्त्रण करे। कहीं-कहीं आयुधों को एक-एक हजार मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करने का विधान है। इसके बाद जितनी संख्या में आयुधों को अभिमन्त्रित किया गया है, उतनी ही संख्या में हवन भी करे तथा स्रुक द्वारा घृत का सम्पात उन आयुधों पर करता रहे। हवन के पश्चात् पुनः पूर्ववत् संख्या में दुर्गा मन्त्रों का जप करे। इसके बाद आयुधों का ध्यान पूजन करके विष्णु पञ्जर सिद्ध(विष्णु पञ्जर में वर्णित)शंखादि आयुधों के स्व-स्व मन्त्रों का एक-एक हजार बार उन आयुधों पर जप करें। फिर उसी स्थल पर ही एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसके चारों ओर चार दिशाओं में चार और गड्ढे बनाकर कौमोदकी को मध्य में तथा शंखादि आयुधों को पूर्वादि क्रम से पञ्चगव्य सहित गड्ढों में रखकर उन्हें (गड्ढों को) मिट्टी से भरकर

समतल कर देना चाहिए। तदुपरान्त आयुधों के स्व-स्व मन्त्रों से उनका पूजन करके उन्हें बलि प्रदान करना चाहिए। मन्त्रज्ञ साधक को इस प्रकार से अपनी भूमि, नगर, क्षेत्र, गृह, किला (दुर्ग) राष्ट्र आदि की रक्षा का विधान करना चाहिए। जिस स्थान की रक्षा करनी हो उसके मध्य स्थल में सभी साधन-प्रयोग करना चाहिए। जिस देश अथवा राज्य में इस प्रकार का रक्षा-विधान किया जाता है, वह स्थान धन-धान से सम्पन्न, सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित तथा भली-भाँति सभी विपत्तियों से सुरक्षित रहता है। इस पञ्चमुखी रक्षा विधान से श्रेष्ठ अन्य कोई विधान नहीं है और न ही भविष्य में कोई होगा।

चक्रमन्त्र - **ॐ सुदर्शन महाचक्राय धम-धम सर्वदुष्ट भयं कुरु-कुरु छिन्द-छिन्द विदारय-विदारय परमन्त्रान् ग्रस-ग्रस भक्षय-भक्षय भूतानि त्रासय त्रासय हुं फट् चक्राय नमः।**

शंख मन्त्र - **ॐ महाजलचराय स्वाहा।**

नन्दन खड्ग-मन्त्र - **ॐ खड्ग तीक्ष्ण छिन्द-छिन्द महाखड्गाय नमः।**

शार्ङ्ग धनुष मन्त्र - **ॐ महाशार्ङ्गाय सशराय नमः।**

कौमोदकी गदा मन्त्र - **ॐ महाकौमोदकि बले सर्वासुरान्तकि प्रसीद हुं फट् स्वाहा।**

पञ्चशुक्लोत्पलान्यानि गृहीत्वा पूर्ववत् क्रमात्॥१६७॥
एवमाराध्यतां मन्त्री निखनेत् सर्वशान्तये।
अथवा पूर्ववन्मन्त्री पञ्चगव्येन मन्त्रितम्॥१६८॥
महादिदिक्षु मध्ये च निखनेत् सर्वशान्तये।
एवं च पञ्चदुर्गाया विनियोग उदीरितः॥१६९॥

यदि साधक पूर्वोक्त रूप से आयुधों के निर्माण में समर्थ नहीं है तो आयुधों के विकल्प के रूप में पाँच श्वेत कमलों को ग्रहण कर पूर्वोक्त रूप से उन्हें पञ्चगव्य में रखकर उन पर दुर्गा मन्त्रों का आवाहन (ध्यान) पूजन करके उन्हें पूर्ववत् ही अभिमन्त्रित करे। केवल उन पर आयुध मन्त्रों का पूजन-मन्त्र जपादि क्रियायें छोड़कर (अथवा आयुधों के रूप में उनकी कल्पना करके) सभी क्रियायें पूर्ववत् करनी चाहिए। तत्पश्चात् पहले की भाँति ही उन्हें यथाविधि गड्ढों में स्थापित कर देना चाहिए। इससे सभी प्रकार की आपदाओं से वह क्षेत्र सुरक्षित रहता है तथा वहाँ हर प्रकार की शान्ति रहती है। इस प्रकार पञ्च दुर्गाओं (दुर्गा मन्त्रों) का विनियोग करना कहा गया है।

॥ पुनश्च आग्नेयास्त्रस्य विभिन्न प्रयोगाः॥

शतपत्रसहस्रं तु हुत्वाऽऽज्याक्तं बलिं हरेत्।
सुवर्णं लभते तद्वदुत्पलैः पुष्टिमाप्नुयात्॥१७०॥
वासांसि चाप्नुयान्मन्त्री पुष्पवर्णानुरूपतः।
मध्वाज्याक्तैः सितैः पुष्पैः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥१७१॥

प्रणम्य पुनराज्याक्तमुपतिष्ठेद् दिवाकरम्।
जप्त्वाऽयुतं सहस्रं वा मोक्षं गच्छेन्न संशयः॥१७२॥
ब्रह्मवर्चसकामस्तु पलाश-समिधो हुनेत्।
न्यग्रोध-समिधो हुत्वा धनधान्यमवाप्नुयात्॥१७३॥

गुलाब (अथवा कमल) को गो-घृत से सिक्त करके मन्त्र सहित एक हजार बार हवन करने तथा मन्त्राधिदेवता को बलि प्रदान करने से साधक को स्वर्ण की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार (भिन्न-भिन्न वर्णों वाले) कमलों से हवन करने पर पुष्टि तथा पुष्प-वर्णानुसार वस्त्रों की भी प्राप्ति साधक को होती है।

मधु तथा घृत से भीगे हुए श्वेत पुष्पों द्वारा हवन करने से साधक की सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

नित्य नवोदित सूर्य का ध्यान-प्रणाम-पूजनादि करके घी से भीगे हुए रक्तपुष्पों द्वारा हवन करने तथा आग्नेयास्त्र मन्त्र का दश हजार अथवा एक हजार (ही) जप करने वाले मनुष्य को निःसन्देह मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मतेज की अभिलाषा वाला साधक आग्नेयास्त्र मन्त्र के द्वारा पलाश की समिधाओं को घृत से भिगोकर हवन करे। बरगद की समिधाओं द्वारा इसी भाँति हवन करने से धनधान्य की प्राप्ति होती है।

उदुम्बरसमिद्धोमाद्धनवानन्नवान् भवेत्।
अश्वस्थ-समिधो हुत्वा कार्यमाशु च साधयेत्॥१७४॥
सम्मोहोच्चाटनं कुर्वन् रात्रौ नग्नस्तु वाग्यतः।
दुर्गास्थानेषु नवसु दुर्गाबीजेन शर्करान्॥१७५॥
यावदेवं रिपुं कृत्वा रिपुमध्ये विनिःक्षिपेत्।
ततो यास्यन्ति सहसा भीताः सद्यः परस्परम्॥१७६॥

उपर्युक्त रूप से गूलर की समिधाओं को गो-घृत में भिगोकर हवन करने वाला मनुष्य धनवान तथा अन्नपति होता है। पीपल की समिधाओं से हवन करने वाला व्यक्ति अपने सभी कार्यों को शीघ्र ही सम्पन्न करने वाला होता है।

यदि साधक स्वशत्रुओं को सम्मोहित कर उनका उच्चाटन करने का इच्छुक है, तो वह रात्रि में नग्न होकर मौन रहते हुए नौ दुर्गा स्थानों (मन्दिरों) से वहाँ की मिट्टी एकत्रित करे। तत्पश्चात् जितने भी शत्रु है, उतनी बार दुर्गा बीज सहित आग्नेयास्त्र मन्त्र से उस मिट्टी को (सम्भव हो तो नाम सहित) अभिमन्त्रित करके शत्रुओं के मध्य उसे फेंक दे। ऐसा करने से वे सभी शत्रु परस्पर एक दूसरे से भयभीत होकर शीघ्र ही पलायन कर जाते हैं।

सावित्र्या संपुटीकृत्य दुर्गाबीजं समं न्यसेत्।
इष्टसिद्धिर्भत्याशु नात्र कार्या विचारणा॥१७७॥
आत्मनो वा परस्यापि रोगादिपरिपीडितः।
समारभ्य जपेन्मन्त्री सद्यः सद्यो विमुच्यते॥१७८॥

धान्यहोमाद् भवेद् धान्यं पयसा पशुमान् भवेत्।
बिल्वैर्लक्ष्मीमवाप्नोति श्री पुष्पेश्च तथैव च॥१७९॥
मधूकाक्तैश्च तत्पत्रैर्विश्वमात्मवशं नयेत्।

आग्नेयास्त्र मन्त्र को गायत्री मन्त्र से सम्पुटित करके दुर्गा बीज के साथ यदि जप किया जाय तो अभीष्ट की सिद्धि (इच्छित कार्य में सफलता) शीघ्र ही होती है। इस प्रकार से जप कार्य करने वाला मन्त्र साधक स्वयं को अथवा दूसरों को रोगादि की पीड़ा से शीघ्र ही मुक्त कर लेता है।

आग्नेयास्त्र मन्त्रोच्चारण सहित (त्रिमधु अथवा आज्य युक्त) धान्य (अन्न) से हवन करने वाला साधक धान्यों से सम्पन्न तथा खीर (अथवा दूध) से हवन करने वाला अनेक पशुओं का स्वामी होता है।

इसी प्रकार बेल फल के चूर्ण (खण्ड) तथा लौंग से हवन करने वाला लक्ष्मी (सम्पत्ति) को प्राप्त करता है। महुए के रस अथवा तेल से भीगे उसी के पत्तों द्वारा हवन करने से सभी मनुष्यों (सारे संसार) को साधक अपने वश में कर लेता है।

आदित्यमण्डलादग्रे यः कृत्वा भुवि वैरिणः॥१८०॥
ज्वालानिर्दग्धमानस्तु अधोवदनमारुतम्।
जानुदघ्ने जले तिष्ठन् ध्यायन् वह्निमयं जलम्॥१८१॥
अति दुर्गेति मन्त्रेण गृहीत्वाऽञ्जलिना जलम्।
रिपुदेहे विनिःक्षिप्य सहस्रं क्रोधसंयुतम्॥१८२॥
प्रज्वालय हस्तैर्हृदयं शतपर्ण्यादिभिः स्पृशेत्।
प्रोक्षणेन जलस्यैव वैरिणः कारयेद्॥१८३॥
आदित्यमण्डलाधस्तादग्निरापो विजृम्भितम्।
तयोर्मध्यगतः शत्रूज्वालामालाकुलावृतः।
ध्यातः शत्रुर्विनश्येत् कार्या विचारणा॥१८४॥

सूर्य मण्डल के आगे पृथ्वी पर अग्नि की ज्वालाओं से जलता तथा नीचे मुख किये श्वास-प्रश्वास लेता हुआ शत्रु का ध्यान करे। फिर घुटने तक जल में स्थित होकर जल का अग्नि रूप में चिन्तन करे। तत्पश्चात् हाथ में जल लेकर अति दुर्गा मन्त्र का उच्चारण करते हुए क्रोधावेशित अवस्था में होकर शत्रु के शरीर पर फेंके। इस जल फेंकने की क्रिया को मन्त्रोच्चारण सहित एक हजार बार करनी चाहिए। इस प्रकार अग्नि रूप जल से शत्रु को जलाकर, प्रयोगजनित दोष की शान्ति के लिए अपने हाथों को धोकर, हाथ के द्वारा अथवा कमल आदि पुष्प लेकर उसके द्वारा अपने हृदय का स्पर्श करे। इस प्रकार केवल जल प्रोक्षण मात्र से ही साधक स्वशत्रु का वध करने में सफल हो जाता है।

सूर्य मण्डल के नीचे अग्नि तथा जल की कल्पना कर उन दोनों के मध्य अग्नि ज्वाला समूहों से व्याकुल (पीड़ित) होकर मुख फाड़े शत्रु का ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करें। इस प्रकार केवल ध्यान (तथा जप) मात्र से ही निःसन्देह शत्रु का विनाश हो जाता है।

दिनास्त्र-कृत्यास्त्र विधानम्

॥ अस्त्र-नाम-निरूपणम्॥

अथो दिनास्त्रं कृत्यास्त्रं वक्ष्ये शत्रुविमर्दनम्।
अतिदुर्गामनुं प्राहुर्दिनास्त्रं मन्त्रवित्तमाः॥१८५॥
प्रतिलोममिमं मन्त्रं कृत्यास्त्रं च प्रचक्षते।
दिनास्त्रस्य षडङ्गानि प्रतिलोमोदितान् विदुः॥१८६॥

अब शत्रुओं का सर्वनाश करने वाले दिनास्त्र तथा कृत्यास्त्र का वर्णन करता हूँ। मन्त्र-शास्त्र को जानने वालों ने अति दुर्गा मन्त्र को ही दिनास्त्र कहा है। इस दिनास्त्र मन्त्र के प्रतिलोम रूप को कृत्यास्त्र (**त्षरप नः स दोवे तिहाद्नि तोयती राममसो सुन वाम। सेदवेतजाग्निः(स्)त्यतारिदु धुंसिं ववेना श्वावि णिर्गादुतिअ॥**) कहते हैं। दिनास्त्र तथा कृत्यास्त्र दोनों के षडङ्गादि (वर्ण-न्यास, पद-न्यास, वर्ण शक्ति पूजादि) प्रतिलोम विधि से (आग्नेयास्त्रवत्) करना चाहिए। यहाँ पञ्च आद्यवर्णो (अति दुर्गाणि) से प्रारम्भ कर मन्त्राक्षर प्रतिलोम करना चाहिए न कि क्रम से पूरे त्रिष्टुभ् मन्त्र (जातवेदस मन्त्र) का प्रतिलोम करना चाहिए। शारदा तिलक के अनुसार अति दुर्गा मन्त्र (दिनास्त्र) के षडङ्ग न्यासादि अनुलोम रूप से करना चाहिए

(दिनकृत्यम्)

॥ शत्रु-मारण-प्रयोगा:॥

भानुबिम्बगतं शत्रौमधोवक्त्रं विषाहवम्।
मूलादुत्थितया ग्रस्तं कुण्डल्या भावयन् सुधीः॥१८७॥
मूलाधारे क्षिपेत् सद्यः प्रस्फुरत्कालपावके।
दिनत्रयाज्ज्वराकान्तो रिपुः प्राणान् विमुञ्चति॥१८८॥

दिनास्त्र मन्त्र का जप करते हुए सूर्यमण्डल में अधोमुख (मुख नीचे किये हुए) विष से पीड़ित शत्रु का ध्यान करें। पुनः मूलाधार से ऊपर की ओर उठी हुई कुण्डलिनी द्वारा उसे पकड़ा हुआ ध्यान करके, ध्यानावस्था में ही उस शत्रु को मूलाधार में स्थित प्रज्वलित कालाग्नि में डाल दे। इस प्रयोग को तीन दिनों तक करने से शत्रु ज्वर से पीड़ित होकर यमलोक को प्रस्थान कर जाता है।

दिनास्त्रेण प्रविद्धांङ्ग स्वाधिष्ठानगतं रिपुम्।
पञ्चवायुसमिद्धेन वह्निना दग्धविग्रहम्॥१८९॥
ध्यायन् मनुं जपेत् सद्यः स भवेद् यमवल्लभः।
मणिपूरगतं शत्रुमग्निना दग्धविग्रहम्॥१९०॥

ध्यायन् दिनास्त्रं प्रजपेत् स मृत्युवशतां व्रजेत्।
अनाहताहितः शत्रुर्निर्दग्धो मन्त्र वह्निना॥१९१॥
पाशेन बद्ध्वा शीघ्रेण नीयते यमकिङ्करैः।
विशुद्धस्थानगो वैरी दिनबाणेन पीड़ितः॥१९२॥
अधोमुखः स्मृतस्तूर्णं परासुः स्याद् दिनत्रयात्।
आज्ञायां निहतं शत्रुं दहेद्दिनाग्निना धिया॥१९३॥
पुत्रमित्रकलत्रादीन् हित्वा मृत्युमुपाश्रयेत्।

दिनास्त्र के द्वारा फेंके जाने पर शत्रु के शरीर को स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित हुआ सा ध्यान करके वहाँ पञ्चवायु द्वारा प्रज्वलित अग्नि से उस शत्रु के शरीर को पूर्णतः जला (भस्म) हुआ सा ध्यान करें। ध्यान करते समय साधक दिनास्त्र मन्त्र का जप भी करता रहे। इस प्रकार के ध्यान से वह शत्रु शीघ्र ही यम को प्रिय (मृत्यु को प्राप्त) हो जाता है।

दिनास्त्र मन्त्र का जप करते हुए (दिनास्त्र द्वारा प्रक्षिप्त) मणिपूर चक्र को प्राप्त (में स्थित) शत्रु को मन्त्राग्नि द्वारा दग्ध हुआ सा ध्यान करे तो शीघ्र ही वह शत्रु मृत्यु के वशीभूत (मृत्यु को प्राप्त) हो जाता है।

इसी प्रकार अनाहत चक्रगत शत्रु को मन्त्राग्नि द्वारा दग्ध हुआ सा (दिनास्त्र मन्त्र जपते हुए)ध्यान करे तो उस शत्रु को यम के सेवक पाशों से बाँधकर यमपुरी ले जाते हैं।

दिनास्त्र से पीड़ित, विशुद्ध चक्रगत, अधोमुख स्थित शत्रु का ध्यान करने से तीन दिनों में वह शत्रु गत-प्राण (मृत्यु को प्राप्त) हो जाता है।

इसी प्रकार आज्ञाचक्र में स्थित शत्रु को प्रज्वलित ज्ञानाग्नि द्वारा जलाते हुए ध्यान करने पर वह अपने पुत्र-स्त्री-मित्रादि (सभी सम्बन्धियों) का परित्याग कर मृत्यु के आश्रय में चला जाता है।

नाभिमात्रोदके स्थित्वा ध्यायन् बिम्बं दिनेशितुः॥१९४॥
वैरिणं दग्धसर्वाङ्गं मन्त्रमष्टोत्तरं शतम्।
जपेत् सप्तदिनादर्वाक् यमलोकं स गच्छति॥१९५॥
रविवारं समारभ्य सप्ताहं प्रजपेन्मनुम्।
सूर्योदयं समारभ्य यावदस्तमयो भवेत्॥१९६॥
सन्निपातज्वराविष्टो यमग्रस्तो भवेदरिः।
स्थित्वा दुर्गालये मन्त्री त्रिरात्रं वर्जिताशनः॥१९७॥
दिनबाणेन विद्धाङ्गं वैरिणं परिचिन्तयन्।
जपेन्मनुमिमं शत्रुर्ज्वरितो मरणं व्रजेत्॥१९८॥
स्पृष्ट्वा दुर्गां जपेन्मन्त्रं मनसा त्रिदिनं स्मरन्।
शूलप्रोतं निजरिपुं दिनास्त्रेण प्रपीडितम्॥१९९॥
ज्वरेण महताविष्टो जायतेऽसौ यमातिथिः।

किसी सरोवर अथवा नदी में नाभि के बराबर गहरे जल में खड़े होकर दिनास्त्र मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करते हुए, सूर्य मण्डल के मध्य शत्रु के सर्वाङ्ग को अग्नि के द्वारा जला हुआ सा ध्यान करे। इसे प्रतिदिन सात दिनों तक करने से (सात दिनों से पूर्व ही) शत्रु की मृत्यु हो जाती है। यह प्रयोग सात दिनों का है। समय से पहले कार्य सिद्ध हो जाने पर भी प्रयोग को सात दिनों तक अवश्य करना चाहिए। प्रयोग को रविवार (अथवा मङ्गलवार) से प्रारम्भ कर सूर्योदय से सूर्यास्त तक जप करने से शत्रु सन्निपात ज्वर से ग्रस्त होकर यम के द्वारा ग्रहीत (मृत्यु के वशीभूत) हो जाता है।

किसी दुर्गा-मन्दिर में स्थित होकर, तीन रात्रियों तक निराहार रहते हुए, दिनास्त्र से बींधे (घायल, छिदे)हुए अङ्गो वाले शत्रु का ध्यान करते हुए यदि साधक दिनास्त्र मन्त्र का जप करता है तो वह शत्रु ज्वर से पीड़ित होकर मर जाता है।

तीन दिनों तक निराहार रहते हुए, दुर्गा की प्रतिमा का स्पर्श करते हुए तथा दिनास्त्र से अत्यधिक पीड़ित तथा शूल से विद्ध हुआ स्व शत्रु का ध्यान करते हुए, यदि साधक दिनास्त्र मन्त्र का जप करता है तो वह शत्रु तीव्र ज्वर से ग्रस्त होकर यम का अतिथि (मृत्यु को प्राप्त) हो जाता है।

रविमण्डलगं शत्रुं दष्टं तद्रथपन्नगैः॥२००॥
विषाग्निदग्धसर्वाङ्गं ध्यायन्नुष्णेन वारिणा।
तर्पयेद् दिनबाणेन स्यादसौ यमवल्लभः॥२०१॥
रविविम्बादागतया ज्वालया ग्रस्तविग्रहम्।
रिपुं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं स क्रीडति यमान्तिके॥२०२॥
ग्रहयुक्तार्कविम्बस्थं विद्धं मन्त्रमयैः शरैः।
प्रतिपद्य निजं शत्रुं प्रजपेन्मन्त्रवित्तमः॥२०३॥
रिपुं नयति शीघ्रेण यमदूतो यमालयम्।

सूर्यमण्डल में रथ पर स्थित तथा सर्पो के द्वारा डसे गये एवं उसके विष से दग्ध हुए सर्वाङ्ग वाले शत्रु का ध्यान करके दिनास्त्र मन्त्र द्वारा गरम जल से उसका तर्पण करे अर्थात् गरम जल को सूर्य की ओर तर्पण विधि से फेंके। इस प्रयोग से उस शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

सूर्यमण्डल से निकलती हुई अग्नि ज्वाला से आक्रान्त (आच्छादित) शत्रु के शरीर का ध्यान करते हुए दिनास्त्र मन्त्र का जप करने से शत्रु यम के पास क्रीडा करता है अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती है।

राहु ग्रह द्वारा ग्रसित (ग्रहण काल में) सूर्य मण्डल में मन्त्रमय बाणों से विद्ध स्वशत्रु का ध्यान करते हुए साधक दिनास्त्र मन्त्र का (दश हजार) जप करे तो उस शत्रु को यमदूत शीघ्र ही यमलोक ले जाते हैं।

प्रलयानलसंकाशां कालरात्रिमिवापराम्।।२०४।।
शूलपाशधरां घोरां सिंहस्कन्धनिषेदुषीम्।
सवितुर्मण्डलान्तःस्थां रक्तनेत्रत्रयोद्गतैः।।२०५।।
विस्फुलिङ्गैर्निर्दहन्तीं रिपुमाकुलविग्रहम्।
स्पष्टद्रंष्टाधरां नृत्यद्भुकुटीकुटिलाननाम्।।२०६।।
तर्जयन्तीं निजं शत्रुं तर्जन्या भीमरूपया।
दंष्ट्रामयूखजालेन द्योतयन्तीं दिगन्तरम्।।२०७।।
शूलेन वैरिणो वक्षो दारयन्तीं भयङ्करीम्।
जपेद् दिनत्रयं मन्त्री मारयेद् रिपुमात्मनः।।२०८।।

प्रलयकालीन अग्नि की दीप्ति के समान आभावाली, दूसरी कालरात्रि के समान, शूल तथा पाश धारण की हुई, देखने में घोर (भयंकर) स्वरूप वाली, सिंह के कन्धे पर बैठी हुई, सूर्यमण्डल के मध्य में विराजमान (क्रोध के कारण) दाँतों से अधर को दबाये (काटती) चञ्चल भौंहो (दृष्टि) तथा वक्र मुख वाली, दाँतों की ज्योति पुञ्ज से दिशाओं को प्रकाशित करती हुई, शूल के द्वारा शत्रुओं के वक्ष को छिन्न-भिन्न करती हुई, भयंकर विग्रह वाली दुर्गा को, साधक अपने शत्रु को, रक्तवर्ण तीन नेत्रों से निकलती हुई अग्नि कणों (चिनगारियों) से जलाती तथा भयंकर रूप एवं उठी हुई तर्जनी के द्वारा धमकाती (डराती) हुई सी तथा इसके कारण अपने शत्रु के शरीर को पीड़ित हुआ सा ध्यान करते हुए दिनास्त्र मन्त्र का जप करे। इस प्रयोग को तीन दिनों तक करने से साधक अपने शत्रु को मारने में सफल हो जाता है।

अस्त्रमन्त्रकृतन्यासः प्रलयाग्निसमप्रभाम्।
रक्तवस्त्रधरां क्रुद्धां रक्तनेत्रत्रयान्विताम्।।२०९।।
सिंहारूढां धावमानां धावमानं रिपुं प्रति।
खड्गेन तच्छिरश्छित्त्वा क्षणाद् व्योमतलं गताम्।।२१०।।
ध्यात्वा दुर्गां जपेन्मन्त्री त्रिदिनं वर्जिताशनः।
अनेनैव विधानेन रिपुर्मृत्युप्रियो भवेत्।।२११।।
कर्माण्येतानि कुर्वीत दिवसे न तु रात्रिषु।

साधक पहले दिनास्त्र अस्त्र मन्त्र से स्वाङ्गो में विधिवत् न्यास करे। तत्पश्चात् प्रलयाग्नि के समान दीप्तिमान, रक्तवस्त्रधारण की हुई, क्रोधावस्था में स्थित, रक्तवर्णीय तीन नेत्रों वाली, सिंह पर बैठी हुई, (भय से) भागते हुए शत्रु के पीछे दौड़ती हुई तथा तलवार से उस शत्रु के शिर को काटकर पल भर में (शीघ्र ही) आकाश में जाती (स्थित) हुई दुर्गा का ध्यान करके दिनास्त्र मन्त्र का जप करे। इस प्रयोग को साधक तीन दिनों तक निराहार रहते हुए करे। इस विधि से प्रयोग करने पर शीघ्र ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है। इन सभी (ऊपर कहे गये मारण-प्रयोग) कर्मों को साधक दिन में ही (दिनास्त्र मन्त्र प्रयोग होने के कारण) करे, रात्रि में नहीं।

॥ शत्रु-मारण-प्रयोगाः॥

पश्चिमामुखलिङ्गस्य सजीवं महिषं पुरः॥२१२॥
निखाय तस्य शिरसि कुण्डं कृत्वा त्रिकोणकम्।
तस्मिन् समेधिते वह्नौ यथावद् देशिकोत्तमः॥२१३॥
सत्रिकोणान् समन्त्रार्णान् साध्यनामसमन्वितान्।
अजारक्तेन संसिक्तान् कारस्करसमद्विरान्॥२१४॥
सहस्रं जुहुयाद् देवीं ध्यात्वा सवितृमण्डले।
प्रलयाग्निसमां घोरां द्वात्रिंशद्भुजशोभिताम्॥२१५॥
उद्यदायुधसंदीप्तां नृत्यन्तीं सिंहमस्तके।
महाद्रंष्ट्रां महाभीमां ज्वलत्केशीं नदन्मुखीम्॥२१६॥
रक्तार्द्रमांसवदनां घूर्णितोग्रत्रिलोचनाम्।
अनेन विधिना शत्रुर्महाज्वरप्रपीडितः॥२१७॥
विमुञ्चति निजं देहं पुत्रमित्रादिभिः सह।

पश्चिमाभिमुख शिवलिङ्ग अथवा पश्चिम द्वार वाले शिव मन्दिर के सम्मुख जीवित भैंसे को भूमि में गाड़कर उसके शिरोभाग वाली भूमि पर त्रिकोण कुण्ड की रचना करे। गुरु के आदेशानुसार यथाविधि उस कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करे। तत्पश्चात् कारस्कर की समिधाओं पर त्रिकोण (अधोमुख) बनाकर उसके मध्य पल्लव विधि से साध्यनाम सहित दिनास्त्र मन्त्र को लिखकर उन समिधाओं को बकरी के रक्त से भिगोकर, देवी का सूर्य मण्डल में ध्यान करके उसके (दिनास्त्र) मन्त्रों के द्वारा उन समिधाओं से एक हजार बार हवन करे। देवी का ध्यान निम्नवत् करें।

वह देवी प्रलयाग्नि के समान तीव्र आभा वाली, भयंकर स्वरूप वाली, बत्तीस भुजाओं से युक्त तथा उन भुजाओं द्वारा धारण किये हुए अस्त्रों को ऊपर की ओर उठाये हुए होने के कारण उनके तेज से प्रकाशित, सिंह के मस्तक (स्कन्ध) पर नृत्य करती हुई, भयंकर बड़े-बड़े दाढों तथा विशाल शरीर वाली प्रज्वलित अग्निवत् केशों वाली, मुख से गर्जना करती हुई, मांस तथा रक्त से भीगे हुए मुखवाली तथा इधर-उधर घूमते हुए चञ्चल एवं उग्र प्रतीत होने वाले तीन नेत्रों से युक्त है। इस प्रकार देवी का ध्यान करके हवन करने से साधक का शत्रु तीव्र ज्वर से अत्यधिक पीडित होकर अपने पुत्र-मित्रादि सहित शरीर का त्याग कर देता (अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता) है।

ऊर्ध्वमुष्णाम्भसा मन्त्री लम्बयित्वा भुजङ्गमम्॥२१८॥
भानुविम्बगतां दुर्गां सहस्रादित्यसन्निभाम्।
सहस्रपाणिचरणां सहस्राक्षिशिरोमुखीम्॥२१९॥
सहस्रनागबद्धाङ्गी त्रासयन्तीं जगत्त्रयम्।
ध्यायेन्मूलेन सर्पास्ये तर्पयेदुष्णवारिणा॥२२०॥
संयतः कालपाशेन वैरी मुञ्चेत् सुजीवितम्।

किसी खुले बड़े पात्र में गरम जल लेकर उसके ऊपर अधोमुख जीवित सर्प किसी माध्यम के द्वारा लटका दे। तदुपरान्त हजारों सूर्यों की (संयुक्त प्रभावत् तीव्र) आभा के समान दीप्तिमान, हजारों हाथ, पैर, नेत्र, शिर तथा मुखों से युक्त, हजारों नागों से आवद्ध (धारण की हुई) शरीराङ्ग वाली तीनों लोकों को अपने स्वरूप तथा शक्ति (तेज) से पीड़ित करती हुई दुर्गा का सूर्य मण्डल के मध्य स्थित हुई सी ध्यान करके संयत चित्त होकर मूल (दिनास्त्र) मन्त्र के द्वारा उसी गरम जल से सर्प के मुख में (पर) कुचलाकाष्ठ की कलछी से तर्पण करे। इस प्रयोग से शत्रु काल पाश द्वारा जीवन से मुक्त कर दिया जाता है अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती है।

मध्याह्नार्कायुतप्रख्यां नदन्तीं नरसिंहवत्॥२२१॥
घोरसिंहसमासीनां महाभीषणदर्शनाम्।
शूलप्रोताहितां ध्यायन् जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥२२२॥
तर्पयेदुष्णतोयेन सर्पवक्त्रे दिनत्रयम्।
यमस्य भवनं गच्छेदरातिर्नात्र संशयः॥२२३॥

मध्याह्न कालीन दश हजार सूर्यवत् प्रखर अपार तेज (प्रकाश) पुञ्ज के समान दिखाई देने वाली, नृसिंह के समान गर्जना करती हुई, भयङ्कर सिंह पर बैठी हुई, देखने में महाभयङ्कर प्रतीत होने वाली तथा शत्रु को शूल से विद्ध की हुई दुर्गा का ध्यान करके साधक (उपर्युक्त रूप से लटके हुए) सर्प के मुख में दिनास्त्र मन्त्र के द्वारा गरम जल से तर्पण करे। इस प्रयोग को तीन दिनों तक (प्रतिदिन जप-तर्पण सहित) करने से शत्रु की निश्चित ही मृत्यु हो जाती है।

ऋक्षवृक्षप्रतिकृतिं प्रतिष्ठितसमीरणाम्।
उष्णोदके विनिःक्षिप्य विषाढ्यो विधिना ततः॥२२४॥
अर्केन्द्वनलसङ्काशां खड्गखेटकधारिणीम्।
नयनत्रयनिर्गच्छद्विस्फुलिङ्गशतगलाम् ॥२२५॥
सिंहस्थां सर्पभूषाढ्यां त्रैलोक्यभयदायिनीम्।
खड्गकृत्ताहितां ध्यायन् प्रजपेदयुतं मनुम्॥२२६॥
विधानेनामुना शत्रुर्ग्रस्तो भवति मृत्युना।

साधक स्वशत्रु के नाम-नक्षत्र से सम्बन्धित वृक्ष के काष्ठ से उसकी प्रतिमा बनाकर, उस पर पल्लव विधि से साध्य नाम-कर्म सहित मन्त्र लिखकर तथा उसकी (उस शत्रु नाम से ही) प्राण-प्रतिष्ठा करके, गरम जल में उस प्रतिमा को डालकर, जल को विषाक्त कर दे। इसके बाद खड्ग तथा खेटक (ढाल) धारण की हुई, सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि के समान तेजपूर्ण तीनों नेत्रों से सैकड़ों शृंखलावृत् अग्नि-कण (चिनगारी) समूहों को निकालती हुई, सर्पों को आभूषण के रूप में धारण की हुई तथा सिंह पर बैठी हुई तीनों लोकों को भय प्रदान करने वाली एवं खड्ग के द्वारा शत्रु को काटती (शत्रु पर प्रहार करती) हुई देवी महादुर्गा ध्यान करते हुए दिनास्त्र मन्त्र का दश हजार जप करे। इस विधि से प्रयोग करने पर साधक का शत्रु मृत्युग्रस्त (मृत्यु को प्राप्त) हो जाता है।

प्रकल्प्य दुर्गायतने त्रिकोणं कुण्डमुत्तमम्॥२२७॥
तत्र संज्वलिते वह्नौ महिषीशकृताकृताम्।
पुत्तलीमजरक्ताक्तां प्रतिष्ठितसमीरणाम्॥२२८॥
छित्वा छित्वा च जुहुयादजरक्तान्वितां निशि।
ध्यात्वा दुर्गां प्रनृत्यन्तीं महिषोरःस्थलान्तरे॥२२९॥
शूलेन महिषस्याङ्गं भिन्दन्तीं घोरदर्शनाम्।
अट्टहासैरजस्रोत्थैर्भीषितासुरसैनिकाम् ॥२३०॥
प्रलयानलसङ्काशां ज्वलन्नेत्रत्रयान्विताम्।
संदंष्ट्राधरसंभिन्नां दंष्ट्राभीममुखाम्बुजाम्॥२३१॥
खड्गखेटकयुक्ताभिः कन्याभिश्च समन्विताम्।
अनेन विधिना शत्रुः प्रयाति यमसन्निधिम्॥२३२॥
दिनास्त्रमेतत् कथितं शत्रुनिग्रहकारकम्।
कृत्यास्त्रदेशितान् कुर्यात् प्रयोगान्मन्त्रवित्तमः॥२३३॥

दुर्गा के किसी मन्दिर में त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित करे। भैंस के गोबर से शत्रु की प्रतिमा बनाकर, पूर्ववत् साध्य-नाम-कर्म युक्त दिनास्त्र मन्त्र लिखकर, तदुपरान्त उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके, उसे बकरे के रक्त से गीला कर दे। तत्पश्चात् भैंस (महिषासुर) के वक्षः स्थल पर नृत्य करती हुई, शूल के द्वारा भैंसे के अंगों का भेदन करती हुई, भयंकर दृश्यमाना, अपने तीव्र हास (अट्टहास) के द्वारा निरन्तर प्रकट होती हुई ध्वनि से असुर सैन्य समूह को भयभीत करती हुई प्रलयाग्नि के समान दीप्तिमाना, प्रज्वलित अग्निवत् तीन नेत्रों से युक्त, क्रोध के कारण अधर को दांतों से दबाये (चबाते) हुए, भयंकर दाढ़ों से युक्त मुखवाली तथा खड्ग एवं ढाल धारण की हुई कन्याओं से घिरी हुई (अथवा कन्याओं सहित) दुर्गा का ध्यान करके, उस शत्रु-प्रतिमा को काट-काटकर पुनः बकरे के रक्त से सिक्त करते हुए रात्रि में हवन करे। इस विधि से प्रयोग करने पर शत्रु शीघ्र ही यम के पास गमन कर जाता है। शत्रु-निग्रह कारक यह दिनास्त्र का प्रयोग कहा गया है। अर्थात् दिनास्त्र मन्त्र द्वारा साधक को हवन करना चाहिए। मन्त्रज्ञ साधक को आगे कहे गये सभी प्रयोग कृत्यास्त्र मन्त्र से ही करना चाहिए।

॥ कृत्यास्त्रेण मारण-प्रयोगाः॥

आधारादुत्थितां देवीं कुण्डलीं सर्परूपिणीम्।
सुषुम्नारन्ध्रमार्गेण यातां व्योमस्थलं ततः॥२३४॥
मुखेन शत्रुमादाय निवृत्तां स्वगृहं प्रति।
ज्वलत्कालानलैर्दीप्तां विचिन्त्य प्रजपेन्मनुम्॥२३५॥
सप्तभिर्वासरैः शत्रुर्मृत्युमाप्नोति मोहितः।
अङ्गारवारे चिताग्नौ सर्षपस्नेहलोडितम्॥२३६॥

सिद्धार्थकुडवं जप्त्वा जुहुयात् पक्षमात्रतः।
कृत्यास्त्रज्वालया दग्धो रिपुर्यमपुरं व्रजेत्॥२३७॥
चतुर्दश्यामर्धरात्रे चितास्थीन्यथ साधकः।
व्रणतैलविलिप्तानि चिताग्नौ जुहुयात्ततः॥२३८॥
अनेन विधिना शत्रुर्मत्युमेष्यति कातरः।
तुषास्थिनिर्मितां शत्रोर्व्रणतैलपरिप्लुताम्॥२३९॥
प्रतिमां स्थापितप्राणां जुहुयान्निशि साधकः।
छित्वा छित्वाऽजरक्तेन सप्ताहान्म्रियते रिपुः॥२४०॥

मूलाधार से उठकर सुषुम्ना छिद्र मार्ग द्वारा आकाश (अथवा सहस्रार) की ओर जाती हुई तथा वहाँ से शत्रु को अपने मुख में लेकर पुनः अपने गृह मूलाधार में लौटकर आती हुई सर्परूपिणी कुण्डलिनी का प्रज्वलित कालाग्नि के समान दीप्तिमान (तथा उस अग्नि में दग्ध होते हुए शत्रु का) ध्यान करते हुए कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करे। इस प्रयोग को सात दिनों तक (रात्रि में) करने से शत्रु मोहित (पागलसा) होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मङ्गलवार के दिन (रात्रि में) चिता की अग्नि में सरसों के तेल से भीगे हुए एक कुडव मात्र पीली सरसों द्वारा कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करते हुए हवन करे। इस प्रयोग को एक पक्ष (१५ रात्रियों) तक करने से कृत्यास्त्र की ज्वाला से दग्ध हुआ शत्रु यमलोक को चला जाता है।

चतुर्दशी (विशेषकर कृष्णपक्ष) की अर्धरात्रि में, चिता से संग्रहीत अस्थियों को भिलावा के तेल में भिगोकर, उसके द्वारा चिताग्नि में हवन करे तो, साधक का शत्रु (पीड़ा से अत्यधिक) दुखी होकर प्राण त्याग देता है।

धान (अथवा जौ) की भूसी तथा चिता-अस्थि से शत्रु की प्रतिमा बनाकर, पूर्ववत् शत्रु-नाम-कर्म सहित मन्त्र लिखकर तथा उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके, उसे भिलावा के बीजों से प्राप्त तेल द्वारा लिप्त करके, रात्रि में उसे काट-काट कर तथा प्रत्येक खण्ड को बकरे के रक्त से सिक्त करके अग्नि-कुण्ड में कृत्यास्त्र मन्त्र बोलते हुए हवन करे। सात दिनों तक प्रतिदिन इस प्रयोग को करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

श्मशानवालुकां स्पृष्ट्वा साक्षतां नियुतं जपेत्।
विकिरेत्तांस्तडागादौ कृत्यास्त्रक्वाथितं जलम्॥२४१॥
तदीय पीतमचिरान् निहन्ति सकलान् जनान्।
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां प्रजप्तैः प्रेतभस्मभिः॥२४२॥
महिषाज्येन लुलितास्तन्मन्त्राक्षरसंख्यया।
निर्माय गुटिका एताः सम्यग्जप्तसमीरणाः॥२४३॥
चितिकाष्ठेधिते वह्नौ जुहुयाद् दृढमानसः।
चतुर्दशीत्रयादर्वाक् शत्रुर्मृत्युवशो भवेत्॥२४४॥

श्मशान की बालू (अथवा राख या मिट्टी) में चावल को मिलाकर उसे स्पर्श करते हुए एक लाख (दश लाख) बार कृत्यास्त्र मन्त्र का जप (करते हुए उसे अभिमन्त्रित) करे। इसके पश्चात् कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करते हुए पानी में उस बालुका सहित चावल को उबाल कर, उसे किसी तालाब आदि में बिखेर दे। उस जल को जो कोई भी मनुष्य पियेगा वे सभी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे।

कृष्ण पक्ष की मङ्गलवार युक्त चतुर्दशी को श्मशान की राख को कृत्यास्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसे भैंस के घी में मिलाकर (तथा भली-भाँति मर्दित करके) मन्त्रवर्ण संख्या के बराबर (४४) गोलियाँ बनाकर प्रत्येक की शत्रु नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् चिताकाष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करके स्थिर चित्त होकर उस गोली के द्वारा मन्त्रोच्चारण सहित हवन करे। तीन चतुर्दशियों में इस प्रयोग को करने से उससे पहले ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

श्मशानभस्म सिद्धार्थ पञ्चगव्ये विनिःक्षिपेत्।
महिषस्थांस्मरन् देवीं कालाग्निसदृशप्रभाम्॥२४५॥
भर्जयेत् प्रजपेन्मन्त्रं विषकाष्ठैश्चितानले।
दुर्गागारे प्रजहुयादनेनायुतमन्त्रवित्॥२४६॥
पुनरादाय तद्भस्म सेनायां वैरिणः क्षिपेत्।
सा सेना बहुधा भिन्ना ज्वररोगविमोहिता॥२४७॥
आयुधानि परित्यज्य युद्धकाले पलायते।
गेहग्रामादिषु क्षिप्तं कुर्यादुच्चाटनं क्षणात्॥२४८॥

श्मशान की भस्म तथा पीली सरसों को पञ्चगव्य में डालकर, प्रलयाग्नि के समान आभा से युक्त तथा भैंसे पर आरूढ देवी का ध्यान करते हुए तथा कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करते हुए, विष (कुचला) वृक्ष के काष्ठ को चिताग्नि द्वारा प्रज्वलित करके, उस पर उपर्युक्त मिश्रण को मन्त्र का जप करते हुए भूने। फिर दुर्गा के मन्दिर में इस भुने हुए मिश्रण से मन्त्रज्ञ साधक दश हजार बार हवन (मन्त्रोच्चारण सहित) करे। तदुपरान्त उस हवनीय भस्म को लेकर शत्रु-सेना के मध्य फेंक दे। इससे वह सेना छिन्न-भिन्न सी हो जाती है तथा (सेना के सभी सैनिक) ज्वर से मोहित (पागल) सी होकर युद्ध के समय अपने अस्त्र-शस्त्रों को छोड़कर के भाग खड़ी होती है। इसी भस्म को गृह-ग्रामादि में फेंकने से वहाँ के निवासियों का शीघ्र ही उच्चाटन हो जाता है।

सप्तारवारे कुलिके दुर्गावेश्मसु शर्कराः।
सप्तमाहेन्द्रदिग्वर्जं गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम्॥२४९॥
महिषीपञ्चगव्येषु भर्जयेत्तां यथाविधि।
भूयो जपित्वा विकिरेद् गेहग्रामपुरेष्विमाः॥२५०॥
स देशो नश्यति क्षिप्रं दग्धमन्त्रभवाग्निना।

सात मङ्गलवारों में से प्रत्येक मङ्गलवार को कुलिक काल में (दिन का दशम मुहूर्त) किसी दुर्गा मन्दिर की एक-एक दिशा से (प्रति मङ्गलवार एक दिशा से) (पूर्व दिशा को छोड़कर सात मङ्गलवारों में सातों दिशाओं से) मिट्टी अथवा धूल ग्रहण करके सबको मिलाकर अन्तिम मङ्गलवार को ही उनका स्पर्श करते हुए कृत्यास्त्र मन्त्र जप द्वारा उनको अभिमन्त्रित करे। तत्पश्चात् उस अभिमन्त्रित मिट्टी को, भैंस के गोबर, दूध, दही, घृत तथा मूत्र में मिलाकर कुचला-काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित करके उस पर कुचला की कलछी से ही चलाते हुए भूने। यदि इस भुनी हुई मिट्टी को किसी घर, गाँव या नगर में बिखेर दिया जाय तो वह स्थान मन्त्र शक्ति से उत्पन्न अग्नि द्वारा जलकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। मिट्टी को भूनते तथा बिखरते समय भी कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करते रहना चाहिए।

ब्रह्मदण्डी मर्कटिकां करक्रोशनिकात्रयम्॥२५१॥
भौमवारेषु कुलिके गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम्।
चतुर्दश्यां रिपोर्गेहे निखनेत् प्रजपन्मनुम्॥२५२॥
सार्द्धं पुत्रकलत्राद्यैरुत्सादो जायते रिपोः।
एकैकं वा खनेन्मन्त्रीमण्डलात्तत्फलं लभेत्॥२५३॥

ब्रह्मदण्डी, मर्कटिका (कपकच्छुकेवांच) तथा करक्रोशनिका (वज्रदण्ड) इन तीनों पदार्थों को मङ्गलवार के दिन कुलिक काल में ग्रहण करके, उसे मन्त्र (कृत्यास्त्र) द्वारा अभिमन्त्रित करे। तत्पश्चात् चतुदर्शी को मन्त्र का जप करते हुए उस अभिमन्त्रित किये हुए तीनों पदार्थों को शत्रु के घर में गाड़ दे। इससे पुत्र-स्त्री आदि सहित शत्रु का विनाश हो जाता है।

यदि साधक एक-एक पदार्थ को अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर में गाड़ता है तो चालीस दिनों में उपर्युक्त फल की प्राप्ति होती है।

षड्बिन्दुषट्कं पुत्तल्यां निखनेदोदनान्वितम्।
स्पृष्ट्वा तां प्रजपेन्मन्त्रं कृष्णाष्टम्यां निशार्द्धतः॥२५४॥
शत्रोर्नामासमायुक्तां श्मशाने निखनेदिमाम्।
प्राणांश्च स रिपुः शीघ्रं विमुञ्चति सबान्धवः।
कपालफलकान्मन्त्री कृत्यास्त्राक्षरसंख्यकान्॥२५५॥
संस्पृश्य प्रजपेदस्त्रं प्राणस्थापनपूर्वकम्।
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां श्मशाने विषवृक्षजे॥२५६॥
जुहुयादजरक्ताक्तान् कृत्यास्त्रज्ज्वालया हतः।
रिपुर्यमपुरं गच्छेन्महाज्वरविमोहितः॥२५७॥

शत्रु के जन्म नक्षत्र वृक्ष के काष्ठ से उसकी पुतली बनाकर, उस पर पूर्ववत् नाम-कर्म-सहित कृत्यास्त्र मन्त्र लिखकर तथा उसमें, षडबिन्दु नामक कीट विशेष को छः की संख्या में भात में मिलाकर गाड़ दें। इसके बाद उसकी शत्रु-नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे स्पर्श करते हुए कृष्णपक्ष की अष्टमी की अर्धरात्रि में

कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् दूसरे दिन इस पुतले को श्मशान में गाड़ दे। इस प्रयोग से स्व बन्धु-बान्धवों सहित शीघ्र ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

कृत्यास्त्र मन्त्र में जितने अक्षर हैं उतनी ही संख्या में कपाल खण्ड (श्मशान में पड़े हुए मिट्टी के पात्र हाँडी आदि के टुकड़े) लेकर प्रत्येक पर शत्रु नाम-कर्म सहित मन्त्र लिखकर पूर्ववत् उसकी प्राण प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् उन सभी को स्पर्श करते हुए कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करे। इसके बाद कृष्ण पक्ष की मङ्गलवारी चतुर्दशी को, श्मशान में (अर्धरात्रि में), विष वृक्ष की समिधाओं से अग्नि प्रज्वलित करके, उन कपाल खण्डों को बकरे के रक्त से भिगो करके, कृत्यास्त्र मन्त्रोच्चारण सहित उनके द्वारा हवन करे। इस प्रयोग से शत्रु कृत्यास्त्र ज्वाला से मारा हुआ तीव्र ज्वर से पीड़ित होकर यमलोक गमन कर जाता है।

अजरक्तेन सम्पूर्णे कलशे निक्षिपेदहिम्।
कपालेन पिधायैनं छादयेद् रक्तवाससा॥२५८॥
पूजयेद् रक्तपुष्पाद्यैः स्पृष्ट्वा तमयुतं जपेत्।
भौमवारे निशामध्ये कारस्करसमेधिते॥२५९॥
श्मशानवह्नौ जुहुयाद् गच्छेद् यमपुरं रिपुः।

बकरे के रक्त से भरे हुए किसी कलश में जीवित सर्प डालकर उसे कपाल खण्ड से ढक दे तथा उसे चारो ओर से लाल वस्त्र द्वारा आच्छादित कर दे। तत्पश्चात् (उस कलश को शत्रु-रूप मानकर उसकी शत्रु-नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करके) रक्त पुष्पादि से उस कलश का पूजन करके उसे स्पर्श करते हुए शत्रु नाम-कर्म सहित कृत्यास्त्र मन्त्र का दश हजार जप करे। इसके बाद मङ्गलवार की अर्धरात्रि में श्मशान में स्थित होकर, श्मशान की अग्नि द्वारा कारस्कर की समिधा को प्रज्वलित करके कृत्यास्त्र मन्त्रोच्चारण सहित (भिलावे के तेल द्वारा एक अथवा दश हजार बार हवन करके) उस कलश का भी हवन कर दे। इससे शीघ्र ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

साध्यनक्षत्रवृक्षेण कृत्वा कुम्भं प्रपूरयेत्॥२६०॥
माहिषैः पञ्चगव्यैस्तं विडालं तत्र निक्षिपेत्।
जपपूजादिकं सर्वं यथापूर्वकमाचरेत्॥२६१॥
कारस्करभवे वह्नौ कृत्यास्त्रेण समेधिते।
अयुतं व्रणतैलेन हुत्वान्ते तं घटं पुनः॥२६२॥
आमस्तकं समुद्धृत्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
जुहुयाद् विधिनानेन त्रिदिनान्म्रियते रिपुः॥२६३॥

शत्रु के नाम-नक्षत्र-वृक्ष के काष्ठ द्वारा कुम्भ का निर्माण कर उसे भैंस के पञ्चगव्य (मूत्र, गोबर, दूध, दही तथा घृत) से भरकर उसमें विडाल (बिलाव) को डाल दे। फिर पूर्वोक्त घट प्रयोगवत् सभी क्रियायें जप-पूजादि सहित करके पूर्ववत् ही मंगलवार को अर्धरात्रि में जप करे। श्मशानाग्नि (चिताग्नि) द्वारा कारस्कर की समिधाओं को प्रज्वलित करके उसमें भिलावे के तेल द्वारा दश हजार बार ही हवन

करे। तदुपरान्त उस कुम्भ को दोनों हाथों से मस्तक पर्यन्त उठाकर एकाग्रचित्त से कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करके उसे भी अग्नि में डाल दे। इस प्रकार विधिपूर्वक (सम्पूर्ण क्रिया सहित) हवन करने से तीन दिनों में ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

सुन्दरं महिषीपुत्रमेकरात्रमुपोषितम्।
पाययेन्महिषीसर्पिःप्रस्थं मन्त्रेण मन्त्रितम्।।२६४।।
कुशैरावद्धसर्वाङ्गं स्थापितः प्राणमञ्जसा।
कारस्करैधिते वह्नौ व्रणतैलेन मन्त्रवित्।।२६५।।
होमं कृत्वायुतं मन्त्री जुहुयाद् यतमानसः।
एकेन दिवसेनारिर्गच्छेद् यमपुरं ततः।।२६६।।

भैंस के एक सुन्दर-स्वस्थ नर बच्चे को एक रात निराहार रखकर दूसरे दिन उसे एक प्रस्थ की मात्रा में भैंस का घृत कृत्यास्त्र मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करके पिलाये। तत्पश्चात् उसके सर्वाङ्गो को कुशों के द्वारा बाँध करके, उसमें शत्रु के नाम से विधिवत् प्राण-प्रतिष्ठा करे। इसके पश्चात् पूर्ववत् श्मशान में कारस्कर समिधाओं द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके भिलावे के तेल से दश हजार बार हवन करके इस भैंस के बच्चे का भी एकाग्रचित्त होकर मन्त्रोच्चारण सहित पूर्ण रूपेण अथवा खण्ड-खण्ड करके हवन कर दे। इस प्रयोग से एक ही दिन में शत्रु यम लोक को गमन कर जाता है।

त्रिकोणकुण्डनिहिते वह्नौ मन्त्रेण दीपिते।
अर्चिते गन्धपुष्पाद्यैरयुतं जुहुयात् क्रमात्।।२६७।।
राजीभल्लान्तकतिलतैलैः सप्तदिनं ततः।
प्रसूतिसमयप्राप्तां महिषीं स्थापितानिलाम्।।२६८।।
पूजितां गन्धपुष्पाद्यैः स्पृशन् कूर्चेन तं जपेत्।
मस्तकाद् योनिपर्यन्तं धिया वत्समनुस्मरन्।।२६९।।
आकृष्य हस्ते पतितं जुहुयादेधितेऽनले।
एवं कृते समुत्पन्ना कृत्या दीप्ता हुताशनात्।।२७०।।
भक्षयेदचिराच्छत्रुमीश्वरेणापि रक्षितम्।
पुनरग्नौ विशत्येषा कर्तारमपि कांक्षिणी।।२७१।।
एवंविधानि कार्याणि यः कुर्यामन्त्रवित्तमः।
स जपेदात्मरक्षार्थं मन्त्रान् मृत्युञ्जयादिकान्।।२७२।।

इति श्रीफेत्कारिणीतन्त्रे जातवेदादिनवदुर्गाप्रकरणे पञ्चदशः पटलः।।

साधक सर्वप्रथम त्रिकोण कुण्ड की रचना करके, उसमें यथाविधि मन्त्र सहित कुचला काष्ठ द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके, उस अग्नि का (कुण्ड सहित) गन्ध -पुष्पादि द्वारा पूजन करे। इसके बाद सात दिनों तक प्रतिदिन उस अग्नि में राई (काली सरसों), भिलावा के तथा तिल-तेल के (पृथक्-पृथक् तीनों के तेल के)

द्वारा कृत्यास्त्र मन्त्रोच्चारण सहित दश-दश हजार बार हवन करे। तत्पश्चात् ऐसी भैंस जिसका प्रसवकाल अत्यन्त निकट हो, उसे लाकर, उसमें शत्रु के नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करके, उसकी गन्ध-पुष्पादि से अर्चना करके, कूर्च (कुश समूह) द्वारा उस भैंस को मस्तक से लेकर योनि पर्यन्त स्पर्श करते हुए तथा स्व चित्त (मन) में उस भैंस के गर्भ में स्थित उसके बच्चे का स्मरण (ध्यान) करते हुए, कृत्यास्त्र मन्त्र का जप करे। इसके बाद योनि से बाहर निकलते हुए बच्चे को खींच कर उसे प्रज्वलित अग्नि में मन्त्रोच्चारण सहित हवन कर दे। ऐसा करने पर प्रज्वलित अग्नि से उत्पन्न हुई कृत्या शीघ्र ही शत्रु को खा जाती है, भले ही वह (शत्रु) ईश्वर के द्वारा ही संरक्षित क्यों न हो। इसके बाद वह अपने कर्ता को भी खा जाने की इच्छा रखने वाली वह कृत्या पुनः अग्नि में प्रवेश कर जाती है।

अतः जो मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार के प्रयोगात्मक साधनों (कार्यों) को करता है, उसे आत्मरक्षा के लिए मृत्युञ्जयादि (विभिन्न) प्राण-रक्षक मन्त्रों का जप अवश्य करते रहना चाहिए।

।। फेत्कारिणी तन्त्र के जातवेदादि-नवदुर्गा प्रकरण के अन्तर्गत
पन्द्रहवें पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

अथ षोडशः पटलः

॥ लवण मन्त्र-विधानम् (मन्त्र-कथनम्)॥

श्रीशिव उवाच

अथो लवणमन्त्रस्य विधानमभिधीयते।
सर्वशान्तिकरो मन्त्रो ग्रहणादेव सिध्यति॥१॥
व्रतोपवासनियमैः पौरश्चर्यादिभिर्विना।
छन्दोऽनुष्टुब् महारात्रिर्भद्रकाली च देवता॥२॥
ऋगाद्याः कथिताः पूर्वं लवणाम्भसि पूर्विकाः।
लवणदिद्वितीयाद्या दहत्याः परिकीर्तिताः॥३॥
संदहत्या चतुर्थी स्याद् याते पूर्वार्धपञ्चमी।
अङ्गिरा मुनिराख्यातश्छन्दोऽष्टुबुदाहृतम्॥४॥
अग्निरात्री पुनर्दुगा भद्रकाली च देवता।
चिटिमन्त्राक्षरैः कुर्यात् षडङ्गानि समाहितः॥५॥

अब मैं लवण मन्त्र के विधान (मन्त्र निरूपण सहित प्रयोगादि) को कहता हूँ। यह मन्त्र सर्व प्रकार से शान्तिकारक तथा व्रत-उपवास एवं बिना पुरश्चरण किये ग्रहण मात्र से ही सिद्धप्रद है।

अथर्ववेद में कथित इस मन्त्र के ऋषि अङ्गिरा, छन्द अनुष्टुप्, देवता अग्नि, रात्रि, दुर्गा तथा भद्रकाली है। प्रपञ्चसार के अनुसार इस मन्त्र का बीज **'क्रों'** तथा शक्ति **'ह्रीं'** (श्रीविद्यार्णव तन्त्रानुसार हल-व्यञ्जन बीज तथा स्वर शक्ति) है। जपादि के समय इन मन्त्रों से पहले **'ॐ आं ह्रीं क्रों यं लं वं'** का संयोग कर लेना चाहिए

मन्त्र स्वरूप - १) ॐ आं ह्रीं क्रों यं लं वं लवणाम्भसि तीक्ष्णोऽसि उग्रोऽसि हृदयं तव। लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता।

२) ॐ आं ह्रीं क्रों यं लं वं लवणे हूयमाने तु पुनः कुतो निद्रा कुतो रतिः। लवणः पचति पाचयति। लवणं छिन्दति भिन्दति। अमुकस्य दह गात्राणि दह मासं दह त्वचम्।

३) ॐ आं ह्रीं क्रों यं लं वं दह त्वगसृग्मांसमेदोऽस्थिभ्यो मज्जिकां दह। यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे।

४) ॐ आं ह्रीं क्रों यं लं वं तं दग्ध्वा नय मे शीघ्रमग्रे लवणस्य तेजसा। लौह प्राकारे नगरे कृष्णसर्पवृतार्गले। अत्रैव वशमायातु लवणमन्त्रपुरष्कृतः।

५) ॐ आं ह्रीं क्रों यं लं वं या ते रात्रिः शल्यविद्धस्य शूलाग्रारोपितस्य च। या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा।

(उपर्युक्त पाँचों मन्त्र 'श्री प्रपञ्चसार तन्त्रम्' में उल्लिखित श्री पद्मपादाचार्य के विवरणानुसार दिये गये हैं। चौथी ऋचा में 'वृतार्गले' के स्थान पर 'शतार्गले' तथा 'पुरष्कृतः' के स्थान पर 'पराक्रमः' पाठ भी प्राप्त होता है।)

प्रयोग काल में चिटि मन्त्र के अक्षरों द्वारा साधक को षडङ्ग न्यास करना चाहिए।

॥ चिटि-मन्त्रोद्धारः - न्यास निरूपणम्॥

पञ्चभिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम्।
पञ्चवर्णैः शिखा प्रोक्ता कवचं करणाक्षरैः॥६॥
पञ्चभिर्नेत्रमुदितं युगलेनास्त्रमीरितम्।
तारं चिटिद्वयं पश्चाच्चाण्डालि तदनन्तरम्॥७॥
महापदाद्यां तां ब्रूयादमुकं मे ततः परम्।
वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्र उदाहृतः।
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा सर्वकामफलप्रदः॥८॥

(ॐ चिटि चिटि चाण्डालि महाचाण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा।)

'चिटि-मन्त्र' मूल में (**'ॐ चिटि-चिटि'** आदि) ही दिया हुआ है।

इस **'चिटि मन्त्र'** के प्रथम पाँच वर्णों द्वारा हृदय-न्यास (**ॐ चिटि-चिटि हृदयाय नमः**), पुनः क्रमशः तीन वर्णों द्वारा शिर-न्यास (**चाण्डालि शिरसे स्वाहा**), पाँच वर्णों से शिखा-न्यास (**महाचाण्डालि शिखायै वषट्**), चार वर्णों से कवच-न्यास (**अमुकं मे कवचाय हुम्**), पाँच वर्णों से नेत्र-न्यास (**वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्**) तथा शेष दो वर्णों से अस्त्र न्यास (**स्वाहा अस्त्राय फट्**) करना चाहिए।

उपर्युक्त षडङ्ग मन्त्रों से पहले कर-न्यास करके ही हृदयादि अङ्गों में न्यास करना चाहिए।

इस चिटि-मन्त्र के भी ऋषि-छन्दादि पूर्ववत् (ऋक् पञ्चकवत्) ही हैं।

चौबीस वर्णों से युक्त यह मन्त्र साधक की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। जप काल में इस मन्त्र से पूर्व (ॐ के पश्चात्) **'आं ह्रीं क्रों'** का योग कर लेना चाहिए।

(लवण मन्त्र साधना में साधक चिटि मन्त्र के अतिरिक्त **'ऋक् पञ्चक'** द्वारा भी पञ्चाङ्ग-न्यास (नेत्र-न्यास को छोड़कर) कर सकता है। इसमें (**ॐ आं ह्रीं क्रों यं लं वं**) युक्त ऋचाओं से पूर्व चिटि मन्त्र (चौबीस वर्णात्मक) को जोड़कर जप करना चाहिए।)

मन्त्र-देवतानां ध्यानम्

॥ वह्नि-ध्यानम्॥

नवकुङ्कुमसन्निभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं भजामि वह्निम्।
स्रुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम्॥९॥

अग्नि देवता के शरीर की आभा नवीन कुंकुम (केशर) के समान है। इनके तीन नेत्र हैं तथा ये शरीर पर सैकड़ों सुन्दर दिव्य आभूषण धारण किये हुए हैं। अपने हाथों में स्रुव, शक्ति, वर तथा अभयमुद्रा धारण करने वाले रक्त कमल के आसन पर बैठे हुए इन अग्नि देव का मैं भजन (ध्यान) करता हूँ।

॥ रात्रि (देवता)-ध्यानम्॥

कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम्।
कपालपाशाङ्कुशशूलहस्तां नीलाम्बरां यामवतीं नमामि॥१०॥

जिसके शरीर की कान्ति काले वादलों के समान श्याम तथा मुख चन्द्रमा के समान (सुन्दर-आकर्षक) है, जिसके स्तन-द्वय हारों की लड़ियां (पंक्तियों) से शोभित हो रहे हैं, जिसके हाथों में कपाल, पाश, अंकुश तथा शूल-धारित है तथा जो नीलवर्णी परिधान धारण किये हुए है, उस रात्रि देवता (देवी) को मैं प्रणाम करता हूँ।

॥ दुर्गा-ध्यानम्॥

नीलाम्बुदाभामरिशङ्खशूलखड्गाढ्यहस्तां तरुणेन्दुचूडाम्।
भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गां दुर्गां स्मरेद् दुर्गतिभङ्गदक्षाम्॥११॥

शत्रु समूहों पर विजय प्राप्त करने वाली (के लिए) नील-मेघ के समान आभावाली, हाथों में चक्र-शंख-शूल तथा खड्ग धारण करने वाली, द्वितीया के चन्द्र से शोभित शीर्ष वाली, भयंकर स्वरूपा त्रिनेत्र धारिणी तथा समस्त आपदाओं के समूल नाश में कुशल भगवती दुर्गा का ध्यान करना चाहिए। (मैं ध्यान करता हूँ।)

॥ भद्रकाली-ध्यानम्॥

टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संबिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसा।
पिङ्गोर्ध्वकेशी सितधूमनेत्रा भूयाद् विभूत्यै मम भद्रकाली॥१२॥

अपनी चार भुजाओं में टङ्क, कपाल, डमरु तथा त्रिशूल एवं शिर पर अर्ध चन्द्र रूप आभूषण को धारण की हुई, उठे हुए धूसर वर्णी केश तथा श्वेत-श्याम नेत्रों वाली भद्रकाली सर्वदा मेरे ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली हों।

॥ पुरश्चरण पूर्वक काम्य (वश्य)-प्रयोगाः॥

ऋक्पञ्चकं जपेत् सम्यगयुतं तद्दशांशतः।
हविषा घृतसिक्तेन जुहुयादर्चितेऽनले॥१३॥
एवं कृत्वा पुरश्चर्यां प्रयोगे कुशलो भवेत्।
अग्निर्यामवती ध्येयौ वश्याकर्षणकर्मणोः॥१४॥
ध्यायेद् दुर्गां भद्रकालीं मन्त्री मारणकर्मणि।
जानुप्रमाणे सलिले स्थित्वा निशि जपेन्मनुम्॥१५॥
अनेन वाञ्छितःसाध्यःकिङ्करो जायते क्षणात्।
नाभिमात्रजले स्थित्वा जपेन्मन्त्रमिमं सुधीः॥१६॥
अष्टोत्तरसहस्रं यस्तस्य साध्यो वशी भवेत्।
ऋक्पञ्चकंजपेन्मन्त्री कण्ठमात्राम्भसि स्थितः॥१७॥
सप्तभिर्दिवसैर्भूपान् वशयेद् विधिनामुना।
विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनाम्ना विदर्भितम्॥१८॥
प्रक्षिप्य क्षीरसंमिश्रे जले तत् क्वाथयेन्निशि।
वश्यो भवति साध्योऽसौ नात्र कार्या विचारणा॥१९॥

ऋक् पञ्चक मन्त्र (प्रत्येक ऋचा के साथ पूर्व निर्देशित बीजों तथा चिटि मन्त्र का योग कर) का भली-भाँति दश हजार जप करके, साधक सुपूजित अग्नि में जप संख्या के दशांश भाग द्वारा घृत युक्त हवि (जौ, तिल, चावल आदि हवन सामग्री) से हवन करे। इस प्रकार मन्त्र का (साङ्ग) पुरश्चरण करने पर साधक इस मन्त्र का प्रयोग करने में कुशल (प्रयोग करने का अधिकारी) हो जाता है।

वशीकरण तथा आकर्षण के प्रयोग में अग्नि तथा रात्रि देवता का एवं मारण (विद्वेषणोच्चाटनादि) कर्म में दुर्गा तथा भद्रकाली का ध्यान करना चाहिए।

यदि साधक रात्रि में घुटने तक जल में खड़े होकर ऋक्-पञ्चक मन्त्र का (एक हजार आठ बार) जप करे तो उसका अभीष्ट साध्य व्यक्ति वशीभूत होकर शीघ्र ही सेवक के समान हो जाता है। चिटि-मन्त्र पूर्वक ही ऋक्-पञ्चक मन्त्र का जप करना श्रेयस्कर होता है।

नाभि मात्र जल में खड़े होकर भी इस मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से साध्य व्यक्ति वशीकृत हो जाता है।

इसी विधि के अनुसार जो साधक कण्ठ तक जल में खड़े होकर इस मन्त्र का पूर्वोक्त संख्या में प्रतिदिन जप करता है, सात दिनों में राजा (राजाओं) को भी वह अपने वश में कर लेता है।

ताड़ के पत्ते पर इस मन्त्र को साध्य नाम द्वारा विदर्भित करके लिखकर उसे दूध मिश्रित जल में डालकर रात्रि में उबालें। ऐसा करने से निःसन्देह वह साध्य व्यक्ति उस साधक के वशीभूत हो जाता है।

तालपत्रे लिखित्वैवं भद्रकालीगृहे खनेत्।
वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः॥२०॥
ताम्रपात्रे समालिख्य मन्त्रं साध्यविदर्भितम्।
तापयेत् खादिरे वह्नौ मासाद् वश्यो भवेन्नरः॥२१॥
त्रिकोणकुण्डमापाद्य सम्यक् शास्त्रोक्तलक्षणम्।
तस्मिन् होमं प्रकुर्वीत संस्कृते हव्यवाहने॥२२॥
प्रक्षाल्य गव्यदुग्धेन संशोष्य लवणं सुधीः।
संचूर्णितं तु जुहुयात् सप्ताहाद् वशयेज्जनान्॥२३॥
दधिमध्वाज्यसंसिक्तैः सैन्धवैर्जुहुयात्तथा।
वशयेदखिलान्देवानचिरात् किमु पार्थिवान्॥२४॥

इसी प्रकार साध्य नाम से विदर्भित करके इस ऋक् पञ्चक मन्त्र को ताड़ पत्र पर लिखकर भद्रकाली के मन्दिर में गाड़ दे। यह प्रयोग सभी प्राणियों को वशीभूत करने वाला कहा गया है।

साध्य-नाम-विदर्भित इस मन्त्र को ताम्रपत्र पर लिखकर, खदिर (खैर) की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में यदि एक मास तक (प्रतिदिन एक सौ आठ बार मन्त्र जपते हुए) तपाया जाय तो साध्य व्यक्ति साधक के वश में हो जाता है।

शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्त अच्छी तरह से त्रिकोण कुण्ड का निर्माण करके उसमें सविधि अग्नि का संस्थापन, गर्भाधानादि संस्कार तथा अर्चन करे। इसके बाद गाय के दूध द्वारा सैन्धव नमक को धोकर, उसे सुखाकर तथा चूर्णित करके उसके द्वारा एक सप्ताह तक (प्रतिदिन एक सौ आठ अथवा एक हजार आठ बार) हवन करे तो जन-समूह को भी साधक अपने वश में कर लेता है।

दही-मधु तथा घृत से सिक्त (पूर्ववत् शोधित) सैन्धव नमक (के चूर्ण) से हवन करने वाला साधक शीघ्र ही समस्त देवताओं को अपने वश में कर लेता है। फिर राजाओं को वश में करना कौन सी बड़ी बात है अथवा राजाओं को वश में करने की क्या आवश्यकता है।

विशुद्धं लवणप्रस्थं विभक्तं पञ्चधा पृथक्।
एकैकया प्रजुहुयाद् ऋचा पञ्चाहमादरात्॥२५॥
यस्य नाम्ना स वश्यः स्यादनेनैव न संशयः।
शुद्धं लवणमादाय जुहुयान्मधुरान्वितम्॥२६॥
ऊनपञ्चाशदाहुत्या वशं नयति वाञ्छितम्।
नित्यं शुद्धेन लोणेन हुत्वा शत्रुं वशं नयेत्॥२७॥
मधुत्रयसंयुक्तैर्लवणैः साधुचूर्णितैः।
जुहुयाद् वशयेन्नारीर्नरान् नरपतीनपि॥२८॥

पूर्ववत् शोधित (तथा चूर्णित) किया हुआ एक प्रस्थ सैन्धव नमक लेकर उसको पाँच भागों में विभाजित करे। फिर एक-एक भाग द्वारा (एक सौ आठ बार) एक-एक ऋचा के द्वारा हवन करे। मन्त्र में जिस साध्य के नाम का संयोग करके हवन किया गया है, वह निःसन्देह साधक के वश में हो जाता है।

शुद्ध (उपर्युक्त रूप से) नमक लेकर उसमें त्रिमधु (मधु, घी तथा शक्कर) मिलाकरके यदि उनचास (४९) बार (प्रति आहुति पाँचों ऋचाओं को बोलते हुए) हवन किया जाय तो, अभीष्ट साध्य को यह प्रयोग साधक के वश में ले आता है। पूर्ववत् शोधित सैन्धव नमक से नित्य हवन करने पर शत्रु भी साधक के वशीभूत हो जाता है। त्रिमधु के साथ पूर्ववत् शोधित-चूर्णित सैन्धव नमक का हवन करने वाला साधक समस्त स्त्री-पुरुषों के साथ राजाओं को भी अपने वश में कर लेता है। प्रत्येक वशीकरण प्रयोग से पहले साधक को अग्नि तथा रात्रि देवताओं का पूजन भी अवश्य करना चाहिए।

॥ पुत्तली-प्रयोगः॥ (वशीकरणम्)

मन्त्रं कृष्णतृतीयादौ प्रजपेद् यावदष्टमीम्।
पुत्तलीः पञ्च कुर्वीत साङ्गोपाङ्गाःसमाः शुभा॥२९॥
एका साध्यद्रुमेण स्यादन्यापिष्टमयी स्मृता।
(चक्रिहस्तमृदाऽन्या स्यादन्या सिक्थमयी स्मृता।)
लवणं पोतसंम्भूतं चूर्णितं परिशोधितम्॥३०॥
कुडवं प्रोक्षयेत् क्षीरदध्याज्यमधुभिः क्रमात्।
गुडाज्यमधुभिः सम्यग् मिश्रितेनामुना ततः॥३१॥

कुर्वीत पुत्तलीं सौम्यां सर्वावयवशोभिताम्।
प्राणमन्त्रं कृतं यन्त्रमासां हृदि विनिःक्षिपेत्।।३२।।
आसु प्राणान् प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् कुसुमादिभिः।
पश्चात् कृष्णाष्टमीरात्रौ याममात्रगते सति।।३३।।
(मातृका न्यासं मन्त्रस्य षडङ्ग-वर्ण न्यासञ्च)
विधाय मातृकान्यासं मन्त्रन्यासमनन्तरम्।
चिटिमन्त्रसमुद्भूतान् चतुर्विंशतिसंख्यकान्।।३४।।
ताराद्यान् विन्यसेद् वर्णान् स्थानेष्वेषु समाहितः।
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रुत्योर्नासास्यचिबुकेष्वपि।।३५।।
कण्ठहृत्स्तनयुग्मेषु कुक्षौ नाभौ कटिद्वये।
मेढ्रे पायौ प्रविन्यस्य शिष्टं वर्णचतुष्टयम्।।३६।।
ऊरुद्वये जानुयुग्मे जङ्घायुग्मे पदद्वये।
एवं विन्यस्य सर्वाङ्गे रक्तमाल्यानुलेपनः।।३७।।
रक्तवस्त्रधरः शुद्धः पुत्तलीं दारुणा कृताम्।
अधोमुखीं खनेत् कुण्डे पिष्टजामासनादधः।।३८।।
मृण्मयीं प्रतिमां पाददेशे न्यसेत्तथात्मनः।
मधूच्छिष्टमयीं व्योम्नि कुण्डस्योर्ध्वं प्रलम्बयेत्।।३९।।
लवणेन कृतां पश्चात् पुत्तलीं संस्पृशन् जपेत्।
ऋक्पञ्चकं यथान्यायमष्टोत्तरसहस्रकम्।।४०।।

इस प्रयोग के लिए दीक्षित साधक पहले किसी भी मास की कृष्ण-पक्ष तृतीया से आरम्भ कर उसी पक्ष की अष्टमी तक मन्त्र का (दश हजार) जप (किसी मन्दिर अथवा पवित्र स्थान में बैठ करके) करे। इसके पश्चात् अङ्गोपाङ्ग (सम्पूर्ण अवयवों) सहित समान आकार वाली (बारह अंगुल लम्बी) पाँच पुतलियों का निर्माण करे। एक पुतली का निर्माण साध्य के जन्म (नाम) नक्षत्र वृक्ष की लकड़ी द्वारा, दूसरी शालि नामक चावल की पिष्टी के द्वारा, तीसरी कुम्हार के चाक द्वारा लाई गई मिट्टी के द्वारा तथा चौथी पुतली मधुमक्खी के छत्ते के मोम से करना चाहिए। पाँचवी पुतली के निर्माण हेतु एक कुडव (चार मुट्ठी) समुद्री नमक लेकर, उसे शोधित तथा चूर्णित करके तथा दूध, दही, घृत तथा मधु से प्रोक्षित करके (अर्थात् चारो पदार्थों का मोयन देकर) पुनः गुड़ तथा घी के साथ इसे भली भाँति गूँथे। तत्पश्चात् इसके द्वारा पाँचवी पुतली का निर्माण करे। पूर्व की चारों पुतलियों के हृदयस्थल में प्राणमन्त्र-कृत यन्त्र को रखकर उन पर साध्य का नाम लिखकर उसमें साध्य के प्राणों का आकर्षण करके प्रतिष्ठित (प्राण-प्रतिष्ठा) करना चाहिए। पाँचवी पुतली में भी गुरु के निर्देशानुसार इसी प्रकार प्राणयन्त्र रखकर, साध्य के प्राण का आकर्षण करके एक सौ आठ या एक हजार आठ बार प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो प्रथम चार पुतलियों की रचना जप से पूर्व तथा पाँचवी पुतली की रचना एवं सभी में प्राण-प्रतिष्ठा आदि अष्टमी की रात्रि में ही करना चाहिए। इसके बाद सभी पुतलियों का पुष्पादि द्वारा पूजन करना चाहिए।

इसके पश्चात् कृष्णाष्टमी की रात्रि को एक याम व्यतीत हो जाने के बाद (साधक शरीर पर लाल चन्दन का लेप करके, लाल वस्त्र तथा लाल पुष्पों की माला धारण कर पवित्र हो करके प्राणायामपूर्वक) मातृका न्यास तदनन्तर चिटि-मन्त्र द्वारा षडङ्ग-न्यास अथवा ऋक् पञ्चक द्वारा पञ्चाङ्ग न्यास करे। इसके बाद चिटि मन्त्र के प्रणव सहित चौबीसों वर्णों का प्रणवादि पूर्वक एकाग्रचित होकर (आगे वर्णित शरीराङ्गों में) यथा स्थान न्यास करना चाहिए। मन्त्र के प्रथम बीस वर्णों के एक-एक वर्ण का न्यास क्रमशः मूर्धा, ललाट (भाल) दोनों नेत्र (एक-एक वर्ण) दोनों कान, दोनो नासाछिद्र, मुख, चिबुक, कण्ठ, हृदय, दोनो स्तन, कुक्षि (पेट), नाभि, कमर के दोनों ओर, लिङ्ग तथा गुदा स्थान में करे। शेष चार वर्णों में से एक-एक वर्ण का न्यास क्रमशः दोनों ऊरुओं, दोनों जानुओं, दोनों जंघाओं तथा दोनो पैरों में करे। यथा - **ॐ ॐ नमः मूर्ध्नि। ॐ चिं नमः भाले।** इत्यादि रूप से।

(श्री प्रपञ्चसार तन्त्र के अनुसार स्वयं के शरीर में उपर्युक्त न्यास करने के बाद इसी प्रकार पाँचवी पुतली में भी न्यास करना चाहिए।)

उपर्युक्त न्यास के पश्चात् पाँचों पुतलियों को ऋक्-पञ्चक तथा चिटि मन्त्र से अभिमन्त्रित करके लकड़ी द्वारा निर्मित पुतली को कुण्ड (पहले से ही निर्माण किये गये एक हाथ परिमाप वाले त्रिमेखलायुक्त त्रिकोण कुण्ड) में दो अंगुल नीचे अधोमुखी (मारण कर्म में, वशीकरण कर्म में ऊर्ध्वमुखी) करके गाड़ देना चाहिए। इसके बाद पिष्ट से निर्मित पुतली को आसन के नीचे तथा मिट्टी वाली पुतली को पैरों के पास (दो अंगुल भूमि के भीतर) स्थापित करके मोम से बनी पुतली को कुण्ड के ऊपर आकाश (अधर) में (प्रयोगानुसार अधो अथवा ऊर्ध्वमुखी) लटकाना चाहिए। लवण से निर्मित पाँचवी पुतली को सामने स्थापित करके उसको स्पर्श करते हुए ऋक् पञ्चक मन्त्र का यथा विधि (यदि पुतली में पहले ही न्यास न किया गया हो तो इस समय षडङ्ग अथवा पञ्चाङ्ग न्यास तथा मन्त्रवर्ण न्यास करके प्रत्येक ऋचा से पूर्व **'ॐ आं ह्रीं क्रों यं लं वं'** तथा चिटि मन्त्र का संयोग करके) एक हजार आठ बार जप करे।

॥ संहार क्रम (संघ) न्यास॥

संहृत्य चिटिमन्त्रार्णान् पुनस्तस्यास्तनौ न्यसेत्।
अंगुष्ठसन्धिप्रपदजङ्घा जानूरुपायुषु ॥४१॥
लिङ्गदेशे पुनर्नाभौ जठरे हृदयाम्बुजे।
स्तनद्वये तु स्कन्धयोर्चिबुके वदने पुनः॥४२॥
घ्राणयोः कर्णयोरक्ष्णोर्ललाटे मूर्द्धनि क्रमात्।
अग्निमादाय संदीप्य साध्यनक्षत्रदारुभिः॥४३॥
तस्मिन्नभ्यचर्य मन्त्रोक्तां देवतां रूप्यपात्रके।
कुसीतीरजिपुष्पाद्यैर्दत्त्वार्घ्यं प्रणमेत् सुधीः॥४४॥
मन्त्रैरेतैः प्रयोगादावन्ते संयतमानसः।

इसके पश्चात् सम्पूर्ण चिटिमन्त्र-वर्णों द्वारा, क्रमशः एक-एक वर्ण से अपने तथा पाँचवी पुतली के अंगों में एक साथ ही संहारा क्रम से न्यास करे। दोनों पैरों की

अंगुष्ठ सन्धि, दोनों चरणों (ऊपरी भाग), जंघाओं, घुटनों तथा उरुओं में एक-एक वर्ण का न्यास करे। शेष उन्नीस वर्णों का क्रमशः गुदा, लिङ्ग, नाभि, उदर, हृदय, स्तन-द्वय, कन्धों के दोनों ओर, चिबुक, मुख, दोनों नासिका, दोनों कान, दोनों नेत्र, ललाट तथा मूर्धा (शिर के ऊपर) में न्यास करे। यथा - **ॐ ॐ नमः** (अंगुष्ठ सन्ध्योः)। **ॐ चिं नमः** (प्रपदयोः)। इत्यादि रूप से।

(श्री प्रपञ्चसार तन्त्रानुसार पूर्वोक्त चिटिमन्त्र का अपने शरीराङ्ग में तत्पश्चात् पुतली के अङ्गों में सृष्टि क्रम से न्यास करने के बाद उसी समय ही इस संहार क्रम वाले न्यास को भी अपने तथा पुतली के अङ्गों में एक साथ ही कर लेना चाहिए। इस न्यास को 'सङ्घ न्यास' कहा गया है।)

न्यास के पश्चात कुण्ड में यथाविधि अग्नि स्थापन करके, साध्य-नाम-नक्षत्र-वृक्ष की समिधा द्वारा उसे प्रज्वलित करके तथा उसकी अर्चना करके, पूर्वादि क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में मन्त्राधिदेवताओं अग्नि, रात्रि, दुर्गा तथा भद्रकाली (वशीकरण में अग्नि तथा रात्रि देवता) का पूजन तथा रजत-पात्र (चषक) में रखे जल में लाल चन्दन काली राई (सरसों) तथा पुष्पादि डालकर अर्घ्य-अर्पण करना चाहिए। फिर प्रयोग (हवन) के आदि तथा अन्त में (आगे कहे जाने वाले) उपस्थापन मन्त्रों द्वारा एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करना चाहिए।

॥ अग्न्यादि देवतानामुपस्थापन मन्त्राः॥

अग्नि - ॐ त्वमाननममित्रघ्न निशाया हव्यवाहन॥४५॥
हविषा मन्त्रजप्तेन तृप्तो भव तया सह।
ॐ जातवेदो महादेव तप्तजाम्बूनद प्रभ॥४६॥
स्वाहापते विश्वभक्ष लवणं दह शत्रुहन्।

हे हव्यवाहन (आहुति रूप में दी गयी हवि को धारण कर देवताओं तक पहुंचाने वाले) अग्निदेव! आप रात्रि के मुख-स्वरूप हैं। हे शत्रुओं के नाशक! इस रात्रि में मन्त्र जप सहित दी गई हवि को रात्रि के साथ ग्रहण कर आप (दोनों ही) तृप्त हों।

हे जातवेद! हे महादेव (स्वरूप)! प्रतप्त स्वर्णाभा वाले स्वाहापति! आप सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाले, उसे जानने वाले, (नित्य अथवा प्रलय काल में) उसका भक्षण भी करने वाले तथा शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं। आप मेरे द्वारा आहुत इस लवण (शत्रु स्वरूप लवण की पुतली) को जला दें।

रात्रि - ॐ ईशे शर्वरि शर्वाणि ग्रस्तं मुक्तं त्वया जगत्॥४७॥
महादेवि! नमस्तुभ्यं वरदे! कामदा भव।
ॐ तमोमयि महादेवि! महादेवस्य सुव्रते॥४८॥
त्रियामे पुरुषं हुत्या वशमानय देवि मे।

हे विश्व शासिका, शिव की भार्या स्वरूपा रात्रि देवि! इस सम्पूर्ण विश्व को आप ही (संध्या के पश्चात् अथवा प्रलय काल में) ग्रस्त (स्वयं में छिपा) कर बाद में (प्रातः होने अथवा सृष्टिकाल आने पर) मुक्त (प्रकट) कर देती हो। हे महादेवि! आपको प्रणाम है। हे वरदायिनि! आप हमारी कामनाओं की पूर्ति करने वाली हों।

हे अन्धकार स्वरूपिणी, सुन्दर व्रतों का पालन करने वाली शिव-प्रिया महादेवि! तीसरे याम (अथवा तीन यामों) में दी गई आहुति से प्रसन्न होकर, हे देवि! (इस) पुरुष को मेरे वश में ले आयें अथवा कर दे।

दुर्गा - ॐ दुर्गे सर्गादिरहिते दुर्गसंरोधनार्गले।।४९।।
शंखचक्रधरे देवि! दुष्टशत्रुभयङ्करि।
नमस्ते दह शत्रून् मे वशमानय चण्डिके।।५०।।
शाकम्भरि महादेवि शरणं मे भवानघे।

जन्मादि से रहिता, दुर्गति (विपत्तियों) को रोकने के लिए अर्गला स्वरूपा, शंखचक्र धारिणी, दुष्टों को भय प्रदान करने वाली हे देवि दुर्गे! आपको प्रणाम है। हे चण्डिके! शाकम्भरि! अनघे (दोष रहित)! महादेवि! मैं आपकी शरण में हूँ। आप शत्रुओं को मेरे वश में कर दें अथवा उन्हें भस्म कर दें।

भद्रकाली-ॐ भद्रकालि! भवाभीष्टे! भद्रसिद्धिप्रदायिनि।।५१।।
सपत्नान् मे हन् हन् दह[1] शोषय तापय।
ॐ शूलासिशक्तिवज्राद्यैरुत्कृत्योत्कृत्य मारय।।५२।।
महादेवि! महाकालि! रक्षास्मानक्षरात्मिके।

१. जप तथा प्रयोग के समय 'दह' के स्थान पर 'दह-दह' पाठ होगा।

माङ्गलिक (कल्याण प्रद) कार्यों को सफल बनाने (पूर्ण करने) वाली भद्रकालि! शिवप्रिये! आप मेरे शत्रुओं को बार-बार मारें, उन्हें जलायें, शोषित करें तथा तपायें। शूल-तलवार-शक्ति तथा वज्रादि अपने आयुधों को उठा-उठा कर बार-बार प्रहार करते हुए उन्हें मार डालें। हे महादेवि! महाकालि! अक्षर (अविनाशी ब्रह्म) स्वरूपिणी आप हमारी (सदैव) रक्षा करें।

।। पुत्तलिकाखण्डन पूर्वक हवन-विधिः।।

साध्यं संस्मृत्य निर्भिद्य पुत्तलीं सप्तधा ततः।।५३।।
ऋक्पञ्चकं समुच्चार्य जुहुयादेधितेऽनले।
प्रथमो दक्षिणः पादस्तत्करस्तदनन्तरम्।।५४।।
शिरस्तृतीयमाख्यातं वामहस्तं ततः परम्।
मध्यादूर्ध्वं पञ्चमः स्यादधोंऽशः षष्ठ ईरितः।।५५।।
सप्तमो वामपादः स्यादेवं भागक्रमः स्मृतः।
सप्तसप्तविभागो वा प्रोक्तेष्वेषु यथाविधि।।५६।।
हुत्वैवमर्चयित्वाग्निं प्रणमेद् दण्डवत्ततः।
यजमानो धनैर्धान्यैः पूजयेद् गुरुमात्मनः।।५७।।
अनेन विधिना मन्त्री वशयेदसुरान् सुरान्।
किंपुनर्मनुजान् भूपानमात्यान् वरयोषितः।।५८।।

मन्त्राधिदेवताओं को प्रणाम करने के बाद साध्य के नाम का स्मरण करके (पुतली-पञ्चम पुतली को ही साध्य मानते हुए) लोहे के किसी तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा उस पुतली को सात खण्डों में विभाजित करें। तत्पश्चात् पूर्ववत् (सप्त बीजाक्षर तथा

चिटि मन्त्र सहित) ऋक् पञ्चक मन्त्र का उच्चारण करते हुए (खण्डन क्रमानुसार) एक-एक खण्ड द्वारा प्रज्वलित अग्नि में (कुल सात बार) हवन करें। प्रत्येक आहुति के समय पाँचों ऋचाओं को (प्रत्येक ऋचा के साथ उपर्युक्त रूप से चिटिमन्त्र को जोड़करके) बोलना चाहिए।

लवण-निर्मित पाँचवी पुतली के सप्तखण्ड निम्न प्रकार से होंगे।

प्रथम खण्ड दक्षिण पाद, द्वितीय दक्षिण कर (हाथ), तृतीय शिर, चतुर्थ वाम हस्त, पञ्चम मध्य से ऊपर का भाग, षष्ठ मध्य से नीचे का भाग तथा सप्तम वाम पाद। इनमें से प्रत्येक खण्ड को पुनः सात-सात खण्डों में विभाजित (कुल उनचास-४९ खण्ड) करके पूर्ववत् खण्ड क्रमानुसार अर्थात् पहले दक्ष पाद के सातों खण्ड, फिर दक्ष कर (हाथ) के सातों खण्ड इस प्रकार से एक-एक खण्ड द्वारा हवन करने का अन्य विधान भी कहा गया है।

[विमर्श - सप्तखण्ड खण्डित पुतली के प्रत्येक खण्ड को ग्यारह-ग्यारह भागों में खण्डित करके एक-एक खण्ड द्वारा हवन करने का भी विधान है। स्त्री वशीकरण प्रयोग में पुतली का खण्डन वाम पाद से आरम्भ करना चाहिए। इसी प्रकार स्त्री-मारण कर्म में खण्डन दक्ष-पाद से प्रारम्भ करना चाहिए।]

इस प्रकार हवन करने के बाद अग्नि का पूजन करके पूर्ववत् अग्नि आदि देवताओं को दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए। यजमान (अथवा कर्मकर्ता साधक) को चाहिए कि धन-धान्य अर्पण करते हुए वह अपने गुरु का पूजन करे। इस विधि से मन्त्रज्ञ साधक देवताओं तथा दैत्यों को भी अपने वश में कर सकता है, तो फिर मनुष्यों, राजाओं, मंत्रियों तथा श्रेष्ठ सुन्दर स्त्रियों को अपने वश में करना क्या कठिन है। अर्थात् इसके द्वारा साधक सभी प्राणियों को अपने वशीभूत कर सकता है।

।। मारण-प्रयोगः।।

मारणे पूर्वसंप्रोक्तं पुत्तलीनां चतुष्टयम्।
निवेशयेद् यथा पूर्वं साधको विधिना ततः।।५९।।
अपरां वक्ष्यमाणेन विधानेन प्रकल्पयेत्।
वाराहपारावतविट्तिलत्र्यूषणरामठैः ।।६०।।
व्रणकृन्निम्ब सिद्धार्थ साध्यवामाङ्घ्रिरेणुभिः।
महिषीमूत्रसंपिष्टैः पूर्वोक्तलवणान्वितैः।।६१।।
विधाय पुत्तलीं सम्यक् प्राणस्थापनमारभेत्।
जपपूजादिकं सर्वं कुर्यात् प्रागुक्तवर्त्मना।।६२।।
ततः पूर्वोदिते कुण्डे रात्रौ प्रज्वलितेऽनले।
दुर्गां वा भद्रकालीं वा समभ्यर्च्य यथाविधि।।६३।।
धारयेन्निशितं शस्त्रं सव्यहस्तेन साधकः।
वामपादं समारभ्य दक्षिणाङ्घ्र्यवसानकम्।।६४।।
छित्वा छित्वा प्रजुहुयान्निराहारो जितेन्द्रियः।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णचतुर्दशीम्।।६५।।

अनेनैव विधानेन कुर्याद् होमं जितेन्द्रियः।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण मारयेद् रिपुमात्मनः॥६६॥

मारण कर्म के लिए पूर्वोक्त विधि से रचित प्राण-प्रतिष्ठित प्रथम चार पुतलियों को पूर्वोक्त विधि के अनुसार ही यथा स्थान स्थापित करे। पाँचवी पुतली की रचना सुअर तथा कबूतर की विष्ठा (मल), सोंठ, काली मरिच, पीपर तथा हींग के साथ बहेड़ा, तिल, नीम तथा सरसों, इन चारों पदार्थों के तेल, साध्य के बायें पैर के नीचे की धूल, भैंस का मूत्र तथा पूर्वोक्त मात्रा में समुद्री नमक का शोधित चूर्ण मिलाकर, सबको भली-भाँति पीसकर पिष्टी की भाँति करके, इसके द्वारा करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् ही इसकी प्राण-प्रतिष्ठा, पूजन मन्त्र जपादि कर्म करे। इसके पश्चात् (अर्धरात्रि में दक्षिण मुख बैठकर) पूर्वोक्त रूप से निर्मित त्रिकोण कुण्ड में विधिवत् अग्नि प्रज्वलित करके, दुर्गा तथा (अथवा) भद्रकाली की यथाविधि अर्चना (स्तवनादि) करके, बायें हाथ में तेजधार युक्त शस्त्र लेकर, पाँचवी पुतली को, बायें पैर से प्रारम्भ कर दाहिने पैर की समाप्ति तक एक-एक अङ्ग काट कर (क्रमशः सात खण्डों का) चिटि मन्त्र सहित ऋक् पञ्चक का जप करते हुए हवन करे। जितेन्द्रिय तथा निराहार रहते हुए इस प्रयोग को करना चाहिए। इस प्रयोग को कृष्णपक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके उसी पक्ष की चतुर्दशी तक (सात दिनों तक) इसी भाँति करना चाहिए। तीन सप्ताह तक (अनवरत अर्थात् तीन बार) इस प्रयोग को करने से साधक अवश्य ही अपने शत्रु को मारने में सफल हो जाता है।

[पातक मोचन विधि - मारण कर्म के कारण होने वाले पाप से मुक्त होने के लिए साधक को, जिस रात्रि में कर्म की समाप्ति हुई है, उस रात्रि में निराहार (उपवास करके) रहते हुए अगले दिन प्राणायाम पूर्वक गायत्री मन्त्र का जप करके, गायत्री मन्त्र द्वारा ही हवन करना चाहिए।]

नीलनीरदसङ्काशो रौद्री सर्वार्थसिद्धिदा।
वारुणो वरुणा नाम ऋषिः सञ्चलनः स्वयम्॥६७॥

उपर्युक्त श्लोक के द्वारा न तो किसी पुरुष देवता और न ही किसी स्त्री देवता के ध्यान स्वरूप का पूर्णतः स्पष्टीकरण होता है। अतः यह श्लोक यहाँ भ्रामक तथा अनावश्यक प्रतीत होता है।

॥ वशीकरण-प्रयोगाः॥

यः सहस्रं जपेत्तावत् तस्य वश्यं भवेज्जगत्।
जानुदघ्ने जले स्थित्वा रजन्यां ध्यानमास्थितः॥६८॥
यमुद्दिश्य जपेन्मन्त्रं स सद्यो वशमेष्यति।
रक्तपुष्पैः समाराध्य भद्रकालीं स्पृशन् जपन्॥६९॥
शतं सहस्रं वा ध्यायन् स सद्यो वशमेष्यति।
तालपत्रे लिखेन्मन्त्रं साध्यनामविदर्भितम्॥७०॥
जप्त्वा शतं सहस्रं वा भद्रकालीगृहे खनेत्।
स दासवद् भवेत्तस्य यावज्जीवं न संशयः॥७१॥

[पिप्पलाद मतानुसार उल्लिखित 'लवण मन्त्र-विधान' के ऋक्-पञ्चक तथा इस ग्रन्थ में वर्णित 'ऋक्-पञ्चक' के मन्त्रों में थोड़ी भिन्नता है। इसके अतिरिक्त इसमें चिटिमन्त्र प्रणवादि न होकर लज्जादि ('ह्रीं चिटि चिटि' इत्यादि) है। अग्नि आदि देवताओं के प्रणाम (उपस्थापन) मन्त्र भी (जैसा कि श्लोक ६३, ६४ तथा ६५ में दिया गया है उनसे) भिन्न हैं। श्लोक ६८ से १०० वें श्लोक के पूर्वार्द्ध तक का अवलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनका सम्बन्ध पिप्पलाद मतानुसार कथित 'लवण-मन्त्र-विधान' से है तथा वहीं से ही इन्हें ग्रहण किया गया है।]

जो साधक रात्रि में घुटने तक जल में खड़े होकर रात्रि देवी का ध्यान करता हुआ 'चिटि-मन्त्र' सहित ऋक्-पञ्चक का एक हजार बार जप करता है उसके वश में सारा जगत हो जाता है। अथवा साधक जिस व्यक्ति को वशीकृत करने का लक्ष्य बनाकर जप करता है, वह व्यक्ति शीघ्र ही उस साधक के वश में हो जाता है।

लाल पुष्पों द्वारा भद्रकाली का पूजन करके, उसकी प्रतिमा को स्पर्श करते तथा उसका ध्यान करते हुए जो साधक पूर्ववत् ऋक्-पञ्चक का सौ अथवा हजार बार जप नित्य करता है, उसका साध्य शीघ्र ही उसके वश में हो जाता है।

ताड़ के पत्ते पर ऋक्-पञ्चक सहित चिटि-मन्त्र से विदर्भित साध्य-नाम-कर्म को लिखकर तथा उसकी साध्य के नाम से ही प्राण-प्रतिष्ठा करके भद्रकाली के मन्दिर में गाड दे। फिर वही मन्त्र का एक सौ आठ अथवा एक हजार आठ बार जप करे। इस प्रयोग से साध्य व्यक्ति जीवन पर्यन्त सेवक की भाँति साधक के वश में रहता है।

॥ स्त्री-वशीकरण प्रयोगः॥

रक्तपुष्पधरो मन्त्री रक्तमाल्यानुलेपनः।
प्राणायामत्रयं कृत्वा जुहुयात् सुमना भव॥७२॥
गते यामे रजन्यास्तु साध्यनामाङ्किते शुभे।
साध्यवृक्षमये पीठे समासीनो वरासने॥७३॥
प्रणतेनाग्निमध्ये तु कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा।
पद्मपुष्पं परिस्तीर्य कुशैः शरमयैरपि॥७४॥
आराध्याग्निं महारात्रिं प्राच्यामग्निं प्रपूजयेत्।
रक्तवस्त्रेण लवणैः कुर्याच्च प्रतिमां शुभाम्॥७५॥
मधुयुक्तां लोलक्रीडां पूजितामपि सेन्द्रियाम्।
अक्षराणि न्यसेत्तत्र मन्त्रस्याथ विचक्षणः॥७६॥
परिदीप्याग्निमाज्येन प्रणवेन हुनेत्ततः।
पुनर्व्याहृतिवर्णैश्च समस्तैश्च तथैव च॥७७॥
वामपादे तु चारभ्य यावदापूर्यते करः।
तावदादाय तेनैव संस्कृतेन स्रुवेण तु॥७८॥

रात्रि का प्रथम याम व्यतीत जाने पर साधक रक्त चन्दनादि का लाल लेप शरीर पर लगाकर, रक्तपुष्पों की माला तथा रक्त वस्त्र धारण कर, तथा प्रसन्नचित्त

होकर, साध्य-नाम-नक्षत्र-वृक्ष काष्ठ के द्वारा बने हुए पीठ रूप श्रेष्ठ आसन पर बैठकर, कुण्ड अथवा स्थडिल के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर, उसका परिस्तरण, चारों ओर कुशो बिछाना आदि (सभी कुण्ड के संस्कार) करके, कुण्ड के पूर्व में अग्नि तथा दक्षिण में रात्रि देवता का पूजन करें। इसके बाद पूर्ववत् लवण द्वारा (अथवा लवण में मधु मिलाकर लाल वस्त्र खण्डों द्वारा) सुन्दर मध्य भाग तथा सभी अवयवों सहित पुतली की रचना करके पूर्ववत प्राण-प्रतिष्ठा चिटि मन्त्र न्यासादि करके, कुण्ड में सविधि अग्नि प्रज्वलित कर पहले प्रणव मन्त्र से घृत द्वारा हवन करें। इसके उपरान्त व्याहृतियों (ॐ, भूः, भुवः तथा स्वः) से पृथक-पृथक हवन घृत द्वारा करके समस्त व्याहृतियों (ॐ, भूः, भुवः, स्वः) का एक साथ उच्चारण करते हुए हवन करें। इसके वाद पुतली के वाम पाद से खण्डन आरम्भ करके (पूर्व वर्णित प्रयोग के विपरीत) दक्षिण पाद-पर्यन्त सात खण्ड करके एक-एक खण्ड को संस्कारित स्रुव में लेकर हवन करे। स्त्री वशीकरण प्रयोग में इस प्रकार से ही खण्डन किया जाता है।

गुरूपदेशसिद्धानेन मन्त्रेण प्रणवादिना।
जुहुयात् सप्तभिर्मन्त्री सप्तधा ध्यानमास्थितः।।७९।।
पुनर्व्याहृतिभिश्चाज्यं जुहुयात् प्रणवेन च।
होमान्ते बलिदानं तु नित्यं कुर्याद्विजानता।।८०।।
तिललाजादिना सक्तुदधिसंमिश्रभोजनम्।
क्रमेण निक्षिपेद् भूमौ द्विस्त्रिर्वा साधकोत्तमः।।८१।।
(ॐ नमो रात्रिगणेभ्यः सर्ववश्यकरेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु
सर्ववश्याय सर्वशान्ताय बलिमिमं स्वाहा।)
दत्त्वा बलिं जपेद् भूयो लवणादिमनुं बुधः।।८२।।
परिषिच्याग्निमाराध्य महारात्रिं तथैव च।
शेषं समापयेद् विद्वान् सा सद्यो वशमेष्यति।।८३।।

इस प्रकार गुरु-उपदेश द्वारा प्राप्त तथा पुरश्चरण द्वारा सिद्ध किये मन्त्र से पुतली के दक्षिण पाद पर्यन्त सातों खण्डों द्वारा एक-एक करके सात बार में साध्य का ध्यान करते हुए हवन करे। तत्पश्चात् पुनः प्रणव (ॐ) तथा व्याहृतियों से पूर्ववत् घृत द्वारा आहुति प्रदान करे। होम के अन्त में साधक को बलिदान भी अवश्य करना चाहिए। तिल, लाजा, सत्तू, दधि आदि के मिश्रित भोजन को क्रमशः दो अथवा तीन बार भूमि पर बलि मन्त्र बोलते हुए डालना चाहिए।

बलि मन्त्र - ''ॐ नमो रात्रिगणेभ्यः सर्ववश्यकरेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु सर्ववश्याय सर्वशान्ताय बलिमिमं (बलिं इमं) स्वाहा।।''

बलि प्रदान के पश्चात् साधक को पुनः लवण मन्त्र (ऋक्-पञ्चक) का जप करना चाहिए। इसके बाद अग्नि का परिसिञ्चन (प्रोक्षण) कर, अग्नि तथा रात्रि देवताओं का पूजन करके शेष कार्य (अग्नि का विसर्जनादि) विद्वान साधक को करना चाहिए। इस प्रकार इस प्रयोग से साधक अपने (स्त्री) साध्य को शीघ्र ही वश में कर लेता है।

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णचतुर्दशी।
होमान्ते दक्षिणां भूमिं हिरण्यं वा यथाविधि॥८४॥
ऋत्विग्भ्यो गुरवे वापि दद्यात् विप्राय भोजयेत्।
यस्त्वेवं कुरुते होमं गुरुशास्त्रोपदेशतः॥८५॥
आमृत्योर्वशमायाति स मर्त्यो नात्र संशयः।

इस प्रयोग को कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके उसी कृष्णपक्ष की चतुर्दशी (सात दिनों) तक करना चाहिए। होम के अन्त में (प्रयोग की समाप्ति पर) ऋत्विग् ब्राह्मणों तथा गुरु को यथोचित रूप से सामर्थ्यानुसार भूमि, स्वर्णादि दक्षिणा के रूप में प्रदान करके ब्राह्मणों को भोजन भी कराना चाहिए। इस प्रकार जो साधक गुरू तथा शास्त्र के उपदेशानुसार हवन (प्रयोग) करता है, उसका साध्य व्यक्ति जीवन पर्यन्त उसके वश में रहता है।

॥ आकर्षण-प्रयोगः॥

तथाकर्षणमिच्छंस्तु नाभिमात्रजले स्थितः॥८६॥
सहस्रमधिकं वापि यथाकार्यमनन्यधीः।
ध्यायेन्नित्यं महारात्रौ जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः॥८७॥
पाशबन्धगतं साध्यं नियमो मातृसन्निधौ।
ज्वालामालप्रतीकाशां महारात्रिं महाभुजाम्॥८८॥
दंष्ट्राकरालवदनां स सद्यो वशमेष्यति।
भद्रकालीं समाराध्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥८९॥
रक्तपुष्पसहस्रेण प्रतिवारं वदन् क्षिपेत्।
ध्यायेन्नरं महादेवीं स सद्यस्त्वागमिष्यति॥९०॥
शत्रुपुत्रनरो नार्यः साध्यनामविदर्भितम्
क्षीरमिश्रजले क्षिप्त्वा क्वाथयेद् ध्यानामास्थितः॥९१॥
जपेच्छतं सहस्रं वा स सद्यस्त्वागमिष्यति॥९२॥

यदि साधक किसी व्यक्ति का आकर्षण करना चाहता है तो नाभिमात्र जल में स्थित हाकर कार्य की लघुता तथा गुरुता के अनुसार लवण मन्त्र का (अमुकं के स्थान पर साध्य नाम का संयोग करके) एक हजार बार अथवा अधिक बार एकाग्रचित्त होकर जप करे।

अर्धरात्रि में मातृका के सानिध्य (देवी-मन्दिर) में संयमित तथा एकाग्रचित्त होकर पाश में आबद्ध साध्य का तथा प्रज्वलित अग्नि की प्रदीप्त ज्वाला समूहों (लपटों) के समान आभावाली, बड़ी-बड़ी भुजाओं वाली तथा बड़े-बड़े दाँतों एवं भयङ्कर मुख वाली महारात्रि का ध्यान करके मन्त्र का जप करे तो साध्य व्यक्ति शीघ्र ही साधक के वश में आ जाता है।

भद्रकाली के मन्दिर में स्थित होकर उनका ध्यान तथा गन्ध पुष्पादि से पूजन करके लवण मन्त्र का एक हजार जप करे। प्रत्येक मन्त्रोच्चारण के पश्चात् एक लाल पुष्प भद्रकाली के सम्मुख (चरणों मे) अर्पित करे। इस प्रकार के प्रयोग से शीघ्र ही साध्य व्यक्ति साधक के पास आ जाता है।

शत्रु, पुत्र (अपना अथवा शत्रु का) तथा अन्य कोई भी स्त्री अथवा पुरुष, साधक जिसका भी आकर्षण करना चाहता है, उसके नाम-कर्म युक्त अक्षरों को लवण-मन्त्र सहित चिटि-मन्त्राक्षरों से विदर्भित करके, उसे ताड़-पत्र पर लिखकर क्षीर-दूध मिश्रित जल में डाल करके उबाले। उबालते समय साध्य का ध्यान करता हुआ मन्त्र का सौ अथवा एक हजार जप करे। इससे साध्य शीघ्र ही साधक के पास आ जाता है।

।। अन्यरूपेण अग्न्यादि देवतानां प्रणाम (उपस्थापन) मन्त्राः।।

अग्नि- **अरुणोऽरुणपङ्कजसन्निहितःस्रुवशक्तिवराभययुक्तकरः।**
अमितार्चिरजातगतिर्विलसन्नयनत्रितयोऽवतु वो दहनः।।९३।।

रात्रि- **नीलतरांशुककेशकलापा नीलतनुर्निबिडस्तनभारा।**
साङ्कुशपाशसशूलकपाला यामवती भवतोऽवतु नित्यम्।।९४।।

दुर्गा (कात्यायनी) -
ॐ करकमलविराजच्चक्रशङ्खासिशूला
परिलसितकिरीटोत्पाटितानेकदैत्या
त्रिनयनलसिताङ्गी तिग्मरश्मिप्रकाशा
पवनसखनिभाङ्गी पातु कात्यायनी वः।।९५।।

भद्रकाली - **सुरौद्रसितदंष्ट्रिका त्रिनयनोर्ध्वकेशोल्वणा**
कपालपरशूल्लसड्डमरूका त्रिशूलोज्ज्वला।
घनाघननिभा रणद्रुचिरकिङ्किणी मालिका,
भवद्विभवसिद्धये भवतु भद्रकाली चिरम्।।९६।।

(नवोदितसूर्यवत्) अरुण (रक्तवर्ण) आभावाले, अरुणवर्ण कमल पर बैठे हुए, हाथों में स्रुव, शक्ति, वर तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए, गति (कम्पन) रहित अनन्त रश्मि ज्वालाओं से सुशोभित तथा तीन नेत्रों से युक्त अग्नि (देव) तुम सभी की (आप लोगों की) रक्षा करें।

नीलवर्ण शरीर वाली, सघन परस्पर सटे हुए भारी स्तनों वाली, अत्यधिक नीलावस्त्र धारण की हुई, केश समूहों को (आभूषणों से) सज्जित की हुई तथा अपने हाथों में अंकुश, पाश, शूल तथा कपाल धारण की हुई रात्रि देवी आपकी नित्य रक्षा करे।

जिसके कर-कमलों में चक्र, शंख, तलवार तथा शूल विराजमान है, शिर पर स्थित स्वर्ण मुकुट से जो अति शोभा युक्त प्रतीत हो रही है, जिसने अनेकों दैत्यों का वध (मूलोच्छेदन) किया है, जो तीन नेत्रों से युक्त तथा सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्ग वाली है, जो सूर्य के समान प्रकाशमान है तथा जिसके अङ्गों (शरीर) की कान्ति अग्नि के समान है, वह भगवती कात्यायनी (दुर्गा) तुम (आप) सभी लोगों की रक्षा करे।

अति भयङ्कर बड़े-बड़े श्वेत दाँतों वाली, तीन नेत्र तथा ऊपर की ओर उठे हुए प्रचुर केशों वाली, कपाल, परशु, डमरु तथा प्रकाशमान त्रिशूल से शोभित (हाथों वाली), अति सघन (काले) मेघ के समान आभावाली तथा मधुर ध्वनि करने वाली अनेक लड़ियों से युक्त घुँघरुदार करधनी (अथवा आभूषणों) को धारण की हुई

भद्रकाली चिरकाल तक आप सभी के ऐश्वर्य सिद्धि का कारण हो अर्थात् आप सभी लोगों को धन सम्पत्ति यश आदि प्रदान करती रहे।

।। कतिपयान्य काम्य-प्रयोग:।।

खेटासिमुषलतोमरकपालशक्तिसपाशशूलान्।
दधतो दंष्ट्रोग्रा ध्येया त्रिनयनविराजिता।।९७।।
लवणेनाज्ययुक्तेन हुत्वेष्ट्वाभिभवेद् ध्रुवम्।
तिलतैलं विमिश्रित्य हुत्वा श्रीमान् भविष्यति।।९८।।
पुन्नागपुष्पैर्मिश्रित्य हुत्वा पुत्रमवाप्नुयात्।
मातुलुङ्गफलेनैव सर्वशान्तिर्भवेद् ध्रुवम्।।९९।।
उन्मत्तबीजहोमेन मत्तो भवति नान्यथा।
निम्बतैलेन युक्तेन लवणेनाशु मारणम्।।१००।।
हुत्वा वा लवणेनाशु नष्टद्रव्यं प्रसिद्ध्यति।

खेट, तलवार, मुषल, तोमर, कपाल, शक्ति, पाश तथा शूल को धारण की हुई, तीक्ष्ण भयङ्कर बड़े बड़े दाँतों तथा तीन नेत्रों से सुशोभित भद्रकाली का ध्यान तथा पूजन करके घृतयुक्त लवण द्वारा ऋक्-पञ्चक मन्त्र सहित हवन करने से साधक की उन्नति (अथवा शत्रु का पराभव) होती है। लवण के साथ तिल का तेल मिलाकर हवन करने से साधक धन से सम्पन्न होता है।

लवण तथा घृत के साथ पुन्नाग पुष्प मिलाकर हवन करने से पुत्र की प्राप्ति तथा विजौरा नीबू के साथ हवन करने से सर्व प्रकार से शान्ति प्राप्ति होती है।

धतूरे के बीज को लवण तथा आज्य में मिलाकर हवन करने से साध्य (शत्रु) पागल हो जाता है। नीम के तेल के साथ नमक मिलाकर हवन करने से शत्रु का मरण होता है। केवल नमक से हवन करने पर शीघ्र ही नष्ट-द्रव्य की प्राप्ति होती है।

।। साध्य-नक्षत्र-वृक्षा:।।

कारस्करोऽथ धात्री स्यादुदुम्बरतरुः पुनः।।१०१।।
जम्बूः खदिरकृष्णाख्यौ वंशपिप्पलसंज्ञकौ।
नागरोहिणनामानौ पलाशप्लक्षसंज्ञकौ।।१०२।।
अम्बष्ठविल्वार्जुनाख्यविकङ्कतमहीरुहाः ।
बकुलः सरलः सर्जो वञ्जुलः पनसार्ककौ।।१०३।।
शमीकदम्बाम्रनिम्बमधूका ऋक्षशाखिनः।

कारस्कर (कुचला), आँवला, गूलर, जामुन, श्वेतसार खैर, कृष्णसार खैर, पिप्पली, वंश (वाँस), नागकेसर, रोहिण (वट), पलाश, पाकड़, अम्बष्ठ (अम्बाड़ा), बेल, अर्जुन, विकङ्कत, बकुल, सरल, सर्ज (शाल), वञ्जुल, कटहल, आक, शमी, कदम्ब, आम, नीम तथा महुआ - ये सत्ताईस वृक्ष क्रमशः अश्विनी से लेकर रेवती तक २७ नक्षत्रों से सम्बन्धित नक्षत्र-वृक्ष कहे गये हैं।

।। आत्मरक्षार्थ-परकृत्या-प्रणाशन-प्रयोगः।।

आत्मरक्षादिकं सर्वं कुर्यान्मन्त्री यथा पुरा।।१०४।।
अमुना विधिना सम्यगभीष्टफलसाधने।
सदृशो नास्ति मन्त्रोऽन्यः सत्यमेव न चान्यथा।।१०५।।

अकल्पयन्तीति प्रत्यङ्गिरसो मन्त्रेणापामार्गराजीमृद्दूर्वीषि पृथगष्टोत्तरशतं हुत्वा परकृत्या प्रणाशात्मरक्षां कुर्वन् दशदिक्षु बलिं हरेन्मन्त्रैरेतैः।।१०६।।

यथा-यो मे पूर्वगतः पाप्मा तत् केनेह हेतुना कर्मणा इन्द्रस्त्वं देवराजी जम्भयतु मोहयतु शोषयतु पातयतु तापयतु द्रावयतु त्रासयतु क्षामयतु नाशयतु मारयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु।।१०७।।

कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिं स्वस्त्यनं मम यो मेऽग्निगतो यो मे ईशगतो यो मे ऊर्ध्वगतो यो मे दिविगतो यो मे पातकेनेह कर्मणा।।१०८।।

सूर्यस्त्वं देवराजो जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु तापयतु त्रासयतु बलिं तस्यै प्रयच्छतु यत् कृतं मम शिवं शुभं मम शान्तिस्वस्त्ययनं मम यो मे सर्वगतः।।१०९।।

एवं दिशासु दशसु देवताभ्यो बलिं हरेत्।
बलावेवं कृतेऽरीणामाशु कृत्या विनश्यति।।११०।।

इति श्रीपश्चिमाम्नाये फेत्कारिणीतन्त्रे तन्त्रराजोत्तमे
लवणमन्त्राख्यानं नाम षोडशः पटल।।

प्राचीन काल में मन्त्रज्ञ साधक इस (आगे कही गई) विधि द्वारा आत्मरक्षादि कार्य करके ही (मारणादि) सभी कर्म करते थे तथा भली-भाँति अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करते थे। इस मन्त्र के समान अन्य कोई भी (आत्म-रक्षक) मन्त्र नहीं है। यह बात पूर्णतः सत्य है, इसे मिथ्या नहीं समझना चाहिए।

[उपर्युक्त श्लोकों में न तो 'परकृत्या प्रणाशन' मन्त्र ही दिया गया है और न ही शुद्ध रूप से बलि मन्त्रों का वर्णन तथा विधान है। मूल को यथास्थित रखते हुए मन्त्रादि को व्याख्या में स्पष्ट किया जा रहा है।]

परकृत्या प्रणाशन (निवर्तन) मन्त्र -

यां कल्पयन्ति नोऽरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव।
तां ब्रह्मणाऽपनिर्नुद्म प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु।।

यह मन्त्र शत्रुओं द्वारा प्रयुक्त (प्रेषित) कृत्यास्त्र से साधक की रक्षा करने के साथ ही उसे प्रयोग-कर्ता के पास वापस लौटा देने वाला है।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप्, देवता प्रत्यङ्गिरा, बीज **'ॐ'** तथा शक्ति **'ह्रीं'** है।

इस मन्त्र के प्रथम आठ वर्णों से हृदय न्यास तथा शेष वर्णों को क्रमशः छः-छः वर्णों में विभाजित करके शिर, शिखा, कवच तथा अस्त्र न्यास करना चाहिए। इसके अलावा क्रमशः दो-दो वर्णों का भ्रू, ललाट, दोनों नेत्र (प्रत्येक में दो-दो वर्ण

इसी प्रकार आगे भी) गला, दोनों बाहु, हृदय, नाभि, दोनों पार्श्व, कटि के दोनों ओर, लिङ्ग तथा दोनों पैरों में न्यास करना चाहिए।

कृत्यास्त्र को वापस लौटाते समय (मन्त्र का विनियोग-न्यासादि करके तथा हवन से पहले) खड्ग-चर्म (ढाल) धारण की हुई, कृष्ण (काले) वर्ण वाली, खुले हुए बालों वाली, दिगम्बरा, दीर्घ तीक्ष्ण दाँतों वाली, सर्पों का आभूषण धारण की हुई तथा (साधक के) शत्रुओं का भक्षण करती हुई कृत्या का ध्यान करना चाहिए।

इसके पश्चात् **'यां कल्पयन्ति०'** इत्यादि मन्त्र से अपामार्ग, राई, घृत तथा हवि द्वारा पृथक-पृथक (प्रत्येक से) एक सौ आठ बार हवन करना चाहिए। तदुपरान्त दशो दिशाओं, पाताल तथा ऊपर स्वर्ग की ओर बलि प्रदान करना चाहिए।

॥ बलि-मन्त्राः॥

पूर्व दिशा में बलि प्रदान करने का मन्त्र - **''यो मे पूर्वगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा इन्द्रस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम''।**

इसी प्रकार -

आग्नेयी दिशा - **''यो मे अग्निगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा अग्निस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

दक्षिण दिशा - **''यो मे यमगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा यमस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

निर्ऋति दिशा - **''यो मे निर्ऋतिगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा निर्ऋतिस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

पश्चिम दिशा - **''यो मे वरुणगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा वरुणस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

वायव्य दिशा - **''यो मे वायुगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा वायुस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

उत्तर दिशा - **''यो मे सोमगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा सोमस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

ईशान दिशा - **''यो मे ईशानगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा ईशानस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

अधो दिशा - **''यो मे अधोगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा अनन्तस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

ऊर्ध्व दिशा - **''यो मे ऊर्ध्वगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा ब्रह्मा त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

पाताल - **''यो मे पातालगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा अनन्तस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

दिवि (स्वर्ग) – **''यो मे दिवि गतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा सूर्यस्त्वं देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

सर्वगत – **''यो मे सर्वगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा सूर्यस्त्वं (परमात्मा एव) देवो राजा जम्भयतु ....स्वस्त्ययनं मम''।**

इस प्रकार दशो (समस्त) दिशाओं में देवताओं को बलि प्रदान करना चाहिए। इस तरह से बलि प्रदान करने पर शत्रु द्वारा प्रेषित कृत्या का शीघ्र ही विनाश हो जाता है।

श्री पश्चिमाम्नाय के फेत्कारिणी तन्त्र में तन्त्रराजोत्तम (प्रकरण) के
अन्तर्गत लवण मन्त्राख्यान नामक सोलहवें पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ सप्तदशः पटलः

॥ यन्त्राणां लेखन-द्रव्यं-अष्टविषाणि च॥

श्रीशिव उवाच

यन्त्राणां लेखनद्रव्यं चन्दनं रोचना निशा।
गृहधूमचिताङ्गारौ मारणेषु विषाणि च॥१॥
श्येनाग्निलोणपिण्डानि धुस्तूरकरसस्ततः।
गृहधूमस्त्रिकटुकं विषाष्टकमुदीरितम्॥२॥

शान्ति-पुष्टि-रक्षा-पूजन आदि से सम्बन्धित यन्त्रों (तथा मन्त्रों) को प्रायः चन्दन, गोरोचन, हल्दी (केशर, लाख, कस्तूरी, हस्तीमद) आदि से तथा मारणादि यन्त्रों को गृहधूम, चिताङ्गार (चिता के कोयले) तथा अष्ट विषों से लिखना चाहिए।

अष्ट-विष - बाजविष्ठा, चित्रक, नमक का मल, धतूरे का रस, गृहधूम, सोंठ, काली मिर्च तथा पीपर इन आठ पदार्थों को अष्ट-विष कहा जाता है।

अथ वक्ष्यामि यन्त्राणां भेदांस्तन्त्रेषु गोपितान्।
यैः साधयन्ति सततं मन्त्रिणो निजवाञ्छितम्॥३॥

अब मैं तन्त्रग्रन्थों में गुप्त रूप से वर्णित विभिन्न प्रकार के यन्त्रों के विषय में कहता हूँ। मन्त्रज्ञ साधक जिनके द्वारा अपने सभी अभीष्टों (मनोकामनाओं) को सिद्ध (प्राप्त) कर लेते हैं।

॥उच्चाटनार्थे धूमावती यन्त्रं तन्मन्त्रोद्धारः॥

शूलाङ्किते वह्निगृहस्य युग्मे
धूमावतीमन्त्रं लिखेत् क्रमेण।
मन्ध्यादिकोणेषु मरुद्गृहस्थं
यन्त्रं हृताशानिलवर्णवीतम्॥४॥
धूंधूंधूमावतिपदं द्विठो धूमावतीमनुः।
धूमावती स्मृता काली शत्रुनिग्रहकारिका॥५॥
विषेण कनकाम्भोभिः प्रेतकर्पटकल्पितैः।
श्मशाने निखनेदेतच्छत्रुमुच्चाटयेद् ध्रुवम्॥६॥

स वज्रषट्कोणमध्ये सकर्मसाध्यं धूँमध्ये विलिख्य प्राच्यादि।
कोणाभ्यन्तरे धूँ षट्कोणस्य धूँ धूमावति स्वाहा इति लिखेत्॥७॥
स्वाहा च त्रिकोणे तद्बहिः षट्बिन्दुलाञ्छितं मातरिश्वन इति वायुर्गृहम्॥८॥
तद्बहिरसंख्याताभ्यां वायुवर्णाभ्यां वेष्टयेत्।

दो त्रिकोणों की सहायता से षट्कोण की रचना करके कोणों के ऊपर त्रिशूल अङ्कित करे। तत्पश्चात् सकर्म साध्य नाम को 'धूँ-धूँ' के मध्य में रखते हुए षट्कोण के मध्य में इसे लिखे। इसके पश्चात् षट्कोणों में 'धूमावति स्वाहा' के एक-एक वर्ण को लिखे। तदुपरान्त षट्कोण के ऊपर दो वृत्त बनाकर प्रथम वृत्त पर 'रं' तथा द्वितीय वृत्त पर 'यं' वर्णों को पूरे वृत्त को आवृत्त करते हुए लिखे। पुनः इसके ऊपर एक और वृत्त बनाकर उसकी परिधि पर कोण दिशाओं में बिन्दु (कुल छः बिन्दु) अंकित करके बिन्दुओं पर वायु बीज 'यं' वर्ण लिखे।

(उपर्युक्त यन्त्र निर्माण विधि राघवभट्ट कृत शा०नि० की 'पदार्थादर्श' टीका के अनुसार दी गई है। श्लोक ७ तथा ८ में दी गई विधि अशुद्ध एवं अस्पष्ट प्रतीत होती है।)

धूमावती मन्त्र – 'धूँ धूँ धूमावति स्वाहा।''

शत्रुओं का निग्रह करने वाली काली को ही धूमावती कहा जाता है।

धतूरे के पत्ते के रस के साथ कुचला को घिस कर इसके द्वारा उपर्युक्त यन्त्र को प्रेतवस्त्र पर लिखकर (बनाकर) श्मशान में गाड़ देने से शीघ्र ही साध्य (शत्रु) का उच्चाटन हो जाता है।

॥ विद्वेषण यन्त्र रचना विधिः घुर्मुटिका विद्योद्धारश्चः॥

नामालिख्य मकारकोष्ठयुगले कोणेषु तस्या लिखेद्।
मन्त्रज्ञो ङञणान्नकार सहितान् धूमावती पत्रगाम्॥९॥
वीतं घुर्मुटिकादिना परमिदं वायुत्रिगेहावृतं।
यन्त्रं प्राणपरेतभूमिनिहितं विद्वेषणं स्याद् द्विषाम्॥१०॥

पूर्वं घुर्मुटिकेयुग्मं ततो मर्कटिकेयुगम्।
घोरे विद्वेषकारिणि विद्वेषोद्वेगकारिणि॥११॥
अथ घोराघोरयोः स्यादमुकामुकयोस्ततः।
विद्वेषयद्वयं हुँ फट् विद्याघुर्मुटिकेरिता॥१२॥

अष्टदलाभ्यन्तरेऽधः केशरद्वये कोष्ठद्वययुक्तं मकारं लिखेत्। कोष्ठद्वयाभ्यन्तरे मध्ये नाम मकाराभ्यन्तरे कोणचतुष्टये ईशकोणादारभ्य ङ ञ ण न इति लिखित्वा अष्टपत्रेषु धूमावतीमनुं तद्बहिर्घुर्मुटिकामन्त्रेण वेष्टयित्वा षड्बिन्दुलाञ्छितं वायुगृहं त्रिभिर्वेष्टयेत्॥१३॥

साध्य-साधक कर्म रूप पहले वृत्त पुनः उसके ऊपर चतुरस्र बनाये। वृत्त में साध्य नामाक्षर तथा चतुरस्र में साधक नाम लिखे। इसके बाद चतुरस्र के ईशानादि कोणों पर क्रमशः **ङं, ञं, णं** तथा **नं** लिखकर, चतुरस्र के ऊपर अष्टदल कमल की रचना करके उसकी कर्णिका में मकार **(मं)** तथा पत्रों पर धूमावती मन्त्र के एक-एक वर्ण को लिखे। तत्पश्चात् अष्टदलकमल के ऊपर वृत्त बनाकर उस वृत्त पर (वृत्ताकार रूप से) घुर्मुटिका मन्त्र को लिखे। पुनः इसके ऊपर **'यं'** बीज अङ्कित छः-छः बिन्दुओं से युक्त तीन वृत्तों (वायुगृहों) की रचना करे। मन्त्र में **'अमुकामुकयोः'** के स्थान पर उन साध्य नामों को लिखें जिनके मध्य विद्वेषण कराना अभीष्ट हो। (इस यन्त्र की रचना भी पदार्थादर्शानुसार ही दी गई है।)

इस यन्त्र को बनाकर श्मशान भूमि में गाड़ देने से साधक के प्रति द्वेषभाव रखने वाले शत्रुओं का परस्पर विद्वेषण हो जाता है।

घुर्मुटिका विद्या – पहले दो बार **'घुर्मुटिके'** फिर दो बार **'मर्कटिके'** तदुपरान्त **'घोरे विद्वेषकारिणि विद्वेषोद्वेगकारिणि'** पुनः **'घोराघोरयोः'**, **'अमुकामुकयोः'** तथा **'विद्वेषय-विद्वेषय हुं फट्'** लिखे। इस प्रकार इस विद्या का उद्धार करें।

मन्त्र (विद्या) – ''**घुर्मुटिके घुर्मुटिके मर्कटिके मर्कटिके घोरे विद्वेषकारिणि विद्वेषोद्वेगकारिणि घोराघोरयोः अमुकामुकयोः विद्वेषय विद्वेषय हुं फट्।**
(श्री विद्यार्णवतन्त्र में 'घर्मटिके' शब्द है।)

विशेष – यदि दो व्यक्तियों (यथा राम और श्याम) के मध्य विद्वेषण अभीट हो तो 'अमुकामुकयोः' के स्थान पर 'रामश्यामयोः' का प्रयोग करेंगे। यदि तीन व्यक्ति (यथा मोहन भी) हों तो 'रामश्याममोहनेषु' का प्रयोग करना चाहिए। यदि तीन से अधिक हों तो अन्तिम नाम को सप्तमी बहुवचन में रखेंगे। यदि शत्रुओं की संख्या बहुत अधिक हो तो दो-तीन नाम लिखकर 'आदिषु' अथवा 'आदि मध्येषु' का प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार आवश्यकतानुसार मन्त्रों में परिवर्तन किया जा सकता है।

॥ मारण-यन्त्रम्॥ (प्रथमम्)

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदग्विधिवदभिलिखेत् स्पष्टरेखाचतुष्कं
कोणोद्यच्छूलयुक्तं बलययुगयुतं मध्यपूर्वं तदन्तम्।
मन्त्रस्यार्णान् परस्ताद् वसुपदविवरेष्वष्टवर्णान् लिखित्वा।
शूलोद्यद्द्वादशार्णं विधिवदभिहितं प्रेतराजस्य मन्त्रम्॥१४॥

यमराजसदोमेय यमेदोरुणयोदयः।
यदियोनिरपक्षेय यक्षेयवनिरामयः।
उक्तो धूमान्धकाराय स्वाहेत्यष्टाक्षरो मनुः॥१५॥
प्रणवः ष्ट्रीं ततो दंष्ट्रां तत्परं विकृतान्ततः।
आननाय वधूर्वह्नेर्मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः॥१६॥
विषवृक्षस्य फलके नृचर्मणि पटेऽथवा।
आलिख्याष्टविषैरेतत् श्मशाने निखनेन्निशि॥१७॥
ज्वरेण महताविष्टो मूर्च्छाकुलितमानसः।
रिपुर्गच्छति पक्षेण यमलोकं न संशयः॥१८॥

इह चक्रे कुण्डलिनीरूपद्वादशाक्षरचक्रं लिखित्वा कोण-चतुष्टयगतां रेखां शूलाङ्कितां कृत्वा शूलाधो वृत्त चतुष्टयं दत्त्वा मध्यादितस्तदन्तं यमराजेत्यादि लिखित्वा मध्यवृत्ताधःकोणस्थाग्नेयकोष्ठादितो धूमान्धकाराय स्वाहेत्यष्टार्णान्तं लिखित्वा मूलचतुष्टये शूलस्य प्रथमशूलाद् दंष्ट्रामन्त्रं लिखेत्॥१९॥

सबसे पहले एक के ऊपर एक करके चार वृत्त बनाएं। फिर उसके मध्य में पूर्व से पश्चिम तथा दक्षिण से उत्तर की ओर दो-दो रेखायें खींचकर कोणों पर वृत्तों से बाहर की ओर बढ़ी हुई रेखाओं से युक्त चतुरस्र की रचना करें। मध्य में निर्मित चतुरस्र के आग्नेयादि चारों कोणों से बाहर की ओर चार (कर्णवत्) रेखाएं खींच कर

सभी रेखाग्रों पर शूल निर्मित करे। इस प्रकार बारह (चतुरस्र के प्रत्येक कोण पर तीन-तीन) शूल बनेंगे। इसके बाद मध्य तथा ऊपर के वलयों में यमराज श्लोक के दो दो पादों को वृत्ताकार रूप से लिखें। इसी प्रकार शूलों पर द्वादशाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षर को चतुरस्र के प्रथम शूल (वामस्थ ऊर्ध्वगत) से आरम्भ कर तथा नीचे के वृत्त मे कोणस्थ कोष्ठकों में अग्निकोण से आरम्भ कर धूमान्धकार मन्त्र के एक-एक वर्ण को प्रदक्षिणावत् क्रमशः लिखें।

यमराज श्लोक (मन्त्र) - यमराजसदोमेय यमेदोरुणयोदय।
यदियोनिरपक्षेय यक्षेयवनिरामय॥

अष्टाक्षर धूमान्धकार मन्त्र - "धूमान्धकाराय स्वाहा।"

द्वादशाक्षर मन्त्र - "ॐ ष्ठ्रीं दंष्ट्रा विकृताननाय स्वाहा।"

इस प्रेतराज यन्त्र को कुचला वृक्ष की छाल पर, मनुष्य के चर्म पर अथवा शव के वस्त्र पर अष्ट विष के द्वारा **काक पक्ष की लेखनी से** लिख कर दो शरावों द्वारा सम्पुटित कर उसे शरावों सहित दो स्निग्ध द्रव्यों के मध्य में करके रात्रि में श्मशान में गाड़ दे। इससे शत्रु तीव्र ज्वर से पीड़ित (आक्रान्त) होकर चेतनाशून्य मनः स्थिति वाला होकर पन्द्रह दिनों में निःसन्देह यमलोक को चला जाता है।

॥ मारण-यन्त्रं (निग्रह यन्त्रं वा)॥

एकाशीतिपदेषु मध्यदहने साध्यं लिखेत् धूँ पुनः
क्ष्रींश्रींध्रुं इति दिग्गतासु विलिखेद् बीजानि पङ्क्तिष्वथ।
शिष्टेष्वीशनिशाचरादि विलिखेत् कालीमनुं पङ्क्तिश-
स्तद्बाह्य यमबीजमग्निपवनाबीजञ्च यन्त्रं लिखेत्॥२०॥
काली मार रमा वाणी नील मोक्ष क्षमो नली।
मामोदेत तदेमोमा रक्ष तत्तत्कृतक्षरः॥२१॥
कालीमनुरयं प्रोक्तः कालरात्रिः स्ववैरिणाम्।
यमा पाट टमा माय माट मोट टमो टमा॥२२॥
वामो भुवि विभू मोवा टटवीस्त्वटवी टट।
यमात्मकोऽयमाख्यातः श्लोको वैरिविनाशनः॥२३॥

एकमेकाशीतिकोष्ठकं चक्रमालिख्य पञ्चममध्यकोष्ठे त्रिकोणे तं साध्यं सकर्मालिख्य चतुर्दिक्षु प्रथमकोष्ठे मध्यस्थ साध्यकोष्ठोष्ठादारभ्य निर्गमक्रमेण धूँ क्ष्रीं श्रूं ह्रूं लिखित्वा ईशानकोणादारभ्य प्रथमपङ्क्तौ वसुकोष्ठेषु नीलामोक्षक्षमालिनी तदधो मामोदेत तदे वोमा तदधो रक्ष तत्तत्कृतक्षर तदधो ह्रूं इत्यादि तदधो रक्ष तत्तत्कृतक्षर तदधो मामो देत तदे मोमा तदधो नीलमोक्षक्षमालिनी तदधः काली मार रमा वाणी इति लिखित्वा बाह्य ईशकोणादारभ्य यमापाटटमामाय इति प्राच्याम् माट मोट टमो टमा दक्षिणे, वामो भुवि विभूमो वा प्रतीच्याम्, टटवीस्त्वटवीटट इत्युत्तर इति लिखित्वा वृत्तं दत्त्वा तद्बाह्य वह्निपवनाभ्यां वेष्टयेत्॥२४॥

ऊपर यन्त्र संकेतक श्लोक काली तथा यम मन्त्र एवं यन्त्र रचना विधि पूर्णतया अशुद्ध तथा अस्पष्ट रूप से उल्लिखित है। इन्हें शुद्ध न करके व्याख्या को ही शुद्ध मन्त्र तथा स्पष्ट यन्त्र रचना विधि सहित दिया जा रहा है।

पूर्व से पश्चिम तथा दक्षिण से उत्तर की ओर दश-दश रेखाएं परस्पर काटती हुई खींच कर इक्यासी (८१) कोष्ठों की रचना करें। मध्य कोष्ठ में त्रिकोण की रचना करके उसमें कर्म सहित साध्य नाम (श्री पद्मपादाचार्य के अनुसार मध्य कोष्ठ में 'रं' बीज के साथ सकर्मसाध्य नाम) लिखें। मध्य कोष्ठ के पूर्वादि चार दिशाओं के चतुष्कोष्ठों में अन्दर से बाहर जाते हुए रूप में (पंक्तिवत्) ह्रूँ, क्ष्रूँ, श्रूँ तथा ब्लूँ (शारदा तिलक के अनुसार, विद्यार्णव तन्त्र में भ्रू, क्ष्रूं, छ्रूं तथा ह्रूं दिया है) इन चार बीजों को लिखें। इसके बाद ईशान कोण से आरम्भ कर आग्नेय की ओर बढ़ते हुए ऊपर की चार पंक्तियों में काली मन्त्र लिखें। पुनः नैर्ऋत्य कोण से वायव्य की ओर बढ़ते हुए नीचे की चार पंक्तियों में काली मन्त्र को ही लिखें। इसके पश्चात् यन्त्र के बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में यम मन्त्र के एक-एक चरण को क्रमशः लिखें। (शारदा तिलक की राघव भट्ट कृत 'पदार्थादर्श' टीका के अनुसार इक्यासी कोष्ठात्मक यन्त्र को 'यम-मन्त्र' से आवृत करने से पहले उसे वषडन्तत्वरिता मन्त्र **'ॐ ह्रीं हुं खेच च्छे क्षः स्त्री हूं क्षे ह्रीं वषट्'** से भी आवृत करना चाहिए तथा यम मन्त्र को ईशान से निर्ऋति पर्यन्त एक बार लिखकर पुनः निऋति से ईशान पर्यन्त लिखना चाहिए।) तदुपरान्त सम्पूर्ण लिखित यन्त्र के ऊपर दो वृत्त बनाकर पहले (पूरे) वृत्त पर **'रं'** तथा दूसरे वृत्त पर भी इसी प्रकार **'यं'** लिखें।

काली मन्त्र - कालीमार रमालीका लीनमोक्ष क्षमोनली।
मामोदेत तदेमोमा रक्षतत्व त्वतक्षर॥

यम मन्त्र - यमापाट टपामाय माटमोट टमोटमा।
वामोभूरि रिभूमोवा टटरीत्व त्वरीटट॥

काली का मन्त्र स्ववैरियों (साधक के शत्रुओं) के लिए कालरात्रि के समान तथा यमात्मक (यम) मन्त्र वैरियों का विनाश करने वाला है।

विशेष - उपर्युक्त प्रकार से यन्त्र लेखन का कार्य साध्य के पुरुष होने की स्थिति में करना चाहिए। यदि साध्य स्त्री है तो यन्त्र के भीतर कोष्ठों में यम मन्त्र तथा बाहर काली मन्त्र लिखना चाहिए।

लिखेदष्ट विषाङ्गारनिम्बनिर्यासकज्जलैः।
निग्रहाख्यमिदं यन्त्रं काकपक्षेण कर्पटे॥२५॥
विभीतवृक्षे वल्मीके श्मशाने वा चतुष्पथे।
दक्षिणस्थेऽनिले मन्त्री निखनेदर्धरात्रिके॥२६॥
सर्वथा शत्रुरेतेन सप्ताहान्मरणं व्रजेत्।
निगृह्यते महारोगैः पतितो वा भवेदयम्॥२७॥
शिलायामिष्टकायां वा चक्रमेतत् प्रकल्पितम्।
मर्कटीविषदण्डीभिः समालिप्तमधोमुखम्॥२८॥
यत्र रात्रौ खनेत्तत्र भूयो भूयोऽशुभं भवे।

निग्रह नामक इस यन्त्र को शूली पर मृत व्यक्ति के शव अथवा बालक के शव के वस्त्र खण्ड पर, अष्टविष, चिताङ्गार (चिता का कोयला) तथा नीम के तेल से काजल (स्याही) बनाकर (अथवा नर कपाल में मनुष्यादि की चर्बी से निर्मित तेल तथा अष्ट विषादि से लिप्त पूर्ववत् शव के वस्त्र खण्ड से बनी वर्तिका से काजल बनाकर) इससे कौवे के पंख की लेखनी द्वारा लिखकर, अर्धरात्रि में इस यन्त्र को मन्त्रज्ञ साधक, जब उसका दक्षिण स्वर चल रहा हो, विभीतक वृक्ष के कोटर में (मारण के लिए), दीमकों के स्थान पर (शरीराङ्गो में विकलता के लिए), श्मशान में (पतन के लिए) अथवा चौराहे पर (शत्रु को महारोग से ग्रस्त करने के लिए) गाड़ दे। अथवा चार यन्त्र बनाकर चारों स्थानों पर गाड़ दे। इस तरह शत्रु सर्व प्रकार से पीड़ित होकर एक सप्ताह में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अथवा महारोग से ग्रस्त होकर मरणासन्न सा हो जाता है।

इस उपर्युक्त यन्त्र (चक्र) को (धोबी के) शिला (पत्थर) पर अथवा (शिवालय में लगी हुई) ईंट पर बनाकर उस पर कवांच, कुचला तथा ब्रह्मदण्डी का लेप लगाकर, अधोमुख करके, रात्रि में जिस स्थान पर गाड़ दिया जाता है, उस स्थान (ग्राम-नगरादि) में बार-बार अशुभ परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं अर्थात् वह स्थान (ग्राम-नगरादि) अनेकों प्रकार के उपद्रवों से ग्रस्त हो जाता है। इस स्थिति में साध्य नाम के स्थान पर यन्त्र में उस स्थान (ग्राम-नगरादि) का नाम लिखना चाहिए।

॥उच्चाटन-यन्त्रम्॥

ऊर्ध्वाधो नवरेखाभिस्तिर्यग्रेखास्तथा नव॥२९॥
लिखेच्चतुःषष्टिपदेषु कालीमीशादिकन्यादि यमात्मकेन।
श्लोकेन संवेष्ट्य कृशानुवायु बीजावृतं यन्त्रमिदं विदध्यात्॥३०॥
लिप्तं विषमसीदण्डीमर्कटीभिरधोमुखम्।
निखनेद्यत्र तत्र स्यात् नृणामुच्चाटनं सदा।
शस्यहानिमनावृष्टिं गवां नाशं करोति तत्॥३१॥

इति श्रीपश्चिमाम्नाये फेत्कारिणीतन्त्रे धूमावतीसिद्धतन्त्राख्यानं नाम सप्तदशः पटलः॥

पूर्व से पश्चिम तथा दक्षिण से उत्तर की ओर नव-नव रेखायें खींचकर चौंसठ कोष्ठों का निर्माण करें। इसके बाद इसमें पूर्ववत् ऊपर की चार पंक्तियों में ईशान से आग्नेय पर्यन्त तथा नीचे की चार पंक्तियों में निर्ऋति से वायव्य पर्यन्त (सबसे नीचे की पंक्ति से प्रारम्भ करके) काली मन्त्र को लिखकर पूर्ववत् यम-मन्त्र से वेष्टित कर दें। (यम-मन्त्र से पूर्व इसे भी वषडन्त त्वरिता मन्त्र से आवृत करना चाहिए।) तत्पश्चात् साध्य नामकर्माक्षरों से संयुक्त 'रं' बीज से इसे वेष्टित करके पुनः वायुबीज 'यं' से सम्पूर्ण यन्त्र को वेष्टित कर (घेर) देना चाहिए।

इस यन्त्र को भी पूर्ववत् लिखकर, उसे कुचला, पूर्वोक्त काजल, ब्रह्मदण्डी तथा मर्कटी (कपिकच्छु-केवाच) के मिश्रण से लिप्त करके अधोमुख कर पृथ्वी में

गाड़ दे। इस प्रकार लिखित मन्त्र को जिस स्थान ग्राम-नगरादि में गाड़ा जाता है, वहाँ के मनुष्यों का उच्चाटन हो जाता है तथा उस क्षेत्र में, यन्त्र के प्रभाव से फसलों की हानि, अनावृष्टि तथा गायों (पशुओं) का विनाश होता रहता है।

[विशेष - नमक, ऊषर (भूमि की मिट्टी), मूत्र, गृहधूम, चित्रक, चिता का कोयला तथा नीम का तेल इन सात पदार्थों को भी विष कहा जाता है।]

।। श्री पश्चिमाम्नाय के फेत्कारिणी मन्त्र में धूमावतीसिद्धतन्त्राख्यान नामक सत्रहवें पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ अष्टादशः पटलः

॥ भूतलिपि माहात्म्यम्॥

श्रीशिव उवाच

भूतलिप्या पुटीकृत्य यो मन्त्रं भजते नरः।
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तस्य सिद्धो भवेन्मनुः॥१॥

जो मन्त्र साधक भूतलिपि के द्वारा अनुलोम-विलोम रूप से सम्पुटित करके अपने अभीष्ट मन्त्र का सौ (एक सौ आठ) बार नित्य जप करता है, उसका वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

॥ भूत लिपि देवता (वागीश्वरी)-ध्यानम्॥

अङ्कोन्मुक्तशशाङ्ककोटिसदृशीमापीनतुङ्गस्तनीं,
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकां मधुमदादालोलनेत्रत्रयाम्।
विभ्राणामनिशं वरं जपवटीं विद्यां कपालं करै-
राढ्यां यौवनगर्वितां लिपितनुं वागीश्वरीमाश्रये॥२॥

कलङ्क रहित करोड़ों (पूर्ण) चन्द्रमा के समान निर्मल आभावाली, पुष्ट तथा उन्नत स्तनों वाली, मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण की हुई, मधु-मद के कारण चञ्चलता को प्राप्त तीन नेत्रों वाली, हाथों में सदैव वरमुद्रा, जपमाला, पुस्तक तथा कपाल ध ारण करने वाली, परिपक्व यौवनवस्था वाली तथा लिपि (वर्ण) रूप शरीर धारण की हुई वागीश्वरी का मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

॥ भूतलिप्युद्धारः॥

पञ्चह्रस्वाः सन्धिवर्णा व्योमेराग्निजलं धरा।
अन्त्यमाद्यं द्वितीयञ्च चतुर्थं मध्यमं क्रमात्॥३॥
पञ्चवर्गाक्षराणि स्युर्वान्तं श्वेतेन्दुभिः सह।
एषा भूतलिपिः प्रोक्ता द्विचत्वारिंशदक्षरैः॥४॥

पाँच ह्रस्व (स्वर) 'अ, इ, उ, ऋ, तथा लृ' (प्रथम वर्ग), (चार) सन्धि वर्ण 'ए, ऐ, ओ तथा औ' (द्वितीय वर्ग), व्योम - ह, ईर - य, अग्नि - र, जल - व, तथा धरा - ल अर्थात् 'ह, य, र, व, ल (तृतीय वर्ग), अन्तिम वर्ण, आदि वर्ण, द्वितीय, चतुर्थ तथा मध्यम वर्ण क्रमानुसार पाँचों वर्गाक्षर अर्थात् ङ, क, ख, घ, ग (चतुर्थ वर्ग), ञ, च, छ, झ, ज (पञ्चम वर्ग), ण, ट, ठ, ढ ड (षष्ठ वर्ग), न, त, थ, ध, द (सप्तम वर्ग) तथा म, प, फ, भ, ब (अष्टम वर्ग)। इसके पश्चात् वान्त - श, श्वेत - ष तथा इन्दु -स अर्थात् 'श, ष, स' (नवम वर्ग)। इस प्रकार (नव वर्गात्मक) इस भूत लिपि को बयालीस (४२) अक्षरों द्वारा व्यक्त किया गया है।

भूतलिपि - **अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख घ ग**
ञ च छ झ ज ण ट ठ ढ ड न त थ ध द म प फ भ ब श ष स

विशेष - इस नववर्गात्मक भूतलिपि के क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, अश्विनी कुमार, प्रजापति तथा चार दिक्पाल (इन्द्र, यम, वरुण तथा चन्द्रमा-सोम) अपनी-अपनी क्रियादि शक्तियों के साथ वर्ग देवता कहे गये हैं।

इस भूत लिपि (मन्त्र) के दक्षिणा मूर्ति ऋषि, गायत्री छन्द तथा परा शक्ति वागीश्वरी (वर्णेश्वरी) देवता कहे गये हैं।

तीसरे वर्ग (ह य र व ल) से लेकर नौवे वर्ग तक छः वर्गों के द्वारा क्रमशः जाति सहित षडङ्ग न्यास करना चाहिए।

ध्यात्वा जप्त्वा शतावृत्त्या क्रमोत्क्रमविधानतः
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो भवेत् सिद्धो न संशयः॥५॥
क्रमे आदिपृथिव्यन्ता व्युत्क्रमे क्षादि आन्तगाः।
एवं संपूज्य विधिवद् जपन् भूतलिपिं नरः॥६॥
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या सर्वान् कामानवाप्नुयात्।

जो साधक उपर्युक्त रूप से वागीश्वरी का ध्यान करके अनुलोम विलोम रूप से इस भूत लिपि का जप करता है, वह निश्चित रूप से ज्ञान-विज्ञान (सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक ज्ञान) से सम्पन्न सिद्ध हो जाता है।

अनुलोम रूप से 'अ से क्ष' पर्यन्त तथा विलोम विधि से 'क्ष से अ' पर्यन्त, (एकपञ्चाशत वर्ण रूपिणी) वागीश्वरी देवी का विधिवत् पूजन करके भूतलिपि का अनुलोम-विलोम जप करने वाला साधक अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

॥ प्राण-मन्त्रः॥

अनया संपुटीकृत्य योऽसु मन्त्रं जपेन्नरः॥७॥
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तस्य सिद्धो भवेन्मनुः।
पाशाङ्कुशपुटाशक्तिर्वाणीबिन्दुविभूषिताः॥८॥
याद्याः सप्त सकारान्ता व्योम सत्येन्दुसंयुतम्।
(यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ)
तदन्ते हंसमन्त्रः स्यात् ततोऽमुष्यपदं भवेत्॥९॥
प्राणा इति वदेत् पश्चाद् इह प्राणास्ततः परम्।
अमुष्य जीव इह च स्थितोऽमुष्यपदं भवेत्॥१०॥
सर्वेन्द्रियाण्यमुष्यान्ते वाङ्मनश्चक्षुरन्ततः।
श्रोत्रघ्राणपदे प्राणा इहागत्य सुखं चिरम्।
तिष्ठन्त्वग्निवधूरन्ते प्राणमन्त्रोऽयमीरितः॥११॥
अमुष्यपदपूर्वं तु पाशाद्यादि प्रयोजयेत्।
प्रयोगेषु समाख्यातः प्राणकर्षी महामनुः॥१२॥

इति श्रीफेत्कारिणीतन्त्रे महातन्त्रराजोत्तमे भूतलिपिप्राणप्रतिष्ठोपदेशकथनं नाम अष्टादशः पटलः॥

भूतलिपि के द्वारा अनुलोम-विलोम रूप से प्राणमन्त्र को जपने वाले साधक का मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

पाश तथा अंकुश से शक्ति को पुटित कर **(आं ह्रीं क्रों)** (ग्रन्थानुसार **'वाणीबिन्दु विभूषिता'** युक्त अर्थात् **'आं ह्रीं क्रों ऐं'**), आदि में **'य'** तथा अन्त में **'स'** रूप से सप्त वर्णों **(यं रं लं वं शं षं सं)** का प्रयोग कर व्योम **'ह'** को सत्य **'ओ'** तथा इन्दु (विन्दु) से युक्त कर **'हों'** (अथवा **हौं**) का प्रयोग करें। इसके वाद हंस मन्त्र **(हंसः अथवा हंसः सोऽहं)** का योग करके **'अमुष्य प्राणाः'** तथा **'इह प्राणाः'** बोले। तदुपरान्त **'अमुष्य जीव इह स्थितः'** तथा **'अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राण प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु'** बोलकर अन्त में अग्निवधू **'स्वाहा'** बोले। प्रत्येक अमुष्य से पूर्व **'आँ से लेकर सोऽहं'** तक के सभी वर्णों पदों का प्रयोग करना चाहिए। इसे प्राण-मन्त्र कहते हैं।

प्राण (स्थापन) मन्त्रः - **आं ह्रीं क्रों ऐं यं रं लं वं शं षं सं हों हंसः सोऽहं अमुष्य प्राणा इह प्राणाः। आं......सोऽहं अमुष्य जीव इह स्थितः। आं.......सोऽहं अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राण प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।**

मन्त्र प्रयोग (जप-साधना आदि) के समय इसका प्रयोग किया जाता है। इसे प्राणाकर्षी महामन्त्र (प्राण-प्रतिष्ठा अथवा प्राण-स्थापना मन्त्र) कहा जाता है।

।। महातन्त्रराजोत्तम श्री फेत्कारिणी तन्त्र में भूतलिपि प्राण प्रतिष्ठोपदेश कथन नामक अठारवें पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथैकोनविंशः पटलः

॥ मन्त्राणां दश-संस्काराः॥

श्रीशिव उवाच

मन्त्राणां दश संस्काराः कथ्यन्ते सिद्धिदायिनः।
जननं जीवनं पश्चात् ताडनं बोधनं तथा॥१॥
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः।
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रिया॥२॥
शोधिताः सकला मन्त्रा भवन्ति किल सिद्धिदा।

दोष-युक्त मन्त्रों के शोधन (दोष-निवारण) के लिए उनके दश संस्कार किये जाते हैं। शोधित होने पर सभी मन्त्र जपने पर साधक के लिए सिद्धिदायक सिद्ध होते हैं। ये दश संस्कार क्रमशः १. जनन, २. जीवन, ३. ताडन, ४. बोधन, ५. अभिषेक, ६. विमलीकरण, ७. आप्यायन, ८. तर्पण, ९. दीपन तथा १०. गुप्ति शब्दों से अभिहित किये जाते हैं।

॥ संस्कार-विधिः॥

मन्त्राणां मातृकामध्यादुद्धारो जननं स्मृतम्॥३॥
प्रणवान्तरितान् कृत्वा मन्त्रवर्णान् जपेत् सुधीः।
एतज्जीवनमित्याहुर्मन्त्रतन्त्रविशारदाः ॥४॥
मन्त्रवर्णान् समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा।
प्रत्येकं वायुना मन्त्री ताडनं तदुदाहृतम्॥५॥
विलिख्य मन्त्रं तं मन्त्री प्रसूनैः करवीरजैः।
तन्मन्त्राक्षरसंख्यातैर्हन्याद् यत्नेन बोधनम्॥६॥

१. जनन - मातृका वर्णों (चक्र) के मध्य से मन्त्र के एक-एक वर्ण का क्रमशः उद्धार करना (एक-एक वर्ण को क्रमशः ग्रहण करते हुए भोजपत्र पर लिखना) मन्त्र का 'जनन' संस्कार कहा जाता है।

२. जीवन - मन्त्र के प्रत्येक वर्ण को दो प्रणवों के मध्य रखते हुए उसका(एक सौ आठ बार) जप करने की क्रिया को मन्त्र-तन्त्र के विद्वानों ने 'जीवन' नामक संस्कार कहा है। यदि पञ्चाक्षरी मन्त्र **'नमः शिवाय'** है तो उसे जनन क्रिया के पश्चात् **ॐ न ॐ मः ॐ शि ॐ वा ॐ य ॐ** रूप से रखकर जप करेंगे अथवा प्रणव से सम्पुटित करके प्रत्येक वर्ण का एक सौ आठ बार जप करे।

३. ताडन - भोजपत्र पर मन्त्र वर्णों को क्रमशः कुंकुम-गोरोचन आदि से लिखकर, घिसे हुए चन्दन मिश्रित जल के द्वारा प्रत्येक वर्ण को **'यं'** का उच्चारण करते हुए सौ-सौ बार ताडित करना **'ताडन'** संस्कार कहा जाता है।

४. बोधन - पूर्ववत् मन्त्र को लिखकर, जितने मन्त्रवर्ण हैं, उतने ही लाल कनेर के पुष्पों को लेकर, प्रत्येक वर्ण पर एक-एक पुष्प द्वारा अग्नि बीज **'रं'** का उच्चारण करते हुए आघात करना **'बोधन'** नामक संस्कार कहा जाता है।

स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया।
अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद् विशुद्धये॥७॥
संचिन्त्य मनसा मन्त्री सुषुम्नामूलमध्यतः।
ज्योतिर्मन्त्रेण विधिवद् दहेन्मन्त्री मलत्रयम्॥८॥
मन्त्रे मलत्रयं मन्त्री विमलीकरणं त्विदम्।
तारं व्योमाग्निमनुयुग् दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः॥९॥

५. अभिषेक - मन्त्रज्ञ साधक द्वारा अपने-अपने तन्त्रोक्त विधान (सम्प्रदाय) के अनुसार मन्त्र-वर्ण-संख्या में पीपल के पत्तों को लेकर उनके द्वारा, पूर्ववत् भोजपत्र पर लिखे गये मन्त्र वर्णों की विशुद्धि के लिए **'अमुष्य मन्त्रस्य अमुकाक्षरं अभिषिञ्चामि नमः** (अमुक देवता के अमुक मन्त्र के अमुक अक्षर का अभिषेक करता हूँ - नमः) बोलते हुए (क्रमशः एक-एक वर्ण का) अभिषिञ्चन करना **'अभिषेक'** संज्ञक संस्कार कहलाता है।

६. विमलीकरण - मन्त्रज्ञ साधक द्वारा कुण्डलिनी को मूलाधार से ऊपर उठाकर, सुपुम्ना मार्ग में मूल से मध्य तक मानसिक रूप से मन्त्र-स्थिति का चिन्तन करके, ज्योतिर्मन्त्र के मानस जप (उच्चारण सहित उत्थित कुण्डलिनी की अग्नि) द्वारा मन्त्र के तीनों मलों[१] को दहन कर देना, **'विमलीकरण'** संस्कार कहा जाता है।

तार **'ॐ'**, व्योम **'ह'**, अग्नि **'र'**, मनु **'औ'** तथा दण्डी **'अनुस्वार'**। इससे सम्पन्न ज्योतिर्मन्त्र - **ॐ ह्रौं**।

कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मनोः।
तेन मन्त्रेण विधिवद् एतदाप्यायनं स्मृतम्।
मन्त्रेण वारिणा मन्त्री तर्पणं तर्पणं स्मृतम्॥१०॥
तारमायारमायोगो मनोर्दीपमनुच्यते।
जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम्॥११॥
संस्कारा दश संप्रोक्ताः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः।
यान् कृत्वा सम्प्रदायेन मन्त्री वाञ्छितमाप्नुयात्॥१२॥
इति मन्त्राणां दोषोद्धाराय दशविधसंस्काराः॥

७. आप्यायन - पूर्ववत् भोजपत्र पर लिखे हुए मन्त्र-वर्णों को एक-एक करके एक सौ आठ कुशों के द्वारा जल से, लिखित मन्त्र का ही पूर्ण उच्चारण करते हुए (प्रत्येक वर्ण को सात-सात बार) प्रोक्षित करना **'आप्यायन'** कहा जाता है।

८. तर्पण - भोजपत्र पर लिखित समस्त मन्त्र वर्णों का एक साथ ही अर्थात् पूरे मन्त्र का उच्चारण करके **'अमुं मन्त्रं तर्पयामि नमः'** बोलते हुए जल से (एक सौ आठ बार) तर्पण करना ही **'तर्पण'** नामक संस्कार है।

---

१. मल तीन प्रकार के कहे गये हैं - आणव, कार्मण तथा मायिक (अथवा सहज, आगन्तुक तथा मायीय।)।
मायिकं नाम योषोत्थं पौरुषं कर्मणं मलम्।
आणवं तद्वद्विज्ञेयं निषिद्धं तु मलत्रयम्॥

९. **दीपन** - तार '**ॐ**', माया '**ह्रीं**' तथा रमा '**श्रीं**'। उपर्युक्त रूप से शोधित मन्त्र से पहले '**ॐ ह्रीं श्रीं**' इन तीनों बीजों को एक साथ जोड़कर उसका (सात बार) जप करना ही मन्त्र का '**दीपन**' नामक संस्कार कहा गया है।

१०. **गोपन (गुप्ति)** - मन्त्र का जप करते समय उसे (मन्त्र ध्वनि तथा जप-क्रिया सहित) किसी के सम्मुख प्रकट न होने देना, गोपन अथवा गुप्ति संस्कार कहा जाता है।

भली-भाँति कहे गये मन्त्र शोधन के ये दश संस्कार सभी तन्त्रशास्त्रों में गुप्त कहे गये हैं। स्व सम्प्रदायानुसार इन्हें करके मन्त्रज्ञ साधक अपने अभीष्ट फल (को प्राप्त कर उस) का भोग करता है।

।। होम द्रव्यमानम्।।

अथात्र होमद्रव्याणां प्रमाणमभिधीयते।
कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम्।।१४।।
उक्तानि पञ्चगव्यानि समानानि मनीषिभिः।
तत्समं मधु दुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम्।।१५।।
दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिता।
पृथुकास्तत्समानाः स्युः सक्तवोऽपि तथोदिता।।१६।।
गुडं पलार्धमानं स्याच्छर्करापि तथा स्मृता।
ग्रासार्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वावधिः स्मृतः।
एकैकं पत्रपुष्पाणि तथाऽपूपानि कल्पयेत्।।१७।।
कदलीफलनारङ्गफलान्येकैकशो विदुः।
मातुलुङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधा स्मृतम्।।१८।।

अब हवन के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले द्रव्यों (पदार्थों) के प्रमाण (मात्रा) के विषय में कहा जाता है। हवन के समय प्रति आहुति कर्ष मात्र (१६ माशा) घृत तथा एक शुक्ति बराबर (दो कर्ष) दुग्ध (जल) ग्रहण करना चाहिए। विद्वानों ने पञ्चगव्य को भी शुक्ति के बराबर ही ग्रहण करना कहा है। इसी प्रकार मधु भी शुक्ति समान तथा खीर की मात्रा एक अक्ष-कर्ष के बराबर होनी चाहिए। दही का मात्रा एक प्रसृति (दो पल), लाजा (धान का लावा) मुष्टि (पल) मात्र ग्रहण करना चाहिए। चिउड़ा तथा सत्तू को भी उतना (मुष्टि मात्र) ही लेना चाहिए।

गुड़ की मात्रा अर्ध पल (दो कर्ष) तथा इतनी ही शर्करा लेनी चाहिए। चरु की मात्रा अर्ध ग्रास (अस्सी रत्ती) तथा ईख पर्व मात्र ग्रहण करनी चाहिए।

पत्र, पुष्प, पुआ, केला तथा नारंगी फल एक-एक की संख्या में लेना चाहिए। मातुलुङ्ग (विजौरा नीबू) को चार खण्ड करके तथा कटहल को दश खण्ड करके (एक-एक खण्ड) ग्रहण करना चाहिए।

अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः।
त्रिधाकृतं फलं विल्वं कपित्थं खण्डितं त्रिधा।।१९।।

उर्वारुकफलं होमे चोदितं खण्डितं द्विधा।
फलान्यन्यानि खण्डानि समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः॥२०॥
दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरङ्गुला।
ब्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गा माषा यवा अपि॥२१॥
तण्डुलाः स्युस्तदर्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मिताः।
गोधूमा रक्तकलमा विहिता मुष्टिमानतः॥२२॥

विद्वानों ने नारियण के आठ टुकड़े करके हवन करने को कहा है। विल्व फल (बेल) तथा कपित्थ (कैथा) को तीन खण्डों तथा ककड़ी (मोटी वाली) को दो (पाठान्तरानुसार तीन) खण्डों में विभाजित करके हवन करना चाहिए। अन्य फलों को भी आवश्यकतानुसार खण्डित (तीन खण्डों में) करके अथवा अखण्ड रूप से (पाठान्तर 'अखण्डानि' भी प्राप्त होता है) हवन करना चाहिए। समिधा दश अंगुल, दूर्वा तीन अंगुल (अथवा तीन की संख्या में) तथा गुडूची (लता) चार अंगुल लम्बाई की ग्रहण करनी चाहिए।

ब्रीहि (धान) एक मुट्ठी लेना चाहिए तथा मूँग, माष (उड़द) एवं जौ भी इतना ही एक मुट्ठी ग्रहण करना चाहिए। चावल आधी मुट्ठी ग्रहण करना चाहिए। कोदव, गेहूँ तथा लाल कलमा (एक विशेष प्रकार का चावल-धान जिसकी बुवाई मई-जून में होती है तथा दिसम्बर-जनवरी में यह पककर तैयार होता है) भी एक मुट्ठी की मात्रा में ही लेना चाहिए।

तिलाश्चुल्लकमात्राः स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः।
शुक्तिप्रमाणं लवणं मरीचान्येकविंशति॥२३॥
पुरं वदरमानं स्याद् रामठं तत्समं स्मृतम्।
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च॥२४॥
तिन्तिण्डीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः।
अनुक्ते तु हविर्द्रव्ये तिलाज्यं हविरुच्यते।

तिल की मात्रा एक चुल्लू (करतल-पसर) मात्र तथा सरसो भी इतना ही लेना चाहिए। नमक की मात्रा शुक्ति बराबर तथा मरीचि इक्कीस की संख्या में लेनी चाहिए।

गुग्गुल की मात्रा बेर के बराबर (अस्सी गुञ्जा के बराबर) तथा इतनी ही हींग की भी मात्रा होनी चाहिए।

चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी तथा कुंकुम को इमली के बीज बराबर मात्रा में ग्रहण करना तन्त्राचार्यों द्वारा कहा गया है।

जिन स्थलों पर हवनीय द्रव्यों का कथन नहीं किया गया है, वहाँ तिल तथा घृत को हवनीय द्रव्य के रूप में ग्रहण करना कहा जाता है।

॥ होम द्रव्याणां फलम्॥

अथात्र होमद्रव्याणां फलं शृणु वरानने॥२५॥

पालाशैर्मधुरत्रयेण कुसुमैः सिक्तैरशेषान्नरः
कामांश्चम्पकपाटलादिबकुलैः प्राप्नोति होमाच्छ्रियम्।
राज्यं विल्वदलैः फलैरपि तथा साम्राज्यमम्भोरुहैर्
आयुः साद्वलपल्लवैः सहः गुडैः शान्तिं सहाज्यैस्तिलैः॥२६॥
अघोरेण द्रविणं निगदत्वं प्राप्नुयाच्च सिद्धार्थैः।
प्रीतिं प्रियंगुपत्रैः पुत्रान् सौख्यं फलैर्मनुजः॥२७॥

भगवान शिव पार्वती से कहते हैं – हे सुन्दर मुखवाली (पार्वति!), अब भिन्न-भिन्न प्रकार के द्रव्यों के हवन द्वारा प्राप्त होने वाले पृथक-पृथक फलों के विषय में सुनो।

पलाश के पुष्पों को त्रिमधु (मधु, शर्करा, घृत अथवा दूध) से सिक्त करके हवन करने से समस्त कामनाओं की सिद्धि तथा त्रिमधु-युक्त चम्पक, पाटला (पाण्डुर)बकुल (अथवा विचिकल सम्भवतः माधवी) आदि के पुष्पों-द्वारा हवन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

बिल्वपत्रों तथा फलों से हवन करने पर राज्य तथा कमलों से हवन करने पर साम्राज्य की प्राप्ति होती है। गुड़ के साथ कोमल हरित पत्रों का हवन करने से आयु तथा घृत के साथ तिलों से हवन करने पर शान्ति की उपलब्धि होती है।

पारद (अथवा घृत) से हवन करने पर धन-सम्पत्ति (अथवा शक्ति-सामर्थ्य) तथा पीली सरसों से हवन करने पर वक्तृत्व शक्ति (प्रवचन अथवा भाषण देने का सामर्थ्य अथवा वाठान्तर 'विगदत्वं') की प्राप्ति होती है। प्रियंगु पत्रों तथा फलों से हवन करने पर क्रमशः प्रीति तथा पुत्र-सुख की प्राप्ति होती है।

लाजैः सौभाग्यं धान्यमन्येन होमात्
पुष्पैः कादम्बैर्यक्षलोकाधिपत्यम्।
मर्त्यः पुन्नागैरेभिर्विद्याधरत्वं
पुष्पैर्मालत्याः सिद्धगन्धर्वलोकान्॥२८॥

लाजा (धान का लावा-खील) से हवन करने पर सौभाग्य तथा अन्य धान्यों (अन्नों) से हवन करने पर प्रचुर मात्रा में अन्न की प्राप्ति होती है। कदम्ब पुष्पों द्वारा हवन करने पर यक्ष लोक का अधिकार, पुन्नाग से विद्याधर पद की प्राप्ति तथा मालती पुष्पों से हवन करने पर मनुष्य को सिद्ध गन्धर्व लोकों की उपलब्धि होती है।

आकृष्टिर्यक्षिणीनां त्रिमधुरसहितैरर्जुनैः सर्षपैः स्याद्
वैश्या वश्या भवेयुर्हयरिपुकुमुमैर्किंशुकैश्चापि होमात्।
वश्याः स्युः कर्णिकारैरथ धरणिसुराः क्षत्रियाः काशमर्दै-
वैश्यानां किंकिरातैर्गण इव वशगाः पाटलाभिश्च शूद्राः॥२९॥

त्रिमधु के साथ अर्जुन वृक्ष के पुष्पों तथा सरसों के द्वारा हवन करने से यक्षिणियों का आकर्षण होता है तथा लाल कनेर (अथवा) पलाश के पुष्पों तथा द्वारा हवन करने से वैश्य जातीय स्त्रियाँ (अथवा वेश्याएं) वशीभूत होती हैं। पलाश पुष्पों से हवन करने पर शत्रुओं पर विजय प्राप्ति होती है। कर्णिकार (अमलतास) के पुष्पों द्वारा हवन करने से ब्राह्मण, कासमर्द के पुष्पों से हवन करने पर क्षत्रिय, किंकिरात-पुष्पों से हवन करने पर वैश्य एवं पाटल से हवन करने पर शूद्र जाति के पुरुष सेवकों के समान वशीभूत हो जाते हैं।

छागलाङ्गजजाङ्गलेन होमात्परराष्ट्रं स्ववशं भवेदशेषम्।
अथ वैरिबलं पराङ्मुखं स्यान्मधुराक्तेन महापललेन वापि॥३०॥
कटुत्रयनिम्बपत्रकेशैः सगुडैर्मारपलान्वितैर्निशासु।
कटुतैलविमिश्रितैश्च होमादरयस्त्रिमुनिवासरान्म्रियन्ते॥३१॥

जङ्गली बकरे के मांस द्वारा हवन करने से पर राष्ट्र (देश अथवा राज्य) पूर्ण रूप से कर्ता के वश में हो जाता है। नर मांस को मधु (अथवा त्रिमधु) से भिगो कर उसके द्वारा हवन करने पर शत्रु-सेना विमुख होकर पलायन कर जाती है।

त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च तथा पीपर), नीम के पत्ते तथा पुष्प, गुड़ तथा धतूरे के चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर (अर्ध) रात्रि में हवन करने से इक्कीस दिनों में (इक्कीस रात्रियों में होम करने से) शत्रुओं की मृत्यु हो जाती है।

लग्नजिदजरोमहारिद्राखण्डनखैर्विहितः किल होमः।
सप्तदिनात् प्रतिपक्षनृपाणां स्तम्भनकृत् प्रबलस्य बलस्य॥३२॥
माषैर्मूकत्वं कोद्रवैर्व्याधिबाधा आतङ्कतिः स्यात् कलायैस्तु
होमात् उन्मत्तस्य वृक्षजाभिः समिद्भिर्मृत्युः
सप्ताहात् शाल्मलीवृक्षजाभिः॥३३॥

लग्नजित, बकरे के रोम (बाल) तथा नखों के समान छोटे-छोटे हल्दी खण्डों के मिश्रण से हवन करने पर सात दिनों में प्रतिपक्षी राजा तथा उसकी प्रबल सेना का निश्चय ही स्तम्भन हो जाता है।

उड़द से हवन करने पर गूँगापन, कोदव से हवन करने पर रोग बाधा, मटर से हवन करने पर शत्रु को भय की प्राप्ति होती है। धतूरे के पौधे की समिधा अथवा सेमल वृक्ष की समिधा से हवन करने पर एक सप्ताह में शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

कपिलाघृतसंयुक्तैर्मनुष्यो यवगोधूमतिलैः
षडस्रकुण्डे नियतं खेचरत्वमेति।
हुत्वा निशिचारेण समाहितान्तरात्मा
पलाशद्रुमकाष्ठैः परिज्वाल्य हव्याशनं
चन्दनाभ्युक्षितैर्बन्धुजीवैः ॥३४॥
समस्तानि भूतानि वश्यानि होमा-
द्भवेयुः प्रियङ्गुप्रसूनैश्च तद्वत्।
नरो भक्ष्यभोज्यान्नपानानि हुत्वा
परां सम्पदं प्राप्नुयादत्र लोके॥३५॥

जौ, गेहूँ निशाचर (भटेउर) तथा तिलों को कपिला गाय के घृत में मिलाकर एकाग्रचित्त होकर षट्कोण कुण्ड में हवन करने से मनुष्य को निश्चित ही खेचरत्व की (आकाश-गमन की शक्ति) प्राप्ति होती है।

पलाश वृक्ष की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित करके, चन्दन से प्रोक्षित बन्धुजीव (बन्धूक-दुपहरिया) के पुष्पों द्वारा हवन करने से समस्त प्राणी वशीभूत हो जाते हैं। प्रियंगु के पुष्पों द्वारा भी हवन करने से इसी फल की प्राप्ति होती है।

भक्ष्य-भोज्य रूप खाने-पीने के पदार्थों से हवन करने पर मनुष्य इसी लोक में अत्यधिक सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

बटोदुम्बराद्यङ्कुरैः स्वादुवर्गान्वितैः।
काम्यतां मल्लिकाभिर्यशः स्यात्॥३६॥
तुष्टिर्नीलाम्बुजैर्होमात् सौगन्धिकैर्भवेत् पुष्टिः।
कुमुदैर्जनवात्सल्यं पुत्राः मल्लिकुसुमैः स्युः॥३७॥
यत्खलु अभीष्टतमं स्याद भूमितले मनसो मनुजानाम्।
तत्सकलं मधुरत्रयहोमात् स्यादचिरेण स्वशक्तिमुपेतुम्॥३८॥

बरगद, गूलर आदि (क्षीरो) वृक्षों के अंकुरों को मधुत्रय से सिक्त करके हवन करने से कामनाओं की पूर्ति होती है तथा मल्लिका (मोतिया) के पुष्पों द्वारा हवन करने से यश की प्राप्ति होती है।

नीलकमलों से हवन करने से तुष्टि, सौगन्धिक पुष्पों से पुष्टि, कुमुद (सफेद कुमुदिनी अथवा लाल कमल) पुष्पों से हवन करने पर मनुष्यों से पुत्रवत् प्रेम (स्नेह) तथा मल्लिका पुष्पों से हवन करने पर पुत्रों की प्राप्ति होती है।

इस पृथ्वी तल पर मनुष्यों की कामनानुसार जो कुछ भी विशेष रूप से सर्वाधिक प्रिय वस्तु है, वह सभी त्रिमधु के द्वारा सामर्थ्यानुसार होम करके शीघ्र ही प्राप्त किया जा सकता है।

घृताहुतिर्द्विगुणितषोडशाङ्गुलाभिर्वरातत इह मध्यमार्धतः।
गजाङ्गुलोन्नतिरधमा तिलोद्भवं तथैव माक्षिकमपि पञ्चग-

व्ययुक्॥३९॥

एकं चुल्लकं पयसो दध्नस्तद्वद्यवाग्वाश्च।
एकैकापूपनिकरपायसमक्षप्रमाणञ्च ॥४०॥
कदलीफलमेकैकं मातुलुङ्गनागरङ्गञ्च।
पनसं दशखण्डं गुणखण्डं स्यात्फलं वैल्वम्॥४१॥
करकट्टिका गुणखण्डा दलपुष्पफलान्यखण्डानि।
इत्यादिकं सर्वद्रव्यं होतव्यं विधिना ततः।
सर्वशान्तिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥४२॥

ॐ तत्सत् ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः।

इति फेत्कारिणीमहातन्त्रे जननादिदशसंस्कारक्रियाहोमद्रव्य-संख्यादिकथनं नामोनविंशः पटलः॥

घृत की आहुति बत्तीस अंगुल ऊपर से देनी चाहिए। सोलह अंगुल ऊंचाई की मध्यम तथा आठ अंगुल ऊंचाई की अधम कही जाती है। इसी प्रकार तिल के तेल तथा पञ्चगव्य सहित मधु की भी आहुति देनी चाहिए।

दूध का मान एक चुल्लू, इतना ही दही तथा काँजी का भी मान प्रति आहुति होना चाहिए। पुए की एक-एक संख्या में आहुति देनी चाहिए। खीर का मान एक अक्ष (कर्ष) बराबर होना चाहिए।

केले की आहुति एक-एक करके देनी चाहिए। इसी प्रकार विजौरा नीबू तथा नारंगी की भी आहुति देनी चाहिए। कटहल को दश खण्ड तथा बेल को तीन खण्ड करके एक-एक खण्ड से हवन करना चाहिए। ककड़ी को तीन खण्ड करके तथा पुष्पों-पत्रों एवं (छोटे) फलों को अखण्ड रूप से होम करना चाहिए।

इस प्रकार सभी हवनीय पदार्थों को विधिपूर्वक हवन करने से निःसन्देह रूप से साधक सर्वप्रकार से शान्ति को प्राप्त करता है।

।। फेत्कारिणी महातन्त्र में जननादि दश संस्कार क्रिया-होमद्रव्य
संख्यादिकथन नामक उन्नीसवें पटल की
अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ विंशः पटलः

॥ कूर्म-चक्र-निरूपणम्॥

श्रीशिव उवाच

नवधाकृतभूभागे न्यसेन्मध्ये स्वरान् क्रमात्।
कादिवर्णान् सप्तसंख्यानीशाने लक्षमित्यपि॥१॥
क्षेत्राद्यर्ण त्रये कोष्ठे दीपस्थानं मुखाभिधम्।
हस्तौ कुक्षी च पादौ द्वौ शिष्टं पुच्छमुदाहृतम्॥२॥
सिद्धिश्चास्ये करेऽल्पायुरुदासत्वं तु पार्श्वयोः।
दुःखं चरणयोः पीडा पुच्छे कूर्मतनोर्जपात्॥३॥

साधक को जिस स्थान (मण्डप, कक्षादि) पर बैठकर के साधना (जप-पूजादि) करना अभीष्ट हो, उस स्थान की भूमि को नव भागों में विभाजित करे। इसके लिए भूमि पर दो रेखायें पूर्व से पश्चिम की ओर तथा दो रेखायें दक्षिण से उत्तर की ओर खींचे। इस प्रकार नव कोष्ठकों की रचना करके मध्य वाले कोष्ठक में पूर्व से प्रारम्भ कर ईशान पर्यन्त (आठों दिशाओं में) दो-दो स्वर वर्णों को लिखे। इसके बाद पूर्व के कोष्ठ में 'क वर्ग', आग्नेय कोष्ठ में 'च वर्ग', दक्षिण कोष्ठ में 'ट वर्ग', नैर्ऋत्य में 'त वर्ग' तथा पश्चिम में 'प वर्ग' के पाँच-पाँच वर्णों को लिखे। तदुपरान्त वायव्य कोष्ठ में 'य वर्ग' (य र ल व), उत्तर कोष्ठ में 'श वर्ग' (श ष स ह) तथा ईशान कोष्ठ में 'ल क्ष' इन दो वर्णों को लिखें।

इस चक्र में जिस कोष्ठ में उस स्थान के ग्राम-नगरादि के नाम का प्रथम अक्षर हो, उसे कूर्म का मुख समझना चाहिए। मुख के दोनों ओर के दो कोष्ठ कूर्म के हाथ, उसके नीचे दोनों ओर के दो कोष्ठ कुक्षि तथा तथा कुक्षि के नीचे के दोनों ओर के कोष्ठों को कूर्म का पैर समझना चाहिए। शेष कोष्ठ को पुच्छ भाग तथा मध्य के कोष्ठ को पीठ जानना चाहिए।

मण्डप अथवा पूजा कक्ष के जिस भाग में कूर्म का मुख हो, उसी स्थान पर बैठकर के साधना करनी चाहिए। मुख भाग में बैठकर साधना करने से सर्वार्थ-सिद्धि तथा हाथ वाले स्थान पर बैठकर साधना करने से अल्प भोग की प्राप्ति होती है। कुक्षि भाग में उदासीनता (नित्य निष्फलता), पैर भाग में दुख तथा पुच्छ (पूँछ) भाग में बैठ कर साधना करने से बन्धन-उच्चाटनादि के द्वारा साधक को पीड़ा (अथवा मृत्यु) की प्राप्ति होती है। अतः साधक को मुख स्थान में बैठकर, इसकी प्राप्ति न होने पर कर स्थान में बैठकर साधना करनी चाहिए। कुछ तन्त्रों के अनुसार पीठ स्थान में साधना करने से भी सर्वार्थ सिद्धि की प्राप्ति होती है।

कूर्म-चक्र

ळ क्ष	क ख ग घ ङ	च छ ज झ ञ
श ष स ह	अ आ इ ई उ ऊ अं अः ऋ ॠ ओ औ ए ऐ ऌ ॡ	ट ठ ड ठ ण
य र ल व	प फ ब भ म	त थ द ध न

॥ मन्त्र-ग्रहणे ऋण-धन निर्णयः॥

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्राद्यदर्शनम्।
सप्तप्लुतं त्रिभिः शिष्टमृणं त्याज्यं धनात्मकम्॥४॥
मान्त्राद्यक्षरमारभ्य यावन्नामादिदर्शनम्।
त्रिभिः प्लुतं सप्तशिष्टं स्वग्राह्यमीदृशात्मकम्॥५॥

नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक (अ से लेकर क्ष तक पचास वर्णों में) वर्णमाला क्रम से गिनती करें। जिस संख्या पर मन्त्राक्षर हो, उस संख्या को तीन से गुणा करके गुणनफल में सात से भाग दे। शेष बची संख्या 'नाम राशि' कही जाती है। पुनः मन्त्र के प्रथम वर्ण से नाम (ग्रहणकर्ता का नाम) के प्रथम वर्ण तक गणना करें। जिस संख्या पर नामाक्षर हो उसे भी तीन से गुणा करके सात से भाग दे। शेष राशि 'मन्त्र राशि' कही जाती है। यदि नाम राशि से मन्त्र राशि अधिक हो तो मन्त्र ऋणी होने के कारण ग्रहण करने योग्य होता है, अन्यथा नहीं।

॥ एतेषां मन्त्राणां सिद्धादिशोधनमनावश्यकम्॥

नृसिंहार्कवराहाणां प्रासादप्रणवस्य च।
सपिण्डाक्षरमन्त्राणां अरिमित्रं न चार्चयेत्॥६॥
एकाक्षरे त्रिकूटे च मालामन्त्रे वरानने।
स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मित्रामित्रं न चार्चयेत्॥७॥

नृसिंह मन्त्र, सूर्य-मन्त्र, वाराह मन्त्र, प्रासाद मन्त्र, प्रणव (ॐ), सपिण्डाक्षर मन्त्र (कूट, वेदोक्त, मातृका, परा, त्रिपुरा, काम, आज्ञा सिद्ध, गरुड, बौद्ध, जैन मन्त्र), एकाक्षर (त्र्यक्षर, पञ्चाक्षर, षडक्षर, सप्त, नव, एकादशाक्षर, अष्टाक्षर हंस मन्त्र), त्रिकूट मन्त्र, माला मन्त्र, स्वप्न में प्राप्त मन्त्र तथा स्त्री (गुरु) द्वारा उपलब्ध मन्त्र, इन सभी मन्त्रों के ग्रहण में अरि-मित्र, सिद्धादि शोधन की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त अन्य सभी मन्त्रों में सिद्धादि (अरि-मित्र) का शोधन अवश्य करना चाहिए।

॥ अकडम-चक्रम्॥

सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिश्चतुर्धा तत्स्फुटं भवेत्।
द्वारशारे अकडमे जिज्ञासान्नसमन्त्रयोः॥८॥
नवैकपञ्चमे सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मके।
सुसिद्धस्त्रिसप्तके रुद्रे द्वादशाष्टचतुर्ष्वरिः॥९॥

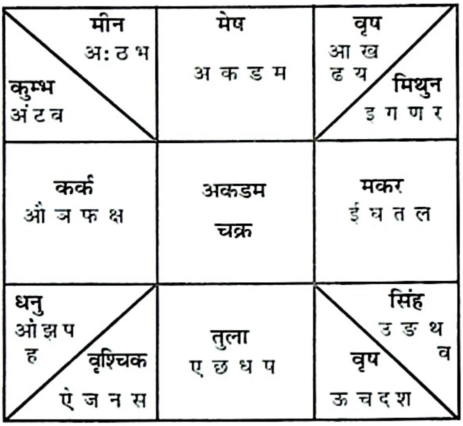

मन्त्रों के सिद्धादि शोधन के लिए द्वादश दल के रूप 'अकडम चक्र' की रचना की जाती है। इसमें पार्श्व में दी गई आकृति के अनुसार द्वादश कोष्ठ बना करके नपुंसक वर्णो (ऋ ॠ ऌ ॡ)को छोड़कर शेष अ से ह तक के वर्णो को एक-एक करके प्रदक्षिणा क्रम से कोष्ठों में लिखना चाहिए। इस चक्र में साधक के नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध तथा अरि इस क्रम से कोष्ठों को जानकर गणना करनी चाहिए।

नाम के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठ से एक, पाँच तथा नवें कोष्ठक में मन्त्र का प्रथमाक्षर होने पर ये कोष्ठ 'सिद्ध', दो, छः तथा दसवें कोष्ठ में मन्त्राक्षर होने पर 'साध्य', तीन, सात तथा ग्यारहवें कोष्ठ को 'सुसिद्ध' तथा चौथे, आठवें तथा बारहवें कोष्ठ में मन्त्र का प्रथमाक्षर होने पर ये 'अरि' कहे जाते हैं। अर्थात् उपर्युक्त रूप से तीन-तीन कोष्ठों में मन्त्राक्षर होने पर वह मन्त्र साधक के लिए क्रमशः सिद्ध मन्त्र, साध्य मन्त्र, सुसिद्ध मन्त्र कहा जाता है।

सिद्ध मन्त्र निश्चित समय में, साध्य मन्त्र अधिक जप तथा हवन करने से तथा सुसिद्ध मन्त्र दीक्षा मात्र से ही सिद्ध हो जाता है। अरि मन्त्र नहीं ग्रहण करना चाहिए। यह साधक का विनाश कर देता है।

॥ चतुःकोष्ठ-चक्रेण सिद्धादि शोधनम्॥

चतुष्कोष्ठे स्वरान् वर्णानीशानादिक्रमाल्लिखेत्।
चक्रेऽकथह इत्युक्तः सिद्धादौ नामवर्णयोः॥१०॥

इति पश्चिमाम्नाये फेत्कारिणीतन्त्रे
कूर्मचक्रऋणिधनिसिद्धसाध्याख्यानादिनाम विंशः पटलः॥

सिद्धादि शोधन की एक अन्य विधि में निम्न रूप से चार कोष्ठक बनाकर ईशान कोण से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणावत् एक-एक मातृका वर्णो को लिखें। फिर नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर तक सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध तथा अरि की गणना करनी चाहिए। नामाक्षर तथा मन्त्राक्षर एक ही कोष्ठ में हों तो मन्त्र सिद्ध, मन्त्राक्षर

नामाक्षर से दूसरे कोष्ठ में हो तो मन्त्र साध्य, मन्त्राक्षर के तीसरे कोष्ठ में होने पर मन्त्र सुसिद्ध तथा मन्त्राक्षर के चौथे कोष्ठ में होने पर वह मन्त्र साधक के लिए अरि मन्त्र होता है।

अ उ लृ ओ क ङ झ ड थ प म व ह	आ ऊ लॄ औ ख च ञ ढ द फ य श ळ
ई ॠ ऐ अः घ ज ठ तन भ ल स ज्ञ	इ ऋ ए अं ग छ ट ण ध व र प क्ष

इसी प्रकार 'अ क थ ह चक्र' द्वारा भी सिद्धादि शोधन की बात कही गयी है। इसमें भी साधक के नाम वर्ण तथा मन्त्र के प्रथम वर्ण की स्थिति के अनुसार सिद्धादि का ज्ञान किया जाता है। यहाँ श्लोक में इसके विषय में अन्य कुछ वर्णन नहीं किया गया है। इसके लिए पाठक अन्य ग्रन्थों का अवलोकन करें।

।। पश्चिमाम्नाय के फेत्कारिणी तन्त्र में कूर्म चक्र- ऋणि-धनि सिद्ध साध्यादि नामक बीसवें पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।

अथैकविंशः पटलः

॥ क्रोधमन्त्राधिदेवता ध्यानम् - क्रोधमन्त्राणामुद्धारः॥

श्रीशिव उवाच

क्रोधमन्त्रं जपेल्लक्षं कोट्यादित्यसमप्रभम्।
अट्टहासं महारौद्रं प्रत्यालीढं महाप्रभुम्॥१॥
दक्षिणे वज्रसंयुक्तं तर्जनीं वामपाणिना।
विषादिक्रोधवज्रास्त्रं क्रोधराजमहामनुम्॥२॥
विषं हनपदं गृह्य विध्वंसयपदं ततः।
नाशयेति पदं चोक्त्वा पाशं क्रोधास्त्रसंयुतम्॥३॥
विषं च वज्रज्वालेन हनयुग्ममतः परम्।
सर्वभूतान् ततः कूर्चमस्त्रान्ते भूतमारणम्॥४॥

करोड़ों सूर्य के समान आभा वाले, अट्टहास करते हुए भयानक स्वरूप वाले, प्रत्यालीढ अवस्था में स्थित, अत्यन्त सामर्थ्यवानल तथा दाहिने हाथ में वज्र एवं वाम हाथ में तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए क्रोधमन्त्राधिदेवता का ध्यान करके क्रोध मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए।

क्रोध मन्त्रों का उद्धार करने पर -

प्रथम मन्त्र - 'ॐ हूँ वज्र फट्'।

द्वितीय मन्त्र - 'ॐ हन विध्वंसय नाशय आँ हूँ फट्'।

तृतीय मन्त्र - 'ॐ व्रजज्वालेन हन हन सर्वभूतान् हूँ फट्'।

ये सभी मन्त्र प्राणियों का विनाश (मारण) करने वाले हैं।

॥ भूतिनी-नाम-वर्णनं विभूषिणी-मन्त्र-निरूपणम्॥

क्रोधाधिपं व्योमवक्त्रं वज्रपाणिं सुरान्तमकम्।
कालकल्पतरुं नत्वा भूतिनीसिद्धिरुच्यते॥५॥
आद्या विभूषणी देवी परा कुण्डलधारिणी।
तारिणी सिंहनी चाथो हंसिनी च ततो नटी॥६॥
चेटिका किन्नरी प्रोक्ता भूतिनी तु रतिप्रिया।
क्रोधास्त्रद्वयमायान्ते भूतवीर्यस्त्रिकूर्चतः॥७॥
तारलज्जाद्वयादस्त्रद्वयादेव विभूषिणी।
क्रोधाद्वयं तु मन्त्रोऽयं विभूषिण्या उदाहृतः॥८॥

आकाश रूप मुखवाले (अथवा आकाश के समान विस्तृत विशाल मुख खोले हुए), हाथों में वज्र (तथा तर्जनीमुद्रा) धारण किये हुए, देवताओं का (भी)

अन्त (मृत्यु-विनाश) कर देने वाले, काल कल्पतरु क्रोध (मन्त्र) के अधिपति को प्रणाम करके (मुझ शिव के द्वारा) भूतिनी सिद्धि का वर्णन किया जाता है।

भूतिनियों प्रथम विभूषिणी देवी, इसके बाद कुण्डलधारिणी, सिन्दूर हारिणी, सिंहनी, हंसिनी, नटी, चेटिका, कामेश्वरी भूतिनी तथा रतिप्रिया हैं।

श्लोकानुसार उद्धार करने पर -

विभूषिणी मन्त्र -

''हूँ हूँ फट् फट् ह्रीं भूतिनी हूँ हूँ हूँ ॐ ह्रीं ह्रीं फट् फट् विभूषिणी हूँ हूँ।''

।। विभूषिणी-ध्यानम्।।

कर्त्री चैककरे परे नरशिरस्तुङ्गाकृतिर्भीषणा
दन्तान्तर्गतमांसशोणितवसासंयुक्तभूतव्रजा ।
कालव्यालकरालशालविटपव्यालम्बिपृष्ठाङ्कका
यस्याः केशकुलाकुलाखिलमही शैलान्तमारक्षतु।।९।।

जिसके एक हाथ में कर्तनी तथा दूसरे हाथ में मनुष्य का शिर है, जिसका शरीर अत्यधिक उन्नत (ऊँचा-लम्बा विशाल) तथा स्वरूप भयंकर है, जिसके दाँतों के मध्य मांस, रक्त तथा वसा (चर्बी) सहित प्राणी प्रविष्ट हैं, जो काल सर्प के समान भयंकर है। विस्तृत शाल वृक्ष के समान जिसका पृष्ठ भाग (पीठ) है तथा जिसके खुले हुए शिर केश-समूह सम्पूर्ण पृथ्वी तथा पर्वतों की सीमा तक फैले हुए हैं, (तथा प्रज्वलित अग्नि समूह के समान जिसकी आभा है) वह (विभूषिणी भूतिनी) मेरी रक्षा करें।

।। काम्य-प्रयोगः।।

एकवृक्षतरं गत्वा यामिन्यां प्रवसंस्त्र्यहम्।
जपेदष्टसहस्रं तु ध्यायन्नेकाग्रमानसः।।१०।।
जपान्ते पूजनं नाम्ना पुरो धूपं निवेद्य च।
प्रजपेदर्धरात्रे तु समायाति विभूषिणी।।११।।
चन्दनोदकमिश्रेण दत्तेऽर्घ्ये तुष्यते ध्रुवम्।
माता वा भगिनि भार्या तुष्टा भवति कामिता।।१२।।
करामेलनकं कृत्वा माता भूत्वा जगत्त्रयम्।
शताष्टपरिवारस्य ददात्यञ्जनभूषणम्।।१३।।
भगिनी चेन्महाभागा सहस्रयोजनादपि।
ददाति स्त्रियमानीय दिव्यं रसरसायनम्।।१४।।
भार्या चेत् पृष्ठमारोप्य स्वर्गं नयति यच्छति।
दीनाराणां सहस्रं तु रसं चैव रसायनम्।।१५।।
सर्वाशाः पूरयत्येव सदा देवी विभूषिणी।

रात्रि (के द्वितीय प्रहर) में किसी वृक्ष के नीचे अथवा एकलिङ्ग स्थान में अकेले ही जाकर वहाँ तीन दिनों तक निवास करते हुए एकाग्रचित्त होकर विभूषिणी मन्त्र का आठ हजार जप (तीन रात्रियों में) करें। प्रत्येक रात्रि में जप के पश्चात् पूजन

करके नामोच्चारण सहित अगुरु का धूप प्रदान करें। इस प्रकार अर्धरात्रि में जप करने से (जप पूरा होने पर) विभूषिणी देवी आती (प्रत्यक्ष होती) है। तदुपरान्त साधक उसे चन्दन मिश्रित जल से अर्घ्य प्रदान करें। इससे वह शीघ्र ही निश्चित रूप से तुष्ट (प्रसन्न) हो जाती है। फिर साधक की कामनानुसार, प्रसन्न होकर वह उसकी पत्नी, बहन अथवा माता बन (हो) जाती है। तीनों लोकों की माता स्वरूप होकर वह विभूषिणी देवी साधक का हाथ पकड़ कर, उसे एक सौ आठ सेवक, अञ्जन (एवं शरीर में लेपन हेतु सुगन्धित स्निग्ध द्रव्य) तथा विभिन्न प्रकार के आभूषण देती (सदैव प्रदान करती रहती) है। बहन के रूप में, साधक द्वारा स्वीकृत होने पर वह हजारों योजन दूर से भी स्त्रियों तथा रस-रसायनों (मन को तृप्ति, आनन्द प्रदान सहित तरुणावस्था को चिरस्थायी बनाये रखने वाले द्रव्यों) को लाकर प्रदान करती है। भार्या (पत्नी) रूप में स्वीकृत होने पर वह देवी साधक को अपनी पीठ पर आरूढ कराकर (बैठाकर) स्वर्ग ले जाती है तथा (प्रतिदिन) एक हजार दीनार (स्वर्णमुद्रा अथवा रत्न) साथ ही रस-रसायनों को भी प्रदान करती है। देवी विभूषिणी साधक की सभी कामनाओं को सदैव पूरित करती रहती है।

।। कुण्डलधारिणी-मन्त्र-निरूपण सहित तस्याः ध्यानम्।।

ध्रुवमायास्त्रद्वयतः प्रोक्ता कुण्डलधारिणी।।१६।।
त्रिकूर्चास्त्रः समाख्यातः कुण्डलधारिणीमनुः।
कर्णे कुण्डलधारिणी शशिमुखी वीणावती सस्मिता
शैलश्रोणिविलम्बिकाञ्चिविततव्यामुग्धलोकत्रया।
मुक्ताहारविहारिणी प्रविलसत्प्रोतुङ्गकुम्भस्तनी।
पायात्कुण्डलधारिणी त्रिजगतामानन्दसन्दोहभूः।।१७।।

कुण्डलधारिणी मन्त्र - "ॐ ॐ ह्रीं ह्रीं फट् फट् कुण्डलधारिणी हूं हूं हूं फट्।"

कानों में कुण्डल धारण करने वाली, चन्द्रमा के समान (सुन्दर) मुखवाली, (हाथों में) वीणा धारण की हुई, (सुन्दर-मधुर) मुस्कान युक्त (वाली), पर्वत के समान विशाल नितम्बों पर आच्छादित लम्बी स्वर्ण करधनी के सौन्दर्य से तीनों लोकों को पूर्णतया मोहित करने वाली, (कण्ठ में धारित) हिलती हुई मोतियों की माला से शोभायमान अति उच्च तथा कुम्भ के समान वृहत् एवं वर्तुल (गोल) स्तनों वाली तथा तीनों लोकों में व्याप्त समस्त आनन्द राशि को उत्पन्न करने वाली (अथवा आनन्द राशि से उत्पन्न) देवी कुण्डलधारिणी (भूतिनी) सदैव मेरी रक्षा करे।

।। काम्य-प्रयोगः।।

श्मशाने प्रजपेद् रात्रावयुतं कुण्डलधारिणी।
आयाति रुधिरेणार्घ्यो देयस्तुष्टो वदत्यपि।।१८।।
किं कर्तव्यं मया वत्स मातेति भव साधकः।
पञ्चशतवासराणि त्रैलोक्यमपि दास्यति।।१९।।

अर्धरात्रि को श्मशान में मन्त्र का दश (आठ) हजार जप (एक मास तक प्रतिदिन) करें। जप-संख्या पूर्ण होने पर कुण्डलधारिणी साक्षात् आती (प्रकट होती)

है। उस समय साधक उसे रक्त से अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य-दान से सन्तुष्ट हुई वह देवी कहती है-हे पुत्र! मेरे द्वारा (तुम्हारे लिए) क्या कर्तव्य है अर्थात् मैं (तुम्हारे लिए) क्या करूं। उसके ऐसा कहने पर साधक 'आप मेरी माता (स्वरूप) हो जाएं' इस प्रकार बोले। साधक के ऐसा कहने पर वह देवी कुण्डलधारिणी उसे पचास दिनों तक (अथवा पचास दीनार तथा) त्रिलोकी की कोई भी वस्तु उसके मांगने पर प्रदान करती है।

।। सिन्दूरहारिणी-मन्त्र-निरुपणं तद्ध्यानञ्च।।

क्रोधद्वयास्त्रयुगतः सिन्दूरहारिणीपदम्।
कूर्चत्रयास्त्रसंप्रोक्तः सिन्दूरहारिणीमनुः।।२०।।
स्वर्णालङ्कृतहारिणी चलदलव्यालोलशाखाम्बरा
सोत्कण्ठीकृतगात्रकल्पसुभगा शुभ्रांशुका सस्मिता।
अन्तःसन्ततकान्तिकान्तमलिना त्रैलोक्यशोभागता
पायाद् वल्लभमूलराहुलतिका सिन्दूरहारिण्यसौ।।२१।।

सिन्दूरहारिणी मन्त्र - ''हूँ हूँ फट् फट् सिन्दूरहारिणी हूँ हूँ हूँ फट्।''

स्वर्णाभूषणों सहित हार (अथवा स्वर्णनिर्मित हार) धारण की हुई, वायु के आघात (झोंके) से हिलते हुई पीपल-वृक्ष की शाखा के समान वस्त्रों को धारण की हुई, प्रिय मिलन की आतुरता (उत्सुकता) वश शरीर को सज्जित की हुई, शुभ्र (श्वेत) वस्त्रावृता, मधुर मुस्कान वाली, शरीर से विस्तृत होने वाली तीव्र दीप्ति से चन्द्रमा को भी मलिन (निस्तेज) कर देने वाली, अपने सौन्दर्य से तीनों लोकों को शोभा रहित कर देने वाली तथा जिस प्रकार राहु चन्द्रमा को आच्छादित कर देता है उसी प्रकार प्रियतम रूपी वृक्ष के चरण रूपी मूल को आच्छादित कर लता के समान स्थित जो देवी सिन्दूर हारिणी है, वह मेरी रक्षा करे।

।। काम्य-प्रयोगः।।

शून्यदेवालयं गत्वा जपेदष्टसहस्रकम्।
शीघ्रमायात्यागता सा भार्या भवति कामिता।।२२।।
पञ्चविंशति दिनानि वस्त्रालङ्कारभूषणा।
ददाति साधकेन्द्राय देवी सिन्दूरहारिणी।।२३।।

मूर्ति विहीन देवालय में जाकर साधक मन्त्र का आठ हजार जप प्रतिदिन करे। इससे प्रसन्न होकर शीघ्र ही वह सिन्दूरहारिणी साधक के पास आती है तथा साधक की कामनानुसार उसकी पत्नी रूप हो जाती है। तत्पश्चात् वह उस श्रेष्ठ साधक को पच्चीस दिनों तक (अथवा पच्चीस दीनार तथा) विभिन्न प्रकार के वस्त्र, आभूषण तथा शरीर को सज्जित करने वाले पदार्थों को प्रदान करती (रहती) है।

।। मन्त्र-निरूपण-पूर्वक सिंहिनी-ध्यानम्।।

लज्जाद्वयास्त्रयुगतः सिंहिनीति पदं ततः।
क्रोधबीजत्रयाद्यन्तः कीर्तितः सिंहिनीमनुः।।२४।।

शैलाग्रद्रुमदुर्गदन्तुरदरीदुर्गान्तदैत्यस्थिता
केशस्रस्तसमस्तविश्वचरणा प्रभ्रष्टसन्त्रासिनी।
या दन्तान्तरलम्बिधारणरणेप्रक्षुब्धसिद्धाङ्गना
सेयं पातु समस्तमस्तककुलव्यालम्बिमालाकुला॥२५॥

सिंहिनी मन्त्र - "हूं हूं हूं ह्रीं ह्रीं फट् फट् सिंहनी हूं हूं हूं।"

पर्वत शिखरों पर स्थित विशाल वृक्षों के समान बड़े-बड़े तथा नुकीले (तीक्ष्ण) भयंकर दांतों से युक्त गुफा के समान जिसके मुख में दुर्गा के द्वारा मारा गया (दैत्य का शरीर) दैत्य स्थित है, जिसके शिर के बाल खुल कर नीचे तक लटक रहे हैं, जो समस्त विश्व को चरणों में गिराकर उन्हें भयभीत करने वाली है अथवा जिससे भयभीत होकर सारा विश्व चरणों में गिरा हुआ है, जो अपने दाँतों के मध्य लटकते हुए मांस खण्ड को धारण किये हुए युद्ध-क्षेत्र में इधर-उधर डाँवाडोल हो रही है तथा समस्त विपत्तियों के कारक दैत्यों के शिर-समूहों की लम्बी माला जिसके गले में लटकती हुई कम्पित हो रही है, वह सिद्धाङ्गना सिंहिनी मेरी रक्षा करे।

॥ काम्य-प्रयोगः॥

गत्वैकलिङ्गं यामिन्यां प्रजपेदयुतं मनुम्।
ततो हृष्टाऽतिवरदा सिंहिन्यायाति पूजिता॥२६॥
किं करोमि वदत्येवं भार्या भवति कामिता।
दींनारं वस्त्रयुगलं दधद् रसरसायनम्॥२७॥

साधक एकलिङ्ग स्थान में जाकर रात्रि में उपर्युक्त मन्त्र का दश हजार जप (प्रतिदिन) करे। (यथोचित संख्या में) जप पूर्ण होने पर अत्यन्त प्रसन्न हुई वरदायिनी सिंहिनी आती है। साधक द्वारा पूजित होने पर "मैं क्या करूँ" इस प्रकार से वह कहती है। तब साधक की इच्छानुसार (साधक द्वारा कामना करने पर) वह उस साधक की भार्या (पत्नीवत्) हो जाती है। इस रूप में वह साधक को दीनार (विशेष प्रकार की स्वर्ण मुद्रा) तथा रस-रसायन प्रदान करती है।

॥ हंसिनी-मन्त्र-तद्ध्यानञ्च॥

तारत्रिकूर्चास्त्रयुगाद् हंसिनी भूतिनी ततः।
त्रिकूर्चान्तः च कथितो हंसि(नी)मनुरुत्तमः॥२८॥
शुभ्राशुभ्रसरोजतुल्यनयना दुग्धासवेनार्चिता,
प्रारब्धध्वनिमुग्धमाधववधूसंसेविता सादरम्।
किञ्चित् तिर्यगपाङ्गलोचनवती व्यामुग्धवीक्षामुखी,
मुक्तायुक्तविलोलहारललिता श्रीहंसिनीपातु नः॥२९॥

हंसिनी मन्त्र - "ॐ हूँ हूँ हूँ फट् फट् हंसिनी भूतिनी हूँ हूँ हूँ।"

गौर वर्ण वाली, नील कमल के समान नेत्रों वाली, दूध तथा आसव के द्वारा पूजिता, अपने भाग्य (सौभाग्य) सूचक वचनों को सुनकर मोहित हुई लक्ष्मी (अथवा मानवी

स्त्रियों) द्वारा आदरपूर्वक सेवा की जाने वाली, नेत्रों को कुछ तिरछा करके (तिरछी चितवन से) प्रणयोन्मादक भाव (अथवा आकुलता) पूर्वक देखने वाली तथा (कण्ठ में धारित) हिलती हुई मोतियों की माला से सुशोभिता श्री हंसिनी हमारी रक्षा करे।

॥ काम्य प्रयोगः ॥

वज्रपाणिगृहं गत्वा प्रतिमां शोभनां लिखेत्।
हयमारेण संपूज्य जपेदयुतसंख्यकम्॥३०॥
यावदर्धनिशां देवी हंसिन्यायाति निश्चितम्।
चन्दनार्ध्यप्रदानेन हृष्टा वदति साधकम्॥३१॥
किं ते मयाद्य कर्तव्यं किङ्करी भव साधकः।
वस्त्रालङ्कारभोज्यादि व्ययार्थं संप्रयच्छति।
तदशेषव्ययाभावाद् न ददाति प्रकुप्यति॥३२॥

इन्द्र देवता के मन्दिर में जाकर हंसिनी की सुन्दर प्रतिमा का निर्माण करके उसकी कनेर के पुष्पों से पूजन कर रात्रि में दश हजार की संख्या में मन्त्र का जप करे। जप पूर्ण होने पर अर्धरात्रि में देवी हंसिनी निश्चित रूप से आती है। उस समय चन्दन मिश्रित जल से उसे अर्घ्य प्रदान करे। इससे प्रसन्न होकर वह साधक से कहती है कि मैं अब तुम्हारे लिए क्या कार्य करूँ। तब साधक को कहना चाहिए कि आप मेरी सेविका बन जाएं। साधक के ऐसा कहने पर वह देवी उसे वस्त्राभूषण-भोज्यपदार्थ आदि सहित व्यय (खर्च) करने के लिए धन भी प्रदान करती है। यदि साधक प्रतिदिन प्राप्त धन को सम्पूर्ण रूप से व्यय नहीं करता है तो वह देवी क्रोधित होकर पुनः देना बन्द कर देती है।

॥ नटी-मन्त्र-निरूपणम्॥

(शिव उवाच)

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि चेटिका साधनोत्तमम्।
यत् प्रसादं नरो लब्ध्वा सर्ववाञ्छितमाप्नुयात्॥३३॥
तारं क्रोधस्त्रयुगतो नटीति पदमुद्धरेत्।
कूर्चत्रयादस्त्रान्तोऽयं कथितो नर्तकीमनुः॥३४॥
ताराचक्राधारयुगं नटीति पदमुद्धरेत्।
कूर्चत्रयलज्जान्तोऽयं कथितो नर्तकी मनुः॥३५॥

शिव ने कहा - हे देवि! अब मैं सर्वोत्तम साधन रूप (नटी तथा) चेटिका साधन (मन्त्रादि) को कहता हूँ जिसकी कृपा को प्राप्त करके साधक अपनी सभी मनोवाञ्छित के श्रेष्ठ साधन का वर्णन करता हूँ, जिसकी कृपा को प्राप्त करके साध क अपनी सभी मनोवाञ्छित कामनाओं की उपलब्धि कर लेता है।

नटी (नर्तकी) मन्त्र - "ॐ हूँ हूँ फट् फट् नटी हूँ हूँ हूँ फट्।" (१)

(अथवा) "ॐ हूँ हूँ नटी हूँ हूँ हूँ ह्रीं।" (२)

॥ नटी-ध्यानम्॥

फुल्लेन्दीवरसुन्दराम्बरमुखीमुत्तुङ्गकुम्भस्तनीं ,
खेलत्खञ्जनयुग्ममीननयनामानन्ददायिस्मिताम्।
क्षीराम्भोनिधिकूलवन्दिवनितामानीलवासासनीं,
चन्द्रोद्यत्सुनखादिनीं मणिकुलव्याहारकारोत्तराम्॥३६॥

खिले हुए नील कमल के समान गोल मुख वाली अत्युन्नत तथा कलशवत् वृहत् एवं वर्तुल स्तनों वाली, खञ्जन पक्षी के समान चञ्चल मत्स्याकार युगल नेत्रों वाली, आनन्दप्रद मुस्कान वाली, क्षीर सागर के किनारे नीले वस्त्र धारण कर (अथवा नीलवर्ण के आवास में) बैठी हुई स्त्रियों द्वारा जिसकी स्तुति अथवा अर्चना की जा रही है। अथवा क्षीर सागर के किनारे जो नीले वस्त्र धारण कर (अथवा नील वर्ण के आवास में) बैठी है तथा स्त्रियों द्वारा जिसकी वन्दना (अर्चना) की जा रही है, जिसके सुन्दर नखों से चन्द्रकिरणों के समान दीप्ति (प्रकाश किरण) निकल रही है अथवा जिसके सुन्दर नखों की शोभा उदित (होते हुए) चन्द्रमा के समान है तथा (परस्पर घर्षण से) ध्वनित होने वाले मणिसमूहों से युक्त जिसका उत्तरीय अथवा करधनी है अथवा प्रत्युत्तर में बोल गये जिसके वचनों की ध्वनि मणि-समूहों के परस्पर घर्षण से उत्पन्न ध्वनि के समान है। (वह देवी नटी हमारी सभी कामनाओं को पूरित करे)।

॥ काम्य-प्रयोग॥

नीचगामङ्गनां गत्वा सप्ताहं जपपूजने।
कृत्वार्कास्तमने धूपं चन्दनेन जपेदपि॥३७॥
कामभोगप्रदात्री सा भार्या भवति नर्तकी।
सुवर्णपलमेकं तु व्ययार्थं त्यज्य गच्छति।
दिने दिने नटी देवी स्थायिनी भवति ध्रुवम्॥३८॥

किसी निम्न जाति की स्त्री के घर जाकर उससे सम्बन्ध करके सूर्यास्त होने के बाद धूप-चन्दनादि प्रदान सहित उसका पूजन करके मन्त्र का (दश हजार) जप करें। इस प्रयोग को एक सप्ताह तक करना चाहिए। इससे मनोवाञ्छित भोगों को प्रदान करने वाली वह देवी नर्तकी साधक की भार्या रूप होकर व्यय के लिए एक पल स्वर्ण देकर चली जाती है। दिन-प्रतिदिन इस प्रकार व्यवहार करते हुए धीरे-धीरे वह नटी देवी स्थायी रूप से साधक के साथ रहने लगती है।

॥ चेटी मन्त्र-तद्ध्यानञ्च॥

तारकूर्चद्वयं चास्त्रद्वयं चेटी ततः परम्।
ततः क्रोधद्वयं दत्त्वा चेटीमन्त्रोत्तमो मतः॥३९॥
गच्छन्ती मितभाषिणी शशिमुखी भ्रष्टोत्तरीयाम्बरा,
विभ्रन्ती कलशं सरोजयुगलं स्वर्णान्तसीमन्तिनी।
श्रीखण्डादिविलेपनामलवपुः सौरभ्यसम्भाविता,
किञ्चिद् वक्रसमाचितापि कबरी पायाच्चिरं चेटिका॥४०॥

चेटी मन्त्र - "ॐ हूँ हूँ फट् फट् चेटी हूँ हूँ।"

पुरश्चर्यार्णव में **"हूँ हूँ फट् फट् चेट्यै हूँ हूँ चेटी चेटी ह्रीं"** तथा तन्त्र कौमुदी में **"ॐ हूँ हूँ फट् फट् चेट्यै क्रों क्रों"** रूप से यही मन्त्र दिया गया है।

जो अल्प (थोड़ा) बोलने वाली है, चन्द्रमा के समान मुख वाली हैं, चलते समय जिसका उत्तरीय वस्त्र नीचे (भूमि पर) गिर (अथवा खिसक) गया है, जिसके कमल के समान हाथों में कलश धारित है अथवा जो एक हाथ में कमल तथा दूसरे हाथ में कलश धारण किये हुए है। जिसकी मांग (शिर के बालों की मध्य रेखा) स्वर्णाभूषण से युक्त है अथवा सिन्दूर पूरित है, चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से निर्मित लेप (अङ्गराग) के लेपन से जिसका शरीर निर्मल हैं तथा भली-भाँति (केशों को) एकत्र करके बँधी होने पर भी जिसकी चोटी थोड़ी वक्र (टेढी) है, वह देवी चेटी चिरकाल तक मेरी रक्षा करे।

॥ काम्य-प्रयोगः॥

कुत्रापि भीषणस्थाने नामोच्चारणमात्रतः।
ध्रुवं चेटि समागत्य चेटीकर्म करोत्यपि॥४१॥
अथवा स्वगृहद्वारे त्र्यहं रात्रौ जपं चरेत्।
आगत्य निलयं देवी चेटीकर्म करोति सा॥४२॥

मन्त्र का विधिवत् (रात्रि में दश हजार) जप करने के पश्चात् किसी भी भीषण (भयानक-आपद्युक्त) स्थान (वन, निर्जन प्रदेश आदि) में जाकर (अथवा ऐसे स्थान में होने की स्थिति में) नाम का उच्चारण करने मात्र से ही निःसन्देह वह देवी चेटी आकर चेटी (दासी) कर्म करती है।

अथवा अपने ही घर के दरवाजे पर बैठकर तीन दिनों तक रात्रि में मन्त्र का (दश हजार) जप करे। इससे देवी चेटी घर पर ही आकर सेविका का कार्य करती है।

॥ कामेश्वरी-भूतिनी-मन्त्र-तद्ध्यानञ्च॥

तारकूर्चास्त्रयुग्मं तु कामेश्वरीभूतिन्यतः।
ङेऽन्तं क्रोधद्वयं कामेश्वरीमन्त्र उदाहृतः॥४३॥
कामस्कन्ध समागता मधुलता वासन्तिपुष्पान्विता,
गायन्ती मधुराधरस्मितमुखी वीणावती चञ्चला।
रक्ताम्भोजविलोचना मधुमदैर्युक्ता समन्तादियं,
पायात् पुष्पधनुर्धरा मधुमुखी कामेश्वरी भूतिनी॥४४॥

कामेश्वरी भूतिनी मन्त्र - "ॐ हूँ फट् फट् कामेश्वरि भूतिन्यै हूँ हूँ।"
(अथवा "ॐ हूँ फट् कामेश्वरि भूतिन्यै हूँ हूँ हूँ।")

कामदेव के कन्धे (शरीर) के साथ संयुक्त होकर स्थित (बैठी) हुई, मनोहर लताओं तथा वसन्त ऋतु में पुष्पित होने वाले विभिन्न प्रकार के पुष्पों (अथवा पीले पुष्पों) को धारण (उनके द्वारा आच्छादित अथवा शृंगार) किये हुए, हाथों

(गोद-अङ्क) में धारित वीणा को बजाते हुए मुस्कानयुक्त अधरों (होठों) से गाती हुई, मदिरा के मद से आवेशित हुई जिसकी आँखें लाल कमल सी प्रतीत हो रही हैं, जिसने पुष्पों से निर्मित धनुष (तथा बाण भी) धारण किया हुआ है तथा जिसका मुख मनोहर (अथवा मदिरा-गन्ध से युक्त) है, चञ्चल प्रकृति वाली यह (वह) कामेश्वरी भूतिनी हर प्रकार से मेरी रक्षा करे।

।। काम्य प्रयोग:।।

मातृस्थानं समागत्य कृत्वा मांसस्य भक्षणम्।
मांसादिना बलिं दत्वा सहस्रं सप्तवासरान्।।४५।।
जपेन्नित्यमायाति रुधिरार्घ्यं निवेदयेत्।
कामेश्वरी भवेत्तुष्टा भार्या भवति कामिता।
सर्वाशाः पूरयत्येव राज्यं यच्छति निश्चितम्।।४६।।

मातृकाओं (ब्राह्मी आदि) के स्थान (देवालय पीठादि) में जाकर, मांस का भक्षण करके मांसादि पदार्थों द्वारा बलि प्रदान कर एक सप्ताह तक प्रतिदिन एक हजार की संख्या में मन्त्र का जप करे। जप पूर्ण होने पर निश्चित रूप से वह कामेश्वरी भूतिनी आती है। उस समय साधक उसे रक्त से अर्घ्य प्रदान करे। इससे प्रसन्न होकर वह साधक की इच्छा से उसकी पत्नी (स्वरूप) हो जाती है। इस स्थिति में वह साधक की सभी आशाओं को पूरा करती है तथा (कामना करने पर) निश्चित रूप से राज्य (भी) प्रदान कर देती है।

।। रतिप्रिया-मन्त्र तद्ध्यानञ्च।।

तारं लज्जां च कूर्चास्त्रद्वयमुक्त्वा रतिप्रिये।
कोधत्रपास्त्रयुक् कामेश्वरीतन्त्रोक्तवत् क्रिया।।४७।।
हेमप्राकारमध्ये सुरविटपितले हेमपीठाधिरूढा,
यक्षीमाला विसर्पत्परिमलकुसुमोद्भासिधम्मिल्लभारा।
पीनोत्तुङ्गस्तनाढ्या कुवलयनयना रक्तवर्णा कराभ्यां,
भ्राम्यद् रक्तोत्पलाभा सकलसुरनता दिव्यभूषाङ्गहारा।।४८।।

रतिप्रिया मन्त्र - ''ॐ ह्रीं हूँ हूँ फट् फट् रतिप्रिये हूँ ह्रीं फट्।''

कामेश्वरी तन्त्र (साधन प्रक्रिया) में वर्णित विधि के अनुसार इसकी भी क्रिया (साधना) है। जो स्वर्ण निर्मित परकोटे (चहार-दीवारी) के मध्य कल्पवृक्ष के नीचे स्वर्ण पीठ (स्वर्णासन) पर बैठी हुई है, जिसके वक्ष पर यक्ष-स्त्रियों के द्वारा समर्पित सुगन्धि दिव्य पुष्पों से निर्मित माला इधर-उधर हिलती (सरकती) हुई प्रकाशित हो रही है, जिसके शिर पर मोतियों तथा पुष्पों के द्वारा मींढीदार अलंकृत भारी जूड़ा बँध ा है, जिसके स्तनद्वय पुष्ट तथा उन्नत हैं, नेत्र लाल कमलिनी के समान रक्तवर्णी हैं, जो अपने दोनों हाथों में लाल कमल लिए हुए उन्हें घुमा रही है, दिव्य शरीर पर दिव्य आभूषणों तथा हारों (अथवा अङ्गरागों) से सुसज्जित तथा समस्त देवताओं द्वारा नमस्कृता वह रतिप्रिया देवी मेरी सभी कामनाओं को पूर्ण करे।

॥ देवी (दिव्यरूपिणी) मन्त्रः॥

क्रोधद्वयास्त्रयुगतो देवीति पदमुद्धरेत्।
अन्ते क्रोधद्वयं गृह्य देवीमन्त्रमनुत्तमम्॥४९॥
सर्वालङ्कारसंयुक्ता भार्या भवति कामिता।
दिव्यकामिकहेमाभा कुमारी दिव्यरूपिणी॥५०॥

देवी मन्त्र - "(ॐ) हूँ हूँ फट् फट् देवि हूँ हूँ।" (अथवा तन्त्रकौमुदी-प्रोक्त - **"(ॐ) हूँ हूँ फट् फट् देव्यै हूँ हूँ हूँ।"**)

कुमारी दिव्यरूपिणी (देवी) की कान्ति स्वर्ण के समान है, वह अपने शरीर पर यथोचित सभी आभूषणों को धारण किये हुए है। वह स्वयं दिव्य अभिलाषा रखने वाली तथा साधक की कामना से उसकी भार्या होकर (उसकी भी) सभी दिव्य कामनाओं को पूर्ण करने वाली है।

॥ काम्य प्रयोगः॥

रात्रौ देवगृहं गत्वा तत्र शय्यां प्रकल्पयेत्।
सितवस्त्रं चन्दनञ्च जातीपुष्पं प्रदापयेत्॥५१॥
धूपञ्च गुग्गुलं कृत्वा सहस्रं प्रजपेन्मनुम्।
जपान्ते नियतायाति चुम्बनालिङ्गनादिभिः॥५२॥
कामिता भव भार्येयं सत्यं देवाङ्गनायिका।
ददात्यष्टौ दिनाराणि दिव्यं वस्त्रयुगं ततः॥५३॥
कामिकं भोजनं दिव्यं परिवारस्य दास्यति।
अन्यच्च वैश्रवणगृहाद् द्रव्यमानीय यच्छति॥५४॥
एतज्जप्त्वा सहस्राणि जपान्ते सिद्ध्यति ध्रुवम्।
मुहुर्मुहुर्जपेन्मन्त्रमित्याह क्रोधभूपतिः॥५५॥

रात्रि के समय देवालय में जाकर वहाँ देवी के लिए शय्या की व्यवस्था करके, श्वेत वस्त्र, चन्दन, जाती पुष्प तथा गुग्गुल का धूपादि प्रदान (द्वारा उसका पूजन) करके मन्त्र का एक (आठ) हजार जप करे। जप की समाप्ति पर देवाङ्गनाओं की नायिका (स्वामिनी स्वरूप यह देवी) निश्चित ही आती है तथा साधक की कामना से उसकी भार्या होकर उसे चुम्बन-आलिङ्गन आदि भी प्रदान करती है। वह साधक को आठ दीनार, दो दिव्य वस्त्र, इच्छानुसार भोजन तथा दिव्य सेवक प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त कुबेर के गृह से भी लाकर अन्य दिव्य पदार्थों को प्रदान करती है।

इस मन्त्र का एक हजार जप नित्य आठ दिनों तक करने से जप पूर्ण होने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। क्रोधाधिदेवता के कथनानुसार इसका बार-बार जप करते रहना चाहिए।

॥ ग्रन्थकारोक्तिः (ग्रन्थ प्रशंसनम्)॥

फेत्कारिणीतन्त्र इयं मयोक्ता
कृत्या समस्तागमसारभूता।

शत्रोर्विनाशाय धनाय सम्यक्
सद्भि:सदेयं नियतं नियोज्या।।५६।।
दु:खाय हि दुर्जनसिंहा पराघातिनी कृत्या।
गदितेष्टसिद्धिदात्री मया तत फेत्कारिणीतन्त्रे।।५७।।
सृष्टिस्थितिविनाशानामद्वितीयातिभैरवी ।
महाकृत्या स्मृता नित्यमशुभारिविनाशिनी।।५८।।

इति फेत्कारिणीमहातन्त्रे देवीश्वरसंवादे चेटिकासाधनं नाम
एकविंशतितम: पटल: समाप्त:।।
समाप्तश्चायं ग्रन्थ:।।

सभी आगमों (तन्त्र ग्रन्थों) के सार स्वरूप इस फेत्कारिणी तन्त्र में मेरे द्वारा (अनेकों) प्रयोगों का वर्णन किया गया है। शत्रुओं के विनाश तथा (आवश्यक होने पर) धन की प्राप्ति के लिए सज्जन साधकों द्वारा भली भाँति विधि के अनुसार इसका नियोग (प्रयोग) करना चाहिए। इस फेत्कारिणी तन्त्र में दुष्ट प्रकृति वाले सिंह के समान बलशाली मनुष्यों को (भी) पीड़ित करने वाली, शत्रुओं का विनाश करने वाली तथा अभीष्ट सिद्धि प्रदान करने वाली कृत्या (ओं) का मेरे द्वारा वर्णन किया गया है। महाकृत्या को सृष्टि-स्थिति तथा संहार करने वाली दूसरी अति भैरवी तथा नित्य ही अशुभों (अमङ्गलों) तथा शत्रुओं का विनाश करने वाली कहा गया है।

।। फेत्कारिणी महातन्त्र में देवीश्वर संवाद के अन्तर्गत चेटिका साधन
नामक इक्कीसवें पटल की अञ्जलि-स्वाती हिन्दी भाषा में व्याख्या पूर्ण हुई।।

।। ग्रन्थ समाप्ति।।

षट्कर्म साधकम्

श्री दक्षिणाकालिका कवचम्

श्री दक्षिणा कालिका का यह कवच सर्वसिद्धि प्रद कहा गया है। कौलिक गुरु द्वारा इसका उपदेश ग्रहण करने के पश्चात् पञ्च मकारों द्वारा देवी का पूजन करके प्रतिदिन एक सौ आठ पाठ करने से छः माह में यह सिद्ध हो जाता है। इसके नित्य पाठ से साधक के मुख से गद्य-पद्यात्मक वाणी गंगा प्रवाहवत् सहज ही निकलने लगती है तथा लक्ष्मी उसके गृह में सदैव के लिए अधिष्ठित हो जाती है। यहाँ तक कि इन्द्र (इन्द्रवत् राजा) भी उसके सेवक हो जाते हैं। षट्कर्मों के प्रयोग से पहले इस कवच का पाठ करने से कार्य अवश्य ही सफल होता है। जो साधक त्रिकोण के मध्य इस कवच को भोज पत्र पर लिखकर तथा अष्टगन्धयुक्त चन्दन का उस पर लेप करके उसे अपनी दाहिनी भुजा पर धारण करता है तथा नित्य पाठ भी करता है, वह सर्वैश्वर्यशाली हो जाता है। शारदीय नवरात्र में इसका दश हजार पाठ अर्धरात्रि में करने से चतु: पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है।

॥ श्री कालिकायै नमः॥

परापर परेशान महादेव जगत्पते।
त्वत् प्रसादात् श्रुतं सर्वं कालिका पूजनं महत्॥१॥
न्यासजालं मन्त्रजालं प्रयोगं शवसाधनम्।
प्राणेश किन्तु कवचं सूचितं न कथं त्वया॥२॥
तत् किं मय्यपि गोप्यन्ते प्रायशः परमेश्वरः।
ब्रह्माण्डगोलके किंचिदीदृशं न हि विद्यते॥३॥
यदकथ्यमपि भवेदपि प्राणाधिकाधिकम्।
तत् किं गोपयसि प्राज्ञ कवचं दैवतं महत्॥४॥
यद्यस्मि ते दया पात्रं मान्यास्मि स्नेहभाजनम्।
अनुग्राह्यास्मि कान्तास्मि तदेवं वद सांप्रतम्॥५॥

॥ श्री सदाशिव उवाच॥

अतिगुप्ततमं वच्मि कवचं प्राणवल्लभे।
यन्न कस्यचिदाख्यातं स्नेहाद् वक्ष्यामि ते श्रृणु॥६॥
त्रिपुरासुरसंग्रामे वद्ध्वा कवचमुत्तमम्।
पुराणि त्रीणि दैत्यानां शरेनैकेन भेदितः॥७॥

नारायणोपि भगवान् यत् प्रसादात् सुरेश्वरि।
त्रैलोक्य पूज्यतां प्राप्य लक्ष्मीपतिरभूत् स्वयम्॥८॥
द्वाविंशत् कवचं देवि दक्षिणायाः पुरोदितम्।
प्राणाधिकमिति ज्ञात्वा मयात्वय्यपि गोपितम्॥९॥
शपेत्वत् शिरसा देवि त्वयि यद्यन्यथा व्रुवे।
न कोपि भविता कश्चित् तत् तुल्यः पृथिवीतले॥१०॥
सर्वसिद्धिमवाप्नोति सुराणामपि दुर्लभाम्।
कस्याप्यग्रे महादेवि न प्रकाश्यं कथंचन॥११॥
प्रकाशात् सिद्धि हानिःस्याद् देवताशापमाप्नुयात्।
श्रीमद्गुप्ततमस्यास्य त्रिपुरारि ऋषिः शिवे॥१२॥
छन्दस्तु बृहती ख्यातो देवी दक्षिणा कालिका।
षट्कर्म साधनैश्वर्य साधने विनियोगिता॥१३॥

श्रीमद् गुप्ततमस्यास्य षट्कर्म साधक श्री दक्षिणा कालिका कवचस्य त्रिपुरारि शिव-ऋषिः, बृहती छन्दः, देवी दक्षिणा कालिका देवता, षट्कर्म साधने ऐश्वर्य साधने च विनियोगः।

॥ ऋष्यादि न्यास॥

त्रिपुरारि शिव ऋषये नमः (शिरसि)। **बृहती छन्दसे नमः** (मुखे)। **देवी दक्षिणाकालिका देवतायै नमः** (हृदि)। **विनियोगाय नमः** (सर्वाङ्गे)।

कर-न्यासः	षडङ्ग-न्यासः
क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः।	**हृदयाय नमः।**
क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा।	**शिरसे स्वाहा।**
क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्।	**शिखायै वषट्।**
क्रैं अनामिकाभ्यां हुम्।	**कवचाय हुम्।**
क्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।	**नेत्रत्रयाय वौषट्।**
क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।	**अस्त्राय फट्।**

व्यापक न्यास :- मूल मन्त्र (क्रीं) का उच्चारण कर शिर से पैर तक तथा पैर से शिर तक स्पर्श करें। ऐसा ३, ५ या ७ बार करें।

ध्यान -

**सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं विभ्रतीं,
घोरास्यां शिरसा स्रजां सुरुचिरामुन्मुक्त केशावलिम्।
सृक्क्य सृक् प्रवहां श्मशान निलियां श्रुत्या शवालंकृतिं,
श्यामाङ्गीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम्॥**

॥ मानसोपचार-पूजन॥

ॐ लं पृथ्वी तत्वात्मकं गन्धं श्री दक्षिणा कालिका प्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ हं आकाश तत्वात्मकं पुष्पं श्री दक्षिणा कालिका प्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ यं वायु तत्वात्मकं धूपं श्री दक्षिणा कालिका प्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ रं अग्नि तत्वात्मकं दीपं श्री दक्षिणा कालिका प्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ वं जल तत्वात्मकं नैवेद्यं श्री दक्षिणा कालिका प्रीतये समर्पयामि नमः।
ॐ सं सर्व तत्वात्मकं ताम्बूलं श्री दक्षिणा कालिका प्रीतये समर्पयामि नमः।

॥ कवच॥

श्मशान कालिका पातु शिरो मे प्रेतगामिनी।
महाकाली ललाटं मे क्रीं क्रीं क्रीं कालविग्रहा॥१४॥
हुं हुं क्रोधकाली मम नेत्रयुग्मं सदावतु।
ह्रीं ह्रीं कर्णयुगं पायान्नाद कालीकरालिनी॥१५॥
दक्षिणे कालिके पातु गण्डयुग्मं महोत्कटा।
क्रीं क्रीं क्रीं कामकाली कण्ठदेशं सदावतु॥१६॥
हूं हूं प्रलयकाली मे स्तनयुग्मं सदावतु।
ह्रीं ह्रीं घोरतरा काली पातु दोर्दण्डं युग्मकम्॥१७॥
स्वाहा रक्षतु कुक्षि मे रौद्रकाली स्वरूपिणी।
सदाऽवतु ख्फ्रें परा मे पृष्ठं श्री चण्डकालिका॥१८॥
हसखफ्रें सदापातु कटिकां तारकालिका।
ऐं क्रीं क्लीं सदा गुह्य मे पातु उन्मत्तकालिका॥१९॥
उरुयुग्मं सदापातु क्रीं हुं कंकालकालिका।
पादौ रक्षतु क्रीं क्लीं मे तीव्रकाली भयानका॥२०॥
नवकाली सदापातु सर्वांगं कालवंचनी।
ओं क्रीं द्रीं दैत्यदलिनि शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय॥२१॥
मारयेति द्वयं प्रोच्य जिह्वां कीलय कीलय।
हुं हुं क्रोधानल ज्वाला जलिते वह्नि वल्लभा॥२२॥
एतद्वर्णात्मिका काली शत्रु मध्ये सदावतु।
ओं क्रीं हुं हुं सर्वजनमोहिनि शंकर प्रिये॥२३॥
नरचर्म कृता वासे अट्टहासे भयानके।
सर्वाकर्षिणि सर्वमुखमोहिनि मोहय द्वयम्॥२४॥
राजाप्रजा तथा राजपत्नी सेवकानुचरान्।
वशं कुरु कुरु स्वाहा मन्त्रराजः समुद्धृतः॥२५॥

एतन्मन्त्रात्मिका काली राजद्वारे सदावतु।
हुं ऐं हुं मृत्युंजयिनि अपमृत्यु विनाशिनि॥२६॥
परमन्त्रं तथा यन्त्रं कृत्यां चूर्णय - चूर्णय।
प्रत्यंगिरे महारावे तथा भंजय - भंजय।
नाशय द्वितयं चोक्ता च क्रीं हूं ह्रीं फट् फट् स्वाहा॥२७॥
मंत्राधिष्ठितसंस्थानं कालिका सर्वदा पातु।
श्मशाने जलमध्ये तु राजमार्गे च संकटे॥२८॥
अरण्ये प्रान्तरे घोरे कान्तारोत्तुंगपर्वते।
सभायां व्यसने युद्धे राजचौरभयार्दिते॥२९॥
सर्वत्र पातु मां देवी कुलकाली कुलेश्वरी।
इति ते कवचं देवि कथितं परमाद्भुतम्॥३०॥
यस्य संस्मरणाद् देवि सर्वसिद्धिः प्रजायते।
भक्तितः कौलिकमुखादुपदिश्य यथाविधि॥३१॥
मकारपंचकैः कालीं समभ्यर्च्य महानिशि।
गुरुं संतोष्य विधिवत् कवचं प्रपठेन्नरः॥३२॥
षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति नान्यथा शिवभाषितम्।
गद्यपद्यात्मिका वाणी भवेद् गंगा प्रवाहवत्॥३३॥
कमला निश्चला तस्य गृहे स्वजन वल्लभः।
इन्द्रोपि दासतां याति सत्यं सत्यं न संशयः॥३४॥
षट्कर्म सिद्धिर्भवति कवचस्य प्रसादतः।
स योनि चन्दनेनाष्ट गन्धं संपेष्य यत्नतः॥३५॥
भूर्जे संलिख्य कवचं धारयेद् दक्षिणे भुजे।
सर्वैश्वर्य युतो भूत्वा स भवेद् भुवनाधिपः॥३६॥
यं यं कामं हृदि ध्यात्वा कवचं देवि धारयेत्।
तं तं काममवाप्नोति ईश्वरस्य वचो यथा॥३७॥
अयुतं कवचं देवि शरत् काले महानिशि।
पठनीयं प्रयत्नेन चतुर्वर्ग फलाप्तये॥३८॥
अज्ञात्वा कवचं यस्तु काली पूजां करिष्यति।
प्रतिज्ञातं मया देवि स मे वध्यो भविष्यति॥३९॥

इति श्रीहाहारावतन्त्रे श्रीदक्षिणकालिकाकवचं समाप्तं॥

त्रैलोक्यमोहन दक्षिणाकालिका कवचम्

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह कवच त्रिलोकी को सम्मोहित कर साधक के वशीभूत करने वाला है। शिव निर्मित देवदुर्लभ इस कवच के नित्य पाठ (अथवा श्रवण) से सर्वपाप राहित्य, शिवलोक की प्राप्ति, सर्वकार्य सिद्धि, सर्वविद्योपलब्धि, कुबेरवत् सम्पत्ति, कोकिल समस्वर, व्यासवत् कवित्व, गणेशवत् वेदशास्त्र का ज्ञान, कामदेववत् रूप, इन्द्रवत् ऐश्वर्य, पवनवत् पराक्रम, शिववत् योगीत्व, वृहस्पतिवत् बुद्धि, सर्वजन-प्रियता, सर्वत्र निर्बाध गति, स्त्री-पुत्र-पौत्रादि सहित कुटुम्बसुख, अस्त्र-शस्त्रादि-प्रभावशून्य वज्रवत् शरीर, शोक, भय, क्लेश, रोगादि में धीरता (तथा इनसे मुक्ति) अधिक क्या कहें त्रिलोकी में विद्यमान सब कुछ साधक अपनी कामनानुसार प्राप्त कर सकता है। काक बन्ध्या, बन्ध्या अथवा मृत्पुत्रणी स्त्री यदि भोजपत्र (अथवा स्वर्ण-चाँदी आदि के फलक) पर लिखित इस कवच को अपने गले अथवा बायीं भुजा पर धारण करती है तो उसे चिरजीवी बुद्धिमान पुत्र की प्राप्ति होती है तथा वह अपने पति की प्रिय भी हो जाती है। उसका सारा परिवार पुत्र-पौत्रों सहित धन-धान्य सम्पन्न तथा पवित्र आचरणों वाला होता है।

॥ श्री देव्युवाच॥

देवदेवमहादेव संसारप्रीतिकारक।
सर्वविद्येश्वरी विद्या मयि त्वं कथय ध्रुवम्॥

॥ श्रीमहाकाल उवाच॥

शृणु देवि महाविद्यां सर्वविद्यात्तमोत्तमाम्।
सर्वेश्वरीं महाविद्यां सर्वदेव प्रपूजिताम्॥
यस्याः कटाक्षमात्रेण त्रैलोक्य विजयि हरः।
बभूव रमायाः नाथो विष्णुर्ब्रह्मा प्रजापतिः॥
शचीस्वामी देवराजो यमोपि धर्मनायकः।
त्रैलोक्य पावनी गंगा कमला श्रीर्हरिप्रिया॥
दिनस्वामी रविश्चन्द्रो निशापति ग्रहेश्वरः।
जलाधिपोऽपि वरुणो कुबेरश्च धनेश्वरः॥
अव्याहत गतिर्वायुर्गजास्यो विघ्ननायकः।
वागीश्वरः सुराचार्यो दैत्याचार्यो ग्रहस्तथा॥

एवं हि सर्वदेवोपि सर्वसिद्धीश्वराः प्रिये।
तस्यास्तु कवचं गुह्यं गोपयेत् मातृजारवत्॥

॥ विनियोगः॥

अस्य श्री दक्षिणाकालिका कवचस्य महाकाल भैरव ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्मशान कालिका देवता सर्वकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः॥

॥ श्री महाकाल उवाच॥

ललाटं मे पातु क्रीं महेशेनाराधिता सदा।
नेत्र रक्षतु क्रीं क्रीं च विष्णुनाराधिता पुरा॥
क्रीं हूं ह्रीं नासिकाया तु ब्रह्मणा सेविता ध्रुवम्।
क्रीं क्रीं क्रीं वदनं पातु शक्रेनाराधितासदा॥
ह्रीं स्वाहा श्रवणौ पातु यमेनैव प्रपूजिता।
क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा रसनां पातु गंगया सेविता॥
दन्तपंक्तिं सदा पातु ओं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा मम।
भुक्तिमुक्तिप्रदा काली श्रिया नित्यं सुसेविता॥
ओष्ठाधरं सदापातु क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं मम।
सूर्येणाराधिता विद्या सर्वसिद्धि प्रदायिनी॥
कंठं पातु महाकाली ओं ह्रीं क्रीं स्वाहा वै सदा।
चन्द्रेणाराधिता विद्या चतुर्वर्ग फलप्रदा॥
हस्तयुग्मं सदापातु क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।
सौख्यदा मोक्षदा काली वरुणेन प्रसेविता॥
ओं क्रीं हूं ह्रीं फट् स्वाहा च हृदयं पातु सर्वदा।
सर्वसंपत्करी काली कुबेरेणोपसेविता॥
ऐं ह्रीं ओं ऐं हूं फट् स्वाहा स्तनद्वन्द्वं सदा पातु।
वायुनोपासिता काली यशोबल सुखप्रदा॥
क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं फट् स्वाहा पातु पृष्ठं सदा मम।
सर्वसिद्धिप्रदा काली गणनाथेन सेविता॥
क्रीं दक्षिणेकालिके ह्रीं स्वाहा नाभिं सदावतु।
शुद्धबुद्धप्रदा काली गुरुणा सेविता सदा॥
लिंगं पातु सदा हूं हूं दक्षिणे कालिके ह्रीं ह्रीं।
शुक्रेणाराधिता काली त्रैलोक्य जयदायिनी॥
पात्वण्डकोषे क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा।
धरया सेविता विद्या सर्वरत्नप्रदायिका॥

पातु गुदं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं ह्रीं स्वाहा।
द्वादशी च महाविद्या राघवेनार्चिता सदा॥
जानुनी पातु ओं ह्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं स्वाहा।
एकादशी महाविद्या मेघनादेन सेविता॥
क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं ह्रीं स्वाहा जंघावतु।
द्वादशी च महाविद्या प्रह्लादेन प्रसेविता॥
क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा पातु।
चतुर्दशी पादयुग्मं शुकदेवेन सेविता॥
क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं तथांगुलीः॥
पातु मे द्वादशी काली क्षेत्रपालेन सेविता।
ओं क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा च॥
नखं सर्वं सदापातु पंचदशी ग्रहेश्वरी।
क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा॥
षोडशी भैरवी पातु भैरवेन प्रसेविता।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु लोमानि हूं हूं रक्ष तु चर्मणि॥
मांसं पातु सदा ह्रीं ह्रीं रक्तं दक्षिणे कालिके।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु मे अस्थि मज्जां हूं हूं सदावतु॥
ह्रीं ह्रीं शुक्रं सदा पातु सन्धि रन्ध्रे स्वाहावतु।
द्वाविंशत्यक्षरी विद्या सर्वलोक प्रपूजिता॥
सर्वविद्येश्वरी विद्या सर्वतंत्रेषु गोपिता।
सूर्यवंशेन सौम्येन रामत्रय जामदग्निना॥
जयंतेन सनन्देन बलिना नारदेन च।
विभीषणच्यवणेन भृगुणाकाश्यपेन च॥
कपीन्द्रेण वशिष्ठेन भौमेन त्रिपुरेण च।
मार्कण्डेयेन कृपेन द्रोणेन सत्यभामया॥
ऋष्यशृंगेन कण्वेन भारद्वाजेन जह्नुना।
सर्वैराराधिता विद्या जरामृत्यु विनाशिनि॥
पूर्णविद्या महाकालि विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता।
कालीकपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी॥
विप्रचित्ता तथोग्रा च उग्रदीप्ता प्रभापि च।
नीलाघना बलाका च मात्रा मुद्रामितापि च॥

ऐताः सर्वाः खड्गधरा मुण्डमालाविभूषणाः।
हूं हूंकाराट्टहासेन सर्वत्र पातुमां सदा॥
ब्रह्माणी पातु मां पूर्वे आग्नेयां वैष्णवी सदा।
माहेश्वरी पातु याम्ये चामुण्डा नैर्ऋते सदा॥
कौमारी वारुणे पातु वायव्ये चापराजिता।
वाराही चोत्तरे पातु चैशान्यां नारसिंहिका॥
अध ऊर्ध्वं पातु काली पार्श्वपृष्ठे च कालिका।
जले स्थले च पाताले शयने भोजने गृहे॥
राजस्थाने जलदर्यो विवादे चारण्ये रणे।
प्रान्तरे पर्वते शून्ये पातुमां कालिका सदा॥
शवासने श्मशाने च शून्यागारे चतुष्पथे।
यत्र तत्र भये प्राप्ते सर्वत्र पातु कालिका॥
नक्षत्रतिथिवारे च योगकरणयोरपि।
मासे पक्षवत्सरे च यामे दण्ड निमेषके॥
दिवारात्रौ शिवा पातु सन्ध्ययोः पातुकालिका।
सर्वत्र कालिका पातु कालिका पातु सर्वदा॥
यः पठेच्छृणुयाद्दिव्यं कवचं शिवनिर्मितम्।
सर्वपापं परित्यज्य गच्छेच्छिव समालयम्॥
त्रैलोक्य मोहनं दिव्यं कवचं देव दुर्लभम्।
यः पठेत् साधकश्रेष्ठः सर्वकर्म जयान्वितम्॥
सर्वधर्मोद्भवो धर्मः सर्वविद्येश्वरेश्वरः।
कुबेरेवद्धनाध्यक्षो स्वरेण कोकिल स्वरः॥
कवित्वे व्यास सदृशो गणेशेव श्रुतिधरः।
कामदेव समारूपो वायुतुल्यः पराक्रमः॥
महेशेव योगीन्द्रश्च ऐश्वर्य-सुरनायकः।
वृहस्पति समोधीमान् जरामृत्यु विवर्जितः॥
सर्वदर्शी च निःपापी सकलजन प्रियः॥
अव्याहत गतिः शान्तो भार्यापुत्रसुतान्वितः।
यद्देहं कुरुते नित्यं कवचं मंत्रविग्रहम्॥
न शोको न भयः क्लेशो न रोगो न पराजयः।
महाविषविषादेपि परिवाद भयन्नहि॥

संग्रामे च जय शत्रून् यथा वह्निर्दहेतृणम्।
ब्रह्मास्त्राद्यस्त्र शस्त्राणि शूलानि कण्टकानि च।।
तस्य देहं न भिन्दंति वज्रतुल्यं भवेद्वपुः।
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षराक्षसकिन्नराः।।
सर्वे दूरात्पलायन्ते हिंसको नश्यति ध्रुवम्।
तद्देहं न दहत्यग्निर्नतापयति भास्करः।।
न शोषयति वातो न क्लेदनं कुरुते पयः।
पुत्रवत् पाल्यते काल्या हिमवत् कुरुते शशी।।
जलसूर्येन्दुवाताश्च रक्षन्तु नास्ति संशयः।
बहु किं कथयिस्यामि सर्वसिद्धिमुपालभेत्।।
नानाभोग सुखं लब्ध्वा स्वेच्छयापि शिवो भवेत्।
लिखित्वा पूजयित्वा वा धारयेदङ्गसंगतम्।।
मोहनस्तम्भनाकर्ष मारणोच्चाटनं भवेत्।
काकबन्ध्या च या नारी बन्ध्या वा मृतपुत्रणी।।
कण्ठे वा वामहस्ते वा लिखित्वा धारयेद् यदि।
तदा पुत्रो भवेत् सत्यं चिरायुः पण्डितः शुचिः।।
स्वामिनो वल्लभः सोपि धनधान्यसुतान्वितः।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत् कालिका मनुम्।।
ध्यानेन कोटि जापेन तस्य विद्या न सिद्ध्यति।
पदे पदे भवेद् दुःखं लोके च निन्दितं ध्रुवम्।।
इहलोके महादुःखी परे च नरकं व्रजेत्।
गुरूमंत्र-समं ज्ञात्वा योरभेत् कवचोत्तमम्।।
तस्य विद्या भवेत् सिद्धा सत्यं सत्यं वरानने।
प्रकाशनात् कवचेदं दिव्यं सः शिवहा भवेत्।।
भक्ताय जेष्ठपुत्राय साधकाय दापयेत्।।

।। इति श्रीरुद्रयामले देवी शङ्करसंवादे त्रैलोक्य मोहन्नाम कवचं समाप्तम्।।

॥ श्री तारा खड्गमाला-स्तोत्रम्॥
(अथर्ववेदीय)

प्रस्तुत दुर्लभ एवं गोपनीय अथर्ववेदीय 'तारा खड्गमाला-स्तोत्र' का प्रकाशन प्रथम बार किया जा रहा है। इस अद्भुत तथा सर्वसिद्धिप्रद स्तोत्र की उपलब्धि **अवधूत सन्यासी योगिराज अनन्त श्री विभूषित निर्भयानन्द सरस्वती प्रतिवाद भयङ्कर आचार्य विश्वबन्धु अविनाशी** (दीक्षा नाम-**व्योमानन्द नाथ**) जी की कृपा प्रसाद द्वारा ही हुई है। श्री स्वामी जी एक उच्च कोटि के योगी तथा देवत्व प्राप्त सन्यासी हैं। शाक्त दीक्षा (विशेषकर-तारा-मन्त्र दीक्षा) प्राप्त कोई भी साधक इस स्तोत्र के पाठ का अधिकारी है। श्री स्वामी जी के कथनानुसार कार्य की लघुता एवं गुरूता को ध्यान में रखकर इस स्तोत्र का एक सौ आठ, एक हजार आठ अथवा दश हजार पाठ करना चाहिए। इस स्तोत्र-पाठ के फलस्वरूप आध्यात्मिक प्रगति, भगवद् दर्शन के अतिरिक्त लौकिक रूप से न्यायालय में विजय, निर्वाचन में जय, शत्रुनाश, भय, बाधा, सङ्कट, असाध्य रोग, दैन्य तथा अनेकों प्रकार के अरिष्टों की निवृत्ति होती है। स्वकार्य सिद्धि हेतु इस स्तोत्र को अमोघ कहा गया है। स्तोत्र पाठ के पश्चात् साधक को दशांश की संख्या में (न्यूनतम एक सौ आठ बार) इस स्तोत्र के सूक्तों द्वारा हवन भी करना चाहिए।

हवनीय द्रव्य - श्वेत अपराजिता, चमेली, श्वेत गुलाब, पारिजात, श्वेत मदार, चाँदनी अथवा कदम्ब के पुष्पों, श्वेत तिल, त्रिफला घृत एवं त्रिमधु से हवन करना चाहिए।

विनियोग - **ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पञ्चदश काण्डस्य षष्ट सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः, पंक्ति-त्रिष्टुप्-वृहती-जगती-उष्णिक् अनुष्टृप् छन्दांसि अध्यात्म (व्रात्य वा) देवता सर्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे पाठे विनियोगः।**

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत्॥१॥

तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च
वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्य चलन्॥२॥

भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥३॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत्॥४॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन्॥५॥

ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥६॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत्॥७॥

तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन्॥८॥

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥९॥

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत्॥१०॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्य चलन्॥११॥

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥१२॥

स परमां दिशमनु व्यचलत्॥१३॥

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्य चलन्॥१४॥

आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥१५॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत्॥१६॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्य चलन्॥१७॥

ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥१८॥

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत॥१९॥

तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन्॥२०॥

दितेश्च वै सोऽदितेश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥२१॥

स दिशोऽनु व्य चलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः॥२२॥

विराजश्च वै स सर्वेषां व देवानां सर्वासां च देवतानां। प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥२३॥

स सर्वानन्तर्देशाननु व्य चलत्॥२४॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन्॥२५॥

प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥२६॥

इति॥

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थाः

अन्नदाकल्पतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल
अभिनवगुप्त-एक परिचय। डॉ. (श्रीमती) प्रेमा अवस्थी
अहिर्बुध्न्यसंहिता (श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गत) 'सरला' हिन्दीटीकासहित। डॉ. सुधाकर मालवीय
आगमतत्त्वविलास। हिन्दी-टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल। (*1-4* भाग सम्पूर्ण)
ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी। (ज्ञानाधिकार)। प्रथम अधिकार के पाँचवे आह्निक की सप्तम कारिका से लेकर आह्निक के अन्त तक की 'लीला' हिन्दी व्याख्या। टीकाकार - डॉ. दयाशङ्कर शास्त्री
एकजटातारासाधनतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल
Kamakala Vilasa : *Text with 'Cidwalli' Sanskrit Commentary and English Translation, Notes etc. Dr. R. P. Dwivedi & Dr. S. Malaviya*
कामकलाकालीसपर्या। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय
कामकलाविलास। चिद्वली संवलितः। सरोजिनी हिन्दी व्याख्या। डॉ. श्यामकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
कामाख्यातन्त्र। 'ज्ञानवती' हिन्दी टीका सहित। आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी
कुण्डलिनी शक्ति। (योग-तान्त्रिक साधना-प्रसङ्ग) श्री अरुणकुमार शर्मा
कुलार्णवतन्त्र। 'नीरक्षीरविवेक' हिन्दीटीका। डॉ. परमहंस मिश्र
गायत्री-मन्त्रार्थ भास्कर। भाषा टीका सहित। पं. यमुना प्रसाद द्विवेदी
गायत्रीमहातन्त्र। आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदिप्रणीत। हिन्दीभाष्य विभूषित
तन्त्रविज्ञान और साधना। श्री सीताराम चतुर्वेदी
तन्त्रसार। अभिनवगुप्तपादाचार्य विरचित। हिन्दीटीका सहित। (*1-2* भाग)। डॉ. परमहंस मिश्र
तन्त्रराजतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण
तन्त्रसारसङ्ग्रह। नारायण विरचित। सव्याख्या। आंग्ल एवं संस्कृत भूमिका सहित।
तन्त्रालोक। अभिनवगुप्तपादाचार्य। जयरथकृत'विवेक' टीका एवं पं. राधेश्याम चतुर्वेदीकृत हिन्दीटीका
त्रिपुरारहस्य। डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्रकृतहिन्दी अनुवाद सहित। (ज्ञान एवं महात्म्यखण्ड)
त्रिपुरार्णवतन्त्र। (उपासनाखण्ड) हिन्दीटीका सहित। डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र
त्रिपुरासारसमुच्चय। श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्लः
दक्षिणकालिकासपर्यापद्धति। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय
दुर्गासप्तशती। दुर्गाप्रदीप-गुप्तवती-चतुर्धरी-शान्तनवी-नागोजीभट्टी-जगच्चन्द्रिका-दंशोद्धार नामक सप्तटीकायुक्त।
दुर्गासप्तशती। मूलमात्र। नव-शत-सहस्रचण्डी-पल्लवयोजना-कवचअर्गला-कीलक-कुञ्जिकास्तोत्र सहित।
देवीरहस्य। (परिशिष्ट सहित) श्रीरुद्रयामलतन्त्रार्गत। हिन्दीटीका सहित। श्री कपिलदेव नारायण
नीलसरस्वतीतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेवालकृत हिन्दी टीका।
नित्याषोडशिकार्णव। संस्कृत एवं हिन्दी-टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल
नित्योत्सव। हिन्दी-टीका सहित। श्रीपरमहंस मिश्र
नेत्रतन्त्र। क्षेमराजकृत 'नेत्रोद्योत' संस्कृत एवं श्रीराधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दीटीका सहित
परलोकविज्ञान। श्री अरुणकुमार शर्मा

प्रत्यभिज्ञाहृदय। हिन्दी टीका सहित। डॉ. सुधांशु कुमार षडंगी
प्राणतोषिणी। मूलमात्र। श्रीरामतोषण भट्टाचार्य।
पुरश्चर्यार्णव। श्रीनेपालमहाराजाधिराज प्रतापसिंह साहदेवविरचित। सम्पादक - म. म. मुरलीधर झा
प्रपञ्चसारसारसंग्रह। (मूलमात्र) गीर्वाणेन्द्रसरस्वतीविरचित। के. एस. सुब्रह्मण्यशास्त्री सम्पादित।
ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
भूतडामरतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेलवालकृत हिन्दी टीका
भारतीय शक्ति-साधना। (शक्ति-विज्ञान : स्वरूप एवं सिद्धान्त) डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
Mahanirvanatantram. *Sanskrit Text and English Translation by M. N. Dutta*
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य। डॉ. शिवशङ्कर अवस्थी
महाकालसंहिता (कामकला कालीखण्ड)। 'ज्ञानवती' हिन्दीभाष्य सहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी
महाकालसंहिता (गुह्यकालीखण्ड)। 'ज्ञानवती'हिन्दीभाष्यसहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी (*1-5* भाग)
मन्त्रमहोदधि। 'नौका' संस्कृत टीका तथा 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या। डॉ. सुधाकर मालवीय
महानिर्वाणतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिल देव नारायण
मुद्राविज्ञान-साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
राधातन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्री एस. एन. खण्डेलवाल
रुद्रयामलतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार - डॉ. सुधाकर मालवीय
रेणुकातन्त्र। हिन्दी टीका सहित। श्रीकपिल देव नारायण
ललितासहस्रनाम। 'सौभाग्यभास्करभाष्य' एवं श्रीभारतभूषणकृत विस्तृत हिन्दी व्याख्या।
ललितोपाख्यान। (तन्त्र)। मूलमात्र
वर्णबीजप्रकाश। श्रीसरयूप्रसाद द्विवेदी। सम्पादक - डॉ. परमहंसमिश्र
वरिवस्यारहस्य। 'प्रकाश' संस्कृत एव डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द' कृत हिन्दी टीका सहित।
विज्ञानभैरव। श्रीबापूलाल आँजना विरचित कारिकानुवाद विवृतभागस्थ हिन्दी व्याख्या
बृहत्तन्त्रसार। कृष्णानन्द आगमवागीशकृत। 'साधनात्मक' हिन्दीटीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण
श्रीतत्त्वचिन्तामणि। संस्कृतटीका एवं 'भावना' हिन्दी टीका। श्रीमधुसूदनप्रसादशुक्ल (*1-2* भाग)
श्रीविद्यार्णवतन्त्र। 'साधनात्मक' हिन्दीटीका सहित। श्रीकपिलदेव नारायण (*1-5* भाग सम्पूर्ण)
श्रीविद्यासपर्यापद्धति। ब्रह्मश्रीशङ्कररामशास्त्री
श्रीविद्या-साधना। (श्रीविद्या का सर्वाङ्गपूर्ण शास्त्रीय विवेचन)। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी
शारदातिलक। 'पदार्थादर्श' संस्कृत टीका एवं डॉ. सुधाकर मालवीयकृत हिन्दी-टीका सहित।
षट्चक्रनिरूपण। पूर्णानन्दयति। शिवोक्त पादुकापञ्चक सहित। श्रीभारतभूषणकृत हिन्दी व्याख्या।
सप्तशतीसर्वस्व। (मूलमात्र) नानाविधसप्तशतीरहस्यसंग्रहः। पं. सरयू प्रसाद द्विवेदी
सर्वोल्लासतन्त्र। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार - श्री एस. एन. खण्डेलवाल।
सार्द्ध-नवचण्डि-पुरश्चरण। डॉ. रामप्रिय पाण्डेय
सिद्धनागार्जुनतन्त्र। श्री एस. एन. खण्डेनवाल कृत हिन्दी टीका सहित।
सौन्दर्यलहरी। 'लक्ष्मीधरी' संस्कृत एवं 'सरला' हिन्दी व्याख्या। सुधाकर मालवीय
स्पन्दकारिका। विस्तृत हिन्दी व्याख्या, तुलनात्मक अध्ययन सहित। डॉ. श्यामकान्त द्विवेदी
स्वच्छन्दतन्त्र। संस्कृत-हिन्दी टीका सहित। प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी (*1-2* भाग)
सिद्धसिद्धान्तपद्धति। हिन्दी अनुवाद सहित। स्वामी द्वारकादास शास्त्री।

●

आगामी प्रकाश्य ग्रन्थ

ब्रह्मास्त्र-बगला कल्प-विधानम्

भगवती श्रीबगलामुखी (पीताम्बरा) के प्रयोगों पर
आधारित दुर्लभ पुस्तक।

यतिदण्डैश्वर्य-विधानम्

श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी पूजनार्चन (श्रीयंत्रार्चन) विधि सहित।

श्मशान-काली-सपर्या

श्री श्मशान काली पूजन पर आधारित
विश्व की प्रथम पुस्तक।

श्यामा (मातंगी) सपर्या

ग्रंथ में भगवती की मातंगी (श्यामला) के विशेष मंत्र और
पूजनार्चन का प्रतिपादन किया गया है।

आनन्द-तन्त्रम्

ग्रंथ में लिंग रहस्य और शक्ति की अर्चा का साङ्गोपांग वर्णन,
शक्ति पूजा का विस्तृत विवरण है।
प्रस्तुत ग्रंथ वामाचार पर आधारित है।

षोडशात्मक श्रीयंत्रावरण-सपर्या

(श्रीत्रिपुर-सुन्दरी पूजन)

प्रस्तुत ग्रंथ में सृष्टि-स्थिति तथा संहार क्रम से
पूजन एवं पात्रासादन दिया गया है।

प्रकाशित ग्रन्थ

❁

स्वच्छन्द-पद्धति

(श्रीविद्या-साधना)

❁

सांख्यायन-तन्त्रम्

(बगलामुखी-साधना)

❁

दारिद्र्य-ध्वंसिनि प्रयोग

(श्रीलक्ष्मी-साधना)

❁

षट्कर्म-दीपिका

(षट्कर्म-साधना)

❁

श्री राज-राजेश्वरी-अर्चन पद्धति

(श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-पूजा-विधि)

❁

बृहन्नील-तन्त्रम्

(काली-तारा-साधना)

❁

सप्तशती-तन्त्रसार

हमारे अन्य उपयोगी प्रकाशित ग्रन्थ

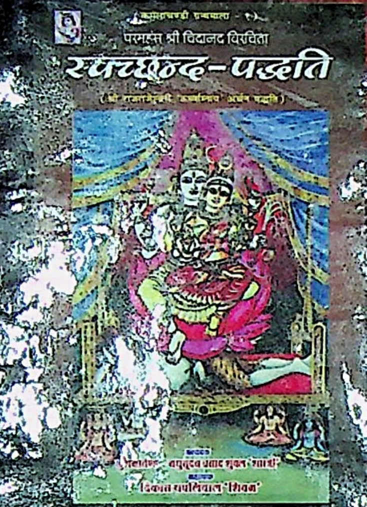

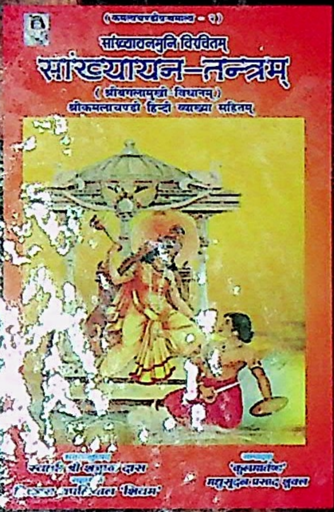

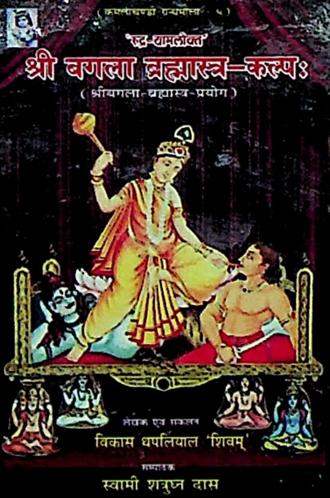

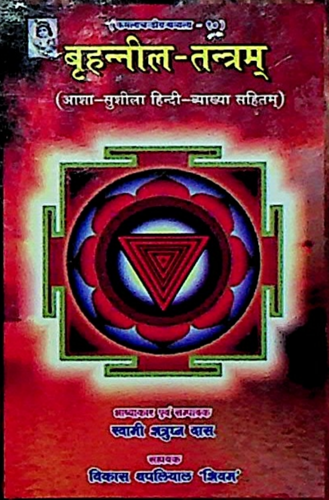

मधुसूदन प्रकाशन

पो०ऑ० जाखचौरा,
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)
दूरध्वनि : 9760219141, 9997979276

हमारे अन्य उपयोगी प्रकाशित ग्रन्थ

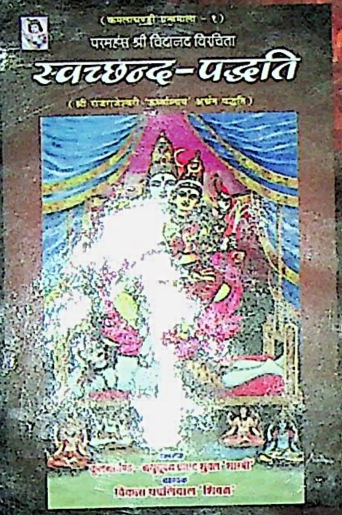

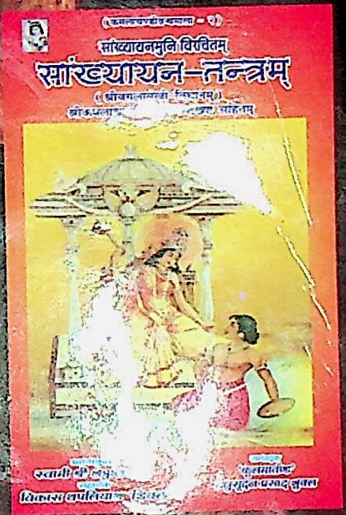

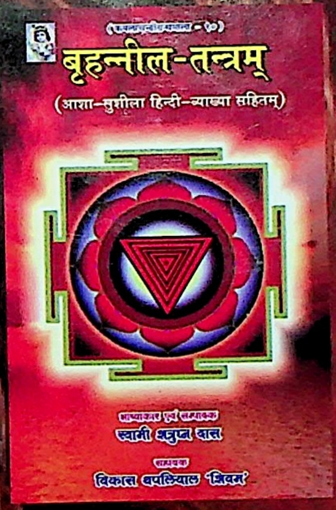

मधुसूदन प्रकाशन

पो०ओ० जाखचौरा,

टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)

दूरध्वनि : 9760219141, 9997979276